









श्रीः ।

# श्रीमनुस्मृति

अन्वयांकसमेत

और

श्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदीकरचित

मनूक्तभाषाविवृतिनाम भाषाटीकासहित ।

उक्तपण्डितकीआज्ञानुसार

श्रीमद्वैश्यकुलावतंस

खेमराज श्रीकृष्णदासने

श्रीवेङ्कटेश्वरानुगृहीत

“श्रीवेङ्कटेश्वर” नामनिजयंत्रमें मुद्रित किया ।

मुंबई.

श्रीसम्बत् १९५० वैक्रमी तथा सन १८९४ राजकीय

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ११

Registered for copy-right under act XXV of 1867



## याज्ञवल्क्यमिताक्षरा संस्कृत ॥

महोपदेशक भारतधर्म महामंडल, काशीस्थ राजकीय प्रधान पाठशाला  
परीक्षोत्तीर्ण गौडावतंस लाखग्रामनिवासी पं० मिहिरचंद्रकृत अत्युत्तम  
सरल सुबोध मनोहर भाषाटीकामें छपारही है जिसमें पद और श्लोकोंका  
अन्वयभी विद्यमान है अतएव यह ग्रंथ अतीव उपयोगी है ॥



प्रगट होय कि यह मानव धर्मशास्त्र अति उत्तम है इसमें मनुजीने अति उत्तम रीति पूर्वक सृष्टिके क्रमसे आरंभकर सब वर्णोंकी उत्पत्ति और उनके संस्कार आचार आदि सब स्फुट करके उत्तमरीतिके अनुसार कहे हैं यह मनुस्मृति ग्रंथ हमारे सब धर्मशास्त्रके स्मृति आदि ग्रंथोंका शिरोमणि है बहुधा कोई स्मृति इसे विरुद्ध नहीं है और जो कदाचित् कोई किसी अंशमें विरुद्ध है तो उसकी प्रशंसा नहीं है कारण यह है कि ये मनुजी संपूर्ण वेदार्थ के तत्त्वको अति उत्तम रीतिसे जानते थे सो इन्होंने वेदार्थ हीका अपनी स्मृतिमें उत्तमतासे वर्णन किया है सोई लिखा है ॥ वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्रामाण्यमिदमनोस्मृतम् ॥ अनुस्मृतिविरुद्धायासास्मृतिर्न प्रशस्यते ॥ इति ॥ अर्थ ॥ वेदार्थके अनुसार कहनेके कारण मनुका प्रामाण्य है और मनुस्मृतिसे विरुद्ध जो स्मृति है उसकी प्रशंसा नहीं है और भी उपनिषद्में लिखा है ॥ यथायद्वैमनुरवदत्तद्वेषजभेषजताया ॥ इति ॥ अर्थ ॥ निश्चयकरि जो मनुने कहा है वह भेषजताका भेषज है अर्थात् औषधकी भी औषध है इत्यादि वचनोंसे भी मनुस्मृतिकी सर्वोत्तमता प्रकट होती है अब देखिये ऐसे उत्तमग्रंथको सहस्रशः मनुष्य संस्कृत विद्यामें व्युत्पत्ति न होनेके कारण कुछ नहीं समझ सकते इस निमित्त मैंने श्रीकुल्लूकभट्टकृत टीकाके अनुसार बड़े श्रमसे सरल मनुष्य भाषामें सबोंके समझनेयोग्य यह टीका बनाई है यद्यपि और भी दो तीनि इसकी भाषा टीका बनी हैं परन्तु उनमें किसी २ ने तो बहुत ही अनर्गल लिखा है कि मूलका कुछ आशय है और टीकामें कुछ और ही लिखा है धन्य हैं वे टीका बनाने और छापने वाले उनकी प्रशंसा नहीं हो सकती और दो एकमें पहले सेतौ आरम्भ अच्छा है परन्तु पीछे से केवल श्लोकहीका संक्षिप्त आशय लिखा है अब देखिये यह धर्मशास्त्रका ग्रंथ है जो मूलहीसे काम चलता तो इस पर गोविन्दराज मेधातिथि आदि आचार्य टीका बनानेका श्रम क्यों करते इन सब बातोंको शोचि समझके मैंने यह कलकत्तेकी छपी हुई कुल्लूकभट्टकी बनाई टीका जो इन दिनोंमें बहुधा प्रचलित है और सब विद्वन्मण्डलोंमें प्रतिष्ठित है उसके अनुसार आद्योपांत ग्रंथ बनाया है जिस किसीको शंका होय वह ग्रंथ भरमें जहांके चाहै वहांके श्लोक टीकासे मिला ले कि यह उक्त भट्टजीकी टीकाके अनुसार है वा नहीं देख लें और इस सटीक पुस्तकको बनाने के शुद्धकरि वैश्यकुलोत्पन्न श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासको मुंबईमें छापने तथा रजिस्टरी करनेका अधिकार दिया इस पुस्तकको उनके सिवाय अन्य यंत्राधिप छापनेका उद्योग न करै इति । संवत् १९४८ कार्तिकवादि ८ रवौ

**श्रीपण्डित केशवप्रसाद शर्मा द्विवेदी**

**आगराकालेजका पेनशिनर हैड पण्डित**

**सम्प्रति संस्कृत प्रोफेसर सेन्ट जॉन्स कालेज आगरा**



## टीकाकारप्रस्तावः ॥

ब्रह्मावर्तात्पतीच्यांसुरतटिनितटे वर्त्तन्ते राधनाख्यो ग्रामस्तस्मिन्हि जातो  
द्विजकुल तिलकः श्रीभवानीप्रसादः ॥ तत्सूनुः श्रीद्विवेदी समजनि विदितो देवमण्या-  
ख्यया यस्तस्माज्जातस्सुबुद्धिः परमसुखइतिख्यातिमान्पण्डिताग्र्यः ॥ १ ॥ तस्यात्मजः  
केशवपूर्वकोऽहंप्रसादनामा बहुधा प्रसिद्धः ॥ अकारियेनेयं मनुप्रणीतशास्त्रस्य टीकानु-  
गिराऽऽगराख्ये ॥ २ ॥

टीका-ब्रह्मावर्त जिसको विठूर कहते हैं उससे पश्चिमदिशामें गंगाजीके तट  
पर राधनाम ग्राम है उसमें ब्राह्मणोंके कुलमें श्रेष्ठ श्रीयुक्तभवानीप्रसाद उत्पन्न  
हुए उनके पुत्र देवमणि नामसे विदित द्विवेदी हुए उनसे सुंदर बुद्धिवाले पण्डि-  
तोंमें मुख्य परमसुख इस नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १ ॥ उनका पुत्र केशवप्रसादनाम  
में बहुधा प्रसिद्धहों जिसने मनुजीके बनाये हुए शास्त्रकी यह टीका मनुष्योंकी  
भाषामें आगरानाम नगरमें बनाई ॥ २ ॥ इति ॥



श्रीः

## मनुस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
टीकाकारकामंगल....	१	१	अंज ..... ..	११	४४
टीकाकारका विनय ....	१	२	स्वेदज..... ..	११	४५
अथ प्रथमोऽध्यायः ।			उद्विज्ज ..... ..	११	४५
मनुसे मुनियोंने धर्मपूछा	१	१	वनस्पति और वृक्ष ....	१२	४५
मनु उनसे बोले ....	३	४	गुच्छ गुल्म आदि .....	१२	४८
जगत्की उत्पत्तिका करना	३	५	महाप्रलय ..... ..	१३	५४
पहले जलसृष्टि ....	४	८	जीवका निकलना ....	१३	५५
ब्रह्माकी उत्पत्ति ....	४	९	दूसरी देहका ग्रहणकरना	१३	५६
नारायण शब्दका अर्थ....	४	१०	इस शास्त्रके प्रचारका कहना	१४	५८
ब्रह्मका स्वरूप कथन ....	४	११	मन्वन्तरका कहना .....	१५	६१
स्वर्गभूमि आदिकी सृष्टि.	५	१३	अहोरात्रआदिके प्रमाणकहना	१५	६४
महत् आदिके क्रमसे ज-			पितरोंके रातिदिनका कहना	१५	६६
गत्की उत्पत्ति ....	५	१४	देवताओंके दिनरातिका कहना	१६	६७
देवगण आदिकी सृष्टि....	७	२२	चारों युगोंका प्रमाण ....	१६	६९
तीनी वेदोंकी सृष्टि ....	७	२३	देवताओंके युगका प्रमाण	१६	७१
काल आदिकी सृष्टि ....	७	२४	ब्रह्माके दिनरातिका प्रमाण	१६	७२
काम क्रोध आदिकी सृष्टि	७	२५	मनसे आकाशका प्रकटहोना	१७	७५
धर्माधर्मविवेक ....	८	२६	आकाशसे वायुका उत्पन्नहोना	१७	७६
सूक्ष्मस्थूलआदिकी उत्पत्ति	८	२७	वायुसे तेजका प्रकटहोना	१७	७७
कर्मकी सापेक्ष सृष्टि ....	८	२८	तेजसे जल और जलसे पृथिवी	१७	७८
ब्राह्मणादिक सृष्टि....	९	३१	मन्वन्तरका प्रमाण ....	१७	७९
स्त्रीपुरुषकी सृष्टि ....	९	३२	सत्य युगमें चारि पांव धर्म	१८	८१
मनुकी उत्पत्ति ....	९	३३	और युगोंमें धर्मके पादपाद		
मरीचि आदिकी उत्पत्ति	९	३४	कीहानि ..... ..	१८	८२
यक्ष गंधर्व आदिकी उत्पत्ति	१०	३७	युगयुगमें आयुका प्रमाण	१८	८३
मेघ आदिकी सृष्टि....	१०	३८	युगयुगमें धर्मकी विलक्षणता	१९	८५
सपक्षी आदिकी सृष्टि ....	१०	३९	ब्राह्मणका कर्म कहतेहैं ....	१९	८८
पीट आदिकी उत्पत्ति	१०	४०	क्षत्रियका कर्म कहतेहैं ....	१९	८९
सावित्री.....	११	४३	वैश्यका कर्म कहतेहैं ....	१९	९०



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
शूद्रका कर्म कहतेहैं ....	१९	९१	उस देशके ब्राह्मणोंसे सदा		
ब्राह्मणका श्रेष्ठत्व ....	१९	९२	चार सीखें ....	२७	२०
ब्राह्मणोंमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ	२०	९७	मध्य देश कहतेहैं ....	२७	२१
यह शास्त्र ब्राह्मणको पढ़ना			आर्यावर्त्त कहतेहैं ....	२७	२२
चाहिये ....	२१	१०३	यज्ञ करनेयोग्य देश कहतेहैं	२७	२३
इस शास्त्रके पढ़नेका फल	२१	१०४	वर्णोंके धर्म आदि कहतेहैं	२८	२५
आचार मुख्य धर्म हैं ....	२२	१०८	द्विजोंका वैदिक मंत्रोंसे गर्भा-		
ग्रंथके अर्थकी अनुक्रमणिका	२२	१११	धान आदि करने चाहिये	२८	२६
<b>अथ द्वितीयोऽध्यायः ।</b>			गर्भाधानादिकोकी पापके		
धर्मका सामान्य लक्षण ....	२४	१	क्षय कारणपन कहतेहैं	२८	२७
कामात्मताका निषेध ....	२४	२	स्वाध्याय आदिको मोक्ष का-		
व्रत आदि संकल्पसे उत्पन्नहैं	२४	३	रणपन कहतेहैं ....	२८	२८
अकामकी कोई क्रियानहीहोती	२४	४	जातकर्म कहतेहैं ....	२८	२९
धर्मके प्रमाण कहतेहैं ....	२५	६	नामकरण कहतेहैं ....	२८	३०
धर्मका वेद मूलपन कहतेहैं	२५	७	उपपदका नियम कहतेहैं ....	२९	३२
श्रुति स्मृतिकारि कहा हुआ			स्त्रियोंका नामकरण ....	२९	३३
धर्म करना चाहिये ....	२५	९	निष्क्रमण और अन्नप्राशन	२९	३४
श्रुति स्मृतिका परिचय ....	२५	१०	चूड़ाकरणका समय ....	२९	३५
नास्तिककी निंदा ....	२६	११	यज्ञोपवीतका काल ....	२९	३६
चारप्रकारसे धर्मका प्रमाण			यज्ञोपवीतकालकी विधि ....	३०	३६
कहते हैं ....	२६	१२	व्रात्य कहतेहैं ....	३०	३९
श्रुतिके स्मृतिके विरोधमें			कृष्ण मृग चर्म आदिकाधारण	३०	४१
श्रुति बलवती ....	२६	१३	मौंजीआदिका धारण ....	३०	४२
श्रुतिके द्वैविध्यमें दोनोप्रमाण	२६	१४	मौंजीके न मिलनेमें कुश		
श्रुतिके द्वैधमें दृष्टान्त कहतेहैं	२६	१५	आदिकी मेखला करनी चाहिये	३१	४३
दशकर्माकारि युक्तका इसमें			यज्ञोपवीत कहतेहैं ....	३१	४४
अधिकार है ....	२६	१६	दंड कहतेहैं ....	३१	४५
धर्मकरनेके योग्य देशोंको			भिक्षा कहतेहैं ....	३१	४९
कहते हैं ....	२७	१७	पहली भिक्षाका नियम ....	३२	५०
ब्रह्मावर्त्त देशको सदाचार	२७	१८	पूर्वाभिमुख आदिकाम्य		
कुरुक्षेत्र आदि ब्रह्मर्षि देशों-			भोजनका फल ....	३१	१६४
को कहतेहैं ....	२७	१९	भोजनकी आदि और अं-	३१	१६६
			तमें आचमन ....	३१	१६७



## अध्याय २]

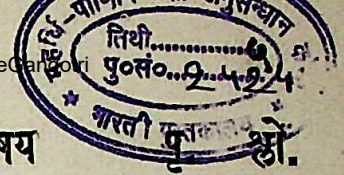
## मनुस्मृति

विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
श्रद्धासे अन्नका भोजन करे	३२	५४	प्रणव व्याहृति तथा सावि-		
अश्रद्धाके भोजनका निषेध	३२	५५	त्रीकी प्रशंसा ....	३७	८१
भोजनमें नियम ....	३२	५६	प्रणवकी प्रशंसा ....	३७	८४
अतिभोजनका निषेध ....	३३	५७	मानसजपकी अधिकता	३७	८५
ब्राह्म आदि तीर्थसे आच-			इन्द्रियोंका संयम ....	३८	८८
मन पितृतीर्थसे निषेध	३३	५८	ग्यारह इन्द्रियां ....	३८	८९
ब्राह्म आदि तीर्थ कहतेहैं	३३	५९	इन्द्रियोंके संयमसे सिद्धि		
आचमनविधि ....	३३	६०	होतीहै भोगसे नहीं	३८	९३
आचमनके जलका प्रमाण	३३	६१	विषयोंकी उपेक्षा करने-		
अबुष्ण आदि जलकानि-			वाला श्रेष्ठ ....	३८	९४
यम कहतेहैं ....	३३	६२	इन्द्रियोंके संयमका		
सव्य अपसव्य कहतेहैं ....	३४	६३	उपाय कहतेहैं ....	३९	९६
पहली मेखला आदि केनष्ट होनेपर			काममें आसक्तको यज्ञ-		
दूसरी ग्रहण करनी चाहिये	३४	६४	आदि फल देनेवाले		
केशान्त नाम संस्कार ....	३४	६५	नहीं होतेहैं ....	३९	९७
स्त्रियोंका संस्कार मंत्ररहित	३४	६६	जितेंद्रियका स्वरूप कहतेहैं	३९	९८
स्त्रियोंकी विवाहविधि वैदिक-			एक इन्द्रियका असंयम		
मंत्रोंसे होनी चाहिये	३४	६७	भी निवारण करने		
उपनीतके कर्म कहतेहैं ....	३५	६९	योग्यहै ....	३९	९९
वेद पठनेकी विधि कहतेहैं	३५	७०	इन्द्रियोंका संयम पुरु-		
गुरुके प्रणामकी विधि	३५	७२	षार्थका कारणहै ....	३९	१००
गुरुकी आज्ञासे पठना			तीनों कालका संध्यावंदन	४०	१०१
और बंद होना ....	३५	७३	संध्याहीन शुद्धके तुल्य	४०	१०३
अध्ययनकी आदि तथा अंतमें			वेद पाठकी अशक्तिमें		
ओंकारका उच्चारण	३५	७४	सावित्री मात्रका जप	४०	१०४
प्राणायाम कहतेहैं ....	३६	७५	नित्यकर्म आदिमें अन-		
प्रणव आदिकी उत्पत्ति	३६	७६	ध्याय नहींहै ....	४०	१०५
सावित्रीकी उत्पत्ति ....	३६	७७	जपयज्ञका फल ....	४०	१०७
सावित्री जपका फल	३६	७८	ब्रह्मचर्यसे गृहस्थ होने-		
अध्ययन हस्तार जपका			तक होम आदि करना		
में ....	३६	७९	चाहिये ....	४१	१०८
गुरुकी आज्ञापूर्वक करनेमें निंदा	३६	८०			



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
कैसा शिष्य पढाना चाहिये	४१	१०९	वन्दना करने योग्य है ....	४५	१३५
विना पूछे वेद न कहै ....	४१	११०	वित्त आदि सामान्यता		
निषेधके उल्लंघनमें दोष	४१	१११	करनेवाले हैं ....	४५	१३६
बुरे शिष्यको विद्या न			रथ आदिसें चढे हुएको		
देनी चाहिये ....	४१	११२	मार्ग देना चाहिये	४५	१३८
अच्छे शिष्यको देनी चाहिये	४२	११५	स्नातकको राजा करिभी		
अध्यापककी आज्ञाविना			मार्ग देना चाहिये ....	४५	१३९
दूसरेसे पढनेका निषेध नहीं	४२	११६	अथ आचार्य ....	४६	१४०
अध्यापकोका मान्यत्व कहते हैं	४२	११७	अथ उपाध्याय ....	४६	१४१
विहितके न करनेमें निंदा	४२	११८	गुरु ....	४६	१४२
गुरुके अभिवादन आदिमें	४२	११९	ऋत्विक् ....	४६	१४३
वृद्ध अभिवादनमें ....	४२	१२०	अध्यापककी प्रशंसा ....	४६	१४४
अभिवादनका फल ....	४३	१२१	माता आदिका उत्कर्ष	४६	१४५
अभिवादनकी विधि ....	४३	१२२	वेद पढानेवालेकी श्रेष्ठता	४६	१४८
बदलेके अभिवादनमें ....	४३	१२३	बालकभी आचार्य		
बदलेके अभिवादन जान-			पिताके समान ....	४७	१४९
नेका दोष ....	४३	१२६	इसमें दृष्टान्त देते हैं ....	४७	१५१
कुशल पूछने आदिमें ....	४४	१२७	वर्णके क्रमसे ज्ञान आ-		
दीक्षित आदिके नामलेने-			दिसे जेठापन ....	४८	१५५
का निषेध ....	४४	१२८	मूर्खकी निंदा ....	४८	१५७
पराई स्त्री आदिके नामले-			शिष्यसे मीठी वाणी		
नेका निषेध ....	४४	१२९	कहनी चाहिये ....	४८	१५९
छोटे मामा आदिके वंद-			मनुष्यके वाणी और		
नका निषेध ....	४४	१३०	मत्तके रोकनेको कहते हैं	४८	१६०
मावसी आदि गुरुकी			परके द्रोह आदिका निषेध	४८	१६१
स्त्रीके समान पूज्य	४४	१३१	परकरि अपमान करने		
भाईकी स्त्री आदिके			परभी क्षमा करनी चाहिये	४९	१६२
अभिवादनमें ....	४४	१३२	अपमान करनेवालेका दोष	४९	१६३
फूफी आदिके अभिवादनमें	४४	१३३	इस विधिसे वेद पढना चाहिये	४९	१६४
पुरवासियोंके सख्य आदिमें	४५	१३४	वेदके अभ्यासकी श्रेष्ठता	४९	१६६
दशवर्षका भी ब्राह्मण क्षत्रिय			वेदाभ्यासकी स्तुति ....	४९	१६७
आदिकों करि पिताके तुल्य					





विषय	पृ.	श्लो.
वेदको न पढ वेदांग अवि-		
द्याके पढनेका निषेध	५०	१६८
द्विजत्व निरूपणके लिये-		
कहतेहैं ....	५०	१६९
यज्ञोपवीत किये हुएका-		
अनधिकार....	५०	१७१
यज्ञोपवीत किये हुएका-		
वेदपठना ....	५०	१७३
गोदानआदिमेंनवीनदंडआदि	५०	१७४
येनियम करने योग्यहै...	५०	१७५
नित्य स्नानतर्पण और होम	५१	१७६
ब्रह्मचारीके नियम ....	५१	१७७
कामसे वीर्यपातका निषेध	५१	१८०
स्वप्नमें वीर्यपात होनेमें		
प्रायश्चित्त....	५१	१८१
आचार्यके लिये जलकुश		
आदिकालाना....	५२	१८२
वेद तथा यज्ञोपवीत युक्त		
घरोंसे भिक्षा लेनी योग्यहै	५२	१८३
गुरुकुल आदिकी भिक्षामें	५२	१८४
कलंक युक्तसे भिक्षाकानिषेध	५२	१८५
संध्या तथा प्रातःकालके		
होमकी समिध....	५२	१८६
होम आदिके न करनेमें	५२	१८७
एक घरसे भिक्षाका निषेध	५२	१८८
निमंत्रितको एकका अन्न		
खाना चाहिये ....	५२	१८९
क्षत्रिय तथा वैश्यके एक		
अन्नके भोजनको निषेध	५३	१९०
अध्ययन तथा गुरुके हित-		
में यत्न करै ....	५३	१९१
गुरुकी आज्ञा करना कहतेहैं	५३	१९२

विषय	पृ.	श्लो.
गुरुके सोनें पर सोना आदि	५३	१९४
गुरुकी आज्ञा करनेका प्रकार	५३	१९५
गुरुके समीप चंचलताका निषेध	५४	१९८
गुरुकानाम ग्रहण आदिन		
करना ....	५४	१९९
गुरुकी निंदा सुनने निषेध	५४	२००
गुरुके अपवाद करनेका फल	५४	२०१
समीपजाके गुरुका पूजनकरै	५५	२०२
गुरु आदिके पीछे कुछ न कहै	५५	२०३
यान आदिमें गुरुके साथ		
बैठनेमें....	५५	२०४
गुरुके गुरुमें गुरुके सीवृत्तिरखै	५५	२०५
विद्यागुरुके विषयमें ....	५५	२०६
गुरु पुत्रके विषयमें ....	५५	२०७
गुरुकी स्त्रीके मध्ये....	५६	२१०
स्त्रीके स्वभावका कहना....	५६	२१३
माता आदिकों के साथ एकां-		
तवैठने का निषेध ....	५६	२१५
तरुणी गुरुकी स्त्रीके प्रणाम-		
करनेमें....	५७	२१५
गुरुकी सेवाका फल ....	५७	२१८
ब्रह्मचारीके तीनिप्रकार-		
कहतेहैं....	५७	२१९
सूर्यके उदय और अस्तकालके-		
सोनेमें....	५७	२२०
संध्योपासन अवश्य करना	५७	२२२
स्त्री आदिके श्रेयकरने में	५७	२२३
स्त्रीवर्ग कहते हैं ....	५८	२२४
पितृ आचार्य आदि अपमान		
योग्य नहीं है ....	५८	२२५
उनकी सेवा करने आदि में	५८	२२८



विषय	पृ.	श्लो.
उनके अनादरकी निंदा ....	५९	२३४
माता आदिकी सेवाकी-		
मुख्यता ....	६०	२३५
नीच आदिकोंसे भी विद्या-		
लेना ....	६०	२३८
आपत्तिमें क्षत्रि आदिसेभी वेद-		
पढ़ना परंतु उनके पांवथोना-		
आदि न करै ....	६०	२४१
क्षत्रिय आदि गुरुमें अतिवास-		
कानिषेध ....	६०	२४२
जीवन पर्यंत गुरुकी सेवामें	६१	२४३
गुरुकी दक्षिणा आदिमें	६१	२४५
आचार्यके मरने पर उसके-		
पुत्र आदिकी सेवा ....	६१	२४७
जीवन पर्यंत गुरुकुलकी सेवा-		
का फल ....	६२	२४९

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ ब्रह्मचर्यकी विधि ....	६२	१
गृहस्थाश्रमका वास कहते हैं	६२	२
वेद ग्रहण करने वालेका पिता-		
आदि करि पूजन ....	६३	३
ब्रह्मचर्यको पूराकरि विवा-		
हकर ....	६३	४
असर्पिड आदि विवाहने योग्य	६३	५
विवाहमें निंदित कुल ....	६३	६
अथ कन्याके दोष ....	६३	८
कन्याके लक्षण ....	६४	१०
पुत्रिका विवाहकी निन्दा	६४	११
सवर्णा स्त्री उत्तमा ....	६४	१२
चारोवर्णोंकी स्त्रियोंका-		
ग्रहण ....	६४	१३

विषय	पृ.	श्लो.
ब्राह्मण और क्षत्रियको-		
शुद्रास्त्रीका निषेध ....	६४	१४
हीन जातिके विवाहका-		
निषेध ....	६५	१५
शुद्राके विवाहके मध्ये ....	६५	१६
आठ विवाहके प्रकार ....	६५	२०
वर्णोंके धर्म संबंधी विवाह-		
कहतेहैं ....	६५	२२
पैशाच तथा आसुर विवाह-		
कि निंदा ....	६७	२५
ब्राह्मविवाहका लक्षण ....	६६	२७
दैव विवाहका लक्षण ....	६६	२८
आर्ष विवाहका लक्षण ....	६७	२९
प्राजापत्य विवाहका लक्षण	६७	३०
आसुर विवाहका लक्षण ....	६७	३१
गांधर्व विवाहका लक्षण ....	६७	३२
राक्षस विवाहका लक्षण ....	६७	३३
पैशाच विवाहका लक्षण ....	६७	३४
जलके देनेसे ब्राह्मणका-		
विवाह ....	६७	३५
ब्राह्म विवाहका फल ....	६८	३७
ब्राह्म आदि विवाहमें उत्तम-		
संततिकी उत्पत्ति ....	६८	३९
निंदित विवाहमें निंदित-		
संततिकी उत्पत्ति ....	६८	४१
सवर्णा विवाह विधि ....	६९	४३
असवर्णा विवाह विधि ....	६९	४४
स्त्रीके गमनमें ....	६९	४५
ऋतुकाल की विधि ....	६९	४६
स्त्री गमनमें निंदित काल	६९	४७
युग्म तिथिमें पुत्रकी उत्पत्ति	६९	४८



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
स्त्री पुरुष तथा नपुंसककी			गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा ....	७४	७७
उत्पत्तिमें कारण ....	७०	४९	ऋषि आदिकोंका पूजन		
वानप्रस्थकों भी ऋतुकालमें			अवश्य करना चाहिये ....	७४	८०
गमन करते हैं ....	७०	५०	नित्यश्राद्ध कहते हैं ....	७५	८३
कन्याके वचनेंमें दोष ....	७०	५१	पितरोंके लिये ब्राह्मण भो-		
स्त्री बनके लेने में दोष ....	७०	५२	जनमें ....	७५	८३
वरसे कुछ थोड़ा भी न ले-			बलि वैश्वदेवकर्म कहते हैं ....	७५	८४
नाचाहिये ....	७०	५३	बलि वैश्वदेवका फल कहते हैं	७६	९३
कन्याके लिये धनकादेना			भिक्षाका देना ....	७७	९५
कहते हैं ....	७०	५४	सत्कार करिके भिक्षा देना	७७	९६
वस्त्र अलंकार आदिसे क-			अपात्रका दान निष्फल ....	७७	९७
● न्या शोभित करने योग्य	७१	५५	सत्पात्रमें देनेका फल ....	७७	९८
कन्या आदिके पूजन करने			अतिथिके सत्कारमें ....	७७	९९
तथा न करने का फल ....	७१	५६	अतिथिके न पूजनेकी निंदा	७७	१००
उत्सवोंमें विशेष करिपूज्य है	७१	५९	मीठे बचन जल आसन-		
स्त्री पुरुषके संतोषका फल	७१	६०	आदि के देने में ....	७८	१०१
स्त्रीको अलंकार आदिके-			अतिथिकालक्षण कहते हैं ....	७८	१०२
देने न देनेमें ....	७१	६१	पराये पाकमें रुचिकानिषेध	७८	१०४
कुल घटनेके कर्म ....	७२	६३	अतिथि नहीं मनें करने-		
कुलघटने कि कर्म कहते हैं	७२	६६	योग्य है ....	७८	१०५
पांच महायज्ञोंका करना			अतिथि भोजन कराये विना-		
कहते हैं ....	७२	६७	आप न खाना चाहिये ....	७८	१०६
पांच सूना (वधस्थान)			बहुत अतिथि होनेपर यथायो-		
कहते हैं ....	७२	६८	ग्यसेवाकरनी चाहिये ....	७९	१०७
पांचयज्ञ नित्य करने चाहिये	७३	६९	अतिथिके लिये फिरि पाक-		
पांच यज्ञोंको कहते हैं ....	७३	७०	करिकै बलि कर्मकरै ....	७९	१०८
पांचयज्ञ न करने की निंदा	७३	७२	भोजनके लिये कुल तथा		
पांचो यज्ञोंके दूरसे नाम	७३	७३	गोत्र न कहै ....	७९	१०९
असामर्थ्यमें ब्रह्मयज्ञ तथा-			ब्राह्मणके क्षत्रिय आदि अ-		
होम करने चाहिये ....	७४	७५	तिथि नहीं होते ....	७९	११०
होमसे वृष्टि आदि की उत्पत्ति	७४	७६	पीछे क्षत्रिय आदिको भोजन		
			करावै ....	७९	१११



विषय	पृ.	श्लो.
मित्रादिकोंको सत्कार करिकै		
भोजनकरावै ....	८०	११३
पहले गर्भिणी आदि भोजन		
कराने योग्यहै ....	८०	११४
गृहस्थको पहले भोजनका		
निषेध ....	८०	११५
स्त्री तथा पतिको सबसे पीछे		
भोजन ....	८०	११६
अपनेलिये पापका निषेध	८०	११८
घरमें आये हुए राजा आ-		
दिकी पूजा कहतेहैं ....	८१	११९
राजा और ब्रह्मचारीकी पू-		
जामें संकोच कहतेहैं ....	८१	१२०
स्त्रीको विनामंत्रके बलि क-		
रनी चाहिये ....	८१	१२१
अथ आमावास्यामें पार्वण		
श्राद्ध कहतेहैं ....	८१	१२२
मांसकरिकेश्राद्धकरना चाहिये	८१	१२३
पार्वण आदिमें भोजनयोग्य		
ब्राह्मणोंकी संख्या ....	८१	१२५
ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ....	८२	१२६
पार्वणके अवश्य कर्म ....	८२	१२७
देवताओ और पितरोंके अन्न		
श्रोत्रियको देने चाहिये ....	८२	१२८
श्रोत्रियकी प्रशंसा ....	८२	१२९
मंत्ररहित ब्राह्मणका निषेध	८३	१३३
ज्ञाननिष्ठोंको कव्य आदिदेने		
चाहिये ....	८३	१३५
श्रोत्रियको पुत्रकी प्राप्ति ....	८३	१३६
श्राद्धमें मित्रआदिके भोजन		
का निषेध ....	८३	१३८

विषय	पृ.	श्लो.
मूर्खमें श्राद्धका दान निष्फल	८४	१४२
पंडितमें दक्षिणादेना फल		
देनेवालाहै ....	८४	१४३
विद्वान् ब्राह्मणके न होनेमें		
मित्रको भोजनकरावै श-		
त्रुको नही ....	८४	१४४
वेदपारगामी आदिको य-		
त्नसे भोजनकरावै ....	८५	१४५
श्राद्धमें मातामह आदिकोभी		
भोजनकरावै ....	८५	१४८
ब्राह्मणोंकी परीक्षामें ....	८५	१४९
स्तेनपतित आदि निषिद्धहैं	८५	१५०
श्राद्धमें निषिद्ध ब्राह्मण ....	८६	१५१
अध्ययन शून्य ब्राह्मणकी		
निंदा ....	८८	१६८
अपांक्त्यके देनेमें निषिद्ध फल	८९	१६९
परिवेत्रादि लक्षण कहतेहैं	८९	१७१
परिवेदनके संबंधियोंका फल		
कहतेहैं ....	८९	१७२
दिधिषूपतिका लक्षण ....	८९	१७३
कुंड और गोलक कहतेहैं ....	८९	१७४
उनको दानका निषेध ....	९०	१७५
जैसे स्तेन आदि न देखें		
ऐसे ब्राह्मण भोजन होना		
चाहिये ....	९०	१७६
शूद्र याजकका निषेध ....	९०	१७८
शूद्र याजकसे दानलेनेका-		
निषेध ....	९०	१७९
सोमविक्रय आदिका भोजन		
तथादानमें निषिद्ध फलहै	९०	१८०
पंक्ति प्रावनोंको कहतेहैं ....	९१	१८३



## अध्याय ३ ]

## मनुस्मृति

९

विषय	पृ.	श्लो.
ब्राह्मणके निमंत्रणमें ....	९२	१८७
निमंत्रितके नियम ....	९२	१८८
न्योता मानिके भोजन न करनेमें दोष ....	९२	१९०
न्योते हुएको स्त्री गमनमें	९३	१९१
भोजनकरनेवाले और श्राद्ध- करनेवालेको क्रोध आदि न करने चाहिये ....	९३	१९२
पितृगणकी उत्पत्ति ....	९३	१९३
पितरोंका चांदीका पात्रउत्तम	९४	२०२
देवकार्यसे पितृकार्य विशिष्ट	९४	२०३
देवकार्य पितृकार्यका अंगहै	९४	२०४
पितृकार्यके अंतमें देवकार्य- होताहै ....	९५	२०५
अथ श्राद्धके देश ....	९५	२०६
निमंत्रितको आसन आदिदेना	९५	२०८
गंध गुष्पआदिसे उनका पूजन	९५	२०९
उनकरिकै आज्ञादियाहु- आहोमकरै ....	९५	२१०
अग्निके न होनेमें पितरोके- हाथमेंहोम ....	९६	२१२
अपसव्यसे अग्नौ करण आदि	९६	२१४
पिंडदान आदिकी विधि	९६	२१५
कुशोंके मूलमें हाथोंको पोछना	९६	२१६
ऋतुओंको नमस्कार आदि	९६	२१७
प्रत्यवनेजनआदि ....	९६	२१८
पितृआदिके ब्राह्मणोंका- भोजन करावै ....	९६	२१९
पिताके जीवते पितामह- आदिका पार्वण ....	९७	२२०
पिताके मरनेपर पितामह- आदिका पार्वण ....	९७	२२१

विषय	पृ.	श्लो.
पितृ ब्राह्मण आदिके भोज- नकी विधि ....	९८	२२३
परोसनेकी विधि ....	९८	२२४
व्यंजन आदिके दानमें ....	९८	२२६
रोना और क्रोध आदि न करना	९८	२२९
ब्राह्मणके चाहे हुए व्यंजन- आदिका देना ....	९९	२३१
वेद आदि ब्राह्मणको सुनावै	९९	२३२
ब्राह्मणोंको संतुष्ट करै ....	९९	२३३
दौहित्रको श्राद्धमें यज्ञसे- भोजन करावै ....	९९	२३४
दौहित्र तिल कुतुप आदिश्रेष्ठ	९९	२३५
उष्ण अन्नका भोजन तथा हवि- के ग्रहण आदिका न कहना	९९	२३६
भोजनमें पगडी आदिका- निषेध ....	१००	२३८
भोजनके समय ब्राह्मणोंको- चांडाल आदि न देखै	१००	२३९
कुत्ताकी दृष्टि आदिका निषेध	१००	२४१
उस स्थानसे खंज आदि- दूर करने योग्य है ....	१००	२४२
भिक्षुक आदिके भोजनमें	१०१	२४३
अग्निदग्धके अन्न दानमें	१०१	२४४
भूमिगत और उच्छेषण दा- सका अंशहै ....	१०१	२४६
सर्पिडन्न पर्यंत विश्वेदेवा- आदि रहित श्राद्ध ....	१०१	२४७
सर्पिडी करनेके पीछे पार्वण- की विधिसे श्राद्ध ....	१०१	२४८
श्राद्धमें उच्छिष्टशूद्रको न- देना चाहिये ....	१०१	२४९



विषय	पृ.	श्लो.
श्राद्धमें भोजन करने वाले को-		
स्त्री गमन का निषेध ....	१०१	२५०
भोजन किये हुए ब्राह्मणोंको-		
आचमन करावे ....	१०२	२५१
वे ब्राह्मण स्वधाहो ऐसे कहै	१०२	२५२
उनकी आज्ञासे वाकीके-		
अन्नका विनियोग करै	१०२	२५३
एकोद्दिष्ट आदिकी विधिको-		
कहते हैं ....	१०२	२५४
अप्सरा आदि ....	१०२	२५५
श्राद्धमें कहे हुए अन्नआदि	१०३	२५७
ब्राह्मणोंका विसर्जन कर व-		
रकी प्रार्थना ....	१०३	२५८
पिण्डोंको गौ आदिकेलिये दै	१०३	२६०
पुत्र चाहने वाली स्त्रीको पितामह-		
का पिण्ड खाना चाहिये	१०३	२६२
फिर जाति आदिको भोजन-		
करावै ....	१०४	२६४
वाकी अन्नसे गृह बलि-		
का कार्य ....	१०४	२६५
तिल आदि पितरों को मास पर्यन्त-		
तृप्ति देनेवाले हैं ....	१०४	२६७
मांस आदिके भेदसे तृप्तिकालके-		
अवधिका नियम ....	१०४	२६८
मघा आदि श्राद्धोंमें मधुमिश्रित-		
अन्नके दानका फल ....	१०४	२७३
गजकी छायामें दानका फल	१०४	२७४
श्रद्धासे दानका फल ....	१०५	२७५
पितृपक्षमें उत्तमतिथि ....	१०६	२७६
युग्मतिथि तथा नक्षत्र उत्तमहैं	१०६	२७७
कृष्णपक्ष, और अपराह्न काल-		
उत्तमहैं ....	१०६	२७८

विषय	पृ.	श्लो.
कुशा ग्रहण पूर्वक अप्सव्यसे-		
पितृकर्म ....	१०६	२७९
रात्रि श्राद्धका निषेध ....	१०६	२८०
प्रत्येकमास श्राद्ध करनेकी असामर्थ्य		
हो तो वर्षमें तीन ३ बार करै	१०६	२८१
साग्रिको अग्रौकरणमें ....	१०६	२८२
तर्पणका फल ....	१०७	२८३
पितरोंकी प्रशंसा ....	१०७	२८४
ब्राह्मणभुक्तशेष और यज्ञ-		
शेषका भोजन करै ....	१०७	२८५
अथ चतुर्थोऽध्यायः ।		
ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्यका-		
काल कहतेहैं ....	१०७	१
शिलउञ्छ आदिवृत्तिसे-		
निर्वाह करै ....	१०८	२
उचित धनका संग्रह करै	१०८	३
आपद रहित कालमें जमि-		
काका उपाय कहते हैं	१०८	४
ऋतु अमृत आदि शब्दों का-		
अर्थ कहते हैं ....	१०८	५
कितने धनका संचय करै		
इसविषय में कहते हैं	१०९	७
एक दिनसे अधिक भोज-		
नान्न रखने वाले की प्रशंसा	१०९	८
याजन अध्यापन आदिसे		
जीविका करै ....	१०९	९
शिल, उञ्छसे जीविकामें		
विधान ....	१०९	१०
निन्दित जीविका न करै	११०	११
सन्तोषकी प्रशंसा ....	११०	१२
व्रतका करना ....	११०	१३
वेदोक्तकर्म करने योग्यहै	११०	१४



विषय	पृ.	श्लो.
गीत आदिसे धनके सञ्चय- का निषेध .... ११०	१५	
विषयोंमें आसक्त होनेका- निषेध .... १११	१६	
वेदार्थ विरोधि कर्मोंका त्याग १११	१७	
अवस्था कुल आदिके अनु- सार आचरण करै .... १११	१८	
नित्यप्रति शास्त्र आदिका- देखना .... १११	१९	
जबतक शक्ति हो तबतक पं- चयज्ञोंका त्याग न करै ११२	२१	
कोई इन्द्रियों का संयम- करते है .... ११२	२२	
कोई वाणीसे यज्ञ करते है ११२	२३	
कोई ज्ञानसे यज्ञ करते है ११२	२४	
दोनों संध्यामें अग्निहोत्र- और दर्श, पौर्णमास करै ११२	२५	
सोमयाग आदिका करना ११२	२६	
नवान्नसे श्राद्धनकरने- का निषेध .... ११३	२७	
यथा शक्ति अतिथिका- पूजन करे .... ११३	२९	
पाखण्डी आदिके पूजन- का निषेध .... ११३	३१	
श्रोत्रिय आदिका पूजन करै ११३	३१	
ब्रह्मचारी आदिके लिये अन्न दान .... ११४	३२	
क्षत्रिय आदिसे धन ग्रहण ११४	३३	
धन होनेपर क्षुधित न रहै ११४	३४	
पवित्र और वेदाध्ययन आ- दिसे युक्त रहै .... ११४	३५	
दण्डकमण्डलु आदिका धारण .... ११४	३६	

विषय	पृ.	श्लो.
सूर्यके दर्शनका निषेध ११५	३७	
वच्छेकी रस्सीका लंघन- और जलमें अपनी छा- याके दर्शनका निषेध ११५	३८	
मार्गमें गौ आदिको दक्षिण करे .... ११५	३९	
रजस्वलास्त्रीसे गमन आ- दिका निषेध .... ११५	४०	
स्त्रीके साथ भोजन आदिका निषेध .... ११६	४३	
स्त्रीदर्शन न करनेके समय ११६	४४	
नग्नहोके स्नान आदि कर- नेका निषेध .... ११६	४५	
मार्ग आदिमें मलमूत्रके त्यागका निषेध .... ११६	४६	
मलमूत्रके त्यागके समय सूर्या- दिके दर्शनका निषेध.... ११६	४८	
मलमूत्रके त्यागकी विधि ११६	४९	
दिन आदिमें उत्तर आदि दिशाको मुख करना .... ११६	५०	
अन्धकार आदिमेंचाहे जिस दिशाको मुख करे ११६	५१	
अग्नि आदिके सम्मुख मल- मूत्र त्यागका निषेध ११६	५२	
अग्निमें पेरोंका तपाने आदि- का निषेध .... ११७	५३	
अग्निके लंघन आदिका निषेध .... ११७	५४	
संध्याकालमें भोजन आदि- का निषेध .... ११७	५५	
जलमें मूत्र आदिपटकानेका निषेध .... ११७	५६	



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
शून्य घरमें शयन आदिका- निषेध .... ११७	५७		जुआ खेलना आदि तथा शय्यापर स्थित होके भोजन आदिको निषेध १२०	७४	
भोजन आदिमें दक्षिण हाथको वस्त्रसे बाहर करै ११७	५८		रात्रिमें तिल भोजन तथा नम्र होके शयन करने आदि- का निषेध .... १२०	७५	
जल चाहनेवाली गौका नि- वारण न करै तथा इन्द्र धनुषको न दिखावै ११८	५९		गीले पेरोंसे भोजन करे .... १२०	७६	
अधार्मिक ग्राममें निवास तथा मार्गमें एकाकी गमन आदिका निषेध ११८	६०		दुर्ग गमन मल दर्शन नदी- तरणका निषेध .... १२०	७७	
शूद्र राज्य आदिमें निवा- सका निषेध .... ११८	६१		केश, भस्म, आदिपर स्थिति न करना .... १२०	७८	
अत्यंतभोजन आदिका- निषेध .... ११८	६२		पतित आदिके साथ निवास न करै .... १२१	७९	
अञ्जलिसे जलपान आदि- का निषेध .... ११८	६३		शूद्रके लिये व्रत कथन आदि- का निषेध .... १२१	८०	
नांचने आदिका निषेध .... ११८	६४		शिरका खुजालना तथा स्नान आदिके विषयमें .... १२१	८२	
कांस्यपात्रमें चरण प्रक्षालन तथा फूटे आदि पात्रमें भोजनका निषेध .... ११८	६५		क्रोधसे शिर प्रहार केश ग्रह- णके विषयमें .... १२१	८३	
दूसरेसे धारण किये हुएयज्ञोपवीत आदिके धारणका निषेध ११९	६६		तैलसे स्नान किये हुयेको फिर तेलके स्पर्शमें .... १२१	८३	
अशिक्षित अश्व आदिकी सवारीका निषेध .... ११९	६७		क्षत्रिय भिन्न राजा आदिसे प्रति ग्रहणका निषेध .... १२१	८४	
धुर्यका लक्षण कहतेहैं .... ११९	६८		तेली आदिसे प्रतिग्रहका .... निषेध .... १२२	८५	
प्रेत धूमका तथा नख आ- दिके छेदनका निषेध ११९	६९		शास्त्र विरुद्ध मार्गमें चलने वाले राजासे प्रतिग्रहका निषेध १२२	८७	
तृण आदिके छेदनका निषेध ११९	७०		तामिस्र आदि इक्कीस नर- कोको कहतेहैं .... १२२	८८	
लोष्टमर्दन आदिका निषेध ११९	७१		ब्राह्म मुहूर्तमें उठै .... १२३	९२	
मालाके धारण तथा वृषकी सवारी आदिके विषयमें ११९	७२		प्रातःकालमें कर्तव्य आदि १२३	९३	
द्वारके विना गृहगमन आ- दिका निषेध .... १२०	७३				



विषय	पृ.	श्लो.
प्रातःकर्तव्यको, आयुकीर्तिं		
आदिकी वर्द्धकता ....	१२३	९४
श्रावणीमें उपाकर्म करना		
चाहिये.....	१२३	९५
पुष्यमें उत्सर्ग कर्म करै ....	१२३	९६
उत्सर्ग करनेपर अनध्याय		
काल ....	१२४	९७
फिर वेदोंको शुक्लपक्षमें और		
वेदांगोंको कृष्णपक्षमें पढ़ै	१२४	९८
अस्पष्टपाठ तथा निशाके		
अन्तमें सोनेका निषेध	१२४	९९
गायत्री आदि नित्य पढ़ै	१२४	१००
अनध्यायोंको कहतेहैं ....	१२४	१०१
वर्षाकालके अनध्यायोंको		
कहतेहैं.....	१२४	१०२
अकालके अनध्यायको ....		
कहतेहैं.....	१२४	१०३
सब कालके अनध्यायको		
कहतेहैं ....	१२५	१०५
संध्याके गर्जने आदिमें ....	१२५	१०६
नगर आदिमें नित्य.....		
अनध्याय ....	१२५	१०७
श्राद्धके भोजनमें और सूर्य		
चंद्र आदिके ग्रहणमें		
तीनिरात्रि अनध्याय....	१२६	११०
गंध तथा लेपयुक्त वेदको		
न पढ़ै ....	१२६	१११
शय्या आदि पर न पढ़ै ....	१२६	११२
अमावास्या आदि अध्यय-		
नमें निषिद्ध है ....	१२६	११४
सामवेदकी ध्वनि होनेपर		
दूसरा वेद न पढ़ै ....	१२७	१२३

विषय	पृ.	श्लो.
तीनों वेदोंके देवताओंका		
कथन ....	१२७	१२४
गायत्री जपके अनंतरवे-		
दपाठ ....	१२७	१२५
गौ आदिकोंके बीचमें नि-		
कलनेपर ....	१२७	१२६
शुद्ध देशमें शुद्ध हाँके पढ़ना		
चाहिये.....	१२७	१२७
ऋतुकालमेंभी अमावास्या		
आदिमें स्त्रीगमन न करे	१२८	१२८
आतुर आदिकोंको स्नानका		
निषेध ....	१२८	१२९
गुरु आदिकी छायाका लां-		
घनेका दोष.....	१२९	१३०
श्राद्धभोक्ताके चौराहेके ....		
जानेमें.....	१२९	१३१
रक्त कफ आदिके ऊपर न बैठे	१२९	१३२
शत्रु चोर और पराई स्त्रीकी		
सेवाका निषेध ....	१२९	१३३
पराई स्त्रीकी निन्दा ....	१२९	१३४
क्षत्रिय सर्प तथा ब्राह्मण अ-		
पमानके योग्य नहींहैं	१२९	१३५
अपने अपमानका निषेध	१२९	१३६
प्यारा और सत्य वचन कहै	१३०	१३८
वृथावाद न करै.....	१३०	१३९
प्रातःकाल आदिमें अज्ञातके		
साथ न जाना चाहिये	१३०	१४०
हीन अंग आदिको पर ....		
आक्षेप.....	१३०	१४१
उच्छिष्टके छूनेमें सूर्य आदि		
के दर्शनमें ....	१३०	१४२
अपने इंद्रियके छूने आदिमें	१३०	१४४



विषय	पृ.	श्लो.
मङ्गलाचार युक्त होय ....	१३१	१४५
वेदाध्ययनकी मुख्यता ....	१३१	१४६
अष्टका श्राद्ध आदिमें अव-		
श्य करना चाहिये ....	१३१	१५०
अग्नि गृहसे दूर मूत्र आदिका		
त्याग ....	१३२	१५१
पर्वोण्हमें स्नान पूजा आदि	१३२	१५२
पर्वोंमें देवता आदिका दर्शन	१३२	१५३
आये हुए वृद्ध आदिके		
सत्कारमें ....	१३२	१५४
श्रुति स्मृतिमें कहा हुआ		
आचार करना चाहिये	१३२	१५५
आचारका फल ....	१३२	१५६
दुराचारकी निन्दा ....	१३३	१५७
आचारकी प्रशंसा ....	१३३	१५८
परवश कर्मके त्याग आदिमें	१३३	१५९
मनकासंतुष्ट करनेवाला कर्म		
करे ....	१३३	१६०
आचार्य आदिकी हिंसाका		
निषेध ....	१३३	१६१
नास्तिक्य आदिका निषेध	१३३	१६३
अन्यके ताडन आदिका		
निषेध ....	१३४	१६४
ब्राह्मणके ताडनके उद्योगमें	१३४	१६५
ब्राह्मणके ताडनमें ....	१३४	१६६
ब्राह्मणके रुधिर निकालनेमें	१३४	१६७
अधर्मी आदिको सुखनही	१३५	१७१
अधर्ममें मन न लगावै ....	१३५	१७२
हौले २ अधर्मके फलकी		
उत्पत्ति होती है ....	१३५	१७३
शिष्य आदिके शासनमें ....	१३५	१७५
अर्थ कामके त्यागमें ....	१३५	१७६

विषय	पृ.	श्लो.
हाथ पांवकी चपलताका		
निषेध ....	१३६	१७७
कुलके मार्गमें चलना ....	१३६	१७८
ऋत्विक् आदिसे वादनकरै	१३६	१७९
इनके साथ विवादकी उपेक्षा		
का फल कहतेहैं ....	१३७	१८१
प्रतिग्रहकी निन्दा ....	१३७	१८६
विधिके विनाजाने प्रतिग्रह		
न करना चाहिये ....	१३७	१८७
मूर्खको सोने आदिके लेनेमें	१३८	१८८
बैडाल व्रतिक आदिमें दानका		
निषेध ....	१३८	१९२
बैडाल व्रतिकका लक्षण ....	१३९	१९५
बकवृत्तिका लक्षण ....	१३९	१९६
उन दोनोकी निन्दा ....	१३९	१९७
प्रायश्चित्तमें वंचना न करनी-		
चाहिये ....	१३९	१९८
छलसे व्रतके करनेमें ....	१४०	१९९
छलसे कर्मडलु आदिके धार-		
णमें ....	१४०	२००
पराई बनाई हुई पुष्करिणी-		
आदिके स्नानमें ....	१४०	२०१
विना दियेहुए र्यान आदिके-		
भोग का निषेध ....	१४०	२०२
नदी आदिमें स्नानकरना-		
चाहिये ....	१४०	२०३
यम और नियम कहतेहैं	१४०	२०४
अश्रोत्रिय यज्ञमें भोजनका-		
निषेध ....	१४१	२०५
क्रुद्ध आदिका अन्न तथा केश-		
आदिसे मिलाहुआ न भोजन-		
करै ....	१४१	२०७





विषय	पृ.	श्लो.
रजस्वलाकरि लुप्टहुए अन्न- आदिका निषेध....	१४१	२०८
गऊ करिसुंघाहुआ और गणिका- आदिके अन्नका निषेध	१४१	२०९
स्तेन आदिके अन्न अभोज्या- नहैं ....	१४१	२१०
राजा आदिके अन्न भोजनमें- मंद फल ....	१४३	२१८
उनके अन्नके भोजनमें प्राय- श्चित्त ....	१४३	२२२
शूद्रकरि पक्कअन्नका निषेध	१४४	२२३
कृपण श्रोत्रिय तथा व्याज खा- नेवालेका अन्न निषिद्ध	१४४	२२४
श्रद्धासे दियेहुए दाता तथा व्याज खानेवालेके अन्न	१४४	२२५
श्रद्धासे यज्ञ आदिकरै ....	१४४	२२६
श्रद्धासे दियेहुए दानका फल	१४४	२२७
जल भूमि दान आदिका फल	१४४	२२८
वेदके दानकी प्रशंसा ....	१४५	२३३
जिस २ भावसे दान देताहै उसी- को जन्मांतरमें पाताहै	१४५	२३४
विधिसे दानदेने तथा लेनेमें	१४६	२३५
द्विजकी निंदाका दानके कहने- का निषेध ....	१४६	२३६
अनृत आदिका फल ....	१४६	२३७
हौले २ धर्मकरै....	१४६	२३८
धर्मकी प्रशंसा ....	१४६	२३९
उंचोंसे संबंध करना हीनोंसे- नही ....	१४७	२४४
फल मूल आदिके लेनेमें	१४८	२४७
दुष्कृत कर्मकी भिक्षालेना	१४८	२४८
भिक्षाके न लेनेमें ....	१४८	२४९

विषय	पृ.	श्लो.
विनामागी भिक्षामें	१४८	२५०
कुटुंबकेलिये भिक्षा ....	१४८	२५१
अपनेलिये साधु भिक्षा ....	१४८	२५२
जिनका अन्न भोजनके योग्य- ऐसे शूद्र ....	१४९	२५४
शूद्रोंको अपना निवेदन कर- ना चाहिये ....	१४९	२५४
झूठ कहनेमें निन्दा....	१४९	२५५
योग्य पुत्रकों कुटुंबका भारदेना- चाहिये....	१४९	२५७
ब्रह्मकी चिन्ता....	१४९	२५८
कहे हुएके फल का कहना	१५०	२६०
अथ पंचमोऽध्यायः ।		
मनुष्योंकी कैसे मृत्यु होती- है यह प्रश्न....	१५०	२
मृत्युके पंहुचाने वालों को- कहते हैं ....	१५१	३
लशुन आदि अभक्ष्य- कहते हैं ....	१५१	५
वृथा मांस आदिका निषेध	१५१	७
अभक्ष्य दूध ....	१५१	८
शुक्तो में दही आदि भक्ष्य	१५२	१०
अथ अभक्ष्य पक्षी ....	१५२	११
सौन और सूखे मांस आदि	१५२	१३
गाँवके शूकर मछली आदि	१५२	१४
मछली खानेकी निन्दा ....	१५३	१५
खाने योग्य मछली कहते हैं	१५३	१६
सर्प वानर आदिका निषेध	१५३	१७
खाने योग्य पंच नख- कहते हैं ....	१५३	१८
लशुन आदिके खानेमें- प्रायश्चित्त ....	१५३	१९



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
यज्ञके लिये पशुहिंसा-			बालक आदिका आशौच	१६१	६७
की विधि ....	१५४	२२	दो वर्षसे न्यूनका भूमिमें गाड़ना	१६१	६८
वासी भी भक्ष्य....	१५४	२४	इसके अग्निसंस्कार आदि न-		
मांसके भक्षणमें ....	१५५	२७	ही हैं' ....	१६२	६९
प्रोक्षित मांस खाने का नियम	१५५	३१	बालकके जल दानमें ....	१६२	७०
वृथा मांस खानेका निषेध	१५६	३३	सहपाठीके मरनेमें ....	१६२	७१
श्राद्धमें मांसके न खानेमें-			वाग्दत्ता स्त्रीका आशौच....	१६२	७२
निन्दा ....	१५६	३५	हविष्यका भक्षण आदि ....	१६२	७३
अप्रोक्षित मांस न खाय....	१५६	३६	अथ विदेशका आशौच ....	१६३	७५
यज्ञके लिये वधकी प्रशंसा	१५७	३९	आचार्यके और उसके पु-		
पशुके मारनेमें कालका नियम	१५७	४१	त्रके मरनेमें....	१६३	८०
वेदमें न कही हुई हिंसाकानि-			श्रोत्रिय तथा मामा आदि-		
षेध ....	१५७	४३	के मरनेमें ....	१६३	८१
अपने सुखकी इच्छासे			राजाके अध्यापक आदिके		
मारनेमें ....	१५८	४५	मरनेमें ....	१६३	८२
वध और बंधन न करना-			संपूर्ण आशौच कहते हैं ....	१६४	८३
चाहिये ....	१५८	४६	अग्निहोत्रके लिये स्नानसे		
मांसके वर्जनमें ....	१५८	४८	शुद्धि ....	१६४	८४
अथ घातक कहिये मारने-			छूनेके कारण आशौच ....	१६४	८५
वाले ....	१५८	५१	आशौचके दर्शनमें ....	१६४	८६
मांसके वर्जनका फल ....	१५९	५३	मनुष्यके स्पर्शनमें ....	१६४	८६
सर्पिण्डोंका दशदिन आदि-			ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्ति तक		
आशौच ....	१६०	५८	प्रेतको जलदान आदि न करै	१६५	८८
अथ सपिण्डता....	१६०	६०	पतित आदिकोंको जलदान		
जननेमें माताका न छूना	१६०	६२	न करै ....	१६५	८९
वीर्यके गिरने और पर पूर्व-			व्यभिचारिणी आदिको ज-		
अपत्यके मरनेमें ....	१६१	६३	लदान न करै ....	१६५	९०
शवके स्पर्श और समानोदकके-			ब्रह्मचारीको मृतपिता आ-		
मरनेमें ....	१६१	६४	दिके लेजानेमें ....	१६५	९१
गुरुके मरनेका आशौच....	१६१	६५	शूद्र आदिकोंके मृतकको		
गर्भस्त्राव होनेपर रजस्वला-			दक्षिण आदि पुरद्वारसे		
की शुद्धिमें....	१६१	६६	निकालै....	१६५	९२



विषय	पृ.	श्लो.
राजा आदिकोंको आशौच न होनेमें ....	१६५	९३
राजाकी शीघ्रही शुद्धता ....	१६५	९४
वज्र आदिसे मरे हुएकी शीघ्रही शुद्धता ....	१६६	९५
राजाके आशौच न होनेकी स्तुति ....	१६६	९६
क्षत्रधर्मसे मारे हुएकी शीघ्रही शुद्धता ....	१६६	९८
आशौचके अंतका कृत्य ....	१६६	९९
असपिंडका आशौचकहते हैं	१६६	१००
मृतक असपिंडके लेजानेमें	१६७	१०१
आशौच वालेका अन्नखानेमें	१६७	१०२
मृतक लेजानेवालोंके साथ जानेमें ....	१६७	१०३
ब्राह्मणको शूद्रोंसे न उठवावै	१६७	१०४
ज्ञान आदि शुद्धिके साधनहैं	१६७	१०५
अर्थ कहिये धनमें शुद्धकी प्रशंसा ....	१६७	१०६
क्षमा दान जप तथा तप शोधने वाले हैं ....	१६८	१०७
मैली नदी स्त्री तथा द्विजकी शुद्धिमें ....	१६८	१०८
शरीर मन आत्मा बुद्धिकी शुद्धिमें ....	१६८	१०९
द्रव्य शुद्धि कहते हैं ....	१६८	११०
सुवर्ण आदि तथा मणिकी शुद्धिमें ....	१६८	१११
घृत आदि शय्या आदि तथा काष्ठकी शुद्धिमें ....	१६९	११५
यज्ञके पात्रोंकी शुद्धिमें ....	१६९	११६
धान्य तथा वस्त्रकी शुद्धिमें	१६९	११८

विषय	पृ.	श्लो.
चर्म वांसका पात्र शाक मूल तथा फलकी शुद्धिमें ....	१७०	११९
कंबल पटवस्त्रकी शुद्धिमें	१७०	१२१
तृण काष्ठ गृह मृद्गांडकी शुद्धिमें ....	१७०	१२२
रुधिर आदिसे दूषित मृद्गांडका त्याग ....	१७०	१२३
भूमिकी शुद्धिमें ....	१७०	१२४
पक्षीके खाये और गौके-सूँचे आदिमें ....	१७१	१२५
गंधलेपयुक्त द्रव्यकी शुद्धिमें	१७१	१२६
पवित्र कहते हैं ....	१७१	१२७
जलकी शुद्धिमें ....	१७१	१२८
नित्य शुद्ध कहते हैं ....	१७१	१२९
छूनेमें नित्य शुद्ध ....	१७२	१३२
मूत्र आदिके त्यागकी शुद्धि	१७२	१३४
अथ बारह मल ....	१७२	१३५
मिट्टी और जलके लेनेमें नियम ....	१७२	१३६
ब्रह्मचारी आदिको द्विगुण आदि आचमनके अनंतर इन्द्रिय आदिका छूना ....	१७३	१३७
आचमनकी विधि ....	१७३	१३९
शूद्रोंको मासमें शिर मुढाना और द्विजोच्छिष्ट भोजन	१७३	१४०
मुखके बिंदु और मूछ आदि उच्छिष्ट नहीं हैं ....	१७३	१४१
पावोंमें गिरी कुल्लेकी बूंद शुद्ध है ....	१७३	१४२
द्रव्य हस्तकी उच्छिष्टके छूनेमें ....	१७३	१४३
वमन विरेचन तथा मैथुनकी शुद्धिमें ....	१७३	१४४



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
निष्ठिवन क्षुधा भोजन आ- दिकी शुद्धिमें .... १७४	१४५		फालसे जुते हुए अन्न- आदिका निषेध .... १८०	१६	
अथ स्त्री धर्मोंको कहते हैं १७४	१४६		अश्मकुट्ट आदि .... १८०	१७	
स्त्रीको स्वतंत्रहोना चाहिये १७४	१४७		तृण धान्य आदिके इकट्ठे- करनेमें .... १८०	१८	
किसके वशमें रहै सो कहते हैं १७४	१४८		भोजनके काल आदि .... १८०	१९	
प्रसन्न हो घरका काम करै १७४	१५०		भूमि परिवर्तन आदि .... १८०	२२	
स्वामीकी सेवा.... १७५	१५१		ग्रीष्म आदि ऋतु ओंका कृत्य १८१	२३	
स्वामीपन का कारण कहते हैं १७५	१५२		अपने देहको सुखावै .... १८१	२४	
स्वामी की प्रशंसा .... १७५	१५३		अग्निहोत्रका समाप्त करना- आदि .... १८१	२५	
स्त्रियोंके पृथक् यज्ञका निषेध .... १७५	१५५		वृक्षोंके नीचे तथा भूमिमें- सोना आदि .... १८१	२६	
स्वामीका अग्रिय न करै १७५	१५६		भिक्षा करनेमें .... १८१	२७	
जिसका पति मर गया है उसके धर्म .... १७६	१५७		वेद पाठ आदि .... १८२	२९	
पराये पुरुषसे गमनकी निंदा १७६	१६०		महा प्रस्थान .... १८२	३१	
पतिव्रतापनका फल.... १७७	१६५		संन्यासीका काल कहते हैं १८२	३३	
भार्याके मरने पर श्रौत अग्निसे दाह .... १७७	१६७		ब्रह्मचर्य आदिके क्रमसे संन्या- स लेवै .... १८२	३४	
फिर स्त्रीके ग्रहणमें... १७७	१६८		ऋणशोधे विना संन्यास न लेवै .... १८३	३५	
गृहस्थके कालकी अवधि १७७	१६९		पुत्र विना उत्पन्न किये संन्यास न लेवै .... १८३	३६	
<b>अथ षष्ठोऽध्यायः ।</b>			प्राजापत्य यज्ञ करिकै संन्यास लेवै .... १८३	३८	
धानप्रस्थ आश्रम कहते हैं १७८	१		अभय दानका फल .... १८३	३९	
भार्या और अग्निहोत्र सहित वनमें वसै .... १७८	३		वांछा रहितहो संन्यास लेवै १८४	४१	
फल मूलसे पंचयज्ञ करना १७८	५		अकेला मोक्षके लिये विचरै १८४	४२	
मृगचर्म चीर जटा आदि- का धारण .... १७८	६		संन्यासीके नियम .... १८४	४३	
अतिथिचर्या .... १७८	७		मुक्तका लक्षण .... १८४	४४	
धानप्रस्थके नियम .... १७९	८		जीवने आदिकी कामनासे- रहित होवै .... १८५	४५	
मधु मांस आदिका वर्जन १७९	१४				
आश्विनमें संचय किये हुए नीवार आदिका त्याग.... १८०	१५				



विषय	पृ.	श्लो.
संन्यासीका आचार ....	१८५	४६
भिक्षाके ग्रहणमें ....	१८५	५०
दंडकमंडलु आदि ....	१८६	५२
भिक्षाके पात्र ....	१८६	५३
एक कालमें भिक्षा करना	१८६	५५
भिक्षाका काल ....	१८६	५६
मिलने न मिलनेमें हर्ष विषाद- न करै ....	१८६	५७
पूजा पूर्वक भिक्षाका निषेध	१८६	५८
इन्द्रियोंका रोकना ....	१८७	५९
संसारकी गतिका कथन	१८७	६१
सुख दुःखके धर्म अधर्म कार- णहै ....	१८७	६४
विद्वामात्र धर्मका कारण नहींहै ....	१८७	६६
भूमिको देखकै भ्रमण करै	१८८	६८
छोटे जीवोंकी हिंसाका प्राय श्चित ....	१८८	६९
प्राणायामकी प्रशंसा ....	१८८	७०
ध्यानके योगसे आत्माको देखै ....	१८९	७३
ब्रह्मके साक्षात्कारमें मुक्ति	१८९	७४
मोक्षके साधक कर्म ....	१८९	७५
देहका स्वरूप ....	१८९	७६
देहके त्यागमें दृष्टांत कहतेहैं	१९०	७८
प्रियअप्रियमें पुण्य पापका त्याग ....	१९०	७९
विषयोंकी इच्छा न करनी	१९०	८०
आत्माका ध्यान ....	१९०	८२
संन्यासका फल ....	१९१	८५
वेद संन्यासियोंके कर्म-कहतेहैं	१९१	८६

विषय	पृ.	श्लो.
चारि आश्रम ....	१९१	८७
सब आश्रमोंका फल ....	१९१	८८
गृहस्थकी श्रेष्ठता ....	१९२	८९
दशप्रकारका धर्म सेवन कर- ने योग्य है ....	१९२	९१
दशप्रकारका धर्म कहतेहैं	१९२	९३
वेदहीका अभ्यास करै ....	१९३	९५
वेदसंन्यासका फल ....	१९३	९६
<b>अथ सप्तमोऽध्यायः ।</b>		
राजधर्मोंको कहतेहैं ....	१९३	१
संस्कार किये हुएका प्रजाका रक्षण ....	१९३	२
रक्षाके लिये इंद्र आदिकोंके अंशसे राजाकी उत्पत्ति	१९४	३
राजाकी प्रशंसा ....	१९४	६
राजासे द्वेषकी निन्दा ....	१९५	१२
राजाके स्थापित धर्मको न चलावै ....	१९५	१३
दंडकी उत्पत्ति ....	१९५	१४
दंडका करना ....	१९६	१६
दंडकी प्रशंसा ....	१९६	१७
अयोग्य दंडका निषेध ....	१९६	१९
दंडके योग्योंको दंड न देनेमें निन्दा ....	१९६	२०
फिरि दंडकी प्रशंसा ....	१९७	२२
दंड देनेवाला कैसा होय इस- पर कहतेहैं ....	१९७	२६
अधर्म दंडमें राजा आदि- कोंका दोष ....	१९८	२८
मूर्ख आदिकोंको दंड देनेका निषेध ....	१९८	३०



विषय	पृ.	श्लो.
सत्य प्रतिज्ञा वाले करि दंड देना योग्य है ....	१९८	३१
शत्रु मित्र ब्राह्मण आदिमें- दंडकी विधि ....	१९८	३२
न्यायमें चलनेवाले राजाकी प्रशंसा ....	१९९	३३
राजाके कृत्यमें वृद्धकी सेवा	१९९	३४
विनयका ग्रहण ....	१९९	३७
अविनयकी निन्दा ....	१९९	३९
यहां दृष्टांत कहते हैं .....	२००	४०
विनयसे राज्य आदि पाने- का दृष्टांत ....	२००	४१
विद्याका ग्रहण .....	२००	४३
इन्द्रियोंका जीतना .....	२००	४४
काम क्रोधसे उत्पन्न व्यसनका त्याग ....	२००	४५
कामसे उत्पन्न दशव्यसन कह- ते हैं ....	२०१	४७
क्रोधसे उत्पन्न दशव्यसन कह- ते हैं ....	२०१	४८
सर्वोंके मूल लोभका त्याग	२०१	४९
अतिदुःखके देनेवाले व्यसन हैं	२०१	५०
व्यसनकी निन्दा ....	२०२	५३
अथ सचिव कहिये मंत्री ...	२०२	५४
मंत्रियोंके साथ विचार क- रिकै हितकरना चाहिये	२०३	५६
ब्राह्मण मंत्री ....	२०३	५८
औरोंको भी मंत्री करै ....	२०३	६०
खानि आदि धनके उत्पत्ति- स्थानमें धर्मसे भय मा- नने वालोंको नियत करै	२०४	६२
दूत का लक्षण ....	२०४	६३

विषय	पृ.	श्लो.
सेनापति आदिका कार्य	२०४	६५
दूतकी प्रशंसा ....	२०४	६६
प्रत्येक राजाका वांछित- दूतसे जानै ....	२०५	६७
जंगल देशके आश्रय लेनेमें	२०५	६९
अथ दुर्गके प्रकार ....	२०५	७०
दुर्गको अस्त्र अन्न आदि- संपूर्ण करै ....	२०६	७५
सुंदर स्त्रीसे विवाह करै ....	२०७	७७
पुरोहित आदि ....	२०७	७८
यज्ञ आदिका करना ....	२०७	७९
करके लेनेमें ....	२०७	८०
अथ अध्यक्ष ....	२०७	८१
ब्राह्मणाको जीविका देना	२०७	८२
ब्राह्मणोंको जीविका- देनेकी प्रशंसा ....	२०८	८३
पात्रमें दानका फल कहते हैं	२०८	८५
संग्राममें बुला हुआ न लौटै	२०८	८७
सन्मुख मरनेमें स्वर्गप्राप्ति	२०९	८९
छलके अस्त्र आदिका निषेध	२०९	९०
संग्राममें अवध्य कहते हैं	२०९	९१
भीत आदिके मारनेमें दोष	२०९	९४
संग्राममें मारे हुएके मारनेमें दोष ....	२०९	९५
जिसने जो जीता वह उसी- का धन ....	२०९	९६
श्रेष्ठ वस्तु राजाको देनी	२१०	९७
हाथी घोड़े आदिका बढाना	२१०	९९
नपाये हुएके पानेकी इच्छा करै ....	२१०	१०१
घोड़े प्यादे आदिकी नित्य शिक्षा ....	२१०	१०२



विषय	पृ.	श्लो.
नित्य उद्यत दंडहोय ....	२११	१०३
मंत्री आदिकोंमें माया नक- रनी चाहिये ....	२११	१०४
प्रजाकाभेद आदि रक्षा क- रना चाहिये ....	२११	१०५
अर्थ आदिकी चिन्ताकरनी	२११	१०६
विजयके विरोधी वश करने- चाहिये ....	११२	१०७
सामदंडकी प्रशंसा ....	२१२	१०८
राजाकी रक्षा ....	२१२	११०
प्रजाके पीडा देनेमें दोष	२१२	१११
प्रजाकी रक्षामें सुख ....	२१३	११३
ग्रामके अधिपति आदि ....	२१३	११५
ग्रामके दोषका कहना ....	२१३	११६
ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहते हैं ....	२१३	११८
ग्रामके कार्य इसकरकै करने योग्य हैं ....	२१३	१२०
अर्थका चितवन करनेवाला होय ....	२१४	१२१
उसके चरित्र को आपजानै	२१४	१२२
धूसि आदिके लेनेवाले का- शासन करना ....	२१४	१२३
प्रेष्य आदि वृत्तिका कल्प- ना करना ....	२१४	१२५
वणियोंसे करलेनेमें ....	२१५	१२७
थोडा थोडा करलेनेमें ....	२१५	१२९
धान्य आदिकोंपर कर लेनेमें	२१५	१३०
श्रोत्रियसे कर न ग्रहण करै	२१५	१३३
श्रोत्रियकी जीविका करनेमें	२१५	१३४
शाक आदि बेचनेवाले- पर थोडा कर ....	२१६	१३७

विषय	पृ.	श्लो.
शिल्प आदि कर्म करावै	२१६	१३८
थोडे बहुत अधिक कर लेने- का निषेध ....	२१६	१३९
कार्यको देखकर तीक्ष्ण वा- मृदु होय ....	२१६	१४०
मंत्रीके साथ कार्यका विचार करै ....	२१७	१४१
चोरोंको दंड देता रहै ....	२१७	१४३
प्रजापालनकी श्रेष्ठता ....	२१७	१४४
सभा का काल ....	२१७	१४५
एकान्तमें गुप्त मंत्र करै ....	२१७	१४७
मंत्र करनेके समय स्त्री- आदिका हटा देना ....	२१८	१४९
धर्मकाम आदिकी चिन्ता- करना ....	२१८	१५१
दूतोंका प्रेषण आदि ....	२१८	१५३
अथ प्रजाके प्रकार ....	२१९	१५६
शत्रुका प्रकृतिको जानै ....	२२०	१५८
अथ छः गुण ....	२२०	१६०
संधि आदिका प्रकार ....	२२०	१६२
संधि विग्रह आदिके काल	२२०	१६९
बली राजाके आश्रय लेनेमें	२२३	१७५
आपको अधिक करै ....	२२३	१७७
आनेवाले गुण दोषोंकी चिन्ता	२२३	१७८
राजाकी रक्षा ....	२२४	१८०
शत्रुके राज्यमें जानेकी विधि	२२४	१८१
शत्रुके सेवन करने वाले मित्र आदिमें सावधानी	२२४	१८६
सेनाके व्यूह बनानेमें ....	२२५	१८७
जल आदिमें युद्धका प्रकार	२२६	१९२
आगेकी सेनाके योग्योंको कहतेहैं ....	२२६	१९३



विषय	पृ.	श्लो.
सेनाकी परीक्षा करना ....	२२६	१९४
पराये देशके पीडा देनेमें ....	२२७	१९५
पराई प्रजाका भेद आदि ....	२२७	१९७
उपायके न होनेमें युद्ध करै ....	२२८	२००
जीतिकरि ब्राह्मण आदिका- पूजन और प्रजाका अभय दान ....	२२८	२०१
उसके वंशवालेको उसका- राज्य देनेमें ....	२२८	२०२
करका लेना आदि ....	२२९	२०६
मित्रकी प्रशंसा ....	२२९	२०७
शत्रुके गुण ....	२२९	२१०
उदासीनके गुण ....	२३०	२११
अपने लिये भूमि आदि का त्याग ....	२३०	२१२
आपत्तिमें उपायोंका सोचना ....	२३०	२१४
राजाके भोजनमें ....	२३०	२१६
अन्न आदि की परीक्षा ....	२३१	२१७
विहार आदिमें ....	२३१	२२१
आयुध आदिका देखना ....	२३१	२२२
संध्योपासन करके दूतके- काम देखै ....	२३२	२२३
तिस पीछे रात्रिका भोजन- आदि करै ....	२३२	२२४
राजा स्वस्थ न होय तौ श्रेष्ठ मंत्रीके आधीन करै ....	२३२	२२६
<b>अथ अष्टमोऽध्यायः ।</b>		
राजा व्यवहारोंके देखनेकी इच्छासे सभामें जाय ....	२३२	१
कुल तथा शास्त्र आदिसे व्यव- हारोंको देखै ....	२३३	३

विषय	पृ.	श्लो.
अठारह विवादोंको कहतेहैं ....	२३३	४
धर्मका आश्रय लेकर निर्णय करै ....	२३३	८
आप असमर्थ होयतौ विद्वान्को नियत करै ....	२३४	९
वह तीन ब्राह्मणोंके साथ कर्म देखै ....	२३४	१०
उस सभाकी प्रशंसा ....	२३४	११
अधर्ममें सभासदोंका दोष ....	२३४	१२
सभामें सत्यही बोलना चाहिये ....	२३५	१३
अधर्म वादिको दंड ....	२३५	१४
धर्मके उलंघनमें दोष ....	२३५	१५
बुरेव्यवहारमें राजा आदिको अधर्म ....	२३५	१८
अर्थी प्रत्यर्थीके पापमें ....	२३६	१९
व्यवहारके देखनेमें शूद्रका निषेध ....	२३६	२०
जिसमें नास्तिक तथा शूद्र- अधिक द्विज न्यून ऐसे देशका- निषेध ....	२३६	२१
लोकपालोंको प्रणाम करि व्यवहारको देखै ....	२३६	२३
ब्राह्मण आदिके क्रमसे व्यवहा- रको देखै ....	२३६	२४
स्वर और वर्ण आदिसे अर्थी आदिकी परीक्षा करै ....	२३७	२५
वालकका धन राजाकरि रक्षा करने योग्यहै ....	२३७	२७
प्रोषितपतिका आदिके धनकी रक्षा करना ....	२३७	२८
अपुत्राके धन लेनेवाले- को शासन ....	२३८	२९



विषय	पृ.	श्लो.
स्वामिरहित धनकी रक्षाका		
काल .... २३८	३०	
द्रव्यके रूप और संख्या आदिका		
कहना .... २३८	३१	
न कहनेमें दंड .... २३८	३२	
नष्ट हुए द्रव्यसे छठा भाग		
लेना .... २३८	३३	
चोरका मरवाना .... २३८	३४	
निधि आदिमें छठा भाग लेना २३९	३५	
पराई निधिमें झूठके बोलनमें २३९	३६	
ब्राह्मणकी निधिके विषयमें २३९	३७	
राजा निधि पाकै आधी ब्राह्म-		
णोको देवै .... २३९	३८	
चोरों करि लिया हुआ धन राजा-		
को देना चाहिये .... २३९	४०	
जाति तथा देशके विरोध विना		
करना चाहिये .... २३९	४१	
राजाकी विवादका उठाना-		
आदि न करना चाहिये २४०	४३	
अनुमानसे सत्यका निश्चय करै २४०	४४	
सत्य आदिसे व्यवहारको देखै २४०	४५	
सदाचार करना चाहिये .... २४०	४६	
ऋणके देनेमें .... २४१	४७	
अथ हीन .... २४१	५३	
अभियोग करनेवालेका द-		
ण्ड आदि .... २४२	५८	
धन परिमाणके झूठ कहनेमें २४३	५९	
साक्षियोंसे निश्चय करना .... २४३	६०	
अथ साक्षी .... २४३	६१	
साक्षी होनेमें निषिद्ध .... २४३	६४	
स्त्री आदिकोंकी स्त्री साक्षी २४४	६८	
वादीके साक्षी .... २४५	६९	

विषय	पृ.	श्लो.
बालक आदिके साक्ष्य ....		
आदिमें .... २४५	७०	
साहस आदिमें साक्षीकी परी-		
क्षा नहीं .... २४५	७२	
साक्षियोंके द्वैधमें .... २४५	७३	
साक्षीका सत्य कहना .... २४५	७४	
झूठा साक्षी होनेमें दोष .... २४६	७५	
सुने हुए साक्षी .... २४६	७६	
धर्मज्ञ एकभी साक्षी होता है २४६	७७	
साक्षीका स्वाभाविक वचन		
ग्रहण करै .... २४६	७८	
साक्षियोंसे पूछनमें .... २४६	७९	
साक्षियोंको सत्य कहना		
चाहिये .... २४७	८१	
एकांतमें किये कामको आत्मा		
आदि जानता है .... २४७	८४	
ब्राह्मण आदि साक्षियोंसे		
प्रश्नमें .... २४७	८७	
असत्य कहनेमें दोष .... २४८	८९	
सत्यकी प्रशंसा .... २४८	९२	
असत्य कहनेका फल .... २४८	९३	
फिर सत्य कहनेकी प्रशंसा २४९	९६	
विषयके भेदसे सत्यका फल २४९	९७	
निंदित ब्राह्मणोंसे शूद्रकी		
भाति पूछे .... २५०	१०२	
विषयके भेदसे झूठ कहनेमें		
दोष .... २५०	१०३	
झूठ कहनेमें प्रायश्चित्त .... २५०	१०५	
तीनिपक्ष तक साक्ष्य कहनेमें		
पराजय .... २५१	१०७	
साक्षियोंके भंगमें .... २५१	१०८	
विना साक्षीके विवादमें		
शपथ .... २५१	१०९	



विषय	पृ.	श्लो.
वृथा शपथमें दोष ....	२५१	१११
वृथा शपथका प्रतिप्रसव		
कहतेहैं ....	२५२	११२
ब्राह्मण आदि सत्य कहना		
आदि शपथहै ....	२५२	११३
शुद्धके शपथमें ....	२५२	११४
शपथमें शुद्ध कहतेहैं ....	२५२	११५
अथ पुनर्वाद ....	२५२	११७
लाभ आदिसे साक्ष्यमें दंड-		
विशेष ....	२५२	११८
दंडके हाथ आदि दशस्थानहैं	२५३	१२४
अपराधकी अपेक्षा दंडदेना	२५४	१२६
अधर्म दंडकी निन्दा ....	२५४	१२७
दंड योग्यका परित्याग ....	२५४	१२८
वाग्दंड धिग्दंड आदि ....	२५४	१२९
त्रसरेणु आदि परिमाणोंको		
कहतेहैं ....	२५५	१३२
प्रथम मध्यम उत्तम साहस	२५५	१३८
ऋणदानमें दंडका नियम	२५६	१३९
अथ वृद्धि कहिये व्याज	२५६	१४०
आधिके स्थलमें ....	२५७	१४३
बलसे आधिके भोगका		
निषेध ....	२५७	१४४
आधिके निक्षेप आदिमें ....	२५७	१४५
गौ आदिके भोगनेपरभी		
स्वत्व की हानि नहीं होती	२५७	१४६
आधि सीमा आदिमें भोग-		
नेपरभी स्वत्व हानि नहीं	२५८	१४७
बलसे आधिके भोगनेमें		
आधी वृद्धि ....	२५८	१४९
दुगुनेसे अधिक वृद्धि नहीं		
होती ....	२५८	१५१

विषय	पृ.	श्लो.
वृद्धिके प्रकार ....	२५८	१५२
फिर लेख्य करनेमें ....	२५९	१५४
देशकालकी वृद्धिमें ....	२६०	१५६
दर्शनप्रतिभूके स्थलमें ....	२६०	१५८
जमानतका ऋण पुत्र न देवै	१६०	१५९
दानप्रतिभूके स्थलमें ....	२६०	१६०
निरादिष्ठ धनमें प्रतिभू		
होनेपर ....	२६१	१६२
कियेकी निवृत्तिमें ....	२६१	१६३
कुटुंबके लिये किया अदेयहै	२६१	१६६
बलसे किया हुआ लौटाने-		
योग्य है ....	२६२	१६८
प्रतिभू होने आदिका निषेध	२६२	१६९
अग्राह्य धनको न लेवै ....	२६२	१७०
ग्रहण करणे योग्यके त्या-		
गमें दोष ....	२६२	१७१
निर्बलकी रक्षा करने आदिमें	२६२	१७२
अधर्मसे कार्य करनेमें ....	२६३	१७४
धर्मसे काम करना ....	२६३	१७५
धनिकसे धनके साधनमें	२६३	१७६
धन न होनेमें काम करकै		
ऋण शोधन करै ....	२६३	१७७
अथ निक्षेप कहिये धरोहड़में	२६४	१७९
साक्षीके न होनेमें निक्षेपसे		
निर्णय ....	२६४	१८२
निक्षेपके देनेमें ....	२६४	१८५
आपही निक्षेपके देनेमें ....	२६५	१८६
मुदी हुई धरोहड़में ....	२६५	१८८
धरोहड़के चोरी होजाने पर	२६५	१८९
निक्षेपक मुकर जानेमें शपथ	२६६	१९०
निक्षेपके अपहार आदिमें दंड	२६६	१९१
छलसे पराये धनके लेलेनेमें	२६६	१९३



विषय	पृ.	श्लो.
धरोहडमें झूठ बोलनेसे दंड	२६६	१९४
धरोहडके देने लेनेमें ....	२६७	१९५
विना स्वामीके वेचनेमें ....	२६७	१९६
आगमसहित भोगका प्रमाण	२६७	२००
खुलाखुली वेचने तथा मू- ल्यके धरन लाभमें ....	२६८	२०१
साक्षीकी वस्तुके वेचनेमें....	२६८	२०२
और कन्यादिखाकै औरसे विवाहमें ....	२६८	२०४
उन्मत्त आदि कन्याके विवाहमें ....	२६८	२०५
पुरोहितकी दक्षिणा देनेमें	२६८	२०६
अध्वर्यु आदिकी दक्षिणा	२६९	२०९
संभूयसमुत्थानमें ....	२६९	२११
दियेका मुकरजाना ....	२७०	२१२
मरनेके स्थलमें ....	२७०	२१५
प्रतिज्ञाके बदल जानेमें....	२७१	२१८
वेचीहुई वस्तुमें पछतावा करना ....	२७१	२२२
विनाकहे दोष युक्त कन्या के दानमें ....	२७२	२२४
झूठ कन्याके दोष कहनमें	२७२	२२५
दूषित कन्याकी निंदा ....	२७२	२२६
अथ सप्त पदी ....	२७२	२२७
स्वामी और पालने वालेका विवाद ....	२७३	२२९
क्षीरकी भृतिके स्थलमें ....	२७३	२३१
पालने वालेके दोषसे नष्ट स्थलमें ....	२७३	२३२
चोरके ले जानेपर ....	२७४	२३३
सींग आदि चिह्ने दिखाना	२७४	२३४
भेडिया आदिके मारनेके स्थलमें ....	२७४	२३५

विषय	पृ.	श्लो.
धान्य नाश करने वाले के दंडमें ....	२७४	२३७
सीमा विवादके स्थलमें....	२७६	२४५
सीमाके वृक्ष आदि ....	२७६	२४६
नष्ट किये गये सीमाके चिह्न	२७७	२४९
भोगसे सीमाका निर्णय करै	२७७	२५२
सीमाके साक्षी ....	२७७	२५३
साक्ष्य युक्त सीमाको बाँधै	२७७	२५५
साक्ष्य देनेकी विधि ....	२७७	२५६
अन्यथा कहनेमें दंड ....	२७८	२५७
साक्षीके न होनेमें गाँवके सामंत आदि ....	२७८	२५८
सामंतोंके झूठ कहनेमें दंड	२७८	२६३
गृह आदिके हरि लेनेमें दंड	२७९	२६४
राजा आप सीमाका निर्णय करै ....	२७९	२६५
अथ वाक्पारुष्यमें दंड ....	२७९	२६६
ब्राह्मण आदिके गाली देनेमें	२७९	२६७
बराबर वर्णके गाली देनेमें	२७९	२६९
द्विजको शूद्रके गाली देनेमें	२८०	२७०
धर्मका उपदेश करनेवाले शूद्रको दंड....	२८०	२७२
सुने हुए देश तथा जातिके आक्षेपमें ....	२८०	२७३
काणा आदि बुराई करनेमें	२८०	२७४
माता आदिके बुरा कहनेमें	२८०	२७५
आपसमें पतित होने योग्य बुराई करनेमें ....	२८१	२७६
अथ दंड पारुष्य ....	२८१	२७८
शूद्रको ब्राह्मण आदिके ताडनेमें ....	२८१	२७९
बड़ेके साथ बैठनेमें ....	२८१	२८१



विषय	पृ.	श्लो.
थूकने आदिमें ....	२८१	२८२
बाल पकडने आदिमें ....	२८२	२८३
त्वचाके फोडने और हड्डी- के तोडने आदिमें ....	२८२	२८४
वनस्पतिके काटनेमें ....	२८२	२८५
मनुष्योंके दुःखके अनुसार दंड ....	२८२	२८६
समुत्थान का खरच देन में	२८२	२८७
द्रव्यकी हिंसामें ....	२८२	२८८
चमड़ेके भांड आदिमें ....	२८३	२८९
यान आदिकी दशाओंका- बदलना ....	२८३	२९०
रथके स्वामी आदिके दंड- देनेमें ....	२८४	२९३
भार्या आदिकी ताडनामें	२८५	२९९
अन्यथा ताडनमें दंड ....	२८५	३००
चोरके दंड देनेमें ....	२८५	३०१
चोर आदिसे अभय दानका फल ....	२८५	३०३
राजा धर्म अधर्मके छठे भा- गका पानेवालाहै ....	२८५	३०४
रक्षा विना कर लेनेकी निंदा	२८६	३०७
पापीके दंड और साधुके सं- ग्रहणमें ....	२८६	३१०
बालक वृद्ध आदिकोंमें क्षमा	२८७	३१२
ब्राह्मणके सुवर्णके चोरमें	२८७	३१४
शासन न करनेमें राजाका दोष ....	२८७	३१६
पराये पापके लगनेमें ....	२८८	३१७
राजदंडसे पापके नाश होनेपर ....	२८८	३१८
कुपपरसे घटरस्सी आदिके-		

विषय	पृ.	श्लो.
चुराने और प्याऊके- तोडनेमें ....	२८८	३१९
धान्य आदिके चुरानेमें ....	२८८	३२०
सुवर्ण आदिके चुरानेमें ....	२८८	३२१
स्त्री पुरुष आदिके हरनमें	२८९	३२३
बड़े पशु आदिके चुराने आदिमें ....	२८९	३२४
सूत कपास आदिके चुरानेमें	२८९	३२६
हरेधान्य आदिके चुरानेमें	२९०	३३०
निरन्वय सान्वय धान्य आदि ....	२९०	३३१
स्तेय साहसका लक्षण ....	२९०	३३२
तीनो अग्नियोंके चुरानेमें	२९०	३३३
चोरका हाथ काटना आदि	२९०	३३४
पिता आदिके दंडमें ....	२९१	३३५
राजाके दण्डमें ....	२९१	३३६
विज्ञशूद्र आदिको आठ- गुना आदि दंड ....	२९१	३३७
अस्तेय कहतेहैं ....	२९१	३३९
चोरके यजन कराने आदिमें	२९१	३४०
मार्गमें स्थित दोईखोंके लेनेमें	२९२	३४१
दासाश्व आदिके हरने- आदिमें ....	२९२	३४२
अथ साहस कहतेहैं ....	२९२	३४४
साहसके योग्य निंदा ....	२९२	३४६
द्विजातिका शस्त्रग्रहणकाल	२९३	३४८
आततायीके मारनेमें ....	२९३	३५०
पराई स्त्रीके छेडनमें दंड	२९३	३५२
पराई स्त्रीसे एकांतमें बात- करनेमें ....	२९४	३५४
स्त्रीसंग्रहणमें ....	२९४	३५८
भिक्षुक आदिक पराई स्त्रीसे बोलनेमें ....	२९५	३६०



विषय	पृ.	श्लो.
पराई स्त्रीकेसार्थ निषिद्ध सं-		
भाषणमें ....	२९५	३६१
नट आदिकी स्त्रियोंसे सं-		
भाषणमें दोष ....	२९५	३६२
कन्याके दूषणमें ....	२९६	३६४
अंगुली आदिके डालनेमें	२९६	३६६
व्यभिचार करनेवाले स्त्री		
और जारको दंड ....	२९७	३७१
संवत्सरके अभिशस्त आदिमें	२९७	३७३
शूद्र आदिको अरक्षित		
उत्कृष्ट आदिके गर्मनेमें	२९७	३७४
ब्राह्मणगुप्ता विप्राके गमनमें	२९८	३७८
ब्राह्मणका वध दंड नहीं है	२९८	३८०
गुप्ता वैश्य क्षत्रियाके		
गमनमें ....	२९९	३८२
अगुप्ता क्षत्रिया आदिके		
गमनमें ....	२९९	३८४
साहसी आदिकोंसे शून्य		
राज्यकी प्रशंसा ....	२९९	३८६
कुल पुरोहित आदिके		
त्यागमें ....	३००	३८८
माता आदिके त्यागमें ....	३००	३८९
ब्राह्मणोंके वादमें राजाका		
धर्म न कहना चाहिये	३००	३९०
सामाजिक आदिके न भो-		
जनमें ....	३००	३९१
इसके उपरांत आकररहित	३०१	३९४
धोबीके वस्त्र धोनेमें ....	३०१	३९६
कोलीके सूत लेलेनेमें ....	३०१	३९६
वेचने योग्य वस्तुके मोल-		
करनेमें ....	३०१	३९८
राजाकरि निषिद्धोंके लंजा-		

विषय	पृ.	श्लो.
नेमें ....	३०२	३९९
अकालके विक्रय आदिमें	३०२	४००
विदेशके विक्रयमें ....	३०२	४०१
मूल्यके स्थापित करनेमें	३०२	४०२
तुलादिकी परीक्षा ....	३०२	४०३
नौकाकी उतराई ....	३०२	४०४
गर्भिणी आदिकी नावकी उ-		
तराई ....	३०३	४०७
नाववालेके दोषसे वस्तुके		
नाशमें ....	३०३	४०८
वैश्य आदिके व्यापार न		
करक्षत्रिय और वैश्य दासक-		
र्मके योग्य नहीं हैं ....	३०४	४११
शूद्रसे दासकर्म करावै ....	३०४	४१३
शूद्र दासपनसे नहीं छुटता है	३०४	४१४
अब सत्रह दासोंके प्रकार	३०४	४१५
भार्यादास आदि अधन हैं	३०४	४१६
वैश्य तथा शूद्रोंसे अप्रनाका		
म करना चाहिये ....	३०५	४१८
दिन दिन आयव्यय अर्थात्		
आमदनी और खर्च	३०५	४१९
देखै ....	३०५	४१९
अच्छी भांति व्यवहार देखने-		
का फल ....	३०५	४२०
अथ नवमोऽध्यायः ।		
स्त्री पुरुषोंके धर्म ....	३०६	१
स्त्रीकी रक्षा ....	३०६	२
जायाशब्दके अर्थका कहना	३०७	८
स्त्रीकी रक्षाके उपाय ....	३०७	११
स्त्रीके स्वभाव ....	३०८	१४
स्त्रियोंकी मंत्ररहित क्रिया	३०८	१८
व्यभिचारके प्रायश्चित्तमें	३०९	१९



विषय	पृ.	श्लो.
स्त्रीस्वामीके गुणयुक्त होतीहैं	३०९	२२
स्त्रीकी प्रशंसा ....	३१०	२६
व्यभिचार न करनेका फल	३१०	२९
व्यभिचारका फल ....	३१०	३०
बीज और क्षेत्रका बलाबल	३११	३२
पराई स्त्रियोंमें बीज बोनेका निषेध ....	३१३	४१
स्त्री और पुरुषका एकत्व	३१३	४५
एकवार अंशभाग आदि....	३१४	४७
क्षेत्रकी प्रधानता ....	३१४	४८
स्त्री धर्म कहतेहैं....	३१५	५६
भाईकी स्त्रीमें गमन करनेमें पतित होताहै ....	३१६	५७
नियोग कहतेहैं....	३१६	५९
नियोगमें दूसरा पुत्र न उत्पन्न करै ....	३१६	६०
कामसे गमनका निषेध ....	३१७	६३
नियोगकी निन्दा ....	३१७	६४
वर्णसंकर काल....	३१७	६६
वाग्दत्ताके विषयमें ....	३१७	६९
कन्याके फिर देनेका निषेध	३१८	७१
सप्तपदी पूर्वक स्त्रीके त्यागमें	३१८	७२
दोषयुक्त कन्याके दानमें....	३१८	७३
स्त्रीकी जीविका कल्पना करिकै प्रवास करै....	३१८	७४
प्रोषित भर्तृकाके नियम ....	३१९	७५
एकतक स्त्रीकी प्रतीक्षा करै	३१९	७७
रोग पीडितके अतिक्रममें नपुंसक आदिकी स्त्रीका....	३१९	७८
त्याग नहीं ....	३१९	७९
अधिवेदनमें ....	३१९	८०
स्त्रीके मद्यपानमें ....	३२०	८४

विषय	पृ.	श्लो.
धर्मकार्य सजातिकी स्त्री करै अन्य नहीं ....	३२०	८६
गुणीके लिये कन्यादान ....		
निर्गुणको नहीं ....	३२१	८८
स्वयंवरका काल ....	३२१	९०
स्वयंवरमें पिताके दिये अलंकारका त्याग....	३२२	९३
रजस्वलाके विवाहमें शुल्कका देनानहीं ....	३२२	९३
कन्या वरकी अवस्थाका....		
नियम....	३२२	९४
विवाहकी आवश्यकता ....	३२२	९५
मूल्य दी हुईके पतिके मरनेमें ....	३२२	९७
मोल लेनेका निषेध....	३२२	९८
वचनसे कन्या देकर अन्यके लिये दान नहीं....	३२३	९९
स्त्री पुरुषका अव्यभिचार	३२३	१०१
अब दायभाग कहतेहैं ....	३२३	१०३
विभागका काल ....	३२३	१०४
सामिल रहनेमें जेठेकी प्रधानता....	३२४	१०५
ज्येष्ठको प्रशंसा....	३२४	१०६
ज्येष्ठको ज्येष्ठवृत्ति न होनेपर	३२५	११०
विभागमें हेतु कहतेहैं ....	३२५	१११
ज्येष्ठ आदिके विशोद्धरमें	३२५	११२
एकभी श्रेष्ठवस्तु ज्येष्ठको देंवें ....	३२५	११४
दशवस्तुओंमें समानोका उद्धार नहींहै....	३२५	११५
सम तथा विषम विभाग ....	३२५	११६
अपने २ भागों सबदिनके		



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
लिये देना चाहिये ....	३२६	११८	होनेपर ....	३३४	१६३
विषम बकरी मेढ जेठेकीहै	३२६	११९	दत्तक आदि गोत्ररिक्थके		
क्षेत्रजके साथ विभागमें ....	३२६	१२०	भागीहै ....	३३४	१६५
जनेक मातावालोंमें ज्येष्ठता	३२७	१२२	औरस आदि वारह पुत्रोंके		
जन्मसे ज्येष्ठता ....	३२७	१२५	लक्षण ....	३३४	१६६
पत्रिका करनेमें ....	३२८	१२७	दासी पुत्रको सम भागित्व	३३६	१७९
पुत्रिकाका ग्राहित्व नहींहै	३२८	१३०	क्षेत्रज आदि पुत्रके प्रति		
माताका स्त्रीधन कन्याकाहै	३२८	१३१	निधिहै ....	३३६	१८०
पुत्रिकापुत्रका धन ग्राहित्वहै	३२९	१३२	औरस होनेपर दत्तक आदि		
पुत्रिका और औरसके ....			नहीं कर्तव्यहैं ....	३३७	१८१
विभागमें ....	३२९	१३४	पुत्रिका पुत्रत्वका अतिदेश	३३७	१८२
पुत्ररहित पुत्रिकाके धनमें	३२९	१३५	वारह पुत्रोंमें पहिला २		
पुत्रिका दो प्रकारकीहै ....	३२९	१३६	श्रेष्ठहै ....	३३७	१८४
पौत्रप्रपौत्रका धनमें भाग ....	३२९	१३७	क्षेत्रज आदि रिक्थहरहैं ....	३३७	१८५
पुत्र शब्दका अर्थ ....	३२९	३३८	क्षेत्रज आदिकोंको पितामह		
पुत्रिका पुत्रके किये श्राद्धमें	३३०	१४०	के धनमें ....	३३७	१८६
दत्तकके धन ग्राहित्वमें ....	३३०	१४१	सर्पिंड आदि धन लेने-		
कामज आदिका धनग्राहि			वाले होतेहैं ....	३३८	१८७
नहींहै ....	३३०	१४३	ब्राह्मणका अधिकारहै ....	३३८	१८८
क्षेत्रजके धन ग्राहित्वमें ....	३३१	१४५	राजाका अधिकार ....	३३८	१८९
अनेकमातावालोंका विभाग	३३१	१४९	मृतपतिका नियुक्त पुत्रका		
विनाव्याहे हुए शूद्रा पुत्रके			अधिकारहै ....	३३८	१९०
भागका निषेध ....	३३२	१५५	औरस पौनर्भवके विभागमें	३३९	१९१
सजातीय अनेक मातावा-			माताके धनके विभागमें ....	३३९	१९२
लोंका विभाग ....	३३२	१५६	स्त्रीधन कहतेहैं ....	३३९	१९४
शूद्रका समही भाग होताहै	३३३	१५७	संतति सहित स्त्रीके धना-		
दायाद अदायाद बांधव-			धिकारी ....	३३९	१९५
पनहै ....	३३३	१५८	संतति रहित स्त्रीके धना-		
कुपुत्रकी निंदा ....	३३३	१६१	धिकारी ....	३३९	१९६
औरस और क्षेत्रजके वि-			साधारण स्त्रीधन न करै ....	३४०	१९९
भागमें ....	३३३	१६२	स्त्रियोंका अलंकरण नहीं		
क्षेत्रजके पीछे औरस ....			बांटने योग्यहै ....	३४०	२००



विषय	पृ.	श्लो.
अब अनंश कहतेहैं ....	३४०	२०१
नपुंसक आदि क्षेत्रज अंश-		
भागी होतेहैं ....	३४०	२०३
साझेके जोड़े हुए धनमें ....	३४१	२०४
विद्या आदि ....	३४१	२०६
समर्थको भागकी उपेक्षामें	३४१	२०७
अविभाज्य धनमें ....	३४१	२०८
नष्टके उद्धारमें .....	३४१	२०९
मिलेहुए धनके विभागमें	३४१	२१०
विदेश आदिमें गये हुएका		
भाग लोप नहीं होताहै	३४२	२११
गुण शून्य ज्येष्ठ समान		
भाग पावै ....	३४२	२१३
विकर्ममें स्थित सब भ्राता धनको		
नहीं पातेहैं ज्येष्ठके असा-		
रण करनेमें ....	३४२	२१४
जिनका पिता जीवताहै उन-		
का विभाग ....	३४२	२१५
विभागके पीछे उत्पन्नके		
स्थलमें ....	३४२	२१६
संतति-रहित धनमें माताका-		
अधिकार ....	३४३	२१७
ऋण और धनमें समान		
विभाग ....	३४३	२१८
अविभाज्य कहतेहैं ....	३४३	२१९
अब द्यूत समान्हय कहतेहैं	३४३	२२०
द्यूत समान्हयका निषेध....	३४३	२२१
द्यूत समान्हयका अर्थ ....	२४४	२२३
द्यूत आदि करने वालोंका-		
दण्ड ....	३४४	२२४
पाषंडी आदिकोंको देशसे-		
निकालदे ....	३४४	२२५

विषय	पृ.	श्लो.
दंड देनेकी असमर्थतामें	३४५	२२९
स्त्री बालक आदिके दंडमें	३४५	२३०
नियुक्तके काम बिगाड़नेमें	३४५	२३१
कूटशास और बाल वध-		
आदि करनेमें ....	३४५	२३२
धर्मसे किये हुए व्यवहार-		
को न लौटावै ....	३४५	२३३
अधर्मसे किया लौटाने-		
योग्य है ....	३४५	२३४
प्रायश्चित्त न करनेमें महा-		
पातकीका दण्ड ....	३४६	२३५
प्रायश्चित्त करनेसे दागने-		
योग्य नहींहैं ....	३४६	२४०
महापातकमें ब्राह्मणको दंड	३४७	२४१
क्षत्रिय आदिका दंड ....	३४७	२४२
महापातकीके धन लेनेमें	३४७	२४३
ब्राह्मणके पीडा देनेमें दंड	३४८	२४८
वध योग्यके छुटानेमें दोष	३४८	२४९
राजा कंटकीके उखाड़नेमें-		
यत्न करै ....	३४८	२५२
आर्यकी रक्षाका फल ....	३४८	२५३
चोर आदिके दंड न देनेमें-		
दोष ....	३४८	२५४
निर्भय राज्य बढाना ....	३४९	२५५
प्रकट तथा गुप्त चोरोंका ज्ञान	३४९	२५६
प्रकट तथा गुप्त तस्कर-		
कहते हैं ....	३४९	२५७
उनका जानना ....	३५०	२६२
चोरोंका रोंकनेवाला दंडहीहै	३५०	२६३
चोरका दूँदना ....	३५१	२६४
चोरीके चिह्नके न देखनेमें	३५१	२७०
चोरको आश्रय देनेवाले-		



विषय	पृ.	श्लो.
को दंड ....	३५२	२७१
स्वधर्मसे भ्रष्टके दंड देनेमें	३५२	२७३
चोर आदिके उपद्रवमें न-		
दौडनेवालेको दंड ....	३५२	२७४
राजाका खजाना लेनेवाले-		
को दंड ....	३५२	२७५
संधिके फोडनेमें ....	३५२	२७६
गांठि काटनेमें....	३५३	२७७
चोरके चिह्न धारण आदिमें	३५३	२७८
तलाव तथा घरके फोडनेमें	३५३	२७९
राजमार्गमें मल मूत्र करनेमें	३५३	२८२
झूठी चिकित्सा करनेमें दंड	३५४	२८४
प्रतिमाके तोडनेमें ....	३५४	२८५
मणियोंके अन्यथा छेद-		
करनेमें ....	३५४	२८६
विष व्यवहारमें ....	३५४	२८७
बंधन-स्थान राजमार्गमें....	३५४	२८८
परकोटेके तोडने आदिमें	३५५	२८९
अभिचारकर्ममें ....	३५५	२९०
अवीजके वेचने आदिमें....	३५५	२९१
स्वनारके दंड देनेमें ....	३५५	२९२
हलके उपकरण चुरानेमें....	३५६	२९३
अब सात प्रकृति कहतेहैं	३५६	२९४
अपनी और पराई शक्तिका		
देखना ....	३५७	२९८
कामके आरंभमें ....	३५७	२९९
राजाका युगत्व कहना ....	३५७	३०१
इंद्र आदिकोंके तेजको रा-		
जा धारण करताहै ....	३५८	३०३
इन उपायोंसे चोरका पकडना	३५८	३१२
ब्राह्मणको कुपित न करै....	३५८	३१३
ब्राह्मणकी प्रशंसा ....	३५९	३१४

विषय	पृ.	श्लो.
श्मशानकी अग्नि दूषित नहीं ऐसे		
ही ब्राह्मण ....	३६०	३१८
ब्राह्मण क्षत्रियको परस्पर		
साहित्यहै ....	३६१	३२२
पुत्रको राज्य दे रणमें प्राण-		
त्याग ....	३६१	३२३
वैश्यके धर्मोंको कहतेहैं ....	३६१	३२६
शूद्रके कर्मोंको कहतेहैं ....	३६२	३३४
<b>अथ दशमोऽध्यायः ।</b>		
अध्यापन ब्राह्मणही काहै....	३६३	१
वर्णोंका ब्राह्मण प्रभुहै ....	३६४	३
अब द्विजवर्णका कथन ....	३६४	४
अब सजातीय कहतेहैं ....	३६४	५
पिताकी जातिके सदृश ....	३६४	६
अब वर्णसंकर कहतेहैं ....	३६५	८
अब व्रात्य कहतेहैं ....	३६७	२०
व्रात्योंसे उत्पन्न आदि		
संकीर्ण ....	३६७	२१
उपनयन करने योग्य ....	३७१	४१
वे सुकर्मसे उत्कर्षको प्राप्त-		
होतेहैं ....	३७१	४२
क्रियाके लोपसे वृषलत्वको-		
प्राप्त होतेहैं .....	३७१	४३
दस्यु कहतेहैं .....	३७२	४५
वर्णसंकरोंके कर्म कहतेहैं....	३७२	४७
चांडालका कर्म कहतेहैं ....	३७३	५१
कर्मसे पुरुषका ज्ञान ....	३७४	५७
वर्णसंकरकी निन्दा .....	३७४	५९
इनका ब्राह्मणकेलिये प्राण-		
त्यागना श्रेष्ठहै ....	३७४	६२
साधारण धर्म कहतेहैं ....	३७४	६३
सातमें जन्ममें ब्राह्मणत्व और-		



विषय	पृ.	श्लो.
शूद्रत्व ....	३७५	६४
वर्णसंस्करणमें श्रेष्ठता ....	३७६	६७
बीज और क्षेत्रका बलाबल	३७६	७०
षट्कर्म कहतेहैं.....	३७७	७५
ब्राह्मणकी जीविका.....	३७७	७६
क्षत्रिय तथा वैश्यकर्म कहतेहैं	३७८	७७
द्विजोंका श्रेष्ठ कर्म कहतेहैं	३७८	८०
आपत्तिका धर्म कहतेहैं.....	३७८	८१
वेचनेमें वर्जित कहतेहैं ....	३७९	८६
दूध आदिके वेचनेका फल	३८०	९२
ज्यायसी वृत्तिका निषेध	३८०	९५
पराये धर्मसे जीवनेकी निंदा	३८१	९७
वैश्य शूद्रका आपद्धर्म ....	३८१	९८
आपत्तिमें विप्रका हीन याजन-		
आदि ....	३८१	१०२
दान लेनेकी निंदा ....	३८२	१०९
याजन अध्यापन ब्राह्मण कहै	३८३	११०
प्रतिग्रह आदिके पापनाशमें	३८३	१११
शिलोंछसे जीवनेमें.....	३८३	११२
धनके याचनमें.....	३८३	११३
सात धनके आगम.....	३८४	११५
दश जीवनेके हेतु ....	३८४	११६
व्याजसे जीवनेका निषेध	३८५	११७
राजाओंका आपद्धर्म कहतेहैं	३८५	११८
शूद्रका आपद्धर्म ....	३८५	१२१
शूद्रको ब्राह्मणका आराधन-		
श्रेष्ठ ....	३८५	१२२
शूद्रकी वृत्ति कल्पना करना	३८६	१२४
शूद्रके संस्कार आदि नहीं	३८६	१२६
शूद्रका विनामंत्रके धर्मकार्य	३८६	१२७
शूद्रके धनके संचयका निषेध	३८७	१२९

विषय	पृ.	श्लो.
अथ एकादशोऽध्यायः ।		
स्नातकके प्रकार ....	३८८	१
नवीन स्नातकोंको अन्न देनेमें	३८८	२
वेदवेत्ताओंको अन्न देना	३८८	४
भिक्षासे दूसरे व्याहका निषेध	३८८	५
कुटुंबी ब्राह्मणकेलिये दान	३८८	६
सोम यागके अधिकारी ....	३८९	७
कुटुंबके न भरण करनेमें दोष	३८९	९
यज्ञशेष आदिके लिये वैश्या-		
आदिसे धनलेना ....	३८९	११
छःउपवासोंके पीछे आहारले-		
नेमें ....	३९०	१६
ब्रह्मस्व आदि हरनेका निषेध	३९०	१८
असाधुओंका धन लेकर साधु-		
ओंके देनेमें.....	३९१	१९
यज्ञ शील आदि धनकी		
प्रशंसा.....	३९१	२०
ब्राह्मणके यज्ञके लिये चोर-		
आदिमें दंड ....	३९१	२१
क्षुधासे पीडितकी वृत्तिक-		
ल्पना करनेमें ....	३९१	२२
यज्ञकेलिये शूद्रकी भिक्षाका-		
निषेध ....	३९१	२४
यज्ञकेलिये धन मांगके न रखना-		
चाहिये ....	३९२	२५
देवताऔरब्राह्मणकेधनहरनेमें	३९२	२६
सोमयागकी अशक्तिमें वैश्वा-		
नर यज्ञ ....	३९२	२७
समर्थके अनुकल्पक निषेध	३९२	२८
द्विजको शक्तिसे वैरीका जय	३९३	३१
क्षत्रिय आदिका वाहु बलसे		
शत्रुका जय ....	३९३	३४



विषय	पृ.	श्लो.
ब्राह्मणका अनिष्ट न कहै	३९३	३५
अल्प विद्यावाला तथा स्त्री आदिका-		
होतृत्वका निषेधहै ....	३९३	३६
अश्वकी दक्षिणा देनेमें ....	३९४	३८
थोड़ी दक्षिणाके यज्ञकी		
निंदा ....	३९४	३९
अग्निहोत्रीको उसके न कर-		
नमे ....	३९४	४१
शूद्रसे प्राप्त धनसे अग्निहोत्रकी-		
निंदा ....	३९४	४२
विहितके न करने आदिमें प्राय-		
श्चित्ती होताहै ....	३९५	४५
जाने बिना जाने पापके-		
लिये ....	३९५	४६
प्रायश्चित्तीके संसर्गका निषेध	३९५	४७
पहले पापसे कुष्ठी अंधे आदि-		
होते हैं ....	३९६	४८
प्रायश्चित्त अवश्य करना-		
चाहिये ....	३९७	५४
पांच महापातक कहते हैं	३९७	५५
ब्रह्महत्या आदिके समान-		
कहते हैं ....	३९७	५६
उपपातक कहते हैं ....	३९८	६०
जातिभ्रंश करने वाले कहतेहैं	३९९	६८
संकरी करण कहतेहैं ....	३९९	६९
अपात्रीकरण कहतेहैं ....	३९९	७०
मलिनी करण कहतेहैं ....	३९९	७१
अथ ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त	४००	७३
गर्भ आत्रेयी और क्षत्र वैश्य		
के वधमे प्रायश्चित्त ....	४०३	८८
स्त्री तथा मित्रका वध धरोहड-		
दवा लेनेका ....	४०३	८९

विषय	पृ.	श्लो.
मद्यपानका प्रायश्चित्त ....	४०३	९१
सुराके प्रकार ....	४०४	९५
सुवर्णके चुरानेका प्रायश्चित्त	४०५	१००
गुरुकी स्त्रीसे गमनका प्राय-		
श्चित्त ....	४०६	१०३
गोवध आदि उपपातकोंका-		
प्रायश्चित्त ....	४०६	१०८
अवकीर्णका प्रायश्चित्त ....	४०८	११८
जातिभ्रंशकर प्रायश्चित्त....	४०९	१२५
संकरीकरण आदिका प्राय-		
श्चित्त ....	४०९	१२६
क्षत्रिय आदिके वधका प्रा-		
यश्चित्त ....	४०९	१२७
बिलाव आदिके वधका प्रा-		
यश्चित्त . ....	४१०	१३२
घोड़े आदिके वधका प्राय-		
श्चित्त ....	४११	१३७
व्यभिचारित स्त्रीके वधमें-		
प्रायश्चित्त ....	४११	१३८
सर्प आदिके वधमें दानकी आसक्ति-		
होनेपर ....	४१२	१४०
शुद्रजंतुओंके समूहके वधमें	४१२	१४१
वृक्ष आदिके काटनेमें ....	४१२	१४३
अन्नमें उत्पन्न जीवोंके वधमें	४१२	१४४
वृथा औषधी आदिके छेदनेमें	४१३	१४५
अमुख्य सुराके पानमें प्रा-		
यश्चित्त ....	४१३	१४७
सुराके पात्रमें स्थित जल पीनेकां		
प्रायश्चित्त ....	४१३	१४८
शूद्रका उच्छिष्ट जल पीनेमें	४१४	१४९
सुरागंधके सूंघनेमें ....	४१४	१५०



विषय	पृ.	श्लो.
विष्ठा मूत्र सुरासे मिले भो-		
जनमें ....	४१४	१५१
फिर संस्कार होनेमें दंड-		
आदिकी निवृत्ति ....	४१४	१५२
अभोज्य अन्न स्त्री शूद्रके उच्छिष्ट और		
अभक्ष्य मांसके भक्षणमें ....	४१४	१५३
शुक्त आदिके खानेमें ....	४१४	१५४
शूकर आदिके विष्ठा मूत्रके		
भक्षणमें ....	४१५	१५५
सूखे सूना आदिमें स्थित		
अज्ञात मांसके भक्षणमें ....	४१५	१५६
कुक्कुटनरसूकर आदि		
भक्षणमें ....	४१५	१५७
मासिक अन्नके खानेका प्रा-		
यश्चित्त ....	४१५	१५८
ब्रह्मचारीके मधुमांस खानमें ....	४१५	१५९
बिलाव आदिका उच्छिष्ट		
खानेमें ....	४१५	१६०
अभोज्य अन्न उतारना चा-		
हिये ....	४१६	१६१
सजातीयके धान्य आदि		
चुरानेमें ....	४१६	१६३
मनुष्यादिकोंके हरनेका-		
प्रायश्चित्त ....	४१६	१६४
रांगा सीसा आदिके चुरानेमें ....	४१६	१६५
भक्ष्ययानशय्या आदिक		
रहनेमें ....	४१६	१६६
सूखेअन्नगुड आदिके लेनेमें ....	४१७	१६७
मणि मोती चांदी आदिके		
लेनेमें ....	४१७	१६८
रुईकेवने वस्त्र चुरानेमें ....	४१७	१६९

विषय	पृ.	श्लो.
अगम्यागमनका प्रायश्चित्त ....	४१७	१७०
घोड़ी तथा रजस्वला आ-		
दिके गमनमें ....	४१८	१७४
दिनमें मैथुन आदि करनमें ....	४१८	१७५
चांडाली आदिके गमनमें ....	४१८	१७६
व्यभिचारसे स्त्रियोंका प्रा-		
यश्चित्त ....	४१८	१७७
चांडालीके गमनमें ....	४१९	१७९
पतितोंके संसर्गका प्रायश्चित्त ....	४१९	१८२
पतितकी जीवतेही प्रेतक्रिया ....	४१९	१८३
पतितके स्पर्श आदिकी		
निवृत्ति ....	४२०	१८५
प्रायश्चित्त करनेवाले पति-		
तका संसर्ग ....	४२०	१८७
पतित स्त्रियोंको अन्न आदि		
देना ....	४२०	१८९
पतित संसर्ग का निषेध आदि ....	४२०	१९०
बालक मारने वाले आदिका-		
त्याग ....	४२१	१९१
व्रात्य और वेद त्यागने वाले-		
का प्रायश्चित्त ....	४२१	१९२
निंदित जोड़े हुए धनका		
त्याग ....	४२१	१९४
असत् प्रतिग्रहका प्रायश्चित्त ....	४२१	१९५
प्रायश्चित्त किये हुएसे-		
साम्य पूछे ....	४२१	१९६
गौओंके लिये घास देना-		
और वहाँ संसर्ग ....	४२१	१९७
व्रात्यका याजन और पतित-		
की क्रिया कृत्य आदिमें ....	४२२	१९८
वेदके शरणागतके त्यागमें ....	४२२	१९९



विषय	पृ.	श्लो.
कुत्ता आदिके काटनेका-		
प्रायश्चित्त ....	४२२	२००
अपंक्तिका प्रायश्चित्त ....	४२२	२०१
ऊट आदि यानका प्राय-		
श्चित्त ....	४२२	२०२
जलमे वा विनाजलके मूत्र-		
त्यागमे प्रायश्चित्त ....	४२२	२०३
वेदमे कहे हुए कर्मके त्यागमें	४२२	२०४
ब्राह्मसेतु करके बोलनेमे	४२३	२०५
ब्राह्मणके धमकानेमे ....	४२३	२०६
नदी कहे हुये प्रायश्चित्तके		
स्थलमे ....	४२३	२१०
प्राजापत्य आदि व्रतका		
निर्णय ....	४२४	२१२
व्रतके अंग कहतेहैं ....	४२७	२२३
पाप न छपाना चाहिये....	४२७	२२८
पापके पीछे पछतावे ....	४२८	२३१
पापवृत्तिकी निन्दा ....	४२८	२३३
मनके संतोषपर्यंत तपकरै	४२८	२३४
तपकी प्रशंसा ....	४२९	२३५
वेदके अभ्यासकी प्रशंसा	४३०	२४६
रहस्यका प्रायश्चित्त ....	४३१	२४८

## अथ द्वादशोऽध्यायः ।

शुभ अशुभ कर्मका फल ....	४३४	१
कर्मका मन प्रवर्तक है ....	४३४	४
तीनिप्रकारके मानस कर्म	४३५	५
चारि प्रकारके वाचिककर्म	४३५	६
तीनिप्रकारके शारीरिक कर्म	४३५	७
मन वाक्काय और कर्मके-		
भोगमें ....	४३६	८
त्रिदंडीका परिचय ....	४३६	१०

विषय	पृ.	श्लो.
क्षेत्रज्ञका परिचय ....	४३६	१२
जीवात्माका परिचय ....	४३६	१३
जीवोंकी अनंतता ....	४३७	१५
परलोकमें पंचभूतोंका शरीर	४३७	१६
भोगके अनंतर आत्मामें-		
लीन हो जाताहै ....	४३७	१७
धर्म अधर्मकी अधिकतासे		
भोग ....	४३७	२०
तीनिप्रकारके गुणोंका कहना	४३८	२४
अधिक गुण प्रधान देखै	४३८	२५
सत्त्व आदिके लक्षण कहतेहैं	४३९	२६
सात्विक गुणके लक्षण ....	४४०	३१
राजस गुणके लक्षण ....	४४०	३२
तामस गुणके लक्षण ....	४४०	३३
संक्षेपसे तामस आदिके-		
लक्षण ....	४४०	३५
तीनोंगुणोंकी तीनि प्रका-		
रकी गति है ....	४४१	४०
तीन प्रकारकी गतिके प्रकार	४४१	४१
पापसे कुत्तिसत गति होतीहै	४४३	५२
पाप विशेषसे योनि विशेष-		
षकी उत्पत्ति ....	४४३	५३
पापकी प्रवीणतासे नरक आदि	४४३	५४
मोक्षके उपायषट्कर्म कहतेहैं	४४८	८३
आत्मज्ञानकी प्रधानता ....	४४८	८५
वेदोक्त कर्मकी श्रेष्ठता ....	४४८	८६
वैदिककर्म दो प्रकारका है	४४९	८८
प्रवृत्ति निमित्त कर्मका फल	४४९	९०
सम दर्शन ....	४४९	९१
वेदके अभ्यास आदिमें ....	४४९	९२
वेदवाह्य स्मृतिकी निन्दा	४५०	९५



विषय	पृ.	श्लो.	विषय	पृ.	श्लो.
वेदकी प्रशंसा ....	४५०	९७	शिष्ट कहते हैं ....	४५२	११०
वेदका ज्ञाताको सेनापत्य- आदि ....	४५१	१००	परिषत् कहिये सभा ....	४५३	११६
वेदके जाननेवालेकी प्रशंसा	४५१	१०१	मूर्खोंकी परिषत् नहीं होती	४५३	११४
वेदके व्यवसायीकी श्रेष्ठता	४५१	१०३	आत्मज्ञान पृथक् कहते हैं	४५४	११८
तप और विद्यासे मोक्ष ....	४५१	१०४	वायु आकाश आदिका लय कहते हैं ....	४५४	१२०
प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे- प्रमाण ....	४५२	१०५	आत्माका स्वरूप कहते हैं	४५५	१२२
धर्मका लक्षण ....	४५२	१०८	आत्माका दर्शन अवश्य- करना चाहिये ....	४५६	१२५
विना कहे हुए धर्मके स्थलमें	४५२	१०९	इस संहिताके पाठका फल	४५६	१२६

इति मनुस्मृत्यनुक्रमणिकासमाप्ता.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास

“श्रीवेंकटेश्वर” छापखाना—

मुंबई.



श्रीः ।

# मानवधर्मशास्त्रं

भाषाविवृति समेतम् ।

आध्यायः १ मः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीनारायणपादपद्मयुगलध्यात्वापितुः पत्कजं स्मृत्वा श्रीमनुना प्रणी-  
तमधुनाव्याख्यायते भाषया ॥ लोकानां च हिताय केशव इति ख्यातेन  
सम्यङ्मया तर्काढ्यङ्कनिशाकरैः परिमिते श्रीवैक्रमेवत्सरे ॥ १ ॥  
यात्किञ्चित्स्खलितं भवेदिह धियस्तत्क्षम्यतां सज्जना एषा वै मम चार्थनाऽ-  
त्र विदुषामग्रे चिरन्तिष्ठतु ॥ ग्रंथो यमनुभाषितोऽतिकठिनः सर्वैरपि  
ज्ञायते तस्मात्साहसमद्यमेऽतिविपुलज्ञानं तु सर्वैर्बुधाः ॥ २ ॥  
अथातः परं भाषाव्याख्या सहिता मानवीया स्मृतिरिह ख्यते—

श्रीगणपतये नमः ।

मनुमेकाग्रमासीनमभिर्गम्य महर्षयः ॥

प्रतिपूज्य यथार्थाय मिदं वचनमब्रुवन् ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते धर्ममूर्तये । गौडे नन्दनवासिनाम्नि सुजनैर्वन्द्ये वरे-  
न्द्र्यां कुले श्रीमद्भट्टदिवाकरस्य तनयः कुल्लूकभट्टोऽभवत् । काश्यामुत्तरवाहिजहुतनया-  
तीरे समं पण्डितैस्तेनेयं क्रियते हिताय विदुषां मन्वर्थमुक्तावली ॥ १ ॥ सर्वज्ञस्य मनोरसर्वो-  
दापि व्याख्यामि यद्वाङ्मयं युक्तया तद्बहुभिर्यतो मुनिवैरेतद्बहु व्याहृतम् । तां व्याख्यामधु-  
ना तनैरपि कृतां न्याय्यां ब्रुवाणस्य मे भक्त्या मानववाङ्मये भवभिदे भूयादशेषेश्वरः ॥ २ ॥  
मीमांसे बहु सेवितासि सुहृदस्तर्काः समस्ताः स्थ मे वेदान्ताः परमात्मबोधगुरवो यूयं मयो-  
पासिताः । जाता व्याकरणानि बालसखिता युष्माभिरभ्यर्थये प्राप्तोऽयं समयो मनूक्तविवृ-  
तौ साहाय्यमालम्ब्यताम् ॥ ३ ॥ द्वेषादिदोषरहितस्य सतां हिताय मन्वर्थतत्त्वकथनाय म-



मोक्षतस्य । दैवाद्यदि कचिदिह स्वलनं तथापि निस्तारको भवतु मे जगदन्तरात्मा ॥  
 ॥ ४ ॥ मानववृत्तावस्थां ज्ञेया व्याख्या नवा मयोद्भिन्ना ॥ प्राचीना अपि रुचिरा  
 व्याख्यातृणामशेषाणाम् ॥ ५ ॥ मनुमेकाग्रमासीनमित्यादि । अत्र महर्षीणां धर्मविष-  
 यप्रश्ने मनोः श्रूयतामित्युत्तरदानपर्यन्तश्लोकचतुष्टयेनैतस्य शास्त्रस्य प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यु-  
 पयुक्तानि विषयसंबन्धप्रयोजनान्युक्तानि । तत्र धर्म एव विषयस्तेन सह वचनसंदर्भ-  
 रूपस्य मानवशास्त्रस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावलक्षणः संबन्धः । प्रमाणान्तरासन्निकृष्ट-  
 स्य स्वर्गापवर्गादिसाधनस्य धर्मस्य शास्त्रैकगम्यत्वात् । प्रयोजनं तु स्वर्गापवर्गादि-  
 तस्य धर्माधीनत्वात् । यद्यपि पत्न्युपगमनादिरूपः कामोऽप्यत्राभिहितस्तथापि ऋतु-  
 कालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदेति ऋतुकालादिनियमेन सोऽपि धर्म एव । एवं  
 चार्थार्जनमपि ऋतानृताभ्यां जीवेतेत्यादिनियमेन धर्म एवेत्यवगन्तव्यम् । मोक्षोपाय-  
 त्वेनाभिहितस्यात्मज्ञानस्यापि धर्मत्वाद्वर्धविषयत्वं मोक्षोपदेशकत्वं चास्य शास्त्रस्योप-  
 पन्नम् । पौरुषेयत्वेऽपि मनुवाक्यानामविगीतमहाजनपरिग्रहाच्छ्रुत्युपग्रहाच्च वेदमूलक-  
 तथा ग्रामाण्यम् । तथा च छांदोग्यब्राह्मणे श्रूयते । मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्वेषजं भेष-  
 जताया इति । बृहस्पतिरप्याह । वेदाथोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् । म-  
 न्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते । तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि  
 च । धर्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्विवन्न दृश्यते ॥ महाभारतेऽप्युक्तम् पुराणं मानवोर्धर्मः  
 साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः । विरोधिबौ-  
 द्धादितर्केर्न हन्तव्यानि । अनुकूलस्तु मीमांसादितर्कः प्रवर्तनीय एव । अत एव वक्ष्य-  
 ति । आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतर  
 इति । सकलवेदार्थादिमननान्मनुं महर्षय इदं द्वितीयश्लोकवाक्यरूपं उच्यते अनेनेति  
 वचनमब्रुवत् । श्लोकस्यादौ मनुनिर्देशो मङ्गलार्थः । परमात्मन एव संसारस्थितये  
 सार्वज्ञैश्वर्यादिसंपन्नमनुरूपेण प्रादुर्भूतत्वात्तदभिधानस्य मङ्गलातिशयत्वात् । वक्ष्यति  
 हि । एनमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिमिति । एकाग्रं विषयान्तराव्याक्षिप्तचित्तम् ।  
 आसीनं सुखोपविष्टम् ईदृशस्यैव महर्षिप्रश्नोत्तरदानयोर्योग्यत्वात् । अभिगम्य अभिमुखं  
 गत्वा । महर्षयो महान्तश्च ते ऋषयश्चेति । तथा प्रतिपूज्य पूजयित्वा । यद्वा मनुना  
 पूर्वं स्वागतासनदानादिना पूजितास्तस्य पूजां कृत्वेति प्रतिशब्दादुन्नीयते । यथान्यायं  
 येन न्यायेन विधानेन प्रश्नः कर्तुं युज्यते प्रणतिभक्तिश्रद्धातिशयादिना । वक्ष्यति च ।  
 नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छत इति । अभिगम्य प्रतिपूज्य अब्रुवन्निति  
 क्रियात्रयेऽपि मनुमित्येव कर्म । अब्रुवन्नित्यत्राकथितकर्मता । ब्रुवन्धातोर्द्विकर्मकत्वात् ॥ १ ॥

टीका—एकाग्रचित्तं सुखसे बैठे हुए मनुजीके सन्मुख जाके यथायोग्य उनका स-  
 त्कार करि महर्षि न्यायपूर्वक अर्थात् प्रणतिभक्ति और श्रद्धाकी अधिकता आदिसे  
 यह वचन बोले ॥ १ ॥



भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्व्वशः ॥

अन्तरप्रभवानांश्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

टीका—हे भगवन् अर्थात् छः प्रकारके ऐश्वर्य्य करि सम्पन्न सब वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंका और अन्तरप्रभव जो संकीर्ण जाति अर्थात् अनुलोमज प्रतिलोमज अंबष्ठ क्षत्तु करण आदि जो अन्यजातिके स्त्रीपुरुषके योगसे उत्पन्नहैं उन सबोंके धर्म यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्यहै सो क्रमसे अर्थात् पहले जातकर्म फिर नामकरण इत्यादिक रीतिसे हमसे कहनेको योग्यहो ॥ २ ॥

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुवः ॥

अचिन्त्यस्याप्रमेस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ ३ ॥

टीका—जिसे हे प्रभु तुम्ही एक अचिन्त्यकहिये जो चिन्तवनमें न आसकै और जिसका प्रमाण न होसकै ऐसे इस स्वयम्भू अर्थात् आपसे उत्पन्न हुए वेदमें लिखे हुए ज्योतिष्टोम आदियज्ञ और ब्रह्मज्ञानके जाननेवाले हौ ॥ ३ ॥

सं तैः पृष्टस्तथा सम्यग्मितौजा महात्मभिः ॥

प्रत्युवाचार्च्य तान्सर्वान्महर्षिञ्छूयतामिति ॥ ४ ॥

टीका—उन महात्माओं करिके उक्तप्रकारसे अर्थात् प्रणय, भक्ति, और श्रद्धा की अधिकता आदिसे पूछे गये वे सामर्थ्यवाले मनुजी उन सब महर्षियोंका सत्कार करिकै यह बोले कि सुनिये ॥ ४ ॥

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

अप्रतर्क्यमविज्ञेयमप्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

टीका—यह जगत् अंधकार अर्थात् प्रकृतिमें लीन और अप्रज्ञात अर्थात् जो जाना न जाय और अलक्षण अर्थात् चिन्हरहित जिसका कुछभी चिन्ह न जाना जाय और जिसमें कुछ तर्क न होसकै इसीसे अविज्ञेय कहिये जो कुछभी जाना न जाय और सर्वत्र सोये हुएके समान होता-भया ॥ ५ ॥

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥

महाभूतादि वृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोर्नुदः ॥ ६ ॥

टीका—अव्यक्त अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियोंकी प्रत्यक्ष नहीं ऐसा स्वयम्भू परमात्मा इस महाभूत आदि आकाशादिकोंको प्रकाशित करता हुआ जिसका पराक्रम कहिये



सृष्टिसामर्थ्य नहीं रुकी और प्रकृतिका प्रेरणा करनेवाला प्रकट हुआ ॥ ६ ॥

योऽसौवतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥

सर्वभूतमयोऽर्चिन्त्यः स एव स्वयमुद्भूतः ॥ ७ ॥

टीका—सब लोक वेदपुराण इतिहासादिकोंमें प्रसिद्ध परमात्मा इन्द्रियोंके ज्ञानसे बाहर है अर्थात् केवल प्रसन्न मन करिकै ग्रहण करनेयोग्य और अवयवोंकरिकै रहित सूक्ष्मरूप तथा नित्य रहनेवाला और सब भूतोंका आत्मा और प्रमाण करनेके योग्य नहीं है वही आप प्रकाशित हुआ अर्थात् महत्त्व आदि कार्यरूपसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

सोभिर्ध्याय शरीरात्स्वात्सिर्भुवि विधाः प्रजाः ॥

अप एव ससर्जो दौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

टीका—नानाप्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छा करते हुए उस परमात्माने जल उत्पन्न होय ऐसे ध्यान करिकै अपने शरीरसे आदिमें जलहीको उत्पन्न किया और उन जलोंमें अपना शक्तिरूप बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्वैमसहस्रांशुसमप्रभम् ॥

तस्मिन् जज्ञे स्वयम्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

टीका—वह बीज परमेश्वरकी इच्छासे सुवर्णकासा अंडा होगया जिसकी कांति सूर्यकीसी थी उस अंडेमें सब लोकोंका उत्पन्न करनेवाला ब्रह्मारूप वह परमात्मा आपही उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥

तां यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

टीका—जल नरसे उत्पन्नहै इस कारण उनका नाम नार है वेही नार इस परमात्माके प्रथम आश्रय अर्थात् निवास स्थानहै तिस्से इस परमात्माका नाम नारायण हुआ ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥

तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

टीका—जो वह लोक वेद आदि सबमें प्रसिद्ध परमात्मा सब उत्पन्न होनेवालोंका कारण और अव्यक्त अर्थात् बाहरी इन्द्रियों करि नहीं ग्रहण करनेयो-



ग्य और उत्पत्ति विनाश रहित और सत् असत् का आत्मा भूत है उस करिके उत्पन्न किया हुआ वह पुरुष ब्रह्म इस नामसे कहा जाता है ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्विधा ॥ १२ ॥

टीका—उस पहले कहे हुए अण्डेमें उस भगवान् ने एक वर्षतक वसिके आपही अपने ध्यानसे उसके दो खंड किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्याश्च दिवम्भूमिश्च निर्ममे ॥

मध्येव्योम दिशश्चाष्टावेषां स्थानश्च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

टीका—उसने उस अण्डके दोनों खंडोंसे आकाश और पृथिवीको अर्थात् ऊपरके खंडसे स्वर्गलोक और नीचेके खंडसे भूलोक बनाया और दोनोंके बीचमें आकाश तथा आठों दिशा और स्थिर जलोंका स्थान समुद्र बनाया ॥ १३ ॥

उद्धवर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥

मनसश्चाप्यहङ्कारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

टीका—अब महदादिकोंके क्रमहीसे जगत्की रचनाहै यह दिखानेके लिये उनकी सृष्टि कहते हैं ब्रह्माने परमात्मासे उसीरूपकरिके सत् असत् रूप मनको उत्पन्न किया और मनमें मैं इस अभिमानकार्य करिके युक्त कार्य करनेमें समर्थ अहंकार तत्त्वको उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥

विषयाणां ग्रहीतृणि ज्ञानैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

टीका—अविकाररूप प्रकृतिसहित परमात्माहीसे अहंकारसे प्रथम महत्तत्त्वको उत्पन्न किया फिर आत्माको उसके पश्चात् संपूर्ण सत्त्व रज तम युक्त सृष्टिको जिसका वर्णन पिछले श्लोकोंमें हो चुकाहै और आगे होगा उत्पन्न किया फिर शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी ग्रहण करनेवाली श्रोत्र आदि पांच बुद्धीन्द्रियोंको और पायु आदि पांच कर्मेन्द्रियोंको और पांच शब्द तन्मात्रादिकोंको क्रमसे उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

तेषान्तैवयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥

संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥

टी०—उन पहले कहे हुए अहङ्कार और तन्मात्राओंके जो सूक्ष्म अवयव हैं



( ६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

तिनको अपनी मात्राओंमें छ होंके स्वविकारोंमें मिलाकर परमात्माने मनुष्य, ति-  
र्थ्यक्, स्थावर आदि सब भूत बनाये उनमें तन्मात्राओंका विकार पंचमहाभूत औ-  
र अहङ्कारका विकार इन्द्रियहैं, पृथ्वी आदि पंच महाभूतोंको शरीर रूपसे प-  
रिणामको प्राप्तहोनेपर तन्मात्रा और अहङ्कारको मिलाकै सबकार्यके समूहकी  
रचना होती है, इसीसे ये अमितौजस अर्थात् अनंत कार्य्योंके बनानेसे अतिवी-  
र्यसे शोभित हैं ॥ १६ ॥

यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥

तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥

टीका—मूर्तिशरीरको कहते हैं उसके बनानेवाले अवयव सूक्ष्म तन्मात्रा अह-  
ङ्कार रूप थे छः प्रकृति सहित उस ब्रह्मेके वक्ष्यमाण पृथिवी आदिभूत और ग्रह-  
ले कही हुई श्रोत्र आदि इन्द्रियां कार्य्यभावसे आश्रितहैं क्योंकि तन्मात्राओंसे  
भूतोंकी और अहङ्कारसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होनेसे उस ब्रह्मकी इन्द्रियादिक क-  
रिंके शोभित मूर्तिको लोग शरीर कहते हैं. क्योंकि पञ्चतन्मात्रा और अहङ्कार  
इन छःका जो आश्रय करै वह शरीर है. इस व्युत्पत्तिसेभी वही भाव आया ॥ १७

तदाविशन्ति भूतानि महान्ति संह कर्मभिः ॥

मनश्चावयवैः सूक्ष्मैः सर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥

टीका—फिर उस नाश रहित और सब भूतोंके करनेवाले ब्रह्मसे अपने अपने  
कार्य्योंके साथ आकाश आदि महाभूत और सूक्ष्म अवयवोंके साथ मन उत्पन्न  
हुवा आकाशका काम अवकाश देना, वायुका गति, तेजका पाक, जलका  
पिंडीकरण, पृथ्वीका धारण और मनका शुभ अशुभकी इच्छा है ॥ १८ ॥

तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥

सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवंत्यव्ययाद्वच्यम् ॥ १९ ॥

टीका—अपना कार्य्य करनेसे पराक्रमी उन महत् अहङ्कार और पंचतन्मात्रा-  
रूप सातकी सूक्ष्ममात्रा अर्थात् शरीर बनानेवाले अविनाशी भागोंसे विनाश हो-  
नेवाला जगत् उत्पन्न हुवा ॥ १९ ॥

आद्याद्यस्य गुणांस्त्वेषामवाप्नोति परःपरः ॥

यौयो यावतिथश्चैषां सप्त तावद्गुणैः स्मृतैः ॥ २० ॥

टीका—इनमें जो आदि आकाश आदिहैं तिनके शब्द आदि गुणोंको वायु  
आदि आगेके तत्त्व प्राप्त होते हैं इनके मध्यमें जो जौनसाहै वह उसके दूसरे



आदिगुणों करि युक्त कहाहै जैसे आकाशका गुण शब्दहै, वायुके शब्द स्पर्शहै. तेजके शब्द, स्पर्श, रूपहैं, आपके शब्द, स्पर्श, रूप, रसहैं, और भूमिके शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध हैं ॥ २० ॥

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥

वेदशब्देभ्य एवाँदौ पृथक्संस्थाश्च निर्म्ममे ॥ २१ ॥

टीका-हिरण्यगर्भरूपसे स्थित उस परमात्माने सबोंके नाम जैसे गौकी जातिका गौ और घोडेकी जातिका घोडा और कर्म जैसे ब्राह्मणके पढना आदि क्षत्रियके प्रजारक्षा आदि और लौकिकी व्यवस्था जैसा कुम्हारका घडा बनाना और कोलीका कपडा बुनना आदि वेदके शब्दोंहीसे सृष्टिकी आदिमें भिन्न भिन्न बनाये ॥ २१ ॥

कर्मात्मनाश्च देवानां सोऽमृजत्प्राणिनाम्प्रभुः ॥

साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञश्चैवं सनातनम् ॥ २२ ॥

टीका-उस ब्रह्माने देवताओंके गणको और इन्द्रादिक प्राणियोंको तथा कर्मस्वभावोंको अप्राणी पाषाणादिकोंको और साध्य जो देवता विशेषहैं तिनके समूहको ज्योतिष्टोम आदियज्ञोंको और सूक्ष्म साध्यानां देवताविशेषके समूहको उत्पन्न किया ॥ २२ ॥

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयम्बहं सनातनम् ॥

दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यं जुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥

टीका-सनातन ब्रह्मरूप अपनी बुद्धिमें स्थित ब्रह्माने ऋक-यजु-सामनाम वेदोंको अग्नि; वायु और सूर्यसे यज्ञकी सिद्धिकेलिये गौके अयनमें स्थित दूधके समान निकाला ॥ २३ ॥

कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥

सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥

टीका-फिर काल और कालविभागों अर्थात् मास ऋतु अयन (जैसे उत्तरायण दक्षिणायन) वर्षादिकोंको कृत्तिका आदिनक्षत्रोंको सूर्यादिक ग्रहोंको और नदी समुद्र पर्वत तथा समान और ऊचे नीचे स्थानोंको बनाया ॥ २४ ॥

तपो वाचं रतिश्चैव कामञ्च क्रोधमेव च ॥

सृष्टिं संसृजं चैवमां सृष्टमिच्छन्निर्माः प्रजाः ॥ २५ ॥

टीका-फिर इन प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छायुक्त उस ब्रह्माने तप अर्थात् प्रा-



जापत्य आदिको, वाणीको, रति अर्थात् चित्तके संतोषको, काम अर्थात् इच्छाको और क्रोध अर्थात् चित्तके विकारको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥

कर्मणाञ्च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ॥

द्वन्द्वैरयोजयच्चेमांः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥

टीका-धर्म यज्ञ आदि जो करने योग्य और अधर्म ब्रह्महत्या आदि जो न करने योग्य इस प्रकार कर्मोंके विभाग करनेके लिये धर्म अधर्मको जुदा जुदा किया अर्थात् धर्मका फल सुख और अधर्मका फल दुःख यह विवेचनाकी और आपसमें विरोध रखनेवाले सुख दुःखके जोड़ोंसे इन प्रजाओंको युक्त किया अर्थात् उनके पीछे सुखदुःख लगा दिये, और आदिशब्दसे यह भाव है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, क्षुधा, पिपासा, इनकेभी जोड़ोंको पीछे लगा दिया ॥ २६ ॥

अण्व्योमात्राविनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥

ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं सम्भवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

टीका-उन पंच महाभूतोंकी जो सूक्ष्म पंच तन्मात्रारूप विनाश होनेवाली पंचमहाभूत रूपहैं तिनके साथ सब जगत् क्रमसे अर्थात् सूक्ष्मसे स्थूल और स्थूलसे अतिस्थूल उत्पन्न होताहै इससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्मकी मानसी सृष्टि जानी गई ॥ २७ ॥

यन्तु कर्मणि यस्मिन्स न्यथुङ्क्त प्रथमम्प्रभुः ॥

स तदेवस्वयम्भेजे सृज्यमानः पुनःपुनः ॥ २८ ॥

टीका-उस प्रजापतिने जिस जातिविशेष अर्थात् व्याघ्र आदिको सृष्टिके आरम्भमें हरिणोंके मारने आदि जिसकाममें लगाया वार वार उत्पन्न होकर उस जातिविशेषका जीव वही कर्म आपही करने लगा ॥ २८ ॥

हिंसाहिंसे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृत्तानृते ॥

यद्यस्य सोऽदधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥ २९ ॥

टीका-ब्रह्माने जिस जीवका जो कर्म जैसे हिंसाका कर्म सिंह आदिका हाथियोंका मारना. अहिंसा जैसे ब्राह्मणादिकोंका हरिणादिकोंपर दया करना क्रूर जैसे क्षत्रियादिकोंका कर्म. धर्म जैसे ब्रह्मचारी आदिका गुरुकी सेवा करना. अधर्म जैसे ब्रह्मचारीको मांस मैथुन सेवा आदि और ऋत अर्थात् सत्य



सो बहुधा देवताओंको और अनृत अर्थात् झूठ सोभी बहुत करके मनुष्योंको ऐसे जो कर्म जिसको नियत किये वह आपही उनको करने लगा ॥ २९ ॥

यथर्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ॥

स्वानिस्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्मोणि देहिर्नः ॥ ३० ॥

टीका—जैसे वसंत आदि ऋतु अपने २ समयमें अपने २ चिन्ह आमके बौर आदिको प्राप्त होते हैं ऐसेही देहधारीभी हिंसा आदि अपने २ कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥

लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निर्वर्तयत् ॥ ३१ ॥

टीका—फिरि उस परमेश्वरसे भूलोक आदिकी वृद्धिके लिये मुख बाहु ऊरु तथा पाँवोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, इन चारों वर्णोंको क्रमसे बनाया ॥ ३१ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥

अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजममृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥

टीका—उस ब्रह्माने अपने देहके दो खंड करकै आधेसे पुरुष हुआ और आधेसे स्त्री उसमे मैथुन धर्मसे विराट्नाम पुरुषको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥

तपस्तप्त्वाऽमृजयन्तुं स स्वयं पुरुषो विराट् ॥

तं मां वित्तास्यै सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

टीका—मनु कहतेहैं कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो उस विराट् पुरुषने तप करिकै जिसको आप उत्पन्न किया उसको इस सब जगत्की सृष्टि करनेवाले मुझ मनुको जानो ३३

अहं प्रजाः सिमृक्षुस्तु तपस्तप्त्वां सुदुश्चरम् ॥

पंतीन्प्रजानाममृजं महर्षीनादिर्तो दश ॥ ३४ ॥

टीका—मैने प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छासे अति कठिन तप करकै पहले दश प्रजापति महर्षियोंको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥

मरीचिमज्जिगिरसौ पुलस्त्यम्पुलहं कर्तुम् ॥

प्राचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुन्नारदमेव च ॥ ३५ ॥

टीका—उनके नाम ये हैं मरीचि १ अत्रि २ अङ्गिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ ऋतु ६ प्रचेता ७ वसिष्ठ ८ भृगु ९ नारद १० ॥ ३५ ॥

एते मन्वस्त्वु सप्तान्याममृजन् भूरितेजसः ॥



देवान् देवनिकाय्यांश्च महर्षींश्चामितौजसं ॥

टीका-इन मरीचि आदि बड़े तेजवालोंने और बड़े तेजवाले सात मनुओं को तथा देवताओंको और देवताओंके निवासके स्थान स्वर्ग आदिकोंको तथा महर्षियोंको उत्पन्न किया यह मनुशब्द अधिकारका वाचीहै चौदह मन्वन्तरोंमें जब जिसका सृष्टि करनेका अधिकार होताहै तब वही उस मन्वन्तरमें स्वायम्भुव स्वरोचिष आदिनामोंसे मनु कहा जाताहै ॥ ३६ ॥

यक्षरक्षःपिशाचौश्च गन्धर्वाऽप्सरसोऽसुरान् ॥

नागान् सर्पान् सुपर्णान् पितॄणाञ्चपृथग्गणान् ॥ ३७ ॥

टीका-इन्होंने यक्ष अर्थात् कुबेर और उनके अनुचरोंको तथा राक्षसों अर्थात् रावण आदिकोंको और उनसे नीचे अशुद्ध मरु देशके रहनेवाले पिशाचोंको चित्ररथ आदि गंधर्वोंको. उर्वशी आदि अप्सराओंको विरोचन आदि असुरोंको. वासुकी आदि नागोंको. अलगह आदि सर्पोंको. गरुड आदि सुपर्णोंको. और आज्यपा आदि पितरोंके समूहको उत्पन्न किया ॥ ३७ ॥

विद्युतोऽज्ञानिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूषि च ॥

उल्कानिर्घातकेतूश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥

टीका-फिर इन्होंने बिजली अर्थात् मेघमें चमकनेवाली ज्योतिको, वज्र अर्थात् वृक्षादिकोंकी नाश करनेवाली ज्योतिको, मेघोंको, रोहित नाम सीधे इन्द्र धनुषको, उसीप्रकारके टेढ़े धनुषाकार इन्द्र धनुषको-उल्का अर्थात् रेखाके आकार आकाशसे गिरती हुई ज्योतिको-निर्घात कहिये पृथ्वी आकाशमें स्थित उत्पात शब्दको-केतु कहिये उत्पातरूप पूंछवाले तारोंको तथा औरभी ध्रुव अगस्त्य आदि नाना प्रकारकी छोटी बड़ी ज्योतियोंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥

किन्नरान्वानरोन्मत्स्यान्विविधांश्चविहंगमान् ॥

पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालान्श्चोभयतोदितः ॥ ३९ ॥

टीका-घुड़मुँहे किन्नरोंको वानरोंको मछलीयोंको और नानाप्रकारके पक्षियोंको गौ आदि पशुओंको हरिण आदि मृगोंको व्याल अर्थात् सिंहादिकोंको और ऊपर नीचे दोनों ओरके दांतवाले घोड़ा आदिको उत्पन्न किया ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

सर्वं च दंशमंशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥

टीका-कृमि छोटे कीड़ोंको और कीट अर्थात् कृमिसे कुछ मोटे कीड़ोंको



पतंगोंको और जुं मक्खी तथा खटमलोंको और सब डांस मच्छडोंको और नानाप्रकारके स्थावर अर्थात् वृक्षलताआदिकोंको उत्पन्न किया ॥ ४० ॥

एवमे<sup>१</sup> तैरिदं सर्वं मन्नियोगा<sup>२</sup>न्महात्मभिः ॥

यथाकर्म तपोयोगा<sup>३</sup>त्मृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४१ ॥

टीका—ऐसे इन मरीचि आदि दशमहर्षियोंने मेरी आज्ञा लेकर बड़ा तप करिके कर्मयोगसे अर्थात् जिसका जैसा कर्महै उसके अनुरूप देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उत्पन्न किया ॥ ४१ ॥

येषान्तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम् ॥

तत्तथा वो<sup>४</sup>ऽभिधास्यामि कर्मयोगश्च जन्मनि ॥ ४२ ॥

टीका—इन जीवोंमें जिसका जो कर्म इस संसारमें पहले आचार्योंने कहा-है जैसे औषधी फलपाकांत है और बहुत फल फूलोंकी देनेवाली हैं और ब्राह्मणादिकोंका पढना आदि सो सब वैसाही और जन्मआदिके क्रमयोगको तुमसे कहुंगा ॥ ४२ ॥

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः ॥

रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ ४३ ॥

टीका—पशु, मृग, व्याल, दोनों ओर के दांतवाले, राक्षस, पिशाच, और मनुष्य ये सब जरायुज हैं अर्थात् झिल्लीमें उत्पन्न होतेहैं फिर उससे छूटते हैं ॥ ४३ ॥

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नका मत्स्याश्च कच्छपाः ॥

यानि चैव प्रकांराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ ४४ ॥

टीका—पक्षी, सांप, मगर मछली और इस प्रकारके जीव जो स्थलमें उत्पन्न होते हैं जैसे गिरंगट आदि और जो जलमें उत्पन्न शंख आदि वैं वे सब अण्डज हैं अर्थात् पहले अंडा उत्पन्न होता है फिर उस अंडेमेंसे वे जीव उत्पन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥ ४५ ॥

टीका—डांस मच्छड जुं मक्खी खट्मल ये सब स्वेदज हैं और जो ऐसेही भुनगे चेंटी आदि हैं वे सब ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

उद्भिज्जास्त्वावरास्सर्व्वबीजकाण्डप्ररोहिणः ॥

ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ ४६ ॥



टीका-बीजके बोने और डालियेके लगानेसे उगनेवाले सब उद्भिज्ज हैं अर्थात् बीज और भूमिको फोड़कर ऊपरको निकलते हैं और फलोंके पकनेपर जिनका नाश होजाता है अर्थात् सूखजाती है वे धान आदि सब औषधी हैं वे बहुतसे फूलफलोंकरि युक्त होती है ॥ ४६ ॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्मृताः ॥

पुष्पिणः फलिनेश्ववृक्षास्तूभयंतस्मृताः ॥ ४७ ॥

टीका-जिनमें फूलके विना फल आता है वे वड, पीपल पाकरि आदि वनस्पति कहाते हैं और जिनमें फूल फल दोनो होते हैं वे दोऊ वृक्ष कहे गये हैं ॥ ४७ ॥

गुच्छगुल्मन्तु विविधन्तथैव तृणजातयः ॥

बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एवं च ॥ ४८ ॥

टीका-गुच्छ अर्थात् जिनमें जड़हीसे लताओंका समूह निकलता है शाखा नहीं होती हैं जैसे चमेली बेला आदि और गुल्म जैसे एक जड़से ऊगे हुए बहुतसे ईख सरपता आदिको और तृण अर्थात् घास आदि और प्रतान जैसे तुंबी आदि तथा वल्ली जैसे गिलोय आदि येभी सब बीजके बोने और डाली योंके लगानेसे उगनेवाले हैं ॥ ४८ ॥

तमसां बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥

अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ ४९ ॥

टीका-ये वृक्ष आदि विचित्र दुःखहै फल जिसका और धर्मकर्म हैं कारण जिसके ऐसे तमोगुणसे घिरेहुए हैं और सुख दुःखकरि युक्त ये सब अन्तस्संज्ञा अर्थात् भीतर ज्ञानयुक्त होते हैं ॥ ४९ ॥

एतदन्तास्तु गर्तयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः ॥

घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ ५० ॥

टीका-प्राणियोंके जन्महोने और मरनेसे घोर अर्थात् दुःख देनेवाले तथा सदा नाश होनेवाले इस जगत्में ब्रह्मसे लेकर स्थावरतक उत्पत्तियाँकहीं ॥ ५० ॥

एवं सर्वं स सृष्टेर्दं मांश्चाचिन्त्यपराक्रमः ॥

आत्मन्यन्तर्दधे भूर्यः कालं कालेन पीडयन् ॥ ५१ ॥

टीका-इस प्रकार सृष्टि कहिके अब प्रलयकी दशा कहते हैं वह अचिन्त्य शक्ति प्रजापति ऐसे उक्त प्रकारसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को तथा मुझको



उत्पन्न करके सृष्टिके कालको प्रलयके कालसे नाश करता हुआ आत्मामें अंतर्धान होगया ॥ ५१ ॥

यदा स देवा जागर्ति तदैदं चेष्टते जगत् ॥

यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति ॥ ५२ ॥

टीका—इसमें कारण कहते हैं जब वह प्रजापति जागता है अर्थात् सृष्टि और स्थितिकी इच्छा करता है तब यह जगत् श्वास और प्रश्वास और आहार आदिकी चेष्टाको प्राप्त होता है और जब सोता है अर्थात् इच्छा रहित होता है तब यह जगत् लीन हो जाता है ॥ ५२ ॥

तस्मिन्स्वपति तु स्वस्थे कर्मात्मानश्शरीरिणः ॥

स्वकर्मभ्यो निर्वर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ॥ ५३ ॥

टीका—पहले कहेहुएहीको स्पष्ट करते हैं उस प्रजापतिके सोने अर्थात् इच्छारहित होनेपर तथा स्वस्थ कहिये मनका व्यापार सेमेट लेनेपर कर्मसे देह पानेवाले क्षेत्रज्ञ अर्थात् पाणी देहधारण करने आदि आपने कर्मों से निवृत्त होजाते हैं और सब इंद्रियों समेत मनभी आपनी वृत्तिसे रहित होजाताहै ॥ ५३ ॥

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि ॥

तदाऽयं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः ॥ ५४ ॥

टीका—अब महाप्रलय कहते हैं एकही समयमें जब सब भूत उस परमात्मामें प्रलयको प्राप्त होते हैं तब यह सब भूतोंका आत्मा जाग्रत और स्वप्नके व्यापारसे रहित हो सुखसे सोता है अर्थात् सोयासा होता है यद्यपि नित्य ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मामें सोना नहीं हो सकता तिसपरभी जीवके धर्मका उपचार करते हैं ॥ ५४ ॥

तमोयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः ॥

न च सं कुरुते कर्म तदोत्क्रामति मूर्तिर्तः ॥ ५५ ॥

टीका—अब प्रलयके प्रसंगसे जीवके निकलनेकोभी दो श्लोकोमें कहते हैं यह जीव तम अर्थात् ज्ञानकी निवृत्तिको प्राप्त होकै बहुतकालतक इंद्रिय आदि कों करि सहित स्थित रहाता है और जब श्वास प्रश्वास आदि अपने कर्मोंकी नहीं करसकता है तब मूर्ति जो प्रथम देह है तिससे निकल जाता है ॥ ५५ ॥

यदाऽणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थोऽसु चरिष्यु च ॥



समाविशति संस्पृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति ॥ ५६ ॥

टीका-दूसरी देहको कब धारण करताहै सो कहतेहैं जब जीव अणु मात्रिक अर्थात् भूत १ इंद्रिय २ मन ३ बुद्धि ४ वासना ५ कर्म ६ वायु ७ अविद्या ८ रूप इस पुर्यष्टक करि युक्त हो स्थास्तु कहिये स्थिररूप वृक्ष आदिके कारणमें प्रवेश करताहै तब वृक्ष आदिरूप स्थावर शरीरको धारण करताहै और जब चरिष्णु कहिये मनुष्य आदिके जंगमरूप बीजमें प्रवेश करताहै तब मनुष्य आदिके शरीरको कर्मके अनुसार धारण करताहै ॥ ५६ ॥

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वञ्चराम् ॥

सञ्जीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः ॥ ५७ ॥

टीका-प्रसंगसे आये हुए जीवके उत्क्रमणको कहिकै मुख्यका कथन करते हैं इसप्रकार सदा अविनाशी वह ब्रह्मा जाग्रत् तथा स्वप्नसे इस स्थावर जंगमरूप जगत्को जिवाता है और मारता है ॥ ५७ ॥

इदं शास्त्रन्तु कृत्वाऽसौ मामेव स्वयमादितः ॥

विधिवद्ब्राह्मणमास मरीच्यादींस्त्वं हं मुनीन् ॥ ५८ ॥

टीका-पहले ब्रह्माने इस शास्त्रको बनाकै सृष्टिकी आदिमें विधिपूर्वक मुझ कोही पढाया और मैंने मरीचिआदिमुनियोंको पढाया ( शंका ) जो कहौ कि ब्रह्माके कहे हुये इस शास्त्रको मनुका कैसे कहते हौ ( उत्तर ) यहाँ मेधातिथि कहतेहैं कि शास्त्र शब्दसे शास्त्रका अर्थ विधিনিषेधसमूह कहा जाताहै उसको ब्रह्माने मनुको पढाया मनुने उसका प्रतिपादन करनेवाला ग्रंथ बनाया इस्से मनुका शास्त्र कहाया ॥ ५८ ॥

एतद्वायं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः ॥

एतद्धि मतोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ ५९ ॥

टीका-मनु कहतेहैं कि इन्होंने मुझसे यह सब पढाहै इस कारण ये भृगुमुनि इस शास्त्रको तुझै संपूर्ण सुनावेंगे ॥ ५९ ॥

ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः ॥

तान्ब्रवीद्विषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ६० ॥

टीका-तिस पीछे मनु करिकै ऐसे कहेगये भृगु महर्षि प्रसन्न होकै सब ऋषियोंसे यह बोले कि सुनिये ॥ ६० ॥



स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्विंश्या मनवोऽपरे ॥

पृष्ट्वन्तः प्रजाः स्वास्वां महात्मानो महौजसः ॥ ६१ ॥

टीका—ब्रह्माके पौत्र इन स्वायम्भुव मनुके वंशमें छः और महात्मा बड़े परा-  
क्रमी मनु हुए उन्होंनेभी अपने २ सृष्टिपालन आदिके समयमें अपनी २ प्रजा  
उत्पन्न की ॥ ६१ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्चतामसो रैवतस्तथा ॥

चाक्षुषश्च महातेजां विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

टीका—स्वारोचिष १ औत्तमि २ तामस ३ रैवत ४ चाक्षुष ५ और बड़े तेजस्वी  
वैवस्वत ६ ये छः मनुनामसे कहे गये ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुवाद्यास्सप्तैतेमनवो भूरितेजसः ॥

स्वेस्वेन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुंश्चराचरम् ॥ ६३ ॥

टीका—स्वायम्भुव आदि इन सातमनुओंने अपने २ अधिकारमें इस स्थावर  
जंगम जगत्को उत्पन्न करके पालन किया ॥ ६३ ॥

निमेषो दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशु ताः कलाः ॥

त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः ॥ ६४ ॥

टीका—अब कहेहुये मन्वन्तरके सृष्टिप्रलय आदिके कालका प्रमाण जाननेके  
लिये कालका क्रम कहते हैं आपसे आंखोंके खुलने मुंदनेको निमेष अर्थात् पलक  
कहतेहैं. उन अठारह पलकोंका एक काष्ठा नाम कालका प्रमाण हुआ. उन  
तीस काष्ठाओंकी एक कला होतीहै. तीस कलाका एक मुहूर्त होताहै. और तीस  
मुहूर्तोंका एक अहोरात्र अर्थात् दिनरातिका समय होताहै ॥ ६४ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥

रात्रिः स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामहः ॥ ६५ ॥

टीका—मनुष्यों और देवताओंके दिन रात्रिका विभाग सूर्य करतेहैं उनमें  
रात्रि प्राणियोंके सोनेके लिये और दिन काम करनेके लियेहै ॥ ६५ ॥

पित्र्ये रात्र्यहनी मांसः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥

कर्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी ॥ ६६ ॥

टीका—मनुष्योंके एक महिनेका पितरोंका रातदिन होताहै उसके दोनों पक्षोंमें  
काम करनेके लिये कृष्णपक्ष दिनहै और सोनेके लिये शुक्लपक्ष रात्रिहै ॥ ६६ ॥



दैवे राज्यहनी वर्षे प्रविभागस्तयोः पुनः ॥

अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायनम् ॥ ६७ ॥

टीका-मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका रातदिन होता है उसकाभी यह विभाग है कि मनुष्योंका उत्तरायण देवताओंका दिन है उसमें बहुधा देवकर्म करना चाहिये और दक्षिणायन देवताओंकी रात है ॥ ६७ ॥

ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः ॥

एकैकंशो युर्गानान्तुं क्रमशस्तन्निबोधत ॥ ६८ ॥

टीका-ब्राह्मणोंके रातदिनका जो प्रमाण है वह प्रत्येक सत्ययुगादिकोंके क्रमसे है उसको संक्षेपसे सुनो ॥ ६८ ॥

चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तुं कृतं युगम् ॥

तस्य तावच्छती सन्ध्यां संध्यांशश्च तथैविधः ॥ ६९ ॥

टीका-मनु आदि चार हजार वर्षका सत्ययुगका प्रमाण कहते हैं उसके उत्तरेही वर्षोंके सैकड़ संध्या और संध्यांश होता है. युगका पहला भाग सन्ध्या और दूसरा संध्यांश होता है ॥ ६९ ॥

इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्यांशेषु च त्रिषु ॥

एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ७० ॥

टीका-त्रेता द्वापर कलियुग इन तीनों युगोंका संध्या और संध्यांश सहितोंका प्रमाण क्रमसे एक सहस्र और एक शतके घटानेसे होता है अर्थात् तीन हजार ( ३००० ) वर्षका त्रेतायुग और तीनसौ ( ३०० ) वर्ष संध्या और तीन सौ ( ३०० ) वर्ष संध्यांश और दोहजार ( २००० ) वर्ष द्वापरयुग दोसौ ( २०० ) वर्ष संध्या और दोसौ ( २०० ) वर्ष संध्यांश और एक हजार ( १००० ) वर्षका कलियुग सौ ( १०० ) वर्ष संध्या और सौ ( १०० ) वर्ष संध्यांश ॥ ७० ॥

तदेतत्परिसंख्यातमादावेवं चतुर्युगम् ॥

एतद्वादर्शसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ७१ ॥

टीका-यह जो मनुष्योंका चारोंयुगका प्रमाण कहा इसीका बारह गुण देवताओंका एक युग होता है ॥ ७१ ॥

दैविकानां युर्गानान्तुं सहस्रपरिसंख्यया ॥

ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तैर्विती रात्रिरेव च ॥ ७२ ॥



टीका-देवताओंके एकहजार युगोंका ब्रह्माका एकदिन होताहै और उतनीही राति होतीहै ॥ ७२ ॥

तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः॥रात्रिं च तावतीमेव ते'  
ऽहोरात्रविदो जनाः ॥ ७३॥ तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्र  
तिबुद्धयते ॥ प्रतिबुद्धश्च सृजति मनस्सर्दसदात्मकम्॥७४॥

टीका-जिसकी समाप्ति हजारयुगोंमें होती है ऐसा ब्रह्माका एक पवित्र दिन कहतेहै और वे रातिदिनके जाननेवाले जन उतनीही रात्रि कहतेहै ॥ ७३ ॥ सोया हुआ वह ब्रह्मा उस अपनी रातिके अंतमें जागताहै और जागकर सत् असत् रूप मनको उत्पन्न करताहै अर्थात् भूलोक आदि तीनों लोकोंकी सृष्टिमें मनकी लगाताहै उत्पन्न नहीं करताहै ॥ ७४ ॥

मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिंसृक्षया ॥ आकाशं जायते त  
स्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥ ७५ ॥ आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्व  
गन्धवहः शुचिः॥बलवान् जायते वायुस्स वै<sup>१२</sup> स्पर्शगुणो मत्तः॥७६॥

टीका-परमात्माकी सृष्टिकी इच्छा करि प्रेरणया मन सृष्टिकी करताहै तौ उससे पहले आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण मनुआदिकोंने शब्द कहाहै ॥ ७५ ॥ विकारकी प्राप्त हुये आकाशसे सब भौतिके गंधका वहनेवाला बलवान् पवित्र पवन उत्पन्न होताहै उसका गुण स्पर्श कहा गयाहै ॥ ७६ ॥

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णु तमोनुदम् ॥ ज्योतिरुत्पद्यते भा  
स्वत्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ७७ ॥ ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगु  
णाः स्मृताः ॥ अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषां सृष्टिरादितः ॥७८॥

टीका-विकारको प्राप्तहुये पवनसेभी दूसरेको प्रकाशित करनेवाला तथा अंधकारका विनाशक प्रकाशमान तेज उत्पन्न होताहै उसका गुण रूपहै ॥ ७७ ॥ विकारको प्राप्त हुये तेजसे रस जिनका गुण ऐसे जल उत्पन्न होतेहैं और जलसे गन्ध जिसका गुण ऐसी भूमि उत्पन्न होतीहै यह आदिसे सृष्टि कही ॥ ७८ ॥

यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् ॥ तदेकसप्ततिगुणं मन्व  
न्तरमिहोच्यते ॥ ७९ ॥ मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव  
च ॥ क्रीडन्नि वैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८० ॥

टीका-पहले कही हुई जो बारह हजार वर्षोंकी मनुष्योंकी संध्या तथा सं-



( १८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

ध्यांश सहित मनुष्योंकी चतुर्युगी है वह देवताओंका एक युग होताहै उसका इकहत्तरि गुणा करनेसे एक मन्वंतर होताहै उसमें एक मनुका सृष्टि आदि करनेका अधिकार होताहै ॥ ७९ ॥ असंख्य कहिये जिनकी संख्या नहीं ऐसे मन्वंतरोंको और सृष्टि तथा संहारको वह परमेष्ठी खेलते हुये मानो बारंवार करताहै ॥ ८० ॥

चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥ नार्धर्मेणागमैः कं  
श्चिन्मनुष्यान्प्रति वर्तते ॥ ८१ ॥ इतरेष्वगमाद्धर्मः पाददशस्त्वैव  
रोपितः ॥ चौरिकां नृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पाददशः ॥ ८२ ॥

टीका—सत्ययुगमें सब धर्म चतुष्पात् कहिये सब अंगोंसे परियूर्ण था और सत्यभीथा सब धर्मोंमें श्रेष्ठ होनेसे सत्यका पृथक् ग्रहण किया और अधर्मसे अर्थात् शास्त्रको उल्लंघिके मनुष्योंमें किसीप्रकारका धनविद्या आदिका आना नहीं होताथा ॥ ८१ ॥ त्रेता आदि और युगोंमें अधर्मसे धनके जोड़ने तथा विद्याके पढ़ने से धर्म अर्थात् यज्ञ आदि क्रमसे प्रत्येक युगमें चौथाई २ घटता जाताहै और धन तथा विद्यासे जो कुछ धर्म इकट्ठा किया जाताहै सौभी चोरी झूठ और छलसे हरएक युगमें चौथाई २ कम होनेसे चला जाताहै अर्थात् नष्ट होजाताहै क्रम २ से कमहोनेका यह कारणहै कि चोरी झूठ छल ये तीनों त्रेता आदि तीनों युगोंमें क्रमसे एक २ बढ़ाता जाताहै ॥ ८२ ॥

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः ॥ कृतत्रेतादिषु ह्येर्षामायुं  
र्हसंति पाददशः ॥ ८३ ॥ वेदोक्तमायुम्मर्त्यानामोशिषश्चैव कर्म  
णाम् ॥ फलं त्वनुयुगं लोके प्रभावंश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ ॥

टीका—सत्ययुगमें रोगका कारण अधर्म न होनेसे रोगरहित और विघ्नरूप अधर्मके न होनेसे सिद्धहैं कामनाओंके फल जिनके ऐसे और चारसौवर्षकी है आयु जिनकी ऐसे और अधिक आयुके करनेवाले धर्मके कारण अधिक अवस्थाकेभी होतेहैं इस्से रामचन्द्रने दसहजार वर्ष राज्य किया इस वाल्मीकिके लेखसेभी विरोध न हुआ और शतायुर्वैपुरुष इत्यादि श्रुतिमें शतशब्द बहुतसे सैकरोंका कहनेवालाहै अथवा कलियुगके मध्यं कहाहै और त्रेता आदियुगोंमें फिर चौथाई २ आयु कम होती जातीहै ॥ ८३ ॥ शतायुर्वै पुरुष इत्यादि वेदमें कहीहुई आयु और काम्यकर्मोंकी फल विषयक चाहना और ब्राह्मण आदिकोंका प्रभाव अर्थात् शाप देने तथा अनुग्रह करनेकी शक्ति ये सब युगके अनुसार फलके देनेवाले होतेहैं ॥ ८४ ॥



अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापररेऽपरे ॥ अन्ये कलियुगे नृणां  
युगद्वासानुरूपतः ॥ ८५ ॥ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमु-  
च्यते ॥ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे ॥ ८६ ॥

टीका—सत्ययुगमें और धर्मथे फिर युगोंके घटनेके अनुरूप त्रेता तथा द्वापर-  
में और ही हुए और कलियुगमें और ही हैं ॥ ८५ ॥ यद्यपि तप आदि सब  
शुभकर्म सबयुगमें करनेयोग्य हैं तिसपरभी सत्ययुगमें तप मुख्य था अर्थात् बड़े  
फलका देनेवाला था ऐसेही त्रेतामें आत्माका ज्ञान और द्वापरमें यज्ञ और क-  
लियुगमें दान ही एक बड़ा फल देनेवाला है ॥ ८६ ॥

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः ॥ मुखर्बाहूरुपज्जा-  
नां पृथक्कर्मण्यकल्पयत् ॥ ८७ ॥ अध्यापनमध्ययनं यजनं  
याजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहं चैवं ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ८८ ॥

टीका—उस बड़े तेजस्वी ब्रह्मने इस सब सृष्टिकी रक्षाके लिये मुख आदि-  
से उत्पन्न चारों वर्णोंके लिये जुदे २ कर्म बनाये ॥ ८७ ॥ पढ़ाना पढ़ना यज्ञ  
करना यज्ञ कराना दानदेना दानलेना ये छः कर्म ब्राह्मणोंके बनाये ॥ ८८ ॥

व्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ॥ विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्ष-  
त्रियस्य समांसतः ॥ ८९ ॥ पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव  
च ॥ वणिक्पथं कुंसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥ ९० ॥

टीका—प्रजाओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ करना ३. वेद पढ़न  
४. विषय जो गाना नाचना आदिहैं तिनमें चित्तका न लगाना ५. ये संक्षेपसे—  
क्षत्रियोंके कर्म बनाये ॥ ८९ ॥ पशुओंकी रक्षा करना १. दान देना २. यज्ञ  
करना ३. वेद पढ़ना ४. जलमें नाव वा जहाजोंसे और स्थलमें भारवरदारी  
आदिसे व्यापार करना ५. व्याज लेना और खेति करना ६. ये वैश्यके कर्म  
नियत किये ॥ ९० ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥ एतेषामेवं वर्णानां  
शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥ ऊर्ध्वं नाभेर्मध्यंतरः पुरुषः परिकी-  
र्तितः ॥ तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा ॥ ९२ ॥

टीका—प्रभुने शूद्रको एकही काम बताया कि वह द्वेषरहित होकर इन ती-  
नोंही वर्णोंकी सेवा करे ॥ ९१ ॥ अब मुख्यतासे तथा सृष्टिकी रक्षाके निमित्त



होनेसे और उससे धर्मका आरंभ होनेसे तथा शास्त्रके पढ़नेसे ब्राह्मणकी प्रशंसा लिखते हैं ॥ पुरुषसे भी पवित्रहै परंतु नाभिसे ऊपर तौ बहुतही पवित्रहै उससेभी पवित्र ब्राह्मणका मुख कहा गयाहै ॥ ९२ ॥

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद्ब्राह्मणश्चैवं धारणात् ॥ सर्वस्यैवांस्यं सगं  
स्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥ तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तै  
द्वादितोऽसृजत् ॥ हव्यकंव्याभिवाद्याय सर्वस्यांस्यं च गुप्तये ॥ ९४ ॥

टीका—उससे क्या हुवा सो कहतेहैं ॥ उत्तम अंग जो मुखहै तिसमेंसे उत्पन्न होनेसे तथा क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न होनेसे और पढ़ने तथा व्याख्यान आदिसे वेदका धारण करनेसे ब्राह्मण इस सब जगत्का वेदकी आज्ञासे स्वामीहै और संस्कार विशेषसेभी सब वर्णोंका प्रभुहै ॥ ९३ ॥ किसके उत्तम अंगसे यह उत्पन्न हुवा सो कहतेहैं ॥ उस ब्राह्मणको ब्रह्मानें अपने मुखसे दैव पित्र्य हव्य कव्यके पहुंचानेके लिये तप करिकै जगत्की रक्षाके लिये क्षत्रिय आदिकोंसे पहले उत्पन्न किया ॥ ९४ ॥

यस्यांस्येन सदाश्रन्तिं हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥ कव्यानि चैवं  
पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ९५ ॥ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणि  
नां बुद्धिजीविनः ॥ बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥

टीका—पहले कहे हुये हव्य कव्यके पहुंचानेको बोलतेहैं ॥ जिस ब्राह्मणके मुखसे श्राद्ध आदिमें सदा देवता हव्योंको और पितर कव्योंको भोजन करतेहैं उससे अधिक कौन प्राणी होगा ॥ ९५ ॥ स्थावर जंगम भूतोंमें प्राणी कहिये प्राणवाले कीड़े आदि श्रेष्ठ हैं उनमें भी बुद्धिसे जीनेवाले पशुआदि श्रेष्ठ हैं उनसेभी उत्तम ज्ञानके होनेसे मनुष्य श्रेष्ठहैं उनसेभी ब्राह्मण सर्वोंके पूज्य तथा मोक्षके अधिकार योग्य होनेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९६ ॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥ कृतबुद्धिषु कर्तारः  
कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥ उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिधर्मस्य  
शाश्वती ॥ स हि धर्मोऽर्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ९८ ॥

टीका—ब्राह्मणोंमें तौ बड़े फलवाले ज्योतिष्ठोम आदिकर्मोंका अधिकारी हो-  
नेसे विद्वान् और उनसेभी कृतबुद्धी अर्थात् शास्त्रोक्त बातोंके करनेकी जिनकी बुद्धि उपस्थितहै उनसेभी करनेवाले और उनसेभी ब्रह्मज्ञानी मोक्षका लाभ हो-  
नेसे श्रेष्ठहैं ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणदेहका जन्मही धर्मका अविनाशी शरीरहै जिस्से



धर्मके लिये उत्पन्न वह धर्मसे प्राप्त हुए आत्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ९८ ॥

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां  
धर्मकोशस्य गुप्तये ॥ ९९ ॥ सर्वे स्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जग  
तीगतम् ॥ श्रेष्ठेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणो हति ॥ १०० ॥

टीका-जिस्से उत्पन्न हुआ ब्राह्मण पृथिवीमें सबसे उपर होताहै अर्थात्  
सबसे श्रेष्ठहै और सब जीवोंके धर्म समूहकी रक्षाके लिये समर्थहै ॥ ९९ ॥  
जो कुछ जगतमें धनहै वह ब्राह्मणकाहै तिस्से ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न होके  
कारण और श्रेष्ठ होनेसे निश्चय ब्राह्मण सब लेनेके योग्यहै ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वर्स्ते स्वं ददाति च ॥ अर्चुंशस्याद्ब्राह्मणस्य  
भुञ्जते हीतिरे जनाः ॥ १०१ ॥ तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामनु  
पूर्वशः ॥ स्वायंभुवो मनुर्धीर्मानिदं शास्त्रमकल्पयत् ॥ १०२ ॥

टीका-जो दूसरेका अन्न ब्राह्मण खाताहै तथा पहिरताहै और दूसरेका लेकर  
औरको देताहै वहभी ब्राह्मणका धनहै ऐसा होनेपर ब्राह्मणकी करुणासे और लोग  
भोजन आदि करतेहै ॥ १०१ ॥ ब्राह्मणके तथा क्षत्रिय आदिकोंके कर्म जाननेके लिये  
ब्रह्माके प्रपौत्र बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने इस शास्त्रको बनाया ॥ १०२ ॥

विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥ शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं  
सम्यक् नान्येन केनचित् ॥ १०३ ॥ इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः  
शंसितव्रतः ॥ मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यन्ते ॥ १०४ ॥

टीका-विदुषा कहिये इस शास्त्रके पढ़नेका फलजाननेवाले ब्राह्मणको व्या-  
ख्यान तथा पढ़ाने आदि उचित यत्नसे अध्ययन करना और शिष्योंके लि-  
ये भी इसका व्याख्यान करना योग्यहै, और अन्य क्षत्रिय आदिकोंको केवल  
पढ़ना चाहिये व्याख्यान करना तथा पढ़ाना न चाहिये ॥ १०३ ॥ इस शास्त्र-  
को पढ़ता हुआ ब्राह्मण इसके अर्थको जानि व्रतको करिके मन वाणी तथा शरीरसे  
उत्पन्न हुए पापोंकरि लिप्त नहीं होताहै ॥ १०४ ॥

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् ॥ पृथिवीमपि चैवे मां  
कृत्स्नमेकं अपि सोऽहति ॥ १०५ ॥ इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदं बु  
द्धिविवर्द्धनम् ॥ इदं यशस्यमार्युष्यमिदं निःश्रेयसं परम् ॥ १०६ ॥



टीका-इस शास्त्रको पढ़ता हुआ ब्राह्मण जो पंक्तिके योग्य नहीं ऐसे मनुष्य करि दूषित हुई पंक्ति अर्थात् क्रमसे बैठे हुए जनोंके समूहको और सात पहले अर्थात् पितामहादिकोंको और सात आगेके पौत्र आदिकोंको पवित्र करता है और सब धर्मका ज्ञाता होनेके कारण पात्र होनेसे वह एकभी सब पृथ्वीको लेनेके योग्य होता है ॥ १०५ ॥ इस शास्त्रका पढ़ना स्वस्त्ययन अर्थात् चाहे हुए अर्थका देनेवाला है और जप होम आदिका बोधक होनेसे श्रेष्ठ है अर्थात् स्वस्त्ययनसे भी अधिक है और बुद्धिका बढ़ानेवाला है क्योंकि इसके अभ्याससे संपूर्ण विधिनिषेधका ज्ञान होता है और यज्ञका देनेवाला तथा आयुका बढ़ानेवाला है और मोक्षके उपायका उपदेश करनेवाला है ॥ १०६ ॥

अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् ॥ चतुर्णामपि वर्णानामाचारैश्चैवं शाश्वतः ॥ १०७ ॥ आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मृतौ तु एव च ॥ तस्मादस्मिन्संदायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥ १०८ ॥

टीका-इसमें संपूर्णतासे धर्म कहा है और कर्मोंके गुण दोष अर्थात् भलाई बुराई कही है और चारों वर्णोंका परंपरासे आया हुआ आचार कहा है ॥ १०७ ॥ श्रुति तथा स्मृतिमें कहा हुआ आचार परमधर्म है तिससे आत्मवान् कहिये अपने धर्मका चाहनेवाला ब्राह्मण सदा आचारयुक्त रहे ॥ १०८ ॥

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ॥ आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभागभवेत् ॥ १०९ ॥ एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् ॥ सर्वस्य तर्पसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥ ११० ॥

टीका-आचारसे रहित ब्राह्मण वेदके फलको नहीं प्राप्त होता है और आचारयुक्त संपूर्ण फलका पानेवाला होता है ॥ १०९ ॥ एकहे हुए प्रकारसे आचारके द्वारा ऋषियोंने धर्मकी प्राप्तिको जानकै संपूर्ण जे चांद्रायण आदि तपहैं उनके मूलरूप, आचारका ग्रहण किया ॥ ११० ॥

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च ॥ व्रतचर्योपचारं च स्नानं स्य च परं विधिम् ॥ १११ ॥ द्वाराधिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् ॥ महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पश्च शाश्वतः ॥ ११२ ॥

टीका-जगतकी उत्पत्ति और संस्कार जो जातक कर्म आदि हैं तिनकी विधि और ब्रह्मचर्यका उपचार अर्थात् गुरु आदिकोंका नमस्कार और उपासना आदि और स्नान कहिये गुरुकुलसे निवृत्त हुएका एक प्रकार का संस्कार उसकी



बहुत अच्छी विधि कहेंगे ॥ ११३ ॥ दाराधिगमन जो विवाह तिसकी विधी और ब्राह्म आदि विवाहोंके लक्षण तथा वैश्वदेव आदि पंचमहायज्ञोंका विधान और नित्यश्राद्धकी विधि कहेंगे ॥ ११२ ॥

वृत्तीनां लक्षणं चैवं स्नातकस्य व्रतानि च ॥ भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां सिद्धिमेव च ॥ ११३ ॥ स्त्रीधर्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च ॥ राज्ञश्च धर्ममखिलं कार्याणां च विनिर्णयम् ॥ ११४ ॥

टीका—वृत्तिकहिये ऋत आदि जीविकाके उपायोंको और स्नातक जो गृह स्थ है तिसके व्रत कहिये नियमोंको और भक्ष्य दही आदि तथा अभक्ष्य लहसन आदि और जो मरण आदिमें ब्राह्मण आदि वर्णोंकी दश दिन आदिकी शुद्धिको और जलआदिसे द्रव्योंकी सिद्धको कहेंगे ॥ ११३ ॥ स्त्रियोंके धर्मयोग अर्थात् धर्मके उपायकों और तापस्य कहिये वानप्रस्थके लिये हित धर्मको संन्यासको और संपूर्ण राजाके धर्मोंको और और कार्योंके निर्णय अर्थात् द्रव्यके लेन देनहैं तिनके निर्णय कहिये विचारको कहेंगे ॥ ११४ ॥

साक्षिप्रश्रविधानं च धर्म स्त्रीपुंसयोरपि ॥ विभागधर्मं द्यूतं च कण्टकानां च शोधनम् ॥ ११५ ॥ वैश्यशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् ॥ आपद्धर्मं च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं तथा ॥ ११६ ॥

टीका—साक्षियोंके प्रश्रका विधान और स्त्रीपुरुषोंके समीप होने तथा न होनेमें धर्म करना तथा विभाग धर्म अर्थात् हिस्सा बांट और जुआआदिकी विधि और कंटक जे चोर आदि हैं तिनका शोधना अर्थात् दूर करना इन सबोंको कहेंगे ॥ ११५ ॥ वैश्य शूद्रोंका उपचार अर्थात् अपने २ धर्मका करना और संकीर्ण अर्थात् और और जातिसे मिलिके जे उत्पन्नहैं जे अनुलोमज प्रतिलोमज आदिहैं तिनकी उत्पत्ति और सब वर्णोंके आपद्धर्म अर्थात् विपत्तिके समयमें जीविका करनेका उपदेश और प्रायश्चित्त इन सबबातोंको कहेंगे ॥ ११६ ॥

संसारगमनं चैवं त्रिविधं कर्मसंभवम् ॥ निःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् ॥ ११७ ॥ देशधर्मातिधर्मान्कुलधर्माश्च शाश्वतान् ॥ पाषण्डगणधर्माश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः ॥ १०८ ॥

टीका—संसार गमन अर्थात् शुभ अशुभ कर्मोंके कारण उत्तम मध्यम अधमके भेदसे तीनिप्रकारके दूसरे देहमें जानिको और निश्रेयस कहिये आत्मज्ञानको और कहे हुए तथा निषेध कियेहुए कर्मोंके गुण दोषोंकी परीक्षा



कहेंगे ॥ ११७ ॥ देशोंके धर्मोंको और नियत किये हुए जाति तथा कुलके धर्मोंको और वेदसे बाहर आगममें कहे हुए निषिद्ध धर्मोंके करनको पाषंड कहते हैं उसके करनेवाले पाषंडी मनुष्योंके धर्मको और गण अर्थात् समूह जे बनियाव्यापारी आदिहैं तिनके धर्मोंको इस ग्रंथमें मनुने कहाहै ॥ ११८ ॥

यथेदमुक्तवाञ्छास्रं पुरा पृष्टो मनुर्मया ॥ तथेदं यूयमप्यद्य मत्स  
काशान्नि बोधत ॥ ११९ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

टीका—पहले मुझकरपूछे गये मनुने जैसे इस शास्त्रको कहाहै वैसेही आपभी अब हमसे सुनिये ॥ ११९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां  
कुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

## अध्यायः २ यः ।

विद्वद्भिः से वितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ॥ हृदयेनाभ्यनुज्ञातो  
यो धर्मस्तं निर्बोधत ॥ १ ॥ कामात्मना न प्रशस्ता न चैवहो  
स्त्यकामता ॥ काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥

टीका—प्रकृष्ट परमात्माके ज्ञानरूप धर्मके ज्ञानके लिये जगत्के कारण ब्रह्मका प्रतिपादन करिके अब ब्रह्मज्ञानका अंगभूत जो संस्कार आदि धर्म है तिसके प्रतिपादनकी इच्छासे पहले धर्मका सामान्य लक्षण कहते हैं वेदके जाननेवाले रागद्वेष रहित धर्मात्माओंकरिके सदा सेवन किया गया और हृदयसे जाना जो धर्महै तिसको सुनिये ॥ १ ॥ कामात्मता कहिये फलकी इच्छासे वंदनको कारणरूप कर्मका करना अच्छा नहींहै जैसे स्वर्ग आदि फलकी चाहनासे किये हुए कामनायुक्त कर्म फिरि जन्मके लिये कारण होतेहैं और नित्यनैमित्तिक कर्म तौ आत्मज्ञानके सहकारी होनेसे मोक्षके देनेवाले होतेहैं इससे इच्छामात्र का निषेध नहीं किया क्यों कि वेदका पढना कामनायुक्त है और वैदिक कर्मयोगभी कामनायुक्तहीहै ॥ २ ॥

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः ॥ व्रतानि यर्मधर्माश्च  
सर्वे संकल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥ अकामस्य क्रियाकांचिदृश्यते नेह  
कहिंचित् ॥ यद्यर्द्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥



टीका—संकल्प है मूल जिसका ऐसा काम है अर्थात् इस कर्मसे यह इष्टफल सिद्ध किया जाता है ऐसी बुद्धिको संकल्प कहते हैं तिस पीछे इस साधनता करिके निश्चय किये हुए उसमें इच्छा उत्पन्न होती है तब उसके लिये जतनभी करता है इस भांति यज्ञभी संकल्पसे उत्पन्न है और व्रत नियम धर्म ये सब संकल्पसे उत्पन्न कहे गये हैं ॥ ३ ॥ यहाँई लौकिक नियम दिखाते हैं लोकमें भोजन गमन आदि कोई क्रिया विना इच्छाके कर्मनही दिखाई देती है तिससे सब लौकिककर्मोंको जो करता है वह सब इच्छाका चेष्टित कहिये काम है ॥ ४ ॥

तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छेत्त्यमरलोकंताम् ॥ यथा संकल्पितांश्च<sup>१</sup>  
हं सर्वान्कामान्सप्रश्रुते ॥ ५ ॥ वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले<sup>२</sup>  
चैतद्विदाम् ॥ आचारश्चैवं साधूनामात्मनस्तुष्टिरैवंच ॥ ६ ॥

टीका—अब पहले कहे हुए फलकी इच्छाका निषेध करते हुए नियम करते हैं उनकर्मोंमें अच्छी भांति वर्तमान पुरुष अमरलोकता कहिये अमरधर्मी ब्रह्म भावको प्राप्त होता है अर्थात् मुक्त होजाता है ऐसा पुरुष सर्वेश्वर होनेसे इस लोकमें भी सब वांछित पदार्थोंको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ वेद कहिये ऋग् यजु साम अथर्व ये सब धर्मका मूल कहिये प्रमाण है स्मृति तथा हरीतका कहाहुआ ब्रह्मण्यता आदि तेरह प्रकारका शील ये सब वेदके जाननेवालोंको धर्ममें प्रमाण है और आचार तथा साधुओंके मनका संतोषभी धर्ममें प्रमाण है ॥ ६ ॥

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः ॥ स सर्वोऽभिहितो<sup>३</sup>  
वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ ७ ॥ सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानं च<sup>४</sup>  
क्षुषा ॥ श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्मे निविशेत् वै ॥ ८ ॥

टीका—वेदसे भिन्न औरोंके वेद मूल होनेसे प्रामाण्य कहनेपरभी मनुस्मृतिकी सबसे अधिकता दिखानेके लिये वेदमूलता कहते हैं जो कोई धर्म किसी ब्राह्मण आदिका मनुने कहा है वह सब वेदमें प्रतिपादन किया गया है जिस्से वे मनु सबके जाननेवाले हैं ॥ ७ ॥ वेदके अर्थ जाननेमें सहाय करनेवाले शास्त्रसमूह अर्थात् मीमांसा व्याकरण आदि इस सबको ज्ञानरूपी आँखसे देखि अर्थात् विचारिके विद्वान् अपने धर्ममें स्थित होय ॥ ८ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ॥ इह कीर्तिमवाप्नोति<sup>५</sup>  
प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ९ ॥ श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु<sup>६</sup>  
वै स्मृतिः ॥ ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मौ हि निबभौ ॥ १० ॥



टीका-श्रुतिस्मृतिमें कहे हुए कर्मको करता हुआ मनुष्य इस लोकमें कीर्ति और पर लोकमें सबसे उत्तम सुखको प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ श्रुति वेदको कहते हैं और मनु आदिधर्मशास्त्रको स्मृति कहते हैं ये दोनों प्रतिकूल तर्कोंसे नहीं विचार करनेयोग्य है जिसे सब धर्म उन्हींसे प्रकाशित हुआ है ॥ १० ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्विजैः ॥ स सांधुभिर्बहिष्कृत्यो  
नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ॥ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च  
प्रियमात्मनः ॥ एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

टीका-जो ब्राह्मण धर्म मूल जो वे श्रुति स्मृति दोनों तिनका अपमान करता है अर्थात् नहीं मानता है वह वेदका निंदाका हेतु कहिये कारणभूत जो शास्त्र है तिसके आश्रयसे नास्तिकके समान है वह शिष्टों करिके ब्राह्मणोंके करनेयोग्य अध्ययन आदि कर्मोंसे निकालने योग्य है ॥ ११ ॥ वेद स्मृति सदाचार कहिये शिष्टोंका आचार और अपने आत्माका प्रिय कहिये अपना जिसमें सन्तोष होय यह चार प्रकारका साक्षात् धर्मका लक्षण है ॥ १२ ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ॥ धर्मं जिज्ञासमानानां  
प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १३ ॥ श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ  
स्मृतौ ॥ उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यग्भूतौ मनीषिभिः ॥ १४ ॥

टीका-अर्थ और कामके पानेकी इच्छा रहित मनुष्योंको यह धर्मका उपदेश है और जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति सबसे अधिक प्रमाण है और जहाँ कहीं श्रुति और स्मृतिके अर्थमें विरोध पड़े वहाँ स्मृतिका अर्थ नहीं आदर करनेयोग्य है ॥ १३ ॥ जहाँ फिर श्रुतियोंहीमें परस्पर विरुद्ध अर्थका प्रतिपादन है वहाँ मनुने दोनोंही धर्म कहे हैं जिसे मनु आदिकोंसे पहले पंडितोंने दोनों धर्म समीचीन कहे हैं इसी भांति स्मृतियोंके भी विरोधमें विकल्प जानना चाहिये ॥ १४ ॥

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा ॥ सर्वथा वर्तते यज्ञ इति  
यं वैदिकी श्रुतिः ॥ १५ ॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो  
विधिः ॥ तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

टीका-इसमें दृष्टान्त कहते हैं ॥ सूर्य नक्षत्र वर्जित कालको समयाध्युषित कहते हैं और उदयसे पहले अरुणकी किरणयुक्त थोड़ी जिसमें तारा हैं ऐसे कालको अनुदित कहते हैं तौ आपसमें कालका विरोध पड़नेपर भी विकल्पसे अग्नि



होत्रका होम होता है ॥ १५ ॥ गर्भाधानसे लेकर श्मशानांत कहिये अंत्येष्टिपर्यंत जिस द्विजातिकी विधि वैदिक मंत्रोंसे कही है उसका इस मानवशास्त्रके पढ़ने में अधिकार है और किसीका नहीं है ॥ १६ ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनैद्योर्यदन्तरम् ॥ तं देवनिर्मितं देशं  
ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ १७ ॥ तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्य  
क्रमागतः ॥ वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १८ ॥

टीका—धर्मका स्वरूप प्रमाण और परिभाषाको कहिके अब धर्मकरनेके योग्य देशको कहते हैं सरस्वती और दृषद्वती नाम देवनदियोंके बीचके प्रदेशका जो देश है उस देवताओंके बनाये हुए देशको ब्रह्मावर्त कहते हैं ॥ १७ ॥ बहुधा शिष्टोंके उत्पन्न होनेसे उस देशमें ब्राह्मणसे लेकर वर्णसंकरोंतक परंपराके क्रमसे चला आया हुआ आचार है वह सदाचार कहा जाता है ॥ १८ ॥

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः ॥ एष ब्रह्मर्षिदेशो  
वै ब्रह्मावर्तादिनन्तरः ॥ १९ ॥ एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रज-  
न्मनः ॥ स्वस्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥

टीका—कुरुक्षेत्र और मत्स्य आदिदेश और पांचाल कहिये कान्यकुब्जदेश और शूरसेन कहिये मथुराके देश ये ब्रह्मर्षिदेश ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून हैं ॥ १९ ॥ इन कुरुक्षेत्र आदि देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथिवीमें सब मनुष्योंने अपने २ चरित्र कहिये आचार सीखे ॥ २० ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि ॥ प्रत्यगेवं प्रयागाच्च मं  
ध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥ २१ ॥ ओ समुद्रात्तु वै पूर्वादां समुद्रात्तु  
पश्चिमात् ॥ तयोरेवान्तरं गिर्योर्आर्यावर्तं विदुर्बुधाः ॥ २२ ॥

टीका—उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें स्थित हिमाचल विंध्याचल पर्वतोंका मध्य और विनशननाम सरस्वती नदीके गुप्त होनेका स्थान है उससे जो पूर्व और प्रयागसे जो पश्चिम है उस देशका नाम मध्यदेश है ॥ २१ ॥ पूर्वको समुद्रसे और पश्चिमके समुद्रसे उन्ही दोनो अर्थात् हिमाचल विंध्याचल पर्वतोंके बीचके भूमिभागको पंडित आर्यावर्त कहते हैं इससे समुद्रके मध्यके द्वीप आर्यावर्तमें नहीं है यह निश्चय हुआ ॥ २२ ॥

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः ॥ सज्ञेयो यज्ञियो दे-  
शो म्लेच्छदेशस्तवतः परः ॥ २३ ॥ एतान्द्विजातयो देशान्संश्रये



रन्प्रयत्नतः ॥ शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वर्तिकर्षितः ॥ २४ ॥

टीका—जहाँ कृष्णसार कहिये करसायल हरीण स्वभावसे वसताहै वह देश यज्ञके योग्य जानना चाहिये इससे अन्यम्लेच्छ देश अर्थात् यज्ञके योग्यनहींहै ॥ २३ ॥ और देशोंमें उत्पन्नभी ब्राह्मण यज्ञके अर्थ बडे उपायसे इन देशोंमें आके रहे और जीविकासे दुःखी शूद्र चाहै जिस देशमें जाके रहे ॥ २४ ॥

एषा धर्मस्य वो योनिःसर्मासेन प्रकीर्तिता ॥ संभवंश्चास्य सर्वस्य  
वर्णधर्मान्निबोधत ॥ २५ ॥ वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्वि  
जन्मनाम् ॥ कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेहं च ॥ २६ ॥

टीका—यह धर्म जाननेका कारण मैने तुमसे संक्षेपसे कहा अब इस सब जगतका उत्पत्ति और वर्ण आश्रम आदिकोंके धर्म सुनो ॥ २५ ॥ वैदिक कहिये वेदमे कहे हुए मंत्रयोग आदि शुभकर्मोंकरिके द्विजोंका गर्भाधान आदि संस्कार करना चाहिये वह पावन कहिये पापके क्षयकारणहै प्रेत्यकहिये परलोकमें यज्ञादि फलोंके संबंधसे और यह कहिये इस लोकमेंभी वेदाध्यन आदिमें अधिकारसे ॥ २६ ॥

गार्भहो मैजातकर्मचौलमौर्जनिबन्धनैः ॥ वैजिकं गार्भिकं चैर्नो  
द्विजानामपमृज्यते ॥ २७ ॥ स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैश्च विद्येनेज्यया  
सुतैः ॥ महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मी यं क्रियते तनुः ॥ २८ ॥

टीका—गार्भ कहिये जे गर्भकी शुद्धिके लिये किये जति है और होम जात-कर्म चूडाकरण यज्ञोपवीत इन कर्मोंकरिके वैजिक कहिये प्रतिषिद्धमैथुनके संकल्प आदिसे पिताके वीर्यके दोषसे जो पाप होता है ओ गार्भिक कहिये जो अशुचिमाताके गर्भमें बसनेसे उत्पन्न हुआ ये सब पाप दूर होजातेहैं ॥ २७ ॥ स्वाध्याय कहिये वेदके पढनेसे और व्रत कहिये मधुमांस वर्जन आदि नियमोंसे और होम कहिये सावित्रचरुके होम आदिसे अथवा सायंकाल और प्रातःकालके होमसे और त्रैविद्यनाम व्रतकरिके और इज्या कहिये ब्रह्मचर्य अवस्थामें देवऋषि पितृतर्पण रूप और सुत कहिये गृहस्थकी अवस्थामें पुत्रका उत्पन्न करना और महायज्ञ कहिये पांच ब्रह्मयज्ञआदि और यज्ञ कहिये ज्योतिष्ठोम आदि इन सबोंकरिके ब्राह्मीय कहिये ब्रह्मकी प्राप्तियोग्य शरीर कियाजाता है ॥ २८ ॥

प्राज्ञाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते ॥ मन्त्रवत्प्राशनं चास्य  
हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥ २९ ॥ नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽ  
स्यकारयेत् ॥ पुण्यं त्रिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रं वा गुणान्विते ॥ ३० ॥



टीका—नाभिवर्द्धन जो नाल कटनाहै तिससे पहले पुरुषका जातकर्म किया जाताहै तब तो इसका स्वगृहमें कहे हुये मन्त्रोंसे सुवर्ण मधु औ घीका प्राशन कहिये चटाना होताहै ॥ २९ ॥ जन्मसे दशमें अथवा बारहें दिन इस बालकका नाम करण करावै अर्थात् नाम धरावै अथवा “आशौचे तु व्यतिक्रांते नामकर्म विधीयते” अर्थात् आशौच जो सूतक है तिसके निकलजानेपर नामकर्म किया जाताहै इस शंखके वचनसे दशमदिनके निकल जाने पर ग्यारहें दिन करना चाहिये उस दिनभी न कियाजाय तौ ज्योतिषसे निश्चय हुए अच्छे मुहूर्तमें वा गुणवान् नक्षत्रमें करना चाहिये ॥ ३० ॥

मङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥ वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥ ३१ ॥ शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्रक्षो रक्षासमन्वितम् ॥ वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् ॥ ३२ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके नाम मंगल बल धन निंदा वाचक अर्थात् शुभ बल व सुदिन आदि करने चाहिये ॥ ३१ ॥ अब उपपदके नियमके लिये कहते हैं इनके नाम कर्मसे शर्म रक्षा पुष्टि प्रैष्यवाचक करने चाहिये अर्थात् शर्म वर्म गुप्त दास आदिकरने चाहिये जैसे शुभशर्मा बलवर्मा वसुमति दीनदास यह इसमें यमस्मृति और विष्णुपुराणभी हैं परतु ग्रंथ बढनेके भयसे नही लिखे हैं ॥ ३२ ॥

स्त्रीणां सुखोद्यमकूरं विस्पर्ष्टार्थं मनोहरम् ॥ मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमा शीर्वादाभिधानवत् ॥ ३३ ॥ चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले ॥ ३४ ॥

टीका—सुखसे बोलने योग्य जिसका अर्थ कूर न होय अर्थ प्रकट होय मनोहर होय मंगलवाची होय नामके अंतका स्वर दीर्घ होय कल्याणके कहनेवाले शब्द करिकै युक्त होय ऐसा स्त्रियोंका नाम रखना चाहिये जैसे यशोदा देवी यह ॥ ३३ ॥ बालकको चौथे महीनेमें सूर्यके दर्शनकेलिये जन्मके अर्थात् सूतिका को जन्मके घरसे निकालना चाहिये और छठे महीनेमें अन्न प्राशन करना चाहिये अथवा जैसी जैसी जिसके कुलकी रीति होवै सो करनी चाहिये इससे पहले कहा हुआ चौथे महीनेमें निकालने आदिका नियम न रहा ॥ ३४ ॥

चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः ॥ प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ ३५ ॥ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनां



यनम् ॥ गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ ३६ ॥

टीका—सब द्विजातियोंका चूडा कर्म कहिये मुंडन धर्मके लिये पहले वर्षमें अथवा तीसरे वर्षमें वेदकी आज्ञासे करना चाहिये अथवा कुलधर्मके अनुसार करै ॥ ३५ ॥ गर्भसे आठमें वर्षमें ब्राह्मणका यज्ञोपवीत करना चाहिये और गर्भसे ग्यारहवर्ष क्षत्रियका और वे गर्भसे बारह वर्ष वैश्यका करना चाहिये ॥ ३६ ॥

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥ राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे ॥ ३७ ॥ आ षोडशा ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ॥ आ द्वाविंशात्क्षत्रबन्धोरां चतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

टीका—वेदके पढ़ने और अर्थज्ञान आदिसे बड़े हुए तेजको ब्रह्मवर्चस कहते हैं उसके चाहनेवाले ब्राह्मणका यज्ञोपवीत गर्भसे पाँचमे वर्षमें करना चाहिये और बलके चाहनेवाले क्षत्रियका छठमें और बहुत खेति आदिकी चेष्टा चाहनेवाले वैश्यका आठमें वर्षमें करना चाहिये ॥ ३७ ॥ सोलह वर्षके पीछे ब्राह्मणोंको और बाईससे क्षत्रियको और चौबीससे उपरांत वैश्यको सावित्रीका उपदेश नहीं होसकता अर्थात् तीनो वर्णोंको कमसे कम सोलह बाईस चौबीस वर्ष सावित्रीके उपदेशकी परम अवधि है ॥ ३८ ॥

अत ऊर्ध्व त्रयोऽध्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥ सावित्रीपतिता ब्रांत्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥ नैतैरपूतैर्विधिर्वदापद्यपि हि कैर्हिचित् ॥ ब्राह्मण्यैर्नांश्च संबन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥ ४० ॥

टीका—अत ऊर्ध्व इसके उपरांत यथाकाल कहिये सोलह आदिवर्षोंमें नहीं संस्कार किये गये तीनो सावित्रीपतित कहिये उपनयन हीन और शिक्षेकरि निंदित ब्रात्य संज्ञक होते हैं अर्थात् उनका ब्रात्य नाम होता है ॥ ३९ ॥ विधिपूर्वक प्रायश्चित्त न करनेवाले इन अपवित्र ब्रात्योंसे आपत्कालमेभी अध्यापन कन्यादान आदि संबंधोंको ब्राह्मण न करे ॥ ४० ॥

कौर्ण्यैरौरवास्तानि चर्मणि ब्रह्मचारिणः ॥ वसीरन्नानुपूर्वेण शाणक्षौमादिकानि च ॥ ४१ ॥ मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला ॥ क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्यां वैश्यस्य शणतीन्तवी ॥ ४२ ॥

टीका—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यब्रह्मचारी क्रमसे कृष्णमृग रुरुमृग और बस्त जो छागहैं तिनके चर्मोंको ऊपरके वस्त्रोंको धारण करै और सन अलसी औ-



र इनके नीचेके वस्त्रोंको धारण करें ॥ ४१ ॥ मुंजकी बराबरकी तीनलरोंसे बनीहुई चिकनी ब्राह्मणकी मेखला करनी चाहिये और क्षत्रियको मूर्वा नाम रूखडीकी धनुष की प्रत्यंचाके समान और वैश्यकी सनके सूतकी मेखला करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मुञ्जालाभे तुर्कतव्याः कुशाश्मन्तकचल्वजैः ॥ त्रिवृता ग्रन्थिनै  
केन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ ४३ ॥ कौर्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्यो  
ध्ववृतं त्रिवृतं ॥ शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकं सौत्रिकम् ॥ ४४ ॥

टीका—मुंज न मिलै तौ तीनो वर्णोंकी मेखला क्रमसे कुश अश्मांत बल्वज इन तीन प्रकारके तृणोंसे मेखला बनानी चाहिये वह मेखला तीन लरोंकी होय और एक तीन अथवा पांच गाठोंकरके युक्त होय यहाँ वा शब्दके कहनेसे गाठोंका ब्राह्मणादिकोंके साथ क्रमसे संबंध नहीं है किंतु कुलोंके आचारके अनुसार है ॥ ४३ ॥ प्रकार विशेषसे बने जिसकी यज्ञोपवीत संज्ञा कहेंगे वही जिसका धर्म है ऐसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत कपासके सूतका होता है और क्षत्रियका सनके सूतका और वैश्यका मेढेके रोमोंसे बना हुआ होता है उसके बनानेका प्रकार यह है कि दक्षिणावर्त तिगुना करके फिर तिगुना करै इस प्रकार नवतारोंका होता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो बेल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरो ॥ पैलवौदुम्बरौ वैश्यो  
दण्डमहन्ति धर्मतः ॥ ४५ ॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः  
प्रमाणतः ॥ ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥ ४६ ॥

टीका—ब्राह्मण बेल और पलाशके क्षत्रिय वट और खैरके और वैश्य पीछू तथा गूलरके दंडोंके धर्मसे योग्य है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मणका दंड केशतक और क्षत्रियका मस्तकतक तथा वैश्यका नासिका पर्यंत दंड बनाना चाहिये ॥ ४६ ॥

ऋजवस्ते तु सर्वे सूर्यवर्णाः सौम्यदर्शनाः ॥ अनुद्वेगकरानृणां सं  
त्वचो नाग्निदूषिताः ॥ ४७ ॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च  
भास्करम् ॥ प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ ४८ ॥

टीका—वे सब दंड सीधे और चिकने देखनेमें सुंदर मनुष्योंके मनको न बिगाड़नेवाले छिलके समेत और आगिमें न जले होंय ऐसे होने चाहिये ॥ ४७ ॥ वांछित दंडको ग्रहण करि और सूर्यके सन्मुख स्थित हो अग्निकी प्रदक्षिणा करि विधिपूर्वक भिक्षा मागै ॥ ४८ ॥

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥ भवन्मध्यं तु राजन्यो वै



इयस्तु भवदुत्तरम् ॥ ४९ ॥ मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भर्गिनीं  
निजाम् ॥ भिक्षां प्रथमं यां चैनं नान्वेमानयेत् ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञोपवीत जिसका होगयाहै ऐसा ब्राह्मण भवति भिक्षां देहि ऐसे पह-  
ले भवत् शब्दका उच्चारण करि भिक्षा मांगै और क्षत्रिय भिक्षां भवति देहि ऐसे भवत्  
शब्द बीचमें कहै और वैश्य भिक्षां देहि भवति ऐसे भवत् शब्दको अंतमें कहिकै  
भिक्षा मांगै ॥ ४९ ॥ उपनयन कर्मकी अंगभूत भिक्षाको पहले मातासे बहिनसे  
और माताकी निज बहिनि अर्थात् मौसिसे मांगै और जो इस ब्रह्मचारीको नाही  
करके अपमान न करै पहलीके न होनेमें औरोंसे मांगना चाहिये ॥ ५० ॥

समाहृत्य तु तद्वैक्ष्यं यावदर्थमप्यया ॥ निवेद्य गुरुवेऽश्रीयादार्चय्य  
प्राङ्मुखः शुचिः ॥ ५१ ॥ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ष्ये शस्यं दक्षिणाक्षु

खः ॥ श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्तेऽर्हं तं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः ॥ ५२ ॥

टीका—तृप्तिको योग्य उस भिक्षाको बहुतोंसे लायकै गुरुको निवेदन करि कपट  
रहित हो पूर्वको मुख करि आचमन करिकै भोजन करै ॥ ५१ ॥ अब काम्य भोजन  
कहते हैं आयुष्यकी इच्छा होय तो पूर्वको मुख करिकै भोजन करै यशकी इच्छा  
होय तो दक्षिणको मुख करिकै भोजन करै लक्ष्मीकी इच्छा होय तो पश्चिमको मुख क-  
रकै और सत्यकी इच्छा होय तो उत्तरको मुख करिकै भोजन करै ॥ ५२ ॥

उपरुपृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥ भुर्त्तवांचोपरुपृशेत्स  
म्यगंघ्रिः खानि च संस्पृशेत् ॥ ५३ ॥ पूजयेदर्शनं नित्यमद्याच्चै  
तर्कुत्सयन् ॥ दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ॥ ५४ ॥

टीका—नित्य कहिये ब्रह्मचर्यके पीछे भी ब्राह्मण आचमन करिकै सावधान  
चित्त हो भोजन करै फिर भोजन करिकै शास्त्रके अनुसार आचमन करै और  
जलसे इंद्रिय जे शिरमें स्थित छः छिद्र नाक नेत्र कान आदिका स्पर्श करै ॥ ५३ ॥  
सदा अन्नका पूजन करै अर्थात् हमारे प्राणोंके रक्षक हौ ऐसे ध्यान करै और इस  
अन्नकी निंदा न करताहुआ भोजन करै और देखकर हर्ष करै और प्रसन्न होय और  
सब अन्नोंको हमको सदा यहा मिलौ ऐसे कहिकै भक्तिसे स्तुति करता हुआ नम-  
स्कार करै ॥ ५४ ॥

पूजितं दर्शनं नित्यं बलमूर्जचर्यच्छति ॥ अपूजितं तु तदुक्तं मुभयं  
नाशयेदिदम् ॥ ५५ ॥ नोच्छिष्टं कस्यचिद्वाग्नाद्याच्चैव तथा  
न्तरा ॥ न चैवाध्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः कंचिद्भजेत् ॥ ५६ ॥



टीका—कारण यह है कि पूजन किया हुआ अन्न बल तथा वीर्यको देता है और बिना पूजन किये हुए खाया हुआ यह अन्न इन दोनोंका नाश करता है ॥ ५५ ॥ उच्छिष्ट जो जूठा है उसै किसीको न देवै और अंतरा कहिये दिन और संध्याके भोजनके बीचमें न खाय और दो बारमेंभी बहुत भोजन न करै और उच्छिष्ट कहिये जूठाहोके कही न जाय ॥ ५६ ॥

अनारोग्यमन्यायुष्यमस्वर्ग्यचातिभोजनम् ॥ अपुण्यलोकविद्विष्टं  
तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मेणविप्रस्तीर्थेननित्यकालमु  
पस्पृशेत् ॥ कायत्रैदशिकाभ्यां वा न पित्र्येण कदाचन ॥ ५८ ॥

टीका—अति भोजनमें दोष कहते हैं अतिभोजन आरोग्यता और आयुष्यको नाश करनेवाला है और स्वर्गके कारणभूत यज्ञादिकोंका विरोधी होनेसे स्वर्गकाभी नाश करनेवाला है अपवित्र और लोकमें निन्दित है तिससे उस अतिभोजनका त्याग करै अर्थात् बहुत कभी न खाय ॥ ५७ ॥ ब्राह्मण सदा ब्राह्मतीर्थसे आचमन करै अथवा क जो ब्रह्मा हैं तिनको काय और त्रिदश जे देवता हैं तिनके तीर्थको त्रैदशिक कहते हैं इन दोनोंसे आचमन करे और पितरोंका जो तीर्थ है उसको पित्र्य कहते हैं इस पित्र्य तीर्थसे कभी आचमन न करै ॥ ५८ ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते ॥ कायमङ्गुलिमूलेऽग्नेर्देवं  
पित्र्यं तयोरधः ॥ ५९ ॥ त्रिराचमेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो  
मुखम् ॥ खानि चैवं स्पृशेद्द्विरात्मानं शिरं एव च ॥ ६० ॥

टीका—अङ्गुष्ठमूलके नीचे ब्राह्मतीर्थ और कनिष्ठाअंगुलीके मूलमें काय तीर्थ और अङ्गुलियोंके अग्रमें देवतीर्थ और अङ्गुष्ठप्रदेशिनीके मध्यमें पित्र्य तीर्थ कहते हैं ॥ ५९ ॥ सामान्यतासे कहे हुए आचमनके करनेका क्रम कहते हैं पहले ब्रह्मआदि तीर्थोंसे जलके तीनि कुल्ले पीवै तिस पीछे ओठोंको बंद करके दाहिनी अंगुठके मूलसे दोवार मुखको धोवै और जलसे नाक कान आदि इंद्रियोको छुवै फिर आपने हृदय और शिरको जलसे छुवै ॥ ६० ॥

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेनधर्मवित् ॥ शौचेऽसुःसर्वेदार्चामे  
देकान्तेप्राङ्मुदङ्मुखः ॥ ६१ ॥ हृद्भाभिः पूर्यते विप्रः कण्ठगाभिस्तु  
भूमिपः ॥ वैश्वोऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ६२ ॥



टीका—धर्मज्ञपुरुष गरम न किये गये और फेन रहित जलसे ब्राह्मणादि ती-  
र्थों करिके शौचकी इच्छासे शुद्ध देशमें पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो सदा  
आचमनकरै ॥ ६१ ॥ आचमनका प्रमाण कहते हैं ब्राह्मण हृदयमें गये हुए और  
क्षत्रिय कंठमें गये हुये और वैश्य मुखमें गये हुए और शूद्र जीभ तथा ओठोंके कि-  
नारोंसे छुए हुए जलसे पवित्र होता है ॥ ६२ ॥

उद्धृते दक्षिणे पाणांबुपैवीत्युच्यते द्विर्जः॥संव्ये प्राचीनं आवीती  
निवीती कण्ठसंजने॥६३॥मेखलामर्जिनं दण्डमुपवीतं कर्मण्डलु  
म् ॥ अँप्सु प्रांस्य विनष्टानि गृहीतान्यानि मन्त्रंवत् ॥ ६४ ॥

टीका—उपवीतकी आचमनकी अंगता दिखानेको उपवीतहीहै लक्षण जिसका ऐसे  
प्राचीनावीती इत्यादि लक्षणोंको कहते हैं दाहिने हातको निकाल बाएँ कंधेपर रक्खे  
हुए और दाहिनी कोखमें लटके हुए यज्ञोपवीत अथवा वस्त्रसे द्विज उपवीती कहा  
जाता है और बाएँ कंधोको निकाल दाहिने कंधेपर स्थित और बाईं कोखमें लटके  
हुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे प्राचीनावीती कहाता है और दोनो भुजाओंमेंसे एककोभी  
न निकाल गलेमें पहिरेहुए यज्ञोपवीत वा वस्त्रसे निवीती कहा जाता है ॥ ६३ ॥  
टूटे फूटे हुए मेखला मृगचर्म दंड और कर्मण्डलुके जलमें डालकर अपने २ गृ-  
हमें कहे हुए मंत्रोंसे और नवीन धारण करै ॥ ६४ ॥

केशान्तःषोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते॥राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वै  
श्यस्य द्र्यधिके तर्तः ॥ ६५ ॥ अमन्त्रिकां तु कार्येयं स्त्रीणां  
मावृदशेषतः॥संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥६६॥

टीका—गृहमें कहाहुआ केशान्त कर्म ब्राह्मणका गर्भसे सोलहें वर्ष और क्षत्रि-  
यका गर्भसे बाईसमें वर्ष और वैश्यका गर्भसे चोविसमें वर्ष करना चाहिये  
॥ ६५ ॥ यह सब स्त्रियोंका जातकर्मादि क्रिया कलाप कहे हुए कालके क्रमसे श-  
रीर संस्कारके लिये विना मंत्रोंके करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ॥ पतिसेवां गुरौ  
वांसो गृहांथोऽग्निपरिक्रिया ॥६७॥ एष प्रोक्तोद्विजातीनामौपनय  
निको विधिः॥उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत ॥६८॥

टीका—इस्से स्त्रियोंकाभी उपनयन प्राप्त होने पर विशेष कहते है विवाहकी विधि  
ही मनुआदिने स्त्रियोंका वैदिक संस्कार अर्थात् उपनयन कहाहै और पतिकी सेवा



ही गुरुकुलमें वास और वेदका पठना कहा है और घरका कामही संध्यासवेरे समि-  
धोंका होम लेप अग्निकी सेवा कही है तिससे विवाह आदिकोंकोही यज्ञोपवीत आदिके  
स्थानमें जानना चाहिये ॥ ६७ ॥ द्विजातियोंकी दूसरे जन्मका सूचक और पवित्र  
यह उपनयन कहिये यज्ञोपवीतकी विधि आदिकाक्रिया कलाप कहा ॥ ६८ ॥

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥ आचारमग्निं कार्यं च  
संध्योपासनमेव च ॥ ६९ ॥ अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमु  
दङ्मुखः ॥ ब्रह्माञ्जलिं कृतोऽध्याप्यो लघुवासां जितेन्द्रियः ॥ ७० ॥

टीका—अब यज्ञोपवीत किये हुए को जो कर्म करने चाहिये सो कहते हैं गुरु  
शिष्यका यज्ञोपवीत करिके उसको पहले एका लिङ्गे गुदे पंच इत्यादि आगे कहा  
शौच और स्नान आचमन आदि आचार और अग्निमें संध्या सवेरे होम करना और  
मंत्रों समेत संध्योपासन आदिविधिको सिखावै ॥ ६९ ॥ वेद पठनेकी इच्छावाला  
शिष्य शास्त्रके अनुसार आचमन करि उत्तराभिमुख हो हाथोंको जोरि पवित्रवस्त्रोंको  
धारण करि जितेन्द्रिय हो गुरु करि पढाने योग्य है ॥ ७० ॥

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा ॥ संहृत्य हस्तावध्वर्यं  
सं हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥ ७१ ॥ व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्र  
हणं गुरोः ॥ सर्व्येन सर्व्यः स्पृष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—वेदाध्ययनके आरंभमें और अंतमें सदा गुरुके चरण ग्रहण करने योग्य है  
और हाथोंको जोरिके पठना चाहिये उसको ब्रह्माञ्जलि कहते हैं ॥ ७१ ॥ फेरहुए-  
सिधे हाथोंसे गुरुके चरणोंका ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिनेसे दाहिना और  
बाएसे बाएको ग्रहण करै ॥ ७२ ॥

अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यं कालमर्तन्द्रितः ॥ अधीष्व भो इति ब्रूया  
द्विरामोऽस्तिवतिचारमेत ॥ ७३ ॥ ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते  
च सर्वदा ॥ स्रवत्यंशोऽनोक्तं पूर्वं पुरस्ताच्च विशौर्यति ॥ ७४ ॥

टीका—गुरु आलस्य रहितहो पढनेके लिये उपस्थित शिष्यसे भी अधीष्व अर्थात्  
पढौ ऐसे पहले कहै और विराम हो ऐसे कहिके पढानेसे बंद होय ॥ ७३ ॥ ब्राह्मण  
वेदपाठके आरंभमें और अंतमें ओंकारका उच्चारण करै क्योंकि जिसमें पहिले ओं-  
कारका उच्चारण न हुआ वह हौले २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे ओं  
कारका उच्चारण न हुआ वह विसर जाता है ठरता नहीं ॥ ७४ ॥



प्राङ्मूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैवं पावितः ॥ प्राणायामैस्त्रिभिः पूतं  
स्तत ओंकारमर्हति ॥ ७५ ॥ अंकारं चाप्युकारं च मकारं च  
प्रजापतिः ॥ वेदत्रयान्निरदुहद्भुवःस्वरितीति च ॥ ७६ ॥

टीका—पूर्वको है अग्र जिनके ऐसे कुशोपर बैठा हुआ और हाथोंमें स्थितपवित्र कुशोंसे पवित्र किया हुआ और पंद्रह मात्रारूप तीन प्राणायामोंकरिके पवित्र किया हुआ द्विज ओंकारके उच्चारण योग्य होता है ॥ ७५ ॥ ब्रह्माने अकार उकार और मकारको ऋक् यजु साम इनी वेदोंसे तथा भूः भुवः स्व इने व्याहृतियों क्रमसे निकाला ॥ ७६ ॥

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदुहत् ॥ तदित्यृचोऽस्याः सां  
वित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ ७७ ॥ एतदक्षरमेतां च जपन्व्याह  
तिपूर्विकाम् । संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ ७८ ॥

टीका—तैसेही परम उत्कृष्ट स्थानमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने ऋक् यजु साम इन तीन वेदोंहीसे तद्वच इस प्रतीकसे कहे हुए सावित्रीके चौथाई २ तीन पाद निकाले ॥ ७७ ॥ इस ओंकाररूप अक्षरको और भूर्भुवस्स्वः इन व्याहृतियों समेत त्रिपदा सावित्रीको संध्याकालमें जपता हुआ वेदका जानने वाला ब्राह्मण आदि तीनों वेदोंके पढ़नेके फलको प्राप्त होता है इसीसे संध्याके कालमें प्रणव और तीनों व्याहृतियों समेत सावित्रीका जप करे यह विधि है ॥ ७८ ॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतंत्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मांसा  
त्वेच वाहिर्विमुच्यते ॥ ७९ ॥ एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रिय  
यास्वया । ब्रह्मक्षत्रियविज्योनिर्गहणां याति साधुषु ॥ ८० ॥

टीका—संध्यामें अथवा और कालमें प्रणव तीनों व्याहृती और सावित्री रूप तिगड्डेको ग्रामसे बाहर नदीके तीर वन आदिमें हजारवार जपिके बड़ेभी पापसे ऐसे छूट जाता है जैसे काँचलीसे साँप तिरसे पाप दूर होनेके लिये इस का जप अवश्य करना चाहिये ॥ ७९ ॥ संध्याके समय अथवा और कालमें इस सावित्री ऋचा करिके विसंयुक्त कहिये त्याग किया हुआ और सावित्री जपकी निजक्रियाकाहिके सायंकाल प्रातःकाल होम आदिरूपक्रिया करि अपनेकालमें त्यागकिया हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सज्जनोंमें निंदाको प्राप्त होता है तिरसे अपने कालमें सावित्रीके जपको और अपनी क्रियाको न छोड़े ॥ ८० ॥



ओंकारपूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः॥त्रिपदांचैवं सावि-  
त्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम् ॥ ८१ ॥ योऽधी तेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि व-  
र्षाण्यतन्द्रितः॥ स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ ८२ ॥

टीका—ओंकार जिनके पहले है ऐसि भूर्भुवस्स्वः ये तीनि व्याहृति और अक्षर  
ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अव्यय कहिये अविनाशिनी त्रिपदा सावित्री ब्रह्म जो वेद  
है तिसका मुख कहिये आदि जानना चाहिये क्योंकि इनको पहले पढ़कर वेदाध्य-  
यनका आरंभ होता है ॥ ८१ ॥ जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो प्रणव व्याहृतियुक्त  
सावित्रीको तीनि वर्षपर्यंत पढ़ता है वह वायुभूत अर्थात् वायुके समान कामचारी  
और ख जो ब्रह्म है सोई मूर्ती जिसकी ऐसा होजाता है शरीरके नाश होनेपर  
ब्रह्महीमें मिलजाता है ॥ ८२ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तर्पः॥सावित्र्यास्तु परं नास्ति  
मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥ ८३ ॥ क्षरंति सर्वा वैदिक्यो जुहोति य-  
जतिक्रियाः ॥ अक्षरं त्वक्षरं ज्ञेयं ब्रह्म चैवं प्रजापतिः ॥ ८४ ॥

टीका—ओं यह एक अक्षर परब्रह्मकी प्राप्ति का कारण होनेसे अक्षय ब्रह्म है  
और प्राणायाम परम तप है और मंत्र नहीं है और मौनसेभी सत्य अधिक है  
॥ ८३ ॥ वेदमें कहीहुई सब होमयज्ञ आदि क्रिया स्वरूपसे और फलसे नष्ट हो  
जाती हैं और प्रणवरूप अक्षर तौ अक्षय जानना चाहिये जिससे प्रजाओंका अधि-  
पति जो ब्रह्म है सोई यह ओंकार है ॥ ८४ ॥

विधिर्यज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दर्शभिर्गुणैः॥उपांशु स्याच्छतगुणः  
सां हस्तो मानसः स्मृतः॥ ८५ ॥ ये पाकर्यज्ञाश्चत्वारो विधिर्यज्ञस-  
मन्विताः ॥ सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८६ ॥

टीका—विधियज्ञ जे दर्श पौर्णमास आदि है तिनसे प्रणव आदिकोंका जो जपयज्ञ  
है सो दशगुणा अधिक है वहभी जो उपांशु होय अर्थात् जिसको समीपकाभी  
मनुष्य न सुनसकै उससे सौगुणा अधिक है और जो मानस है अर्थात् जिसमें  
जीभ और ओंठ कुछभी नचलें वह उससे भी हजार गुणा अधिक है ॥ ८५ ॥  
ब्रह्मयज्ञसे अन्य जे पांच महायज्ञोंके अंतर्गत होम बलिकर्म नित्यश्राद्ध अतिथि  
भोजन ये चारि पाकयज्ञ और दर्शपौर्णमास आदि विधियज्ञ ये सब जपयज्ञकी  
सोलहीं कलाको भी नहीं प्राप्त होते हैं अर्थात् ये सब जपयज्ञके सोलहें हिस्से  
की भी बराबर नहीं हैं ॥ ८६ ॥



जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः॥कुर्यादैन्यत्र वा कुर्या  
 न्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ ८७ ॥ इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपि  
 हारिषु ॥ संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ॥ ८८ ॥

टीका—ब्राह्मण जपसेही निस्संदेह सिद्धिको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष प्राप्तिके योग्य होता है और जो वैदिक यागादिक हैं तिनको करै अथवा न करै क्यों कि ब्राह्मण मैत्र कहा जाता है॥८७॥ अब सब वर्णोंके करनेयोग्य और सब पुरुषोंका उपयोगी ऐसे इंद्रियोंके संयमको कहते हैं चित्तके हरणवाले विषयोंमें वर्तमान इंद्रियोंके रोकनेमें ऐसे यत्न करै जैसे सारथी घोड़ोंके रोकनेमें करता है ॥ ८८ ॥

एकादशेन्द्रियाण्यहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः ॥ तानि सम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥८९॥ श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैवं पञ्चमी ॥ पार्थुरस्थं हस्तपादं वाक्चैवं दशमी स्मृता ॥ ९० ॥

टीका—पहले पंडित जिन ग्यारह इंद्रियोंको कहते हैं उन सबोंको अबके लोगोंकी शिक्षाके लिये कर्मसे और नामसे क्रमसे कहोंगा ॥ ८९ ॥ उन ग्यारहोंमें कान त्वचा आँखें जीभ और पाचमी नाक गुदा लिंग हाथ पैर और दशमी वाक् ये दशो इंद्रियां हैं ॥ ९० ॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः ॥ कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥९१॥ एकादशं मनो ज्ञेयं स्वर्गुणेनोभयात्मकम् ॥ यस्मिञ्जिते जितेर्वेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ ॥ ९२ ॥

टीका—इनमें क्रमसे पाँच श्रोत्र आदि बुद्धि इंद्रिय हैं और दायु कहिये गुदा आदि पांच इंद्रियोंको कर्मेन्द्रिय कहते हैं ॥ ९१ ॥ ग्यारवाँ भीतरी इंद्रिय मन जानिये जो संकल्परूप दोनों इंद्रियोंके गणका प्रवर्तक रूप है इसीसे जिस मनके जीतनेपर दोनो पंचक अर्थात् बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके गण जीते जाते हैं ॥ ९२ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्॥संनियम्यं तु तान्येवं ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ९३॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषां कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥

टीका—इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे निस्संदेह दृष्ट अदृष्ट दोषको प्राप्त होता है फिर उन्हीं इंद्रियोंको भली भाँति रोककै सिद्धि जो मोक्ष आदि पुरुषार्थ की योग्यता—



को प्राप्त होता है तिससे इन्द्रियोंको रोकै ॥ ९३ ॥ काम जो अभिलाष है सो काम जे विषयहैं तिनके भोगनेसे कभी नहीं शान्त होता है घीके डालनेसे अग्निके समान पुनः अधिक बढ़ता है ॥ ९४ ॥

यथैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यथैतान्केवलंस्त्यजेत् ॥ प्रापणात्सर्वकामा  
नां परित्यागो विशिष्यते ॥ ९५ ॥ न तथैतानि शक्यन्ते संनिय  
न्तुमसेवया ॥ विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यंशः ॥ ९६ ॥

टीका—जो इन सब विषयोंको प्राप्त होय और जो इनकी उपेक्षा करै उन दोनोंमें विषयोंकी उपेक्षा करनेवाला श्रेष्ठ है तिससे सब कामोंकी प्राप्तिसे उनकी उपेक्षा प्रशंसा योग्य है ॥ ९५ ॥ अब इन्द्रियोंके संयमका उपाय कहतेहैं। विषयोंमें लगीहुई इन्द्रिय उनविषयोंके छोड़नेसे रोकनेको नहीं समर्थ हैं जैसे सदा ज्ञानसे रुक जाती हैं ॥ ९६ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ॥ न विप्रदुष्टभावंस्य सि  
द्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ९७ ॥ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा  
च यो नरः ॥ न हर्षयति ग्लायति वा स विज्ञो यो जितेन्द्रियः ॥ ९८ ॥

टीका—वेद अथवा दान यज्ञ नियम और तप माला आदि विषयों की सेवा वाले पुरुषको कभी सिद्धिके लिये नहीं होते ॥ ९७ ॥ स्तुतिका वचन तथा निंदाका वचन सुनिके और छूनेमें सुख देनेवाले वस्त्र आदि तथा छूनेमें दुःख देनेवाले मेढोके बालोंके कंवल आदिकों छूके और कुरूप सुरूपको देखि और स्वाद युक्त तथा विना स्वादकी वस्तुको खायके और सुगंधि तथा विना सुगंधकी वस्तुको सूंघके जिसको हर्षविषाद नहीं होता वह जितेन्द्रिय जानना चाहिये ॥ ९८ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ॥ तेनास्य क्षरति प्रज्ञा  
दृतेः पात्रादेर्वादेकम् ॥ ९९ ॥ वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च  
मनस्तथा ॥ सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम् ॥ १०० ॥

टीका—सब इन्द्रियोंमेंसे जो एक इन्द्रिय विषयोंमें लग्न होजाय तो विषयोंमें लगें हुये इस मनुष्यके दूसरी इन्द्रियोंसेभी तत्त्वज्ञान ऐसे जाता रहताहै जैसे चर्मके जलपात्रके जल ॥ ९९ ॥ बाहरके इन्द्रिय समूहको वशमें करिके और मनको रोकिके उपायोंसे अपनी देहको पीटा न देता हुआ सब पुरुषार्थोंका भली भाँति साधन करै ॥ १०० ॥



पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ पश्चिमां तु समा-  
सीनः सम्यग्दक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥ पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठन्नैर्मनो  
व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ १०२ ॥

टीका-प्रातःकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ सूर्यके उदयपर्यंत स्थित  
रहै और सायंकालकी संध्यामें सावित्रीको जपता हुआ नक्षत्रोंके भली भांती लक्षित  
होनेतक स्थित रहै ॥ १०१ ॥ प्रातःकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ रात्रिके  
पापको दूरि करता है और सायंकालकी संध्यामें स्थित जप करता हुआ दिनमें किये  
हुए पापको दूरि करता है ॥ १०२ ॥

न तिष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्वहिर्का  
र्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ १०३ ॥ अपां समोपे नियतो नैत्यकं वि-  
धिमास्थितः ॥ सावित्रीमप्यधीयते गत्वारण्यं समाहितः ॥ १०४ ॥

टीका-जो प्रातःकालकी संध्या नहीं करता और पिछिली अर्थात् सायंकालकी  
संध्याकी उपासना नहीं करता अर्थात् उस कालमें कहे हुए जप आदिको नहीं करता  
है वह शूद्रके समान सब ब्राह्मणके कर्म और अति सत्कारसे बाहर करने योग्य है ॥  
॥ १०३ ॥ बहुत वेदके पढ़नेकी असमर्थतामें ब्रह्मयज्ञरूप यह सावित्रीमात्रके पढ़नेका  
विधान कहते हैं वन आदि अन्यदेशमें जाके नदीआदिके जलके समीप इंद्रियोंको  
रोकि सावधान मन हो ब्रह्मयज्ञरूप नित्य विधिको किया चाहता पुरुष प्रणव तथा  
तीनि व्याहृतियों करी युक्त सावित्रीकाभी जपकरै ॥ १०४ ॥

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥ नानुरोधोऽस्त्यनध्या-  
ये होममन्त्रेषु चैव हि ॥ १०५ ॥ नैत्यके नास्त्यबध्यायो ब्रह्मस-  
त्रं हि तत्स्मृतम् ॥ ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ १०६ ॥

टीका-वेदोपकरण कहिये वेदके अंगशिक्षा आदिमें और नित्य करनेयोग्य स्वा-  
ध्यायमें और ब्रह्मयज्ञरूप होमके मंत्रोंमें अनध्यायका आदर नहीं है ॥ १०५ ॥ नित्य  
करनेयोग्य जपयज्ञमें अनध्याय नहीं है मनु आदिमें उसको ब्रह्मयज्ञ कहा है ब्रह्मा-  
हुति जो हविहै उसका होम वह अनध्यायमें भी वषट्कार किया गया पुण्य कहिये  
पवित्रही है ॥ १०६ ॥

यः स्वाध्यायमधीतेऽदं विधिना नियतः शुचिः ॥ तस्य नित्यं क्ष-  
रत्येष पयो दधि घृतं मधु ॥ १०७ ॥ अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः



शय्यां गुरोर्हितम् ॥ अं समावर्तनात्कुर्व्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०८ ॥

टीका—जो जितेंद्रिय शुद्धपुरुष एक वर्षतक विधिपूर्वक कह हुए अंगों समेत स्वाध्याय कहिये जपयज्ञको करता है उसका यह जपयज्ञ क्षीर आदिकोंसे पितरोंको प्रसन्न करता है वे प्रसन्न हो जपयज्ञ करनेवालेको सब कामोंसे तृप्त करते हैं ॥ १०७ ॥ यज्ञोपवीत किया हुआ ब्रह्मचारी सायंकाल प्रातःकाल समिधोंका होम भिक्षासमूहका लाना खाटपर न सोना अर्थात् नीचे सोना और जलका लाना आदि गुरुका हित गृहस्थीमें जानेपर्यंत करै ॥ १०८ ॥

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानंदो धार्मिकः शुचिः ॥ अतः शक्तोऽर्थदः  
साधुः संवोऽध्याप्यो दश धर्मतः १०९ नापृष्टः कस्यचिन्नृणां च  
न्यायेन पृच्छतः ॥ जानन्नपि हि मेधावी जडवेल्लोकांश्चरेत् ११०

टीका—कैसा शिष्य पढाना चाहिये सो कहते हैं । आचार्यका पुत्र १ सेवाकरनेवाला २ दूसरेप्रकारके ज्ञान देनेवाला ३ धर्मका जाननेवाला ४ मृत्तिका तथा जल आदिसे शुद्ध ५ बांधव ६ लेने देनेमें समर्थ ७ धनदेनेवाला ८ द्रोह न करनेवाला ९ ज्ञातिका १० ये दशप्रकारके शिष्य पढाने योग्य है ॥ १०९ ॥ जोकिसीने थोड़े अक्षरोमें अथवा विना स्वरके पढा होय उसको अर्थविना पूछे उसके तत्व न प्रकाशित करै और शिष्यसे तौ विना पूछे भी कहै और भक्ति श्रद्धा आदि जे पूछनेके धर्म हैं तिनको छोडकर पूछै ऐसे के पूछनेपर भी न कहै बुद्धिमान् पुरुष जानता हुवाभी लोकमें गुंगेके समान रहै ॥ ११० ॥

अधर्मेण च यः प्राह यैश्चाधर्मेण पृच्छति ॥ तयोरन्यंतरः प्रैति  
विद्वे<sup>१३</sup> षं वोऽधिगच्छति ॥ १११ ॥ धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा  
वापि तद्विधा ॥ तत्र विद्यां न वक्तव्या शुभं बीजमेवो<sup>१३</sup> र ११२ ॥

टीका—अधर्मसे पूछा हुआभी जो जिस्से कहता है और जो जिस्से अन्यायकरि पूछता है उनमेसे एक मरजाता है अथवा उसके साथ द्वेषी होजाता है ॥ १११ ॥ जिस शिष्यके पढानेमें धर्म अर्थ न होय अथवा पढनेके अनुरूप सेवा न होय वहाँ विद्या न देनी चाहिये वह देना ऐसे निष्फल है जैसे ऊपरमे बोया हुआ धान आदि बीज नहीं उगता ॥ ११२ ॥

विद्यैवैवं समं कामं मर्त्तव्यं ब्रह्मवादिना ॥ आपद्यपि हि घोरयां न  
त्वेनामिरि<sup>१३</sup> णे वयेत् ॥ ११३ ॥ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शैवाधिस्ते<sup>१३</sup> ऽ



स्मिं रक्षं माम्॥ असूर्यकाय मां मांदास्तथासूर्यां वीर्यवत्तमां ॥ ११४ ॥

टीका-वेद पढानेवालेको विद्याके साथही मरना अच्छा सब भांति पढानेके योग्य शिष्यके नहोनेरूप आपत्तिमेंभी इस विद्याको ऊपरमें न वोवै ॥ ११३ ॥ विद्याकी अधिष्ठाता देवता किसी अध्यापकके समीप आके ऐसे बोली कि मैं तुम्हारी निधि हों मेरी रक्षा करौ और असूया आदिदोषवाले मनुष्योंको मुझे मत दे सत्यकी अधिकतासे मैं वीर्यवती होऊं ॥ ११४ ॥

यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतब्रह्मचारिणम् ॥ तस्मै मां ब्रूहि विप्राय  
निधिर्पायाप्रमादिने ॥ ११५ ॥ ब्रह्मै यस्त्वननुज्ञातमधीयानाद  
वापुर्यात् ॥ स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ॥ ११६ ॥

टीका-जिस शिष्यको शुद्ध जितेंद्रिय और ब्रह्मचारी जानतेहो उस विद्यारूपि निधिके रक्षा करनेवाले प्रमाद रहितको मुझे दे ॥ ११५ ॥ जो अभ्यासके लिये पढते हुए अथवा औरको पढाते हुएसे उसकी आज्ञा विना वेदको ग्रहण करता है तौ वेदका चोर वह मनुष्य नरकको जाताहै तिससे ऐसा न करै ॥ ११६ ॥

लौकिकं वैदिकं वापि तथाऽऽध्यात्मिकमेव च ॥ अददीत यतो  
ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत् ॥ ११७ ॥ सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं वि  
प्रः सुर्यन्त्रितः॥ नान्यन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वांशी सर्वविक्रयी ॥ ११८ ॥

टीका-लौकिक कहिये अर्थशास्त्र आदिका ज्ञान और वैदिक कहिये वेदके अर्थका ज्ञान तथा आध्यात्मिक कहिये ब्रह्मज्ञान इनको जिसे ग्रहण करै बहुमान्योंके मध्यमें स्थित उसको पहलें नमस्कार करै लौकिक आदि ज्ञान देनेवाले तीनोंके समूहमें क्रमसे एकसे एक मान्यहै ॥ ११७ ॥ केवल सावित्रीहीका जन्मनेवाला जितेंद्रिय ब्राह्मण मान्य है और निषिद्ध भोजनआदिका करनेवाला और निषिद्ध वस्तुओंका बेचनेवाला तीनिवेदोंका ज्ञाताभी मानने योग्य नहींहै ॥ ११८ ॥

शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसां न समाविशेत् ॥ शय्यासनस्थश्चैव न  
प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥ ११९ ॥ ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनेः स्थ  
विर आयति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तां प्रतिपद्यते ॥ १२० ॥

टीका-विद्या आदि मे अधिक अथवा गुरुकरके मुख्यतासे अंगीकार कियी हुई शय्या अथवा आसनपर न बैठै और आप जो शय्या अथवा आसनपर बैठा होय तौ गुरुके आनेपर उठिकै नमस्कार करै ॥ ११९ ॥ अवस्था



और विद्या आदिसे वृद्धके आनेपर थोड़ी अवस्थावालेके प्राण उपरको चढ़ते हैं अर्थात् देहसे बाहर निकलना चाहते हैं उन प्राणोंको वृद्धके अभ्युत्थान देने और नमस्कार करनेसे फिर स्वस्थ करता है तिससे बूढ़को उठकर प्रणामकरना चाहिये १२०

अभिवादनं शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥ चत्वारि तस्य वर्धन्ते  
आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ १२१ ॥ अभिवादात्परं विप्रो ज्यायांसम  
भिवादयन् ॥ असौ नामार्हमस्मीति स्वं नाम परीकीर्तयेत् १२२

टीका—उठकर सदा वृद्धको नमस्कार करनेवाले और वृद्धकी सेवा करनेवाले मनुष्यकी आयु विद्या यश और बल ये चारों बढ़ते हैं ॥ १२१ ॥ अब नमस्कार की विधि कहते हैं वृद्धको नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण आदि नमस्कारके पीछे मैं नमस्कार करता हूँ यह कहनेके पीछे मेरा यह नाम है ऐसे अपने नामको कहें ॥ १२२ ॥

नामधेयस्य ये केचिदभिवादनं न जानते ॥ तान्प्राज्ञोहं समितिं ब्रूयात्  
स्त्रियः सर्वस्तथैव च ॥ १२३ ॥ भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नो  
ऽभिवादने ॥ नाम्नां स्वरूपं भावो हि भोर्भाव ऋषिभिः स्मृतः ॥ १२४ ॥

टीका—नमस्कार करनेके योग्य जो कोई पुरुष संस्कृतविद्या न जाननेके कारण नामधेयके उच्चारण पूर्वक नमस्कारको नहीं जानते हैं उनसे नमस्कार करनेवाला बुद्धिमानऐसे कहै कि मैं नमस्कार करता हूँ और सब स्त्रियोंसे भी ऐसे ही कहै ॥ १२३ ॥ नमस्कारमें कहे हुए अपने नामके पीछे नमस्कार करनेयोग्यके संबोधनके लिये भो शब्दका उच्चारण करै इसीसे ऋषियो नमस्कार करने योग्यके नामके स्वरूपकी सत्ता भो शब्दहीमें कही है जैसे अभिवादये शुभशर्माऽहमस्मि भोः अर्थ यह है कि नमस्कारकरनेवाला मैं शुभशर्मा हूँ ॥ १२४ ॥

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ॥ अकारश्चास्य  
नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः पुनः ॥ १२५ ॥

टीका—नमस्कार करनेपर बदलेका नमस्कार करनेवाला ब्राह्मण भो सौम्यआयुष्मान्भव ऐसा कहै और नमस्कार करनेवालेके नामके अंतके पहले अक्षरके छुट उच्चारण करै ॥ १२५ ॥

यो न वेत्यभिवादनस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ॥ नाभिवाद्यः स विदु  
षा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ १२६ ॥ ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रं च



न्धुमनामयम् ॥ वैश्यं क्षेमं समांगम्य शूद्रमारोग्यमेवं च ॥ १२७ ॥

टीका—जो ब्राह्मण किये हुए नमस्कारके योग्य बदलेका नमस्कार नहीं जानता है वह विद्वान करिके नमस्कार करनेयोग्य नहीं है यह शूद्रके समान है ॥ २६ ॥ मि-लनेपर छोटी अवस्थावाले अथवा बराबर अवस्थाके नमस्कार न करनेवाले भी ब्राह्मणसे कुशल पूछे और क्षत्रियसे अनामय तथा वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्य पूछे ॥ २७ ॥

अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीर्यानपि यो भवेत् ॥ भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ॥ १२८ ॥ परंपत्नी तु या स्त्रीर्यादसंबन्धा च योनिः ॥ तां ब्रूयाद्भवन्तीत्येवं सुभगे भगिनीति च ॥ १२९ ॥

टीका—बदलेके नमस्कारके समय अथवा और समयमें दीक्षित अवस्थामें छोटा भी हो तौभी धर्मज्ञपुरुष उसका नाम न उच्चारण करे किंतु भोदीक्षित ऐसे कहकै बोलै ॥ २८ ॥ जो पराईस्त्री होय और जिस्से कुछ योनिसंबंध न होय अर्थात् बहिन आदि न होय उससे बोलनेके समय भवति, सुभगे, भगिनी. ऐसे कहिकै बोलै ॥ २९ ॥

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरुन् ॥ अंसावहंभि तिसू-  
र्यात्प्रत्युत्थाय यवीयसः ॥ १३० ॥ मातृष्वसा मातुलानी श्वशू-  
रथं पितृष्वसा ॥ संपूज्यां गुरुपत्नीवत्संमास्तां गुरुभार्यया ॥ १३१ ॥

टीका—मामा चाचा ससुर ऋत्विज गुरु जो ये छोटेभी होयतौ इनके आनेपर उठके असौ अहं अर्थात् यह मैं ऐसा कहैं निजनाम प्रकट करै नमस्कार न करैं ॥ ३० ॥ मावसी, मामी, सास, बुआ ये सब गुरुकी स्त्रीके समान उत्थान अभि-वादन आसन देने आदिसे पूजनेयोग्य हैं क्योंकि वे गुरुभार्याके समान हैं ॥ ३१ ॥

भ्रातृभार्योपसंग्राह्या सर्वर्णाहंन्यहन्येपि ॥ विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञा-  
तिसंबन्धियोषितः ॥ १३२ ॥ पितृभगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च  
स्वंसर्यापि ॥ मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी ॥ १३३ ॥

टीका—जेठेभाईकी सजातीया स्त्रीके प्रतिदिनि चरण छुवै और जातिकी अर्थात् पि-तृपक्षकी चाचा आदि और संबंधी मातापक्षके तथा ससुरआदि इनकी स्त्रियोंके पर-देशसे आके चरण छुवै प्रतिदिन नहीं ॥ ३२ ॥ पिताकी बहिन तथा माताकी और अपनी बड़ी बहिन इन सबका आदरमदन माताके समानकरै परन्तु माता इन सबसे बहुतही अधिक है ॥ ३३ ॥



दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम् ॥ त्र्यब्दपूर्वं श्रो-  
त्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥ १३४ ॥ ब्राह्मणं दशवर्षं तु श-  
तवर्षं तु भूमिपम् ॥ पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता १३५

टीका—आगे कहे हुए विद्यादि गुणहीन एक पुर वा ग्रामके वसनेवालोंमें एक दश-  
वर्ष बड़ा होय और एक उतनाही छोटा होय तौभी सख्य कहिये मित्रता होती है  
और गीत आदि कलाओंके जानने वालोंमें पांचवर्षकी बड़ाई. छुटाईमें मित्रता होती  
है और श्रोत्रियों तीनिवर्षकी छुटाई बड़ाईमें और सपिंडोंकी बहुतही थोड़े कालकीमें  
मित्रता होती है और सर्वत्र कहे हुए कालसे उपरांत ज्येष्ठका व्यवहार होता है ॥ ३४ ॥  
ब्राह्मण दशवर्षका होय और क्षत्रिय सौ वर्षका तौ उन दोनोंको पितापुत्रके समान  
जानै उनमें ब्राह्मण पिता है ॥ ३५ ॥

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ॥ एतानि मान्यस्थाना-  
नि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ ३६ ॥ पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुण-  
वन्ति च ॥ यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः ॥ १३७ ॥

टीका—वित्तकहिये न्यायसे जोड़ा हुआ धन बंधु कहिये चाचा आदि तथा वय अ-  
धिक अवस्था कर्म श्रौत स्मार्त आदि विद्या वेदके अर्थका तत्त्व जानना ये पांच  
मान्यताके कारण है इनमें आगे आगे एकसे एक अधिक है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण आदि  
तीनोंवर्णोंमें पहले कहे हुए पांच गुणोंमेंसे जिसमें जितने अधिक हैं वह उतनाही  
माननेयोग्य है और नव्वे वर्षसे अधिक अवस्थाको पहुँचा हुआ शूद्र द्विजोंकोभी मा-  
ननेयोग्य है सौवर्षके दशभाग करनेपर नव्वेसे ऊपर दशमी अवस्था होती है ॥ १३७ ॥

चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥ स्नातकस्य च  
राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च ॥ ३८ ॥ तेषां तु समवेतानां मान्यो  
स्नातकपार्थिवौ ॥ राजस्नातकयोश्चैवं स्नातको नृपमानभाक् ३९

टीका—चक्रयुक्त रथ आदि सवारीमें बैठे हुएको, और नव्वेसे अधिक अवस्थावा-  
लेको, रोगीको, बोझवालेको, स्त्रीको, स्नातकको, राजाको वर जो विवाहको  
जाताहो उसको मार्ग देना चाहिये अर्थात् इनमेंसे कोई आगे आता होय तौ मा-  
न्यसे हटि जाय ॥ ३८ ॥ इकठे हुए उन सबोंमें राजा और स्नातक मान्य हैं और  
राजा तथा स्नातकमें राजाकी अपेक्षा स्नातक मान्य है ॥ ३९ ॥



उपनीयं तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्विजः ॥ सकल्पं सरहस्यं च तं-  
माचार्यं प्रचक्षते ॥ १४० ॥ एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुं-  
नः योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥ १४१ ॥

टीका—जो ब्राह्मण शिष्यका यज्ञोवीत करके कल्प कहिये यज्ञविधि और र-  
हस्य कहिये उपनिषद सहित सब वेदकी शाखाको पढाताहै उसको आचार्य कहते  
हैं ॥ १४० ॥ वेदके एकदेश अर्थात् मंत्र वा ब्राह्मणको और वेदके अंग व्याकर-  
ण आदिकोंको जीविकाकेलिये जो पढताहै वह उपाध्याय कहा जाता है ॥ १४१ ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि ॥ संभावयति चात्रे  
न सं विप्रो गुरुरुच्यते ॥ १४२ ॥ अग्न्याधेयं पाकयज्ञानग्निष्टोमादि-  
कान्मखान् ॥ यः करोति वृतो यस्य स तस्य त्विगि होच्यते ॥ १४३ ॥

टीका—जो गर्भाधान आदि संस्कारोंको विधिपूर्वक करता है और अन्नसे बढाता है  
वह ब्राह्मण गुरु कहा जाता है गर्भाधान करनेसे यहाँ पिताहीको गुरु कहाहै ॥ १४२ ॥  
वरण किया हुआ जो ब्राह्मण अग्न्याधेय कहिये आहवनीय आदि अग्नियोंके उत्पन्न  
करनेवाले कर्मको और पाकयज्ञ कहिये अष्टकादिकोंको और अग्निष्टोम आदि यज्ञोंको  
जिसकी ओरसे करताहै वह उसका ऋत्विक् कहाताहै ॥ १४३ ॥

य आवृणोत्यवित्तं ब्रह्मणा श्रवणाबुधौ ॥ स माता स पिता ज्ञेय  
स्तं न दुहोत्कदाचन ॥ १४४ ॥ उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां  
शतं पिता ॥ सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १४५ ॥

टीका—जो ब्राह्मण वर्ण और स्वरकी विगुणतासे रहित सत्यरूप वेदसे दोनों का-  
नोंको भरताहै वह बड़े उपकार करनेवाले गुणके योगसे मातापिताके समान जानना  
चाहिये उससे कभी द्रोह न करै ॥ १४४ ॥ दशउपाध्यायोंकी अपेक्षा एक आचार्य और  
एकसो आचार्योंकी अपेक्षा एक पिता और हजार पिताओंकी अपेक्षा एक माता गौ-  
रवमें अधिक होती है ॥ १४५ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मर्दः पिता ॥ ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रे-  
त्यं चेहं च शश्वतम् ॥ १४६ ॥ कामान्माता पिता चैनं यदुत्पाद-  
यतो मिथः ॥ संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥ १४७ ॥

टीका—उत्पन्नकरनेवाला और वेद पढानेवाला ये दोनो पिताहैं उनमें,  
आचार्य पितासे श्रेष्ठ है क्योंकि ब्राह्मणका ब्रह्मजन्मही इसी लोक तथा परलो-



कमें शाश्वत कहिये सदा मोक्षरूप फलका देनेवाला है ॥ ४६ ॥ मातापिता जो कामके वशमें होके इस बालकको उत्पन्न करतेहैं जिस जिस योनीकी माताकी कोखमें उत्पन्न होताहै उसके वैसेही हाथ पैर होतेहैं ॥ ४७ ॥

आचार्यस्त्वस्यै यीं जाति विधिर्वद्रेदपारंगः ॥ उत्पादयति सावि-  
त्र्या सां सत्या सांऽजरांऽमरां ॥४८॥ अल्पं वा बहु वा यस्य श्रु-  
तस्योपकरोति यः॥तमपि हे गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तथा॥४९॥

टीका—वेदका जाननेवाला आचार्य जिस जाति कहिये जन्मको विधिपूर्वक गाय-  
त्रीके उपदेशसे करताहै वह जन्म सत्यहै और ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होनेसे अजर अमर  
है ॥ ४८ ॥ जो उपाध्याय जिस शिष्यका थोडा वा बहुत वेदके पढानेसे उपकार  
करताहै उसको भी शास्त्रपाठनरूप उपकारसे इस शास्त्रसे गुरु जानै ॥ ४९ ॥

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता॥बालोऽपि विप्रो  
वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः॥१५०॥अध्यापयामास पितृन् शि-  
शुराङ्गिरसःकविः॥पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्॥१५१॥

टीका—वेद सुननेके लिये जन्मका देनेवाला अर्थात् यज्ञोपवीत करनेवाला और  
अपने धर्मका सिखानेवाला अर्थात् वेदके अर्थका व्याख्यान करनेवाला बालक वृद्ध  
कहिये जेठेका धर्मसे पिता होताहै अर्थात् पिताके समान मानने योग्य है ॥ १५० ॥  
आंगिरस ऋषिका पुत्र विद्वान् बालक अधिक अवस्थाके पितृव्य कहिये चचा ताऊ  
और उनके पुत्रोंको पढाताथा उनको ज्ञानसे शिष्य जानि भो पुत्रकाः अर्थात् हे पुत्रो  
ऐसा बोले ॥ १५१ ॥

ने तमर्थमपृच्छन्तः देवानागतमन्यवः ॥ देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्या-  
यः ॥ शिशुरुक्तवान्॥१५२॥अज्ञो भवति वै बालः पिता भव-  
ति मन्त्रदः॥अज्ञं हि बालमित्याहुः पि ते त्येव तु मन्त्रदम्॥१५३॥

टीका—पिताके तुल्य और पुत्रकाः ऐसे कहे गये वे क्रोधयुक्त हो पुत्रक शब्दका  
अर्थ देवतोंमें पूछते भये तब देवताओंने मिलकर इनसे कहा कि बालकने तुमको  
योग्य कहा ॥ १५२ ॥ जो कुछ नही जानताहै वही बालक होता है और मन्त्रका  
देनेवाला अर्थात् वेदका पढानेवाला पिता होताहै इस कारण अज्ञ को बालक और  
मन्त्रदेनेवालेको पिता कहते हैं ॥ १५३ ॥

न हार्यनैनं पलितैनं विस्तेन न बन्धुभिः ॥ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनू-



चानः स नो महान् ॥ १५४ ॥ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां  
तु वीर्यतः वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ १५५ ॥

टीका—न बहुत वर्षोंसे और न सपेद डाढीमूछोंसे न बहुत धनसे न चचाताऊ आदि बहुतसे भाईयोंसे अथवा इकट्ठे हुएभी इन सबोंसे बड़ापण नहीं होता है किंतु ऋषियोंने यह धर्म कियाहै कि जो हम लोगोंमें अंगोंसमेत वेदका पढनेवालाहै वही बड़ाहै ॥ १५४ ॥ ब्राह्मणोंकी ज्ञानसे ज्येष्ठता होतीहै और क्षत्रियोंकी बलसे और वैश्योंकी धनधान्यसे और शूद्रोंकी जन्मसे श्रेष्ठता होतीहै ॥ १५५ ॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः॥ यो वै युवाप्यधीयान  
स्तं देवाः स्थविरं विदुः॥ १५६ ॥ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म  
मयो मृगः॥ यश्च विप्रोऽनधीर्यानस्त्रयस्ते नाम विभ्रति ॥ १५७ ॥

टीका—शिरके बाल सपेद होनेसे वृद्ध नहीं होताहै जो जवानभी पढा लिखा होय तौ उसको वृद्ध कहतेहैं ॥ १५६ ॥ जैसे काठका बना हुआ हाथी और जैसे चमड़ेका बना हुआ मृग और विना पढा हुआ ब्राह्मण ये तीनों केवल नामको धारण करते हैं शत्रुवध आदि हाथी आदिकोंके कामको नहीं करसकते हैं ॥ १५७ ॥

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला॥ यथा चाज्ञोऽफलं  
दानं तथा विप्रोऽर्जुनोऽफलः॥ १५८ ॥ अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयो  
ऽनुशासनम्॥ वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धैर्यमिच्छता

टीका—जैसे नपुंसक स्त्रियोंमें निष्फल होताहै और गौवोंमें गौ और जैसे मूखमें दान निष्फल होताहै तैसे श्रौत स्मार्तकर्मोंमें अयोग्य होनेसे विना पढा ब्राह्मण निष्फल होताहै ॥ १५८ ॥ शिष्योंको अतिहिंसाके विनाही कल्याण देनेवाले अर्थकी शिक्षा करनी चाहिये और धर्म बुद्धिकी इच्छा करनेवाले पुरुषको मधुर कहिये प्रीति उत्पन्न करनेवाली वाणी मंदस्वरसे कहनी चाहिये ॥ १५९ ॥

यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुणे च सर्वदा॥ सर्वैः सर्वमवाप्नोति वेदा  
न्तोपगतं फलम् ॥ १६० ॥ नारुतुदः स्यादात्तोऽपि न परद्रोहक  
र्मधीः॥ यथास्योद्विजते वाचा नालोक्या तामुदीरयेत् ॥ १६१ ॥

टीका—जिसके वाणी और मन दोनों शुद्ध होते हैं और वाणी मिथ्या आदिसे दूषित नहीं होती और मन राग द्वेष आदिसै दूषित नहीं होताहै अर्थात्



जिसके वाणी और मन निषिद्ध विषयोंसे भली भांति बचे रहतेहैं वह वेदांतके संपूर्ण मोक्षरूप यथार्थ फलको प्राप्त होताहै ॥ १६० ॥ पीडित होनेपरभी किसीसे मर्मको दुःख देनेवाले वचन न कहै और दूसरेके द्रोहकी बुद्धि न करै इसकी जिसवाणीसे दूसरेका मन दुःखी होय ऐसी अनालोक्या कहिये स्वर्गआदि लोकोंकी प्राप्तिसे विरुद्ध वाणीको न कहै ॥ १६१ ॥

संमोनाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिर्व ॥ अमृतस्येवं चांकाई-  
क्षेदवमानस्य संवेदा ॥ ६२ ॥ सुखं ह्यवर्मतः शैते सुखं च प्रतिबु-  
ध्यते ॥ सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥ १६३ ॥

टीका—ब्राह्मण सन्मानसे सदा विषके समान डरै और सदा अमृतके समान अप-  
मानकी चाहना करै ॥ १६२ ॥ दूसरेकरि अपमान किया हुआ पुरुष सुखसे सोता-  
है और सुखसे जागताहै और सुखसे इस लोकमें विचरताहै और अपमान करनेवाला  
उस पापसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ १६३ ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः॥ गुरौ वसन् संचिनुया-  
द्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥ ६४ ॥ तपोविशेषैर्विधिर्व्रतैश्च विधिचो-  
दितैः ॥ वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना ॥ १६५ ॥

टीका—जातकर्मको आदिले यज्ञोपवीततक क्रमसे कहे हुए उपायसे संस्कार किया-  
गया ब्राह्मण गुरुकुलमें वास करता हुआ हौले हौले वेदकी प्राप्तिरूप तपको करै ॥  
॥ ६४ ॥ विधिकरिकै बतलाये और अपने गृहमें कहे हुए वक्ष्यमाण नियमोंको करकै  
और गुरुकी सेवा आदि व्रतों करिकै उपनिषदों समेत मंत्र ब्राह्मणरूप संपूर्ण वेद  
ब्राह्मण क्षत्रिय औस वैश्य करि पढ़नेयोग्य हैं ॥ १६५ ॥

वेदेमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तपस्यन्द्विजोत्तमः ॥ वेदाभ्यासो हि विप्र-  
स्य तपः परमिहोच्यते ॥ ६६ ॥ आहैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्य-  
ते तपः॥ यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥ १६७ ॥

टीका—तपको करता हुआ ब्राह्मण सदा वेदहीका अभ्यास करै क्योंकि वेदका  
पढ़नाही इस लोकमें ब्राह्मणका परम तप मुनीश्वरोंने कहाहै ॥ ६६ ॥ जो द्विज  
फूलोंकी मालाको धारण करकैभी अर्थात् ब्रह्मचारीके नियमोंको छोड़करभी प्रति-  
दिन शक्तिके अनुसार वेदको पढ़ता है वह नखशिखतक सर्व देहव्यापी बड़ेभारी  
तपको करता है ॥ १६७ ॥



योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेवं शूद्रं  
त्वमांशु गच्छति सान्वयः ॥६८॥ मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौ  
ञ्जिवन्धने॥तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् ॥१६९॥

टीका—जो द्विज वेदको न पढ़कर अन्यत्र कहिये शास्त्र आदिकोंमें श्रम करता है वह जीते हुए पुत्र पौत्रादिको समेत शीघ्र शूद्रत्वको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥ वेदसे द्विजत्वको कहते हैं पहला पुरुषका जन्म मातासे होता है फिर दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकी दीक्षासे होता है यह प्रथम द्वितीय तृतीय जन्मका कहना द्वितीय जन्मकी बड़ाईके लिये है ॥ १६९ ॥

तत्र यद्रहजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिह्नितम् ॥ तत्रास्य माता सा  
वित्री पिता त्वार्चार्य उच्यते ॥१७०॥ वेदप्रदानादाचार्यं पितरं  
परिचक्षते॥ न ह्यस्मिन्पुन्यते कर्म किंचिदामौञ्जिवन्धनात् १७१

टीका—उन पहले कहे हुए तीनों जन्मोंमें वेदके ग्रहणके लिये जो यज्ञोपवीत संस्काररूप जन्महै उसमें इस बालककी माता सावित्री और पिता आचार्य कहा जाता है ॥ १७० ॥ वेदके पढ़ानेसे मनु आदि आचार्यको पिता कहते हैं उस बालकमें यज्ञोपवीतसे पहले कोई श्रौत स्मार्तरूप कर्म नहीं हो सकता है ॥ १७१ ॥

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानियमनादते॥शूद्रेण हि समस्तावद्याव  
द्वेदे न जायते ॥ ७२ ॥ कृतोपननस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते ॥  
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १७३ ॥

टीका—मौंजीबन्धनसे पहले वेदके मंत्रोंका उच्चारण न करै और जिनमंत्रोंसे श्राद्ध किया जाता है उनको छोड़कै अर्थात् जिसका पिता मरगया है वह नवश्राद्ध आदिमें मंत्रोंका उच्चारण करै परन्तु उनके सिवाय वेदका उच्चारण न करै क्योंकि जबतक वेदमें अधिकारी नहीं होता तबतक वह शूद्रके तुल्य है ॥ ७२ ॥ जिसे इस बालकको समिध होमो और दिनमें न सोवो इत्यादि व्रतोंका बताना और मंत्रब्राह्मणके क्रमसे वेदका पढ़ना यज्ञोपवीत किये हुएको कहा है तिससे यज्ञोपवीत न होनेके पहले वेद न पढ़े ॥ १७३ ॥

यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं ग्रा च मेखला॥ यो दण्डो यच्च वसैनं  
तत्तदस्य व्रतेष्वपि ॥१७४॥ सेवेतेमास्तु निथमान्ब्रह्मचारी गु-



रौवसैन् ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्धचैर्यमात्मनः ॥ ७५ ॥

टीका-उपनयनकालमें जिस ब्रह्मचारीको जौनसे चर्मसूत्र मेखला दंड वस्त्र गृह्यने कहे हैं गोदानादिक व्रतोंमेंभी वेई नवीन करै ॥ ७४ ॥ ब्रह्मचारी गुरुके समीप वसता हुआ इन्द्रियोंके समूहको वशमें करिकै इन आगे कहे हुए नियमोंको अपने तपकी वृद्धिके लिये करै ॥ ७५ ॥

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्यादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥ देवताभ्यर्चनं चै  
व समिदाधानमेवं च ॥ ७६ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धं माल्यं रसां  
स्त्रियः ॥ शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चै<sup>१३</sup> व<sup>१३</sup> हिंसनम् ॥ ७७ ॥

टीका-ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करि शुद्ध हो देवऋषि तथा पितरोंका तर्पण करै और प्रतिमांआदिकोंमें हरिहरादिकोंका पूजन करै और प्रातःकाल तथा सायं-काल समिधोंका होम करे ॥ ७६ ॥ शहत और मांसको ब्रह्मचारि त्याग करै और गंध कहिये कपूर चंदन कस्तूरी आदिको न खाय न देहमें लगावै फूलोंकी माला न पहिरै रस जे गुड आदि है तिनको न खाय स्त्रीगमन न करै और शुक्त कहिये सिरका आदि न खाय और जीव हिंसा न करै ब्रह्मचारीको ये सब वर्जित है ॥ ७७ ॥

अभ्यङ्गमर्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ॥ कामं क्रोधं च लो  
भं च नैर्तनं गीतवादनम् ॥ ७८ ॥ द्यूतं च जनवादं च परिव्राटं  
तथानृतम् ॥ स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपधातं परस्य च ॥ ७९ ॥

टीका-तिल आदिका लगाना आंखोंका आंजना जूता और छातेका धारण करना और काम क्रोध लोभ नाचना गाना बजाना इन सबोंको ब्रह्मचारी वर्जित करै ॥ ७८ ॥ द्यूत कहिये फासोंसे खेलना और वाद कहिये विना प्रयोजन लोगोंसे झगडा करना पराये दोषका कहना झूठ बोलना और मैथुनकी इच्छासे स्त्रियोंका देखना अथवा आलिंगन करना और पराया अपकार इन सबोंको त्याग करै ॥ ७९ ॥

एकैः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ॥ कामाद्धि स्कन्दये  
नेतो हि नस्ति व्रतमात्मनः ॥ १८० ॥ स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः  
शुक्रमकामतः ॥ स्नात्वा कर्मचर्यित्वा त्रिः<sup>१३</sup> पुनर्मामित्यृचं जपेत् ८१

टीका-सदा अकेली सोवै इच्छासे वीर्यको न गिरावै इच्छासे वीर्यको गिरता



हुआ ब्रह्मचारी आपने व्रतका नाश करता है ॥ १८० ॥ ब्रह्मचारी द्विज इच्छाके विना स्वप्नमें वीर्यको गिराकै चंदन पुष्प धूप आदिसें सूर्यका पूजन करि पुनर्मा-  
मैत्विद्रियं इस ऋचाको तीनिवार जपै यही यहां प्रायश्चित्तहै ॥ ८१ ॥

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकाकुशांश्च ॥ आहरेद्यावदर्थानि  
भैक्षं चाहरहंश्चरेत् ॥ ८२ ॥ वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म  
सु ॥ ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥ ८३ ॥

टीका-पानीका घट फूल गोबर मृत्तिका कुश इनको जितनेसे गुरुका प्रयोजन  
होय उतनेही गुरुके लिये लावै और प्रतिदिन भिक्षाको लावै ॥ ८२ ॥ वेद यज्ञसे  
जे हीन नहीं है और अपने नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें कुशलहैं उनके घरोंसे सावधान  
ब्रह्मचारी प्रतिदिन भिक्षा लावै ॥ ८३ ॥

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलंबन्धुषु ॥ अलभे त्वन्यगेहानां  
पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥ सर्वं वार्षिकं चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसं  
भवे ॥ नियम्य प्रयतो वाचमभिश्चरन्तांस्तुवर्जयेत् ॥ ८५ ॥

टीका-आचार्यके सपिंडोमे और अपनी ज्ञातिमें कुलमें और बंधु तो मामा आदि हैं  
तिनमें भीख न मागै और जो अन्यघरोंमें न मिलै तौ पहला पहला छोड़िदे अर्थात्  
पहले बंधुओंमे मागै वहा न मिलै तौ ज्ञातिमें और जो ज्ञातिमेंभी न मिलै तौ आ-  
चार्यकीभी जातिमे मागै पहले कहे हुए वेद यज्ञयुक्त न होय तो कहे हुए गुणोकरि  
हीनभी सब ग्राममें शुद्ध और मौन व्रतधारण करकै मागै और पातकी आदिकोंको  
छोड़ दे ॥ ८५ ॥

दूरादाहृत्य समिधः संनिर्दध्याद्विहायसि ॥ सायंप्रातश्च जुहुयात्तां  
भिरग्निमतन्द्रितः ॥ ८६ ॥ अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्यं च पाव  
कम् ॥ अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतं चरेत् ॥ ८७ ॥

टीका-दूरसे समिधोंको लायकै उन्हें ऊंचे स्थानमें धरै उन समिधोंसे आलस्य  
रहित हो संध्या सवेरे अग्निमें होम करै ॥ ८६ ॥ रोगी होनेके विना जो ब्रह्मचारी  
सातदिनतक भिक्षा न मागै और सायंकाल प्रातःकाल अग्निमें समिधोंका होम न करै  
तौ उसका ब्रह्मचर्यव्रत नष्ट होजाय तिस पीछे अवकीर्णी जो क्षतव्रत है तिसका प्राय-  
श्चित्त करै ॥ ८७ ॥

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकांन्नादी भवेद्भ्रती ॥ भैक्षेणव्रतिनो वृत्तिरूप



वाससमा स्मृतो ॥ ८८ ॥ व्रतवदेवदैवत्ये पित्र्ये कर्मण्यथैषिव-  
त् ॥ काममभ्यर्थितोऽश्रीयाद्भूतमस्य न लुप्यते ॥ ८९ ॥

टीका—ब्रह्मचारी एकका अन्न न खाय किंतु बहुत घरोंसे लाये हुए भिक्षाके समूहसे जीवै जिस्से भिक्षाके समूहसे ब्रह्मचारीकी जीविका मुनियोने उपवा-  
सके तुल्य कही है ॥ ८८ ॥ देव दैवत्यकर्ममें देवताके उद्देश करिके प्रार्थना  
किया गया ब्रह्मचारी व्रतके समान अर्थात् व्रतसे विरुद्ध मधु मांस आदिको छो-  
डके एककाभी अन्न इच्छापूर्वक भोजन करै तौभी भिक्षावृत्ति नियमरूप इसका  
व्रत लुप्त नहीं होता है ॥ ८९ ॥

ब्राह्मणस्यैव कर्मैतदुपदिष्टं मनीषिभिः ॥ राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं  
नैतत्कर्म विधीयते ॥ १९० ॥ चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचो-  
दित एव वा ॥ कुर्यादध्ययने यत्तमाचार्यस्य हितेषु च ॥ १९१ ॥

टीका—वेदार्थके जाननेवाले पंडितोंने यह एकात्र भोजनरूप कर्म ब्राह्मण-  
हीके लिये कहा है क्षत्रिय वैश्यके लिये तौ यह ऐसा नहीं कहाहै ॥ १९० ॥  
आचार्यके कहनेसे अथवा न कहनेसे आपही प्रतिदिन पढ़नेमें और गुरुके  
हितकारी कामोंमें उद्योग करै ॥ १९१ ॥

शरीरं चैवं वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ निर्यम्य प्राञ्जलिस्ति  
ष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ १९२ ॥ नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वा  
चारः सुसंयतः ॥ आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिर्मुखं गुरोः ॥ १९३ ॥

टीका—देह बुद्धि इंद्रिय मन इनकों रोकि हाथ जोरिके गुरुके मुखको देख-  
ता हुआ खड़ा रहै बैठे नहीं ॥ १९२ ॥ सदा ओढ़नेके वस्त्रसे दाहिनी बाँहको  
बाहर किये हुए सुंदर आचारयुक्त वस्त्रसे देह ढके हुए बैठिये ऐसे गुरुकरि  
कहा गया ब्रह्मचारी गुरुके सन्मुख बैठे ॥ १९३ ॥

हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ ॥ उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य  
चैरमं चैवं संविशेत् ॥ १९४ ॥ प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समो  
चरेत् ॥ नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः ॥ १९५ ॥

टीका—गुरुके समीप सदा गुरुसे हीन अन्न वस्त्र खाय पहिरै और सबेरे दोषडी  
रातिरहै गुरुसे पहले उठै और संध्याको गुरुके सोनेके पीछे आप सोवै ॥ १९४ ॥



शय्यामें पड़ा हुआ आसनपर बैठा हुआ भोजन करता हुआ और मुह फेरे खड़ा हुआ ब्रह्मचारी गुरुकी आज्ञाका स्वीकार और उनसे वार्तालाप न करे ॥ ९५ ॥

आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः ॥ प्रत्युद्गम्य त्वां  
व्रजतः पश्चाद्वांस्तु धावतः ॥ ९६ ॥ पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरं  
स्थस्यैत्य चान्तिकम् ॥ प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः ॥ ९७ ॥

टीका—आसनपर बैठे हुए गुरु आज्ञा दें तो आप आसनसे उठि खड़ा होकै और जो खड़े होकै गुरु आज्ञा दें तो उनके सन्मुख दो चार कदम चलकै और जब गुरु सन्मुख आवैं तो भी उनके सन्मुख जायकै और जब गुरु दौड़ते आज्ञा दें तब उनके पीछे दौरकै आज्ञाका अंगीकार और वार्तालाप करै ॥ ९६ ॥ गुरुमुख फेरे हुए आज्ञा देते होय तो उनके सन्मुख होकै और दूर स्थित होय तो उनके समीप आयकै और सोते हुए आज्ञा करैं तो नम्र होकै और जो समीप होय तो भी नम्र होकै आज्ञाका अंगीकार और वार्तालाप करै ॥ ९७ ॥

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ गुरोस्तु चक्षुर्विषये न  
यथेष्टासनो भवेत् ॥ ९८ ॥ नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ॥  
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ ९९ ॥

टीका—गुरुके समीप शिष्यके शय्या और आसन नीचे ही होने चाहिये और गुरुके देखते हाथ पाँव फैलाके इच्छा पूर्वक नबैठे ॥ ९८ ॥ पीठ पीछे भी गुरुका केवल नाम अर्थात् उपाध्याय आचार्य इत्यादि सत्कारके उपनामोंके बिना उच्चारण न करै और हँसीसे इनके चलने बोलने आदिकी नकल नकरै ॥ ९९ ॥

गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते ॥ कर्णौ तत्र पिधांतव्यौ ग  
न्तव्यौ वा ततोऽन्यतः ॥ २०० ॥ परीवादात्खरो भवति श्वा वै भ  
वति निन्दकः ॥ परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ॥ १ ॥

टीका—जहां गुरुका परिवाद अर्थात् उनमें वर्तमान दोषोंका कहना और निन्दा अर्थात् झूठे दोष लगाना ये दोनोवातै जहां होती होय वहां स्थित शिष्यको कान मूंदलेने चाहिये अथवा वहांसे अन्यत्र चला जाना चाहिये ॥ २०० ॥ गुरुके परिवादसे शिष्य गधा होताहै और निन्दा करनेवाला कुत्ता होता है और परिभोक्ता कहिये अनुचित गुरुके धनसे जीनेवाला कृमि होताहै और मत्सरी कहिये गुरुका उत्कर्ष न सहनेवाला कीट कहिये कृमिसे कुछ मोटा होताहै ॥ १ ॥



दूरस्थो नार्चयेदेनं न कुर्वो नान्तिकेस्त्रियाः ॥ यांनासनस्थश्चै<sup>१२</sup>  
वै<sup>१३</sup> नमवरुह्याभिर्वा दयेत् ॥ २ ॥ प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत् गु-  
रुणा सह ॥ असंश्रवे चैव गुरो न किंचिदपि कीर्तयेत् ॥ ३ ॥

टीका-दूर स्थित शिष्य दूसरेको नियुक्त करके मालावस्त्र आदिसे गुरुकी पूजाको न करे तथा क्रोधमें होके न करे और स्त्रीके पास स्थित गुरुकी आपभी पूजा न करे और सवारी तथा आसनपर बैठाहुआ शिष्य यान तथा आसनको छोड़के गुरुको नमस्कार करे ॥ २ ॥ जो पवन गुरुकी ओरसे शिष्यकी ओर आवे वह प्रतिवातहै और जो शिष्यकी ओरसे गुरुकी ओर आवे वह अनुवातहै इन दोनोंमें गुरुके साथ न बैठे और जहां गुरु न सुनै वहां गुरुके मध्ये अथवा और किसिके मध्ये कुछ न कहे ॥ ३ ॥

गोऽश्वोऽयानप्रासादप्रस्तरेषु कैटेषु च ॥ आसीत् गुरुणा सार्धं  
शिलाफलकनौषु च ॥ ४ ॥ गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवर्द्धतिमाच-  
रेत् ॥ न चानिर्गृह्यो गुरुणा स्वान्गुरुनभिर्वा दयेत् ॥ २०६ ॥

टीका-बैल घोडा ऊंठ जिनमें जुते होंय ऐसि सवारियोंमें अर्थात् रथ छकडा आदिमें महलके ऊपर गचपर चटाईपर शिलापर तरुतपर और नावमें गुरुके साथ बैठे ॥ ४ ॥ जो गुरुके गुरु आवे तौ गुरुके समान उनकाभी नमस्कार आदि सत्कार करे और गुरुके घरमें बसता हुआ शिष्य गुरुकी आज्ञा विना अपने गुरु माता चाचा आदिको प्रमाण न करे ॥ २०५ ॥

विद्यागुरुष्वेतदेवं नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु ॥ प्रतिषेधत्सु चार्धमा  
न्हितं चोपदिशस्त्वपि ॥ ६ ॥ श्रेयःसु गुरुवर्द्धति नित्यमेव समा  
चरेत् ॥ गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु ॥ ७ ॥

टीका-आचार्यसे भिन्न उपाध्याय आदि विद्यागुरु होते हैं उनमें तथा स्वयोनि जे चाचा ताउहैं उनमें और अधर्मसे जो बचावें तथा जो हितका उपदेश करें उनमें गुरुके समान वर्तना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रेयस्सु कहिये विद्या और तपसे भरे पुरोंमें और श्रेष्ठ गुरुपुत्रोंमें तथा समान जातिके गुरुपुत्रोंमें और गुरुके भाई बंधुओंमें और चाचाताऊ आदिओंमें गुरुके समान वर्तै ॥ ७ ॥

बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि ॥ अर्घ्यापयन्गुरुसु



तो गुरुवन्मानंमर्हति' ॥ ८ ॥ उत्सादनं च गात्राणां स्नापनोच्छिष्ट  
ष्टभोजने ॥ न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पार्दयोश्चावनेजनम् ॥ ९ ॥

टीका—छोटा होय अथवा समान अवस्था का होय वा ज्येष्ठ होय अथवा शिष्य होय वेदपढानेको समर्थ अर्थात् वेद पढाहुआ गुरुपुत्र जो यज्ञकर्ममें ऋत्विक् होय अथवा नहोय यज्ञ देखनेके लिये आया हुआ गुरुके समान पूजाके योग्य है ॥ ८ ॥ देहमें उबटना करना स्नान कराना जूठा भोजन करना और पैरोंका धोना इतनीवाते गुरुपुत्रकी न करै अर्थात् गुरुहीकी करै ॥ ९ ॥

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सर्वर्णा गुरुयोषितः॥असवर्णास्तु संपूज्याः  
प्रत्युत्थानाभिवादनैः ॥२१०॥ अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोत्सा  
दनमेव च ॥ गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥११॥

टीका—गुरुकी सवर्णास्त्रियाँ गुरुके समान पूजने योग्य हैं और जो असवर्णा होंय तो अभ्युत्थान और नमस्कारसे सत्कार करने योग्य हैं ॥ २१० ॥ देहमें तेल आदिका लगाना नहवाना देहमें उबटना करना और फूलोंकी माला आदिसे वाल गूथना इतनी बातें गुरुकी स्त्रीकी न करै ॥ ११ ॥

गुरुपत्नी तु युर्वर्तिर्नाभिवाद्येह पादयोः ॥ पूर्णविंशतिवर्षेण गुणं  
दोषौ विज्ञानता ॥१२॥ स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषण  
म्॥अतोऽर्थोन्नि प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः ॥ १३ ॥

टीका—गुणदोषके जाननेवाले तरुण पूरेवीसवर्षके शिष्य करि तरुणी गुरुकी स्त्री पावपकडकर नही नमस्कार करने योग्य हैं किन्तु दूरसे भूमिमें दंडवत प्रणाम करै ॥ १२ ॥ यह स्त्रियोंका स्वभाव है कि अपने शृंगार आदि चेष्टाओंसे मोहित कर पुरुषोंको दूषण देना इसी कारणसे पंडित स्त्रियोंमें प्रमत्त नही होते है ॥ १३ ॥

अविद्वांसर्मलं लोके विद्वांसर्मपि वापुनः॥ प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कां  
मक्रोधवशानुगम् ॥१४॥ मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो  
भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रांमो विद्वांसर्मपि कर्षति ॥ २१५ ॥

टीका—मैं विद्वान् हों जितेन्द्रिय हों ऐसा समझके स्त्रियोंके समीप न बैठना चाहिये देहके धर्मसे कामक्रोधके वशीभूत पुरुष विद्वान् हो अथवा मूर्ख होय उसको स्त्रियां कुमार्गमें लेजानेको समर्थ हैं ॥ १४ ॥ माता बहिनि अथवा पुत्री इन-



के साथ एकांतस्थानमें न बैठै क्योंकि इंद्रियोंका समूह बलवान् है शास्त्रकी रीतिसे चलनेवालेभी पुरुषको वशमें करलेताहै ॥ १५ ॥

कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि ॥ विधिबद्धन्दनं कु-  
र्यादसौवर्हमिति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभि-  
वादनम् ॥ गुरुदारेषु कुर्वीत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥

टीका—तरुणशिष्य तरुणी गुरुकी स्त्रियोंको अमुकशर्मा यह मैं तुमको नमस्कार करता हों ऐसे कहिके पहले कही हुई विधिसे भूमिमें दूरसे नमस्कार करै ॥ १६ ॥ शिष्टपुरुषोंका यह आचार है इस बातको जानताहुआ तरुण शिष्य परदेशसे आयके तरुणी गुरुकी स्त्रियोंके कही हुई विधिसे चरण छुवै और प्रतिदिन दूरसे भूमिमें नमस्कार करै ॥ १७ ॥

यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति ॥ तथा गुरुगतां विद्यां  
शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ १८ ॥ मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छि-  
खाजटः ॥ नै नंग्रामेऽभिनिर्मलोचेत् सूर्यो न भ्युदितश्च क्वचित् ॥ १९ ॥

टीका—जैसे कुदालीसे खोदता हुआ पानीको प्राप्त होता है ऐसेही गुरुमें स्थित विद्याको शिष्य सेवा करनेसे प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ ब्रह्मचारीके तीन प्रकार कहते हैं सब शिर डाढी मूछ मुडें होय अथवा जटाधारी होय अथवा जिसकी शिखाही जटा होगई होय ऐसे ब्रह्मचारीको ग्राममें सोते हुए कभी सूर्य अस्त न होय और न उदय होय ॥ १९ ॥

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शयानं कामचारतः ॥ निर्मलोचेद्राप्यविज्ञा-  
नाज्जपन्नुपवसेदिनम् ॥ २२० ॥ सूर्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽ-  
भ्युदितश्च यः ॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महत्तैर्नसा ॥ २१ ॥

टीका—इच्छासे सोते हुए ब्रह्मचारीको निद्राके वशमें होनेसे अज्ञानतासे जो सूर्य उदय हो आवें अथवा अस्त होजाय तौ सावित्रीको जपताहुआ एकदिन उपवासकरे रात्रिको भोजनकरै ॥ २२० ॥ जो ब्रह्मचारी सूर्यके अस्तसमय अथवा उदयके समय सोता रहै और प्रायश्चित्त न करै तौ पापकरि युक्त होकै नरकको जाय तिस्से यथोक्त प्रायश्चित्त करै ॥ २१ ॥

आचम्य प्रयतो नित्यमुंभे संध्ये समाहितः ॥ शुचौ देशे जपञ्च  
प्यमुपासीत यथाविधि ॥ २२ ॥ यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयः किञ्चि



तस्मांचरेत् ॥ तत्सर्वमांचरेद्युक्तो यत्र वास्यं रमेन्मनः ॥ २३ ॥

टीका—आचमन करिके पवित्र हो मनको एकाग्र करि शुद्धदेशमें सावित्री-को जपता हुआ विधिपूर्वक दोनो कालकी संध्याओंकी उपासना करै ॥ २२ ॥ जो स्त्री अथवा शूद्र कुछ श्रेय अर्थात् अच्छा काम करै तौ उसकोभी मन लगाकै करै अथवा शास्त्रकरि नही मने किये हुए जिस काममें इसका मन लगै उसकोभी करै ॥ २३ ॥

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थो धर्म एव च ॥ अर्थ एवे ह वा श्रेय-  
स्त्रिवर्गइति तु स्थितिः ॥ २४ ॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः  
प्रजापतेः ॥ माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः ॥ २५ ॥

टीका—श्रेय क्या है सो कहते हैं ॥ कोई आचार्य कहतेहैं कि सुखके कारण होनेसे धर्म और अर्थ श्रेय है और कोई कहतेहैं कि सुखका हेतु और अर्थकामका उपाय होनेसे धर्मही श्रेय है और कोई कहते हैं कि धर्म और कामकाभी सहायक होनेसे लोकमें अर्थही श्रेय है अब कुछकभट्ट अपना मत कहतेहैं आपसमें विरोध न राखने-वाला धर्म अर्थ कामरूप त्रिवर्गही पुरुषार्थतासे श्रेय है यह निश्चय है यह बुभुक्षु जो भोगकी इच्छावालेहैं उनको उपदेश है मुमुक्षु जो मोक्षचाहनेवाले हैं उनको नही उनको तौ मोक्षही श्रेय है सो छठे अध्यायमें कहेंगे ॥ २४ ॥ आचार्य वेदांतमें कहे हुए ब्रह्म परमात्माकी मूर्ति कहिये शरीर है और पिता हिरण्यगर्भकी मूर्ति है और माता धारण करनेसे पृथिवीकी मूर्ति है और अपना सहोदर भाई क्षेत्रज्ञकी मूर्ति है तिससे देवतारूप ये अपमान करनेयोग्य नही हैं ॥ २५ ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ॥ नान्नैनाप्यवमन्त-  
व्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ २६ ॥ यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सं-  
भवे नृणाम् ॥ न तस्य निष्कृतिः शर्वया कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ २७ ॥

टीका—आचार्य, पिता, माता, ज्येष्ठ सगा भाई ये पीडितपुरुष करकैभी नही अप-मान करनेयोग्य हैं और विशेषतासे ब्राह्मण करकै ॥ २६ ॥ संततिके संभव कहिये गर्भाधानके पीछे उत्पत्ति पालन आदिमें मातापिता जिस क्लेशके सहते हैं उसका ऋण सैकड़ों वर्षोंमेंभी नही दूरि होसकता है इसकारण देवतारूप माता पिता अप-मान करनेयोग्य नहीहैं ॥ २७ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ॥ तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु



तपैः सर्वे समाप्यते ॥ २८ ॥ तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उ  
च्यते ॥ न तैरभ्यननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् ॥ २९ ॥

टीका—मातापिताका और आचार्यका सदा प्रिय करै अर्थात् जिसमें वे प्रसन्न रहैं  
सो करै क्योंकि उनके प्रसन्न रहनेसे सब तप पूरे होते हैं ॥ २८ ॥ उन तीनोंकी  
सेवा परम कहिये उत्कृष्ट तप कहाताहै उनकी आज्ञाविना और किसी धर्मको न  
करै ॥ २९ ॥

त एव हि त्रयो लोकैस्त एव त्रय आश्रमाः । त एव  
हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोऽग्र्यः ॥ २३० ॥

टीका—वेई तीनों अर्थात् माता पिता और गुरु तीनों लोकोंकी प्राप्तिका कारण  
होनेसे तीनोंलोकहैं और वेही गृहस्थ अदि तीनों आश्रमोंके देनेवाले होनेसे ब्रह्मचर्य  
आदि तीनों आश्रमहै और वेही तीनों वेदोंके जपफलका उपाय होनेसे तीनों वेदहैं  
और वेही तीनों अग्रियोंमें करनेयोग्य यज्ञ आदिके फल देने वाले होनेसे तीनों  
अग्रि हैं ॥ २३० ॥

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः ॥ गुरुराहवनीयस्तु  
सोऽग्नित्रेता गरीयसी ॥ ३१ ॥ त्रिष्वप्रमाद्यन्नेतेषु त्रिलोकान्व  
जयेद्ग्रही ॥ दीप्यमानः स्ववपुषा देववहि वि मोदते ॥ ३२ ॥

टीका—पिताही गार्हपत्य अग्नि है और माता दक्षिणाग्नि है और आचार्य आहवनीय  
है सो ये तीनों अग्नि अतिश्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें प्रमादको न करता हुआ  
ब्रह्मचारी तौ सर्वोत्कर्षसे वर्तमान होताही है परंतु गृहस्थभी तीनों लोकोंको  
जीति लेता है और अपने शरीरसे प्रकाशमान हो सूर्यआदिदेवताओंके समान  
स्वर्गमें आनंद करताहै ॥ ३२ ॥

इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् ॥ गुरुशुश्रूषया  
त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ २३३ ॥ सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते  
त्रय आदृताः ॥ अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलैः क्रियाः ३४

टीका—माताकी भक्तिसे इस भूलोकको और पिताकी भक्तिसे मध्यम लोकको  
और आचार्यकी भक्तिसे हिरण्यगर्भके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जिसने  
इन तीनों अर्थात् माता पिता और आचार्यका आदर किया उसको सब धर्मफल  
देनेवाले होतेहैं और जिसने अनादर किया उसको सब श्रौत स्मार्त कर्म निष्फल  
होते हैं ॥ ३४ ॥



यावन्नयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ॥ तेष्वेवं नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ३५ ॥ तेषामनुपरोधेन पारित्र्यं यद्यदा चरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः ॥ ३६ ॥

टीका—जबतक ये तीनो जीवें तबतक स्वतंत्र होकै और धर्मको न करै प्रिय और हितमें मन लगाकै उन्हीकी सेवा करै ॥ ३५ ॥ उनकी सेवामें अंतर न पडनेसे उन्हीकी आज्ञासे मन वचन कर्मोंसे जो परलोकसंबंधी कर्म करै सो मैंने यह कियाहै ऐसे उनसे पीछे कहदे ॥ ३६ ॥

त्रिष्वेतेष्विति कृत्यं हि पुरुषस्य समर्प्यते ॥ एष धर्मः परः साक्षां दुर्धमोऽन्य उच्यते ॥ ३७ ॥ श्रद्धावानः शुभां विद्यामाददीताव रादपि ॥ अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥ ३८ ॥

टीका—इन तीनोकी सेवा करनेपर पुरुषका संपूर्ण श्रौत स्मार्त कर्मफल मिलनेसे किया हीसा होताहै तिस्से यह धर्म श्रेष्ठ है और साक्षात् पुरुषार्थका साधनहै और अन्य अग्निहोत्र आदि स्वर्गादिकोंका साधन होनेसे छोटाही धर्म है ॥ ३७ ॥ श्रद्धा-युक्त हो शुभकहिये जिसकी शक्ति देखीहै ऐसी गारुड आदि विद्याको शूद्रसेभी ग्रहण करले और चांडालसेभी मोक्षके उपाय तत्त्वज्ञानको ग्रहण करै और अपने कुलसे नीचे कुलकेभी स्त्रीरत्नको व्याह करनेके लिये ग्रहण करै ॥ ३८ ॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥ अमित्रादपि सदृत्तं ममेध्यादपि काञ्चनम् ॥ ३९ ॥ स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ॥ विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः २४० ॥

टीका—विषमें जो अमृत मिलाहोय तौ विषको दूर करकै अमृत लेना चाहिये और बालकसेभी हितवचन लेना चाहिये और सज्जनका चरित्र शत्रुसेभी लेना चाहिये और अपवित्र स्थानसेभी सुवर्ण आदि लेने चाहिये ॥ ३९ ॥ स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुंदरवचन और नानाप्रकारके शिल्प कहिये कारीगरी चित्रलिखना आदि सबोंसे लेने चाहिये ॥ २४० ॥

अब्राह्मणादध्ययनमार्यकाले विधीयते ॥ अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः ॥ ४१ ॥ न ब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वासमात्यं न्तिकं वसेत् ॥ ब्राह्मणे चाननूचाने काण्डक्षर्गतिमनुत्तमाम् ॥ ४२ ॥



टीका—आपत्तिसमयमें अब्राह्मणसे अर्थात् ब्राह्मण भिन्न क्षत्रिय अथवा वैश्यसे पठना कहाहै और अनुगम आदि रूप सेवा जबतक पढ़ै तभीतक करै गुरु होनेसे पैर धोना जूठा खाना आदिभी प्राप्तहुए सो न करै जबतक पढ़ै तभीतक क्षत्रियका गुरुत्वहै पीछे नही सो व्यासने कहाहै (मंत्रदः क्षत्रियो विप्रैः शुश्रूष्योऽनुगमादिना ॥ प्राप्तविद्यो ब्राह्मणस्तु पुनस्तस्य गुरुः स्मृतः) अर्थ—मंत्रका देनेवाला क्षत्रिय ब्राह्मणों करिके अनुगमनआदिसे सेवा करनेयोग्य है और विद्या पानेके पीछे फिर उसका गुरु कहा गयाहै इति ४१ ॥ अनुत्तमा कहिये मोक्षरूप गतिको चाहता हुआ शिष्य ब्राह्मण भिन्न अर्थात् क्षत्रिय आदि गुरुके स्थानमें जन्मभर ब्रह्मचर्ययुक्त वास न करै और जो अंगोसमेत वेद न पढा होय ऐसे ब्राह्मणकेभी स्थानमें वास न करै ॥ ४२ ॥

यदि त्वात्यन्तिकं वासं रोचयेत गुरोःकुले ॥ युक्तं परिचरेदेनमां शरीरविमोक्षणात् ॥ ४३ ॥ औ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् ॥ स गच्छत्यर्जसा विप्रो ब्रह्मणः सन्न शाश्वतम् ॥ ४४ ॥

टीका—जो गुरुके कुलमें नैष्ठिक ब्रह्मचर्यरूप जन्मभर वास करना चाहै तौ जबतक जीवै तबतक अर्थात् देह छुटनेपर्यंत तत्पर होकै गुरुकी सेवा करै ॥ ४३ ॥ इसका फल कहतेहैं ॥ जो शिष्य शरीरकी समाप्ति कहिये मरनेतक गुरुकी सेवा करताहै वह ब्रह्मके शाश्वत कहिये अविनाशी स्थानमें प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाताहै ॥ ४४ ॥

न पूर्वं गुरवे किञ्चिदुपकुर्वीत धर्मवित् ॥ स्यास्यस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वधर्माहरेत् ॥ ४५ ॥ क्षेत्रं हिरण्यं गौमश्वं छत्रोपानह मासनम् ॥ धान्यं शार्कं च वासांसि गुरवे प्रीतिर्मावहेत् ॥ ४६ ॥

टीका—गुरुदक्षिणा देनेके धर्मका जाननेवाला ब्रह्मचारी स्थानसे गौ वस्त्र आदि कुछ धन गुरुको अवश्य न देवै और स्नान करता हुआ गुरुकी आज्ञा पाकै शक्तिके अनुसार किसी धनीसे मांगकरभी अथवा दान आदिसे धन को लायकै गुरुको अवश्य दे ॥ ४५ ॥ खेत, सोना, गौ, घोडा, छाता, जूता, आसन, अन्न, शाक, और वस्त्र ये सब अथवा इनमेंसे पहले कहे हुएओंको छोडकै जो मिलसकै सो गुरुको दे और जो कुछ न मिलै तौ शाकही दे ॥ ४६ ॥

आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते ॥ गुरुदारे सपिण्डे वा



गुरुं वदति मां चरेत् ॥ ४७ ॥ एतेष्वविद्यमानेषु स्नानासनविहारान् ॥ प्रयुज्मानोऽग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥ ४८ ॥

टीका—नैष्ठिक ब्रह्मचारी गुरुके मरनेपर जो गुरुपुत्र गुणयुक्त होय तौ उसको गुरुके समान माने और गुरुपुत्र नहोयतौ गुरुकी स्त्रीको स्त्री न होय तौ सपिंड भाई अदिकोंको गुरुके समान माने ॥ ४७ ॥ जो इनमेंसे गुरुपुत्रआदि कोई न होय तौ आचार्यकी अग्निके समीप रहने बैठने और संध्या सवेरे समिधोंके होम आदिसे अग्निकी सेवा करता हुआ अपनी देह अर्थात् अपनी देहमे स्थित जीवको ब्रह्मकी प्राप्तिके योग्य करै ॥ ४८ ॥

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविभुतः ॥ स गच्छत्युत्तमस्थानं न चेहं जायते पुनः ॥ २४९ ॥

इति मनुस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

टीका—जो ब्राह्मण ऐसे अखंड ब्रह्मचर्यको निवाहताहै वह उत्तम ब्रह्मके स्थान में प्राप्त होताहै और कर्मोंके वशसे इस संसारमे जन्मको नही लेताहै ॥ २४९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपंडितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

## अथ तृतीयोऽध्यायः ।

षड्विंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ॥ तदर्थिकं पादिकं वां ग्रहणान्तिकमेवं वां ॥ १ ॥ वेदानधीत्यं वेदौ वां वेदं वापि यथा क्रमम् ॥ अविभुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ २ ॥

टीका—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद इन तीनोंको गुरुकुलमें छत्तीस वर्ष पढ़ै अर्थात् प्रत्येक वेदकी शाखाको बारहवर्ष पढ़ै अथवा उसके आधे अठारहवर्षतक पढ़ै तब प्रत्येकवेदकी शाखाका छ वर्ष पढ़ना हुआ अथवा उसकी चौथाई नववर्ष पर्यंत पढ़ै तौ प्रत्येक वेदकी शाखाके तीनिवर्ष हुए अथवा कही हुई अवधिके भीतर बाहर जितने कालमें वेदोंको पढ़ै उतने कालपर्यंत गुरुकुलमें वसिकै ब्रह्मचर्य व्रत करै ॥ १ ॥ क्रमसे तीनोंवेदोंकी शाखाओंको अथवा दो वेदोंकी शाखाओंको अथवा एक वेदकी शाखाको मंत्र ब्राह्मणके क्रमसे पढ़कै अविभुत ब्रह्मचर्य कहिये पहले कहे हुए स्त्रीसंग मधुमांसका त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे युक्त वह गृहस्थाश्रममें प्रवेश करै अर्थात् गृहस्थके लिये कहे हुए कर्मोंको करै ॥ २ ॥



तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ॥ स्रग्विणं तल्पं आसीन  
मर्हयेत्प्रथमं गवां ॥ ३ ॥ गुरुणानुमतैः स्नात्वा समवृत्तो यथा  
विधि ॥ उद्धृतेतं द्विजो भार्यां सर्वर्णां लक्षणान्विताम् ॥ ४ ॥

टीका—ब्रह्मचारीके धर्म करनेसे प्रसिद्ध और पिता वेदरूप भागके लेनेवाले  
अर्थात् पितासे अथवा पिताके अभावमें आचार्य आदिसे वेद पढ़े हुए ब्रह्मचारीको  
भालासे अलंकृत करि उत्तम शय्यापर बैठाय पिता अथवा आचार्य विवाहसे पहले गौ  
है साधन जिसका ऐसे मधुपर्कसे पूजन करै ॥ ३ ॥ गुरुकी आज्ञासे निजगृहकी  
विधिपूर्वक स्नान समावर्तन करि समान वाणी और शुभ लक्षणोकरि युक्त कन्यासे  
विवाह करै ॥ ४ ॥

असपिण्डां च यां मातुरसगोत्रां च यां पितुः । सां प्रशस्तां द्वि-  
जातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ महान्त्यं पिं समृद्धानि गो-  
जाविधनधान्यतः ॥ स्त्रीसंबन्धे दैशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो माताकी सपिंडा कहिये सातपीढीमें न होय सगोत्राभी न होय और  
पिताके गोत्रमें न होय ऐसी स्त्री ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको अग्निहोत्र और संतति  
उत्पन्न करना आदि कर्मोंमें उत्तमहै ॥ ५ ॥ ऊंचेभी होय और गौ, बकरी, भेड़,  
धनधान्य इनसे भरे पूरे भी होनेपर आगे कहे हुए सात कुलों कन्यासे विवाह  
न करै ॥ ६ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ॥ क्षय्या-  
मयान्यपस्मारिश्चित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ७ ॥ नोद्धेत्क-  
पिलां कन्यां नाधिकौर्द्धीं न रोगिणीम् ॥ नालोमिकां ना-  
तिलोमां न वाचांटां न पिङ्गलां ॥ ८ ॥

टीका—वे कुल कहते हैं ॥ हीनक्रिय अर्थात् जातकर्मआदि क्रियाओंसे रहित १  
स्त्रीजनक जिसमें स्त्रियाँही उत्पन्नहोतीहोय २ वेद पढ़नेसे रहित ३ बहुतसे रोमा-  
ओंसे युक्त ४ बवासीररोगयुक्त ५ क्षयरोगयुक्त ६ मंदाग्रियुक्त ७ अपस्मारकहिये  
मिरगीयुक्त ८ श्वेतकुष्ठयुक्त ९ गलत् कुष्ठयुक्त १० इन दशकुलोंको छोड़दे अर्थात्  
इन कुलोंकी कन्यासे विवाह न करै ॥ ७ ॥ भूरे बालोंकी अधिक अंगकी जैसे छ  
अंगुलीकी सदा रोगि न रहै जिसके रोम न होय जिसके बहुत रोम होय बहुत बो-  
लनेवाली आखोंमें कंजी होय ऐसी कन्यासे विवाह नकरै ॥ ८ ॥

नैर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ॥ नै पक्ष्यहिम्रेष्यनां



म्रीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ९ ॥ अव्यङ्गांगीं सौम्यनाम्रीं हंस  
वारणगामिनीम् ॥ तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ १० ॥

टीका-नक्षत्रोंके जैसे आर्द्रा रेवती इत्यादि नामोंकी और वृक्ष नदी म्लेच्छ पर्वत पक्षी सर्प दास और भयानक नामकी कन्यासे विवाह न करे ॥ ९ ॥ जिसके अंगमें कुछ व्यंग नहीं मधुरनामवाली हंस अथवा हाथी इनोके समान गमनकरनेवाली सूक्ष्म लोमवाली बारीक केशवाली और कोमल दांतवाली सुंदर है शरीर जिसका ऐसे स्त्रीके साथ विवाहकरना ॥ १० ॥

यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥ नोपयच्छेत तां  
प्राज्ञः पुत्रिकार्धमशङ्कया ॥ ११ ॥ सर्वर्णाग्ने द्विजातीनां प्रशस्ता  
दारकर्मणि ॥ कामतस्तु प्रवृत्तानामिमांः स्युः क्रमशो वराः ॥ १२ ॥

टीका-जिसके भाई न होय उसको पुत्रिकाकी शंकासे न व्याहै पुत्रिका उसको कहते हैं कि जिसका पिता पहले यह कहै कि इसका पुत्र होगा वह मेरा पिंडदानादि करनेवाला होगा और जिसके पिताका कुछ ठीक ठिकाना न होय उसकोभी बुद्धिमान न व्याहै अथवा जिसका पिता न जाना जाय उसको अर्धम शंका कहिये जारकी शंकासे न व्याहै ॥ ११ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यको प्रथम विवाह करनेमें सर्वर्ण कहिये अपने २ वर्णकी कन्या श्रेष्ठ है और फिर कामसे जो विवाह करना चाहै तौ उनके लिये अनुलोम क्रमसे आगे जो कही जायगी वे श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वां च विशः स्मृते ॥ ते च  
स्वां च वै राज्ञश्च तांश्च स्वां चाग्रजन्मनः ॥ १३ ॥  
न ब्राह्मणक्षत्रिययोराप्यपि हि तिष्ठतोः ॥ कस्मिं-  
श्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भार्यापदिश्यते ॥ १४ ॥

टीका-शूद्रकी शूद्राही स्त्री होती है ऊँची जातिकी वैश्या आदि तीनि नहीं होती है और वैश्यके शूद्रा और वैश्या दो स्त्री मनु आदिकोने कहीहै और क्षत्रियके वैश्या शूद्रा और क्षत्रिया और ब्राह्मणके क्षत्रिया वैश्या शूद्रा और ब्राह्मणी ये चार स्त्रिया कहीहै ॥ १३ ॥ गृहस्थीकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको आपत्तिमें भी अर्थात् सर्वर्णकन्याके न मिलनेपरभी किसी प्रकारसे शूद्रकी कन्यासे विवाह करना नहीं कहाहै यह निषेध प्रतिलोम अर्थात् उलटे विवाहके मध्ये है और अनुलोम कहिये सीधेमें तौ कहि चुक हैं ॥ १४ ॥



हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्रहन्तो द्विजातयः ॥ कुलान्येवं नयन्त्या  
शुं ससंतानानि शूद्रताम् ॥ १५ ॥ शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्यतन  
यस्य च । शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया भृगोः ॥ १६ ॥

टीका—सवर्णाको विनाव्याहे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शास्त्रके विचार विना हीन जाति कहिये शूद्रासे विवाह करताहै वह उस कन्यामें उत्पन्न पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे कुलोंको शूद्र कर देता है ॥ १५ ॥ शूद्राकन्याके साथ विवाह करनेसे पतितहीसा होताहै यह अत्रि और गौतमका मतहै और शूद्रामें पुत्र उत्पन्न होनेसे पतित होताहै यह शौनकका मत है और शूद्राके संतानके संतान होनेसे पतित होता है यह भृगुका मतहै अथवा तदपत्यतया अर्थात् उसी शूद्रासे उत्पन्नहैं पुत्र जिसके ऐसा वह द्विज पतित होताहै ॥ १६ ॥

शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोर्गतिम् ॥ जनयित्वा सुतं  
तस्यां ब्राह्मण्यादेवं हीयते ॥ १७ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधा  
नानि यस्य तु ॥ नांश्रन्ति पितृदेवास्तत्र च स्वर्गं सं गच्छति ॥ १८ ॥

टीका—शूद्राके साथ भोगकरकै ब्राह्मण नरकको जाता है और उसमें पुत्र उत्पन्न करकै ब्राह्मणपनसे ही रहित होजाताहै ॥ १७ ॥ दैवहोमआदि और पित्र्यश्राद्धआदि तथा आतिथ्यअतिथिभोजनआदि इनको जिसके शूद्रा करतीहै उस हव्य और कव्यको देवता और पितृ नहीं खाते हैं और वह स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ १८ ॥

वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च ॥ तस्यां चैवं प्रसूतस्य  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १९ ॥ चतुर्णामपि वर्णानां प्रेत्य चेहं हि  
तांहितान् ॥ अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्नि बोधत ॥ २० ॥

टीका—शूद्राका ओठचुंबन करनेसे और उसके मुखकी भाफ लगनेसे और उसीमें संतति उत्पन्न करनेवालेकी शुद्धि नहीं है ॥ १९ ॥ ब्राह्मणआदि चारो वर्णोंके कोई परलोक और इसलोकमें हित तथा अहित जिनको आगे कहते हैं ऐसे आठ विवाहोंको संक्षेपसे सुनिये ॥ २० ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चैवं  
पैशाचश्चाष्टमोऽधर्मः ॥ २१ ॥ यो यस्य धर्म्यो वर्णस्य गुणदोषौ च  
यस्य यौ ॥ तद्वः सर्वं प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान् ॥ २२ ॥



टीका—उन आठोंके नाम कहते हैं जैसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ राक्षस ७ और आठवाँ सबसे अघम पैशाच ८ ॥ २१ ॥ जो विवाह जिसवर्णका धर्मसंबंधी है और जिसके गुण तथा दोष अर्थात् भलाई बुराईको और उन २ विवाहोंसे उत्पन्न संततिमें जे गुणदोष हैं तिनको सुनिये ॥ २२ ॥

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोऽवरान् ॥ विदुःशूद्रयोस्तु तां  
नेवं विद्याद्धर्म्या नराक्षसान् ॥ २३ ॥ चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशं  
स्तान्कवयो विदुः ॥ राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्मणको क्रमसे ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गांधर्व ६ ये ६ विवाह धर्म्य हैं और क्षत्रियको आर्ष १ प्राजापत्य २ आसुर ३ गांधर्व ४ ये ४ विवाह धर्म्य हैं और वैश्य तथा शूद्रके भी वेही आसुर गांधर्व पैशाच जानिये और राक्षस उनके योग्य नहीं है ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके ब्राह्म आदि चारि और क्षत्रियके एक राक्षस और वैश्य तथा शूद्रके आसुर इन विवाहोंको जाननेवाले श्रेष्ठ जानते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृताविह । पैशाचश्चासुरश्चैवं  
नैव कर्तव्यौ कदाचन ॥ २५ ॥ पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ  
पूर्वचोदितौ ॥ गान्धर्वौ राक्षसश्चैवं धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ ॥ २६ ॥

टीका—प्राजापत्य आदि पाँच विवाहोंमें प्राजापत्य गांधर्व और राक्षस ये तीनि विवाह धर्मसंबंधी हैं दो धर्मसंबंधी नहीं हैं पैशाच और आसुर ये दो कभीकरनेयोग्य नहीं हैं ॥ २५ ॥ जुदे २ अथवा मिलेहुए पहले कहेहुए गांधर्व और राक्षस विवाह क्षत्रियको धर्मके अनुसार मनुआदिकोंने कहे हैं ॥ २६ ॥

आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ॥ आहूय दानं  
कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ यज्ञे तु वितते सम्यग्-  
त्विजे कर्म कुर्वते ॥ अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ २८ ॥

टीका—विद्या और आचार युक्त वरको बुलायकै उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंसे कन्या तथा वरको भूषित करि वरके लिये जो दान किया जाता है उसको मनुआदि ब्राह्मविवाह कहते हैं २७ ॥ ज्योतिष्ठोम आदियज्ञके आरंभ होनेमें अच्छेप्रकारसे कर्म करतेहुए ऋत्विगकेलिये वस्त्र आभूषणोंसे शोभित करि जो कन्याका देना है उसको मुनीश्वर दैवविवाह कहते हैं ॥ २८ ॥



एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ॥ कन्याप्रदानं विधिं  
वदाषो धर्मः सं उच्यते ॥ २९ ॥ सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचा  
नुभाष्य च ॥ कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ३० ॥

टीका—एक गौ और एक बैल ऐसे गौओंका एक जोड़ा अथवा दों जोड़े  
वरसें यज्ञ आदिकी सिद्धिकेलिये अथवा कन्याके देनेकेलिये लेकर शास्त्रके अनुसार  
जो कन्यादान कियाजाताहै उसको आर्षविवाह कहते हैं ॥ २९ ॥ तुम दोनों  
मिलकै धर्म करै करौ ऐसे कन्यादानके समय पहले नियम करकै पूजन करि जो  
कन्यादान कियाजाताहै उसको प्राजापत्य विवाह कहतेहैं ॥ ३० ॥

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ॥ कन्याप्रदानं  
स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ ३१ ॥ इच्छयान्योन्यसंयोगः क-  
न्यायाश्च वरस्य चागान्धर्वः सं तु विज्ञेयो मथुन्यः कामसंभवः ३२

टीका—कन्याके पिता आदिको अथवा कन्याको यथाशक्ति धन देकर जो अप-  
नी इच्छासे कन्याका लेना है उसको आसुरविवाह कहते हैं ॥ ३१ ॥ कन्या और  
वरकी आपसकी प्रीतिसे जो परस्पर आलिंगन आदिरूप मिलनाहै उसको गान्धर्व  
विवाह कहते हैं ॥ ३२ ॥

हत्वा छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोशन्ती रुदन्ती गृह्णात् ॥ प्रसह्य कन्या  
हरणं राक्षसो विधिर्मुच्यते ॥ ३३ ॥ सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रो  
पगच्छति ॥ स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ ३४ ॥

टीका—बलात्कारसे कन्याका हरलेना राक्षसविवाहका यही लक्षणहै कन्याके  
पक्षवालोंको मारिकै और उनके अंगोंको काटिकै और परकोटा आदिको फोड-  
कर हाथ पिता हाथ भाई अनाथ में हरीजाती हों ऐसे कहती हुई और आसु-  
ओंको छोडती हुई कन्याको जो उसके घरसे हरलेना है उसको राक्षसविवाह  
कहतेहैं इससे कन्याकी अनिच्छा प्रकट होती है ॥ ३३ ॥ सोतीहुईको मद्यसे  
व्याकुलको और शीलकी रक्षासे रहितको एकांतस्थानमें जो विषयकी इच्छासे प्र-  
वृत्त होताहै उस पापमूल विवाहको सब विवाहोंमें अधम पैशाचविवाह कहते हैं ॥ ३४ ॥

अद्विरेव द्विजाग्न्याणां कन्यादानं विशिष्यते ॥ इतरेषां तु वर्णा  
नामितरेतरकाम्यया ॥ ३५ ॥ यो यस्यैषां विवाहानां मनुना



कथितो गुणैः॥सर्वं शृणुत तं विप्राः सम्यक् कीर्तयतो मम ॥३६॥

टीका-ब्राह्मणोंको जलदानपूर्वकही कन्यादान करना उत्तमहै और क्षत्रिय आदि अन्यवर्णोंको जलके बिनाभी आपसकी इच्छासे वाणीमात्रसेभी कन्यादान होताहै ॥ ३५ ॥ इन विवाहोंमें जिसका जो गुण मनुने कहाहै वह सब हे ब्राह्मणों कहते हुए मुझसे सुनो यह भृगुने ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ३६ ॥

दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मनं चैकविंशकम् ॥ ब्राह्मीपुत्रः सुकृतं  
कृन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥३७॥ दैवोदजः सुतश्चैव सप्तं सप्तं परां  
वरान्॥आषोढजः सुतस्त्रिंशो नृषट्षट् कायोदजः सुतः ॥३८॥

टीका-ब्राह्मविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र जो शुभकर्म करनेवाला होय तौ पिता आदिकों नरकसे निकार लेता है और उसके कुलमें पुत्र आदि निष्पाप उत्पन्न होते है ॥ ३४ ॥ दैवविवाहमें व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न पुत्र पिता आदि सात पीढी पहली औ पुत्र आदि सातपीढी पिछली और आर्षविवाहमें व्याही हुईका पुत्र तीनि पीढी पहली और तीनि पिछली और प्राजापत्यमें व्याही हुईका पुत्र छःपीढी पहली और छःपिछलीको और आपको पापसे छुडाताहै ॥ ३८ ॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः ॥ ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रां जा  
यन्ते शिष्टसंयताः॥३९॥रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ॥  
पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥ १४० ॥

टीका-ब्राह्म आदि चारि विवाहोंमें श्रुताध्ययन सम्पत्तिरूप तेजकरि युक्त और शिष्टोंके प्यारे पुत्र उत्पन्न होतेहैं ॥ ३९ ॥ रूपवान् पराक्रमी धनवान् गुणवान् यशस्वी और अपनी इच्छासे वस्त्र माला गंधलेप आदिसे शोभित धर्मात्मा और सौवर्षकी आयुष्यतक जीनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १४० ॥

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ॥ जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्म  
धर्मद्विषः सुताः ॥ ४१ ॥ अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति  
प्रजा ॥ निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान्निर्वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

टीका-और ब्राह्म आदि चारि विवाहोंसे अन्य आसुर आदि चारोंमें क्रूरकर्म करनेवाले मिथ्यावादी वेदसे द्वेष करनेवाले यज्ञ आदि धर्मोंसे द्वेष करनेवाले पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥ स्त्रीकी प्राप्तिके कारण जे अच्छे विवाहहैं उनसे पुरुषके



संतानभी अच्छी होती है और निंदित विवाहोंसे प्रजाभी निंदित होती है तिससे निंदित विवाहोंका त्याग करै ॥ ४२ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारः सर्वर्णसूपदिश्यते ॥ अर्षवर्णस्वयं ज्ञेयो वि-  
धिरुद्राहकर्मणि ॥ ४३ ॥ शूरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रेतोदो वैश्यक-  
न्यया ॥ वसैनस्य दशो ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥ ४४ ॥

टीका—पाणिग्रहणसंस्कार कहिये हाथ पकड़नेकी विधि समानजाति कन्याके वि-  
वाहमें किया जाता है और अन्यवर्णकी कन्याके विवाहमें आगेके श्लोकमें कही हुई  
विधि जानिये ॥ ४३ ॥ ऊंची जातिके पुरुषके साथ व्याहमें क्षत्रियाकन्याको पाणि-  
ग्रहणके स्थानमें ब्राह्मणके विवाहमें ब्राह्मणके हाथमें पकड़े हुए तीरका एक भाग  
ग्रहण करने योग्यहै और वैश्या स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रियके विवाहमें ब्राह्मण क्षत्रिय करि  
पकड़े हुए चाबुकका एक सिरा पकड़ना चाहिये और शूद्रा स्त्रीको ब्राह्मण क्षत्रिय वै-  
श्यके लिपटे हुए कपड़ेकी बत्ती ग्रहण करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥ पर्ववर्जं व्रजे चैनां  
तद्भृतो रतिकाम्यया ॥ ४५ ॥ ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः  
षोडश स्मृताः ॥ चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सैद्विगर्हितैः ॥ ४६ ॥

टीका—रुधिरके दर्शनसे जाने गये गर्भ रहनेके समयको ऋतुकाल कहते हैं उसमें  
स्त्रीसे पुत्रकीप्राप्तिके लिये भोग करै और अपनी स्त्रीमें सदा संतुष्ट रहै और पर्व जो  
अमावास्या आदि हैं तिनको छोड़के भार्यासे अतिप्रीति करनेवाला पुरुष ऋतुकाल  
से भिन्न कालमेंभी रतिकी कामनासे गमन करै पुत्र उत्पन्न करनेकी बुद्धिसे नहीं  
॥ ४५ ॥ सज्जनों करि निंदित रुधिर दीखनेके चार दिनों समेत स्त्रियोंके सोलह  
रातिदिन स्वाभाविक ऋतुकाल कहा है रोग आदिसे न्यूनाधिकभी होजाता है ॥ ४६ ॥

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ॥ त्रयोदशी च शेषा  
स्तु प्रशस्ता दशै रात्रयः ॥ ४७ ॥ गुग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽ  
गुग्मासु रात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदांतवे स्त्रियम् ४८

टीका—फिरि उन सोलह रातिदिनोंमें रुधिर दर्शनसे लगाकै पहले चार रात्रिदिन  
और एकादशी तथा तेरसि गमनमें निंदितहै और शेष दशरात्रियां उत्तमहै ॥ ४७ ॥



पहले कही हुई दश तिथियोंमें युग्मकहिये षष्ठी और अष्टमी रात्रिमें पुत्र उत्पन्न होते हैं तिस्से पुत्रका चाहनेवाला पुरुष युग्मरात्रौमें ऋतुके समय स्त्रीसे गमन करे ॥ ४८ ॥

पुत्रान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ॥ संमे पुमान्पुंस्त्रि  
यो वा क्षो<sup>३</sup>णेऽ<sup>३</sup>ले च विपर्ययः ॥ ४९ ॥ निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु  
स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ॥ ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ५० ॥

टीका—पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषमरात्रिमें भी पुत्रही होता है और स्त्रीका वीर्य अधिक होनेसे युग्ममें भी कन्याही होती है और दोनोका वीर्य बराबर होनेसे नपुंसक होय अथवा जोड़िया स्त्रीपुरुष उत्पन्न होय अथवा दोनोका वीर्य क्षीण अथवा थोडा होयतौ गर्भका संभव होय अर्थात् गर्भ न रहे ॥ ४९ ॥ पहले कही ऋतुकालकी निन्द्य छः रात्रियोंमें और अन्य अनिन्द्य जिन किन्ही आठ रात्रियोंमें भी स्त्रीको त्यागता हुआ वाकी पर्वकी दो रात्रियोंको छोड़ गमन करनेवाला जिस किसी आश्रममें बसता हुआ पुरुष अखंड ब्रह्मचर्य व्रतको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृहीर्याच्छुल्कमण्वपि ॥ गृह्णच्छुल्कं हि  
लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी ॥ ५१ ॥ स्त्रीधनानि तु ये मोहा दुपजीव  
न्ति बान्धवाः ॥ नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥ ५२ ॥

टीका—धन लेनेके दोषका जाननेवाला कन्याका पिता कन्यादानके निमित्त थोडाभी धन न ले, जो लोभसे ले तौ संतानका वेंचनेवाला होय ॥ ५१ ॥ पति पिता भ्राता आदि जे बांधव स्त्री पुत्री आदिका धन और नारीके वाहन अश्व आदिको और वस्त्रोंको ले लेते हैं वे पाप करनेवाले नरकको जाते हैं तिस्से स्त्रीधन किसीको न लेना चाहिये ॥ ५२ ॥

आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मूषैव तत् ॥ अल्पोऽप्येवं म-  
हान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥ ५३ ॥ यासां नाददेते शुल्कं ज्ञातयो  
न स विक्रयः ॥ अर्हणं तत्कुमारीणां मानृशंस्यं च केवलम् ॥ ५४ ॥

टीका—कोई आचार्य कहते हैं कि आर्षविवाहमें घरसे गौका जोडा लेना चाहिये वह झूठही है जिस्से थोडा होय अथवा बहुत होय वह वेंचनाहीहै ॥ ५३ ॥ जिन कन्याओंका वरकरि प्रीतिसे दियाहुआ धन पिता आदि नहीं लेते किंतु कन्याको दे देतेहैं वहभी वेंचना नहीं हैं जिस्से कुमारियोंका पूजन केवल दयारूप है ॥ ५४ ॥



पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिंभिर्देवैस्तथा ॥ पूज्यां भूषयितव्या ॥  
बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र  
देवताः ॥ यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वस्तत्राफलाः क्रियाः ॥ ५६ ॥

टीका—केवल विवाहकालहीमें वरका दिया हुआ धन कन्याको देना चाहिये किंतु उसके पीछेभी पिता आदि करिके कन्या भोजन आदिसे पूजन योग्य हैं और बहुत धन आदि संपत्तिके चाहनेवाले पिता भ्राता आदिको वस्त्र अलंकार आदिसे भूषित करनेयोग्यभीहैं ॥ ५५ ॥ जिस कुलमें पिताआदि करिके स्त्री पूजीजाती है वहां देवता प्रसन्न होते हैं और जहां ये नहीं पूजी जाती हैं वहा देवता ओंकी प्रसन्नता न होनेसे सब यज्ञादिक क्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ ५६ ॥

शोचन्ति जाम्यो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ॥ न शोचन्ति  
तु यत्रैतां वर्धते तद्धि सर्वदा ॥ ५७ ॥ जाम्यो यानि गेहानि श  
पन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥ ५८

टीका—जिस कुलमें बहिन स्त्री पुत्री और पुत्रकी बहूआदि दुखी होती हैं वह कुल शीघ्रही निर्धन होजाताहै और देवता तथा राजा आदि करि पीडित होताहै और जहा ये नहीं शोचतीहैं वह धन आदिसे सदा वृद्धीको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ भगिनी पत्नी बेटी बहू ये दुखी हो जिन घरोंको कोसतीहैं वे घर कृत्या जो अभि चाहै तिस करकै नाश किये की समान धन पशु आदि समेत नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मादेताः सदां पूज्यां भूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्न रैर्न  
त्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥ संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या  
तथैव च ॥ यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ ६० ॥

टीका—तिससे ये भगिनी आदि कौमुदी आदि सत्कारोंमें और यज्ञोपवीतआदि-उत्सवोंमें समृद्धि चाहनेवाले पुरुषों करिके सदा पूजनेयोग्यहैं ॥ ५९ ॥ जिसकुलमें स्त्रीसे पुरुष प्रसन्न रहताहै अर्थात् दूसरी स्त्री आदिकी इच्छा नहीं करता है और पुरुषसे स्त्री प्रसन्न रहतीहै उस कुलमें चिरकालपर्यंत श्रेय रहताहै ॥ ६० ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत् पुमांसं न प्रमोदयेत् ॥ अप्रमोदात्पुनः पुं  
सः प्रजनं न प्रवर्तते ॥ ६१ ॥ स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते



कुलम् ॥ तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ६२ ॥

टीका—जो स्त्री वस्त्रआभरण आदिकोंसे शोभित न होय तौ यह अपने स्वामीके प्रसन्न न करैतौ फिरि पुरुषके प्रसन्न न होनेसे गर्भाधान नही होताहै ॥ ६१ ॥ भंडन आदिसे स्त्रीके कांतिमती होनेपर पतिके स्नेहसे परपुरुषका संसर्ग न होनेके कारण वह कुलप्रकाशमान होताहै और उसके न शोभित होनेपर भर्ताके द्वेषसे दूसरे पुरुषका मेल होनेसे सब कुल मलिन होजाताहै ॥ ६२ ॥

कुंविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्यापनेन च ॥ कुलान्यकुलतां यांति  
ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ६३ ॥ शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च  
केवलैः ॥ गोभिर्ऋग्वैश्च यानैश्च कृष्या रजोपसेवया ॥ ६४ ॥

टीका—आसुर आदि बुरे विवाहोंसे और जातकर्म आदि क्रियाओंके लोपसे और वेदके न पढ़नेसे और ब्राह्मणका पूजन न करनेसे प्रसिद्ध कुलहीन होजाता है ॥ ६३ ॥ चित्र खींचना आदि शिल्पसे और व्याजके लिये धनके व्यवहारसे और केवल शूद्रोंमें उत्पन्न पुत्रसे और गौ घोडा रथके वेचनेसे खेती करनेसे राजाकी नौकरी करनेसे कुलोंका नाश होजाताहै ॥ ६४ ॥

अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्मणाम् ॥ कुलान्याशु वि  
नश्यन्ति यानि हीनानि मन्त्रतः ॥ ६५ ॥ मन्त्रतस्तु समृद्धानि कुला  
न्यल्पधनान्यपि ॥ कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ ६६ ॥

टीका—अयाज्य जो हैं ब्राह्म्य आदि तिनको यजनकरानेसे और श्रौत स्मार्त कर्मोंके न माननेसे और वेदके मंत्रों करि हीन होनेसे सब कुल शीघ्र नाश होजा तैहै ॥ ६५ ॥ यद्यपि धनसे कुल होतेहैं यह बात लोकमें प्रसिद्ध है तिसपर भी थोड़े धनवालेभी कुल वेदके पढ़ने और उसके अर्थके जाननेसे ऊंचे कुलोंकी गणनामें गने जाते हैं और बड़ीभारी प्रसिद्धि पातेहैं ॥ ६६ ॥

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि ॥ पञ्चयज्ञविधानं च  
पूतिं चान्वाहिकीं गृही ॥ ६७ ॥ पञ्च मूनां गृहस्थस्य चुल्ली पे-  
षण्युपस्करः ॥ कण्डनी चोदकुम्भश्च बर्ध्यते यास्तु वाहयन् ॥ ६८ ॥

टीका—वैवाहिक अग्निमें सायंकाल और प्रातःकालका गृह्यमें कहा हुआ



होम और अष्टका आदि विधिपूर्वक और पंचयज्ञोंमेंसे प्रतिदिन करनेयोग्य बलि वैश्व-  
देव आदिको और नितके पाककोभी गृहस्थ उसी अग्निमें करै ॥ ६७ ॥ गृहस्थके ये  
पाँच हिंसाके स्थान हैं चूल्हा १ चक्की २ बुहारी ३ ओखली मूसल ४ जलकाघट ५  
इनको अपने काममें लाता हुआ पुरुष पापों करि युक्त होताहै ॥ ६८ ॥

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥ पञ्च लुप्तां महाय  
ज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु  
तर्पणम् ॥ होमो देवो बलिभौतो वृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ७० ॥

टीका—उन चूल्हा आदि पाँच वधके स्थानोंसे उत्पन्न पापके नाशके लिये क्रमसे  
पाँच यज्ञ मनु आदि आचार्योंने प्रतिदिन गृहस्थोंके करनेको कहे हैं ॥ ६९ ॥ उन  
पंचयज्ञोंके नाम लिखते हैं ॥ वेदका पढ़ना और पढ़ाना ब्रह्मयज्ञहै १ तर्पण कहिये  
अन्न आदिसे अथवा जलसे पितरोंका तृप्त करना पितृयज्ञहै २ अग्निमें होम करना  
देवयज्ञहै ३ भूतोंको बलि देना यह भूतयज्ञ है ४ अभ्यागतका सत्कार करना यह  
मनुष्ययज्ञहै ये पाँचो महायज्ञ कहे गये ॥ ७० ॥

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तिर्यः ॥ स गृहेऽपि वसन्नि  
त्यं सूनादोषैर्न लिप्यते ॥ ७१ ॥ देवतातिथिभृत्यानां पितृणामा  
त्मनश्च यः ॥ न निर्वर्पति पञ्चानामुच्छ्वसन्नं स जीवति ॥ ७२ ॥

टीका—जो पुरुष इन पाँच महायज्ञोंको शक्तिसे कभी नहीं छोड़ता है वह सदा  
घरमें बसता हुआभी सूनाके दोषों करि लिप्त नहीं होता है ॥ ७१ ॥ देवता कहनेसे  
देवता और भूत दोनों जान्ने चाहिये क्यों कि भूतोंकोभी देवता रूपसे बलि दी-  
जातीहै और भृत्य कहिये सेवक और पितृ कहिये बूढ़े मातापिता आदिका और  
सब भावसे अपना पालन तौ अवश्यही कर्तव्यहै और जो देवता आदि पां-  
चका अन्न नहीं देताहै वह श्वास लेताभी जीता नहीं है किंतु मरे हुएके  
समान है ॥ ७२ ॥

अहुतं च हुतं चैव तथा प्रहुतमेव च ॥ ब्राह्मं हुतं प्राशितं च  
पञ्चयज्ञान्प्रचक्षते ॥ ७३ ॥ जपोऽहुतो हुतो होमः प्रहुतो भौतिको  
बली ॥ ब्राह्मं हुतं द्विजार्घ्यां च प्राशितं पितृतर्पणम् ॥ ७४ ॥

टीका—अन्य मुनीश्वरोंने इन्ही पंचयज्ञोंके नाम दूसरे प्रकारसे कहे हैं जैसे अहुत  
१ हुत २ प्रहुत ३ ब्राह्महुत ४ और प्राशित ५ ॥ ७३ ॥ अहुत कहिये ब्रह्मयज्ञ नाम



( ७४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

जप और हुत कहिये देवयज्ञ नाम होम प्रहुत कहिये भूतयज्ञ नाम भूतबलि और ब्राह्महुत कहिये मनुष्ययज्ञ नाम श्रेष्ठ ब्राह्मणकी पूजा और प्राशित कहिये पितृयज्ञ-नाम नित्य श्राद्ध ॥ ७४ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्देवे चैवे हं कर्मणि ॥ दैवकर्मणि युंक्तो हि विभर्ती दं चराचरम् ॥ ७५ ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

टीका—जो दरिद्रता आदि दोषसे अतिथिको भोजन देना आदि करनेको न समर्थ होय तौ ब्रह्मयज्ञमें सदा लगा रहै क्यों कि दैव कर्ममें लगा हुआ पुरुष इस चराचरसंसारको धारण करताहै ॥ ७५ ॥ यजमान करि अग्निके अच्छी तरहसे डाली हुई आहुति रसोंके खींचनेवाले होनेसे सूर्यको पहुचती है और सूर्यसे वर्षा होताहै वर्षासे अन्न उत्पन्न होताहै और अन्नके भोजन आदिसे प्रजा उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ॥ तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ ७७ ॥ यस्मात्र्योऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्ने न चान्वहम् ॥ गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ७८ ॥

टीका—जैसे हृदयमें स्थित प्राणनाम पवनके आश्रयसे सब जीव जीतेहैं वैसेही गृहस्थके सहारेसे सब आश्रम निर्वाह करते हैं ॥ ७७ ॥ गृहस्थ सब आश्रमवालोंके प्राणके समान है यह कहा है इसीको सिद्ध करते हैं जिस्से गृहस्थके सिवाय तीनि आश्रमी वेदका अर्थ व्याख्यान करनेसे और अन्नके देनेसे सदगृहस्थोंहि करि सदा उपकार किये जाते हैं तिससे गृहस्थ जेठा आश्रम है ॥ ७८ ॥

सं धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमेक्षयमिच्छता ॥ ७९ ॥ सुखं चेहं च्छता नित्यं योऽर्धायो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ७९ ॥ ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथर्यस्तथा ॥ आशासते कुण्डुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता ८० ॥

टीका—अक्षय स्वर्गकी इच्छा करनेवाले और इस लोकमें स्त्रीका भोग तथा स्वादिष्ट अन्न आदिके भोजनके सुखको सदा चाहनेवाले पुरुषको यह ग्रहस्थाश्रम यज्ञसे धारण करनेयोग्य है दुर्बलेन्द्रिय कहिये इन्द्रिय जिनके वशमें नहीं है उनको जिसका धारण करना कठिन है ॥ ७९ ॥ ऋषि पितर देवता भूत और अभ्यागत ये गृहस्थोंसे प्रार्थना करते हैं इसीसे शास्त्रके जाननेवालेको उनके लिये करना चाहिये ॥ ८० ॥



स्वाध्यायेनाचयेतपीन्हो मैदेवान्यथाविधि ॥ पितॄन् श्राद्धैश्च नृ-  
नत्रैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनो-  
दकेन वा ॥ पयोमूलफलैर्वापि पितॄभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ ८२ ॥

टीका—स्वाध्याय जो वेदपाठ है तिससे ऋषियोंको और होमसे देवताओंको और श्राद्धोंसे पितरोंको और अन्नसे मनुष्योंको और बलिकर्मसे भूतोंको यथाविधि कहिये शास्त्रके अनुसार पूजै ॥ ८१ ॥ अन्न आदिसे वा जलसे अथवा दूध मूल फलोंसे पितरोंके अर्थ प्रीतिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ८२ ॥

एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके ॥ नचैवात्राशयेत्किञ्चि-  
द्वैश्वदेवं प्रतिद्विजम् ॥ ८३ ॥ वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ वि-  
विधिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ ८४ ॥

टीका—पितरोंके निमित्त पंचयज्ञोंमेंसे एकभी ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्वदेवके लिये किसी ब्राह्मण को यहा भोजन न करावै ॥ ८३ ॥ आवश्यकअग्निमें सिद्ध किये हुए वैश्वदेव अन्नका इन देवताओंके लिये ब्राह्मण प्रतिदिन विधिपूर्वक होम करै ॥ ८४ ॥

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एवं च ॥ ८५ ॥ कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतय-  
एवं च ॥ सह्यावापृथिव्योश्च तथोऽस्विष्टकृतेऽन्तर्तः ॥ ८६ ॥

टीका—वे देवता येंहैं ॥ पहले अग्नये स्वाहा सोमायस्वाहा फिर अग्नीषो-  
माभ्यां स्वाहा ए दोनोका एकसाथ करकै फिर समस्त देवताओंका होम करै तिस पीछे विश्वेदेवोंके निमित्त और धन्वन्तरिके लिये होम करै ॥ ८५ ॥ कुह्वै अनुमत्यै प्रजापतये द्यावापृथिवीभ्यां अग्नये स्विष्टकृते इन सबोंके अंतमें स्वाहा लगाके होम करै ॥ ८६ ॥

एवं सम्यग्वविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् ॥ इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः  
सानुगेभ्यो बलिहरेत् ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्य इति तु द्रारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य  
इत्यपि ॥ वन्नस्पतिभ्य इत्येवं मुसलो लूखले हरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—ऐसे उक्त प्रकारसे अच्छी भांति चित्तलगाकै देवताके ध्यानमें तत्पर हो होम करकै सब पूर्व आदि दिशाओंमें प्रदक्षिण पुरुषसहित इंद्र आदि देवताओंके लिये बलिदे सो जैसे प्राच्या इन्द्रायनमः इंद्रपुरुषेभ्योनमः । दक्षिण



स्यां यमायनमः यमपुरुषेभ्योनमः । पश्चिमायां वरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः  
उत्तरस्यां सोमायनमः । सोमपुरुषेभ्योनमः ॥ ८७ ॥ मरुद्भ्योनमः ऐसे कहकर  
द्वारमें बलिदे और अद्भ्योनमः ऐसे कहकर जलमें बलि दे और वनस्पति  
भ्योनमः ऐसे कहकर ओखली मूसलमें बलि दे ॥ ८८ ॥

उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ॥ ब्रह्मवास्तोष्पति  
भ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमा  
कांश उत्क्षिपेत् ॥ दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च ॥ ९० ॥

टीका—वास्तुपुरुषके शिरपर उत्तर पूर्व दिशामे श्रीके लियेदे और उसीके पायोंपर  
दक्षिण पश्चिम दिशामें भद्रकालीके लिये बलिदे और कोई आचार्य उच्छी-  
र्षका रहस्यके सोनेके सिरहोनेको और पादतः यह उसीको पैरोंकी भूमिके  
कहते हैं और ब्रह्म तथा वास्तुका पति इन दोनोंके लिये घरके बीचमे ब  
लिदे ॥ ८९ ॥ विश्वेभ्योदेवेभ्योनमः ऐसे कहिके घरके आकाशमें बलिदे  
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ऐसे कहिके दिनमें बलिदे और नक्तंचारिभ्योभूते-  
भ्यो नमः ऐसे कहिके रात्रिमें बलिदे ॥ ९० ॥

पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ॥ पितृभ्यो बलिशेषं तु  
सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापं  
रोगिणाम् ॥ वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ ९२ ॥

टीका—घरके ऊपर जो घर होताहै उसको पृष्ठवास्तु कहते हैं वहाँ अथवा बलि  
देनेवालेके पीछेकी भूमिमें सर्वात्मभूतयेनमः ऐसे कहिके बलि दे कहे हुए ब-  
लिदानसे बचाहुआ सब अन्न दक्षिणको मुख करि दक्षिणदिशामें स्वधा पितृभ्यः  
ऐसे कहिके बलिदे प्राचीनावीती हो इस बलिकोदे ॥ ९१ ॥ और अन्न पात्रमें नि-  
कालकर कुत्ता पतित चांडाल और पापरोगी कहिये कुष्टी और क्षयी रोगवाला कौ-  
आ और कीड़े इनके लिये हौलेसे जिसमें रज न लगै ऐसे भूमिमें बलिदे ॥ ९२ ॥

एवं यः सर्वभूतानिब्राह्मणो नित्यमर्चति ॥ स गच्छति परं स्थां  
न तेजोमूर्तिः पर्यर्जुना ॥ ९३ ॥ कृत्वैतद्बलिकर्मैवमर्तिथि पूर्वमाशं  
येत् ॥ भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे ॥ ९४ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंको अन्नदान आदिसे नित्य पूजताहै  
वह परम स्थान कहिये ब्रह्मरूप तेजो मूर्ति स्वप्रकाशको अर्चिरादि मा-



गर्भसे प्राप्त होताहै अर्थात् ब्रह्ममें लीन होजाताहै क्यों कि ज्ञानसे और कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ ९३ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इस बलिकर्मको करिकै घरके मनुष्योंसे पहले अतिथिको भोजन करावै और संन्यासी तथा ब्रह्मचारीको गौतम आदि करि कही हुई विधिसे भिक्षाका दान करै ॥ ९४ ॥

यैत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः॥ तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही ॥ ९५ ॥ भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—विधिवत् कहिये सोनेके सींग आदि मढाकै गुरुको गौ देनेसे जो फल हो ताहै वह फल गृहस्थको विधिपूर्वक भिक्षा देनेसे प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ अधिक अन्न न होनेपर एक ग्रासके प्रमाण व्यंजन आदि करि युक्त भिक्षाको भी उसके भी न होनेमें जलसे भरे हुए पात्रकोभी फल पुण्य आदिसें सत्कार करिकै तत्त्वसे वेदका अर्थ जाननेवाले ब्राह्मणके अर्थ स्वस्तिवाच्य इत्यादि विधिसे दान करै ॥ ९६ ॥

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविज्ञानताम् ॥ भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहोदत्तानि दातृभिः ॥ ९७ ॥ विद्यातपःसमृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥ निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् ॥ ९८ ॥

टीका—अज्ञानसे पात्रको न पहिचानकर देवता और पितरोंके निमित्त वेदके पढ़ने और उसके अर्थके जाननेरूप तेजके न होनेसे भस्मके समान पात्रोंमें दाताओं करि दिये हुए दान निष्फल होते हैं ॥ ९७ ॥ विद्या तथा तप रूप तेजसे युक्त ब्राह्मणोंके मुख अग्निके समान होते हैं उनमें डाला गया हव्य कव्य आदि इस लोकमें कठिन रोग और शत्रु तथा राजपीडा आदि भयसे और बड़े पापसे बचाता है ॥ ९८ ॥

संप्राप्ताय त्वंतिथये प्रदद्यादासंनोदके ॥ अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ शिलानप्युच्छतो नित्यं पञ्चाग्नीर्नपि जुह्वतः ॥ सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोऽर्चितो वसन् ॥ १०० ॥

टीका—आपसे आये हुए अतिथिके लिये आसन और पैरधोने के लिये जल और शक्तिके अनुसार व्यंजन आदियुक्त अन्न आगे कही हुई विधिसे दे ॥ ९९ ॥ कटे हुए खेतमें जो पडा हुआ बाकी रहजाताहै उसको शिलकहते है उसशिलसे जीविका



करनेवाले और दक्षिणाग्नि १ गार्हपत्य २ आहवनीय ३ तीनि ये और आवसथ्य ४ तथा सभ्य ५ इन पांचो अग्नियोंमें होम करते हुए पुरुषके संपूर्ण पंचाग्निमें होम आदि करनेसे जोड़े हुए पुण्योंके बिना पूजा हुआ अतिथि बसते हुए ले लेताहै ॥ १०० ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ॥ एतान्यपि संतां गेहे<sup>१</sup>  
नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ १ ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः  
स्मृतः ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २ ॥

टीका—अन्न न होय तौ तृण १ विछानेके लिये विश्रामके लिये भूमि २ पैर धोने आदिके लिये जल ३ प्यारे वचन ४ ये सब अतिथिके लिये धर्मात्मा गृहस्थके घरमें कभी नही दूरि होते हैं अर्थात् अक्षय देने पडते हैं ॥ १ ॥ अतिथिका लक्षण कहते हैं ॥ केवल एक राति पराये घरमें बसता हुआ ब्राह्मण सदा न रहनेसे अतिथि होताहै नही है दूसरी तिथि जिसकी वह अतिथि कहा जाता है ॥ २ ॥

नैकग्रामोणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकं तथा ॥ उपस्थितं गृहे विद्यां  
द्रार्या यन्नाग्रयोऽपि वा ॥ ३ ॥ उपासते ये गृहस्थाः परंपाकमबु-  
द्धयः ॥ तेन ते प्रेत्य पशुंतां ब्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ ४ ॥

टीका—एक गांवका रहनेवाला होय और लोकमें विचित्र हंसीकि कथा आदिसे संगति करि जीविका चाहनेवाला जो भार्या और अग्रियुक्त घरमें वैश्वदेवके समयमेंभी आवै तौ उसको अतिथि न जानिये ॥ ३ ॥ निषिद्ध पराये अन्नके दोषको न जान-नेवाले जे गृहस्थ आतिथ्यके लोभसे दूसरे ग्रामोंमें जाके पराये अन्नका सेवन करते हैं वे उस पराये अन्नके भोजनसे दूसरे जन्ममें अन्न आदि देनेवालोंके पशु होते हैं तिस्से इसको न करै ॥ ४ ॥

अप्राणोद्योऽतिथिः सायं सूर्योदो गृहमेधिना ॥ काले प्रातस्त्वकाले  
वा नैस्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥ ५ ॥ न वै स्वयं तदंश्रीयादतिथिं यन्न  
भोजयेत् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनम् ॥ ६ ॥

टीका—सूर्यके अस्तहोनेपर आये हुए अतिथिको निषेध न करै क्योंकि सूर्य करि षडंचाया गया वह रात्रिमें अपने घरको नही जा सक्ताहै द्वितीय वैश्वदेवके समय



आया होय अथवा कुसमयमें सायंकालका भोजन हो चुकनेपर आया होय तौभी अतिथि इस गृहस्थके घरमें विना भोजनके न वसै अर्थात् उसके कुछ भोजन अवश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥ जो घी दही आदि उत्तम भोजन अतिथिको न दे वह उसको विना दिये आपभी न खाय क्योंकि अतिथिका भोजन धन्य कहिये धनके लिये हित है और यशका देनेवाला तथा आयुष्यका बढ़ानेवाला है और स्वर्गको देता है ॥ ६ ॥

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ॥ उत्तमेष्टमं कुर्याद्धी  
ने हीनं समे समम् ॥ ७ ॥ वैश्वदेवे तु निवृत्ते यद्यन्योऽतिथि  
राव्रजेत् ॥ तस्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत् ॥ ८ ॥

टीका—आसभ अथवा मृगचर्म और सोनेको शय्या तथा खटिया आदि और जानेके समय पहुँचानेको साथ जाना और सेवा ये सब जो बहुतसे अतिथि एकही समय आवैं तौ उनमें आपसकी अपेक्षासे उत्तम मध्यम और निकृष्ट स्वातिरी अर्थात् जो जैसा होय उसकी वसीहि करै सबोकी एकसी न करै ॥ ७ ॥ अतिथि भोजनतक वैश्वदेव करनेपर जो और अतिथि आवैं तौ उसके लिये फिर रसोई करकै अन्न दे और उसमेंसे बलि न निकालै ॥ ८ ॥

न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलं गोत्रे निवेदयेत् ॥ भोजनार्थं हिते शं  
संन्वान्तां शीत्युच्यते बुधैः ॥ ९ ॥ न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे  
राजन्य उच्यते ॥ वैश्यशूद्रौ संखा चैवं ज्ञातियो गुरुरेवं च ॥ १० ॥

टीका—ब्राह्मण अपने कुल तथा गोत्रको भोजनकेलिये न कहै जिस्से भोजनके लिये उनको कहता हुआ वह पंडितों करिकै वांताशी कहा गयाहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मण के घरमें क्षत्रिय आदि अतिथि नहीं होते हैं क्योंकि क्षत्रिय आदि ब्राह्मणसे हीन जातिहैं और मित्र तथा ज्ञातिको अपने संबंधसे तथा गुरु प्रभु होनेसे अतिथि नहीं होता इस न्यायसे क्षत्रियके उँची ज्ञाति ब्राह्मण और अपनी जातिका क्षत्रिय अतिथि होताहै और हीन वैश्य शूद्र नहीं ऐसेही वैश्यके द्विजाति अतिथि होतेहैं शूद्र नहीं ॥ १० ॥

यदि त्वतिथिर्धर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत् ॥ भुक्तं वत्सूक्तविप्रेषु कां  
मं तमपि भोजयेत् ॥ ११ ॥ वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेऽतिथि  
धर्मिणौ ॥ भोजयेत्सहं भृत्यैस्तावानुशस्यं प्रयोजनम् ॥ १२ ॥



टीका—जो दूसरे ग्रामसे आने और अतिथिके कालमें प्राप्त होनेसे क्षत्रिय अतिथि धर्मसे ब्राह्मणके घर आवै तौ ब्राह्मणके घर आये हुए ब्राह्मणोंके भोजन करके बैठनेपर इच्छासे उसकोभी भोजन करावै ॥ ११ ॥ जो वैश्य शूद्रभी ब्राह्मणके घरमें आवैं और दूसरे ग्रामसे आनेके कारण अतिथि धर्म करि युक्त होय तौ उनकोभी क्षत्रियके भोजनके पीछे स्त्री पुरुषके भोजनसे पहले सेवकोंके भोजन समय दया करके भोजन करावै ॥ १२ ॥

इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान् ॥ संस्कृत्यान्नं यथांश-  
क्ति भोजयेत्सह भार्यया ॥ १३ ॥ सुवासिनीः कुमाराश्च रोगिणो  
गर्भिणीस्तथा ॥ अतिथिभ्योऽग्रं एवैतान्भोजयेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—कहे हुए भोजनके समय क्षत्रिय आदिकोंके बिना प्रीतिसे घरमें आये हुए अतिथि धर्मसे नहीं ऐसे मित्र सहपाठी आदिकोंको शक्तिके अनुसार अच्छा अन्नकरके भार्याके भोजन समयमें भोजन करावै ॥ १३ ॥ सुवासिनी कहिये नवीन व्याही हुई स्त्री वहू बेटीको बालकोंको रोगियोंको और गर्भवती स्त्रियोंको अतिथिभोजनसे पहलेही विनाविचारके भोजनकरावै ॥ १४ ॥

अदित्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः ॥ स भुञ्जानो न जा-  
नोति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः ॥ १५ ॥ भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु  
भृत्येषु च वै हि ॥ भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टं तु दम्पती ॥ १६ ॥

टीका—व्यतिक्रम भोजनके दोषको न जानता हुआ जो इन अतिथिको आदिले भृत्योंतकको भोजन न देकर पहले आप भोजन करताहै वह मरनेके पीछे कुत्ता गीध करिकै अपना भक्षण नहीं जानताहै ॥ १५ ॥ ब्राह्मण अतिथि ज्ञाति सेवक इन सबोंके भोजन करनेपर बचे हुए अन्नको पीछे स्त्रीपुरुष भोजन करै ॥ १६ ॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन्गृह्याश्च देवताः ॥ पूजयित्वा ततः पश्चां  
गृहस्थः शेषं भुंक्ष्वेत् ॥ १७ ॥ अयं स केवलं भुंक्ते यः पचत्या-  
त्मकारणात् ॥ यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्संतामन्नं विधीयते ॥ १८ ॥

टीका—देवता ऋषि मनुष्य पितृ और गृह्यदेवता इन सबोंका पूजन करके तिस पीछे गृहस्थ वाकीरहे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ जो अपनेही लिये अन्नका पाक करके भोजन करताहै वह केवल पापहीको खाताहै अन्नको नहीं, पाकयज्ञसे शेष रहे अन्नको अन्न कहते है और इसीको सज्जनोंका अन्न कहते है ॥ १८ ॥



राजर्त्विक्स्नातकगुरुन्प्रियं श्वशुरमातुलान् ॥ अर्हयेन्मधुपर्केण  
परिसंवत्सरात्पुनः ॥ १९ ॥ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्मण्युप  
स्थितौ । मधुपर्केण संपूज्यौ न त्वयं ज्ञ इति स्थितिः ॥ १२० ॥

टीका—अतिथिकी पूजाके प्रसंगसे घरमें आये हुए राजा आदिकोंकीभी पूजा कहतेहैं । राजा ऋत्विक् स्नातक गुरु जामाता ससुर और मामा घरमें आये हुए इन सातोंका एक वर्ष पीछे आनेपर गृहमें कहे हुए मधुपर्कसे पूजन करै ॥ १९ ॥ जो राजा और स्नातक एकवर्षके उपरांतभी यज्ञकर्ममें आवें तौ मधुपर्कसे पूजने योग्य हैं यज्ञके बिना नहीं यह मर्यादाहै और जामाता आदि तौ वर्षके उपरांत यज्ञके बिनाभी मधुपर्कके योग्य है और संवत्सरके मध्यमें तौ सबको यज्ञ और विवाहही में मधुपर्क दिया जाताहै अन्यत्र नहीं ॥ १२० ॥

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥ वैश्वदेवं हि नमै  
तत्सायंप्रातर्विधीयते ॥ २१ ॥ पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षये  
अग्निमान् ॥ पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥ २२ ॥

टीका—संध्यासमय सिद्ध किये हुए अन्नसे पत्नी बिना मंत्रके बलि निकालै जिस्से अन्नसे करने योग्य होम बलिदान अतिथिभोजनरूप वैश्वदेवनामकर्म सायंकाल प्रातःकाल गृहस्थके लिये कहा गया है ॥ २१ ॥ अग्निहोत्री द्विज अमावास्याके दिन पिंडपितृयज्ञनाम कर्म करिकै श्राद्ध करै पितृयज्ञ और पिंडोंके पीछे जो किया जाय उसको पिंडान्वाहार्यक श्राद्ध कहते हैं वह प्रतिमास कहिये महीने २ में करना चाहिये ॥ २२ ॥

पितॄणां मांसिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः ॥ तच्चामिषेण कर्त्तव्यं  
प्रशस्तेन प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वज्या  
द्विजोत्तमाः ॥ यावन्तश्चैव ये श्रोत्रैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—पितरोंके मासिक श्राद्धको पंडित अन्वाहार्य कहते हैं वह श्राद्ध आगे कहे हुए अच्छे मनोहर दुर्गंध आदि करि रहित मांससे यज्ञपूर्वक करना चाहिये ॥ २३ ॥ उस श्राद्धमें जे भोजन करानेयोग्य हैं और जे छोडने हैं और जितने तथा जिन अन्नों करिकै सो सब कहता हौं ॥ २४ ॥

द्रौदैवे पितृकार्ये त्रीनेकैर्कर्मभयत्र वा ॥ भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि न



प्रसज्जेत विस्तरे ॥२५॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसं  
पदः ॥ पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्ने<sup>१२</sup> हेतुं विस्तरम् ॥ २६ ॥

टीका-दैव श्राद्धमें दो ब्राह्मण और पिता पितामह तथा प्रपितामहके श्राद्धमें तीनि ब्राह्मण अथवा दैवमें एक और पित्र्यमें एक ब्राह्मणको भोजन करावै धनधान्य युक्त होनेपर भी कहे हुए ब्राह्मणोंसे अधिकको भोजन न करावै अर्थात् विस्तार न करै ॥ २५ ॥ सत्क्रिया कहिये ब्राह्मणकी पूजा और देश कहिये दक्षिणप्रवणत्व आदि जो आगे कहेंगे काल अपराह्न और शौच कहिये शुद्धता और ब्राह्मण संपत्ति कहिये गुणवान् ब्राह्मणका लाभ इन पांचोंका विस्तार नाश करता है इस कारण ब्राह्मणोंका विस्तार न करै ॥ २६ ॥

प्रथिता प्रेतकृत्यैषां पित्र्यं नाम विधुक्षये ॥ तस्मिन्नुक्तस्यै<sup>१३</sup> ति नित्यं प्रेतकृत्यैर्व<sup>१४</sup> लौकिकी ॥ २७ ॥ श्रोत्रियायैर्व<sup>१५</sup> देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः ॥ अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महफलम् ॥ २८ ॥

टीका-जो यह श्राद्धरूप पितरोंका कर्म है सो प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारके लिये क्रिया प्रसिद्ध है सो विधुक्षये कहिये अमावास्याको करनी चाहिये उस पितरोंके कर्ममें लगे हुए पुरुषकी लौकिक तथा स्मार्तिकी प्रेतकृत्या अर्थात् पितरोंके उपकारार्थ क्रिया गुणवान् पुत्र पौत्र और धन आदिफलके प्रबंध रूपसे कर्त्ताको प्राप्त होती है तिससे यह कर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ दाताओंको दैव पित्रन्न अर्थात् हव्य कव्यके अन्न श्रोत्रिय जो वेदपाठी है तिसको यत्नसे देने चाहिये क्योंकि वेद आचार और कुटुंबसे अतियोग्य ब्राह्मणको दिया हुआ बड़े फलका देनेवाला होता है ॥ २८ ॥

एकैकमपि विद्वांसं दैवे<sup>१</sup> पित्र्ये च भोजयेत् ॥ पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान्वहूनपि<sup>१३</sup> ॥ २९ ॥ दूरादेवं परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सो<sup>१०</sup> ऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥

टीका-दैव और पित्र्यकर्ममें एक एक वेदके तत्व जाननेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै तौ भी अधिक श्राद्धके फलको प्राप्त होय बहुतसे मूर्ख ब्राह्मणोंको न भोजन करावै ॥ २९ ॥ पहले वेदकी संपूर्ण शास्त्रा पढ़नेवाले ब्राह्मणकी परीक्षा करै जिस्से वह उसप्रकारका ब्राह्मण हव्य कव्योंका तीर्थ कहिये पात्र है देनेमें वह अतिथिके समान बड़े फलकी प्राप्ति का कारण है ॥ १३० ॥



सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते ॥ एकस्तांन्मन्त्रवित्प्रितः  
सर्वानर्हति धर्मतः ॥ ३१ ॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवीं  
षि च ॥ न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरैर्व शुद्ध्यतः ॥ ३२ ॥

टीका-जिस श्राद्धमें वेदके न जाननेवाले ब्राह्मण दशलाख भोजन करें वहां वेदका जाननेवाला भोजनसे संतुष्ट हुआ एक ब्राह्मण धर्मसे उन सबोंकी बराबर है अर्थात् जो फल दसहजार मूर्खोंके भोजनकरानेसे होताहै वह एक वेदपाठीके भोजन करानेसे मिलताहै ॥ ३१ ॥ विद्यासे बड़े ब्राह्मणोंको हव्यकव्य देने चाहिये मूर्खोंको नहीं क्योंकि रुधिरके भरे हुए हाथ रुधिरहीसे शुद्ध नहीं होते हैं किंतु निर्मल जलसे ऐसे मूर्खके भोजनसे उत्पन्न हुआ दोष मूर्खके भोजनसे नहीं दूर होताहै किंतु विद्वानके ॥ ३२ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ॥ तावतो ग्रसते प्रेत्य-  
दीर्तशूलष्टर्ययोगुडान् ॥ ३३ ॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनि  
निष्ठास्तथापरे ॥ तर्पः स्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथापरे ॥ ३४ ॥

टीका-वेदका न जाननेवाला ब्राह्मण हव्यकव्योंमें जितने ग्रासोंको खाताहै उतनेही जलते हुए शूलों और ऋष्टिनाम शस्त्रोंको और लोहक पिंडोंको श्राद्ध करनेवाला मरकै यमलोकमें खाताहै ॥ ३३ ॥ कोई आत्मज्ञानमें तत्पर होते हैं और कोई ग्राजापत्य आदि तपमें और कोई तप तथा वेदाध्ययनमें लगे रहते हैं और कोई यज्ञ आदि कर्मोंमें तत्पर होते हैं ॥ ३४ ॥

ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः ॥ हव्यानि तु यथान्या  
यं सर्वेष्वेव चतुर्वर्षि ॥ ३५ ॥ अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेद  
पारगः ॥ अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता स्याद्वेदपारगः ॥ ३६ ॥

टीका-पितरोंका अन्न यत्नसे ज्ञान प्रधान ब्राह्मणको देना चाहिये और देवताओंका अन्न तौ न्यायसे अर्थशास्त्रके अनुसार चारोंको देना योग्य है ॥ ३५ ॥ जिसका पिता वेद नहीं पढ़ाहै और आप पुत्र वेदका पारगामीहै अथवा पुत्र वेद नहीं पढ़ाहै पिता वेदका पारगामी है ॥ ३६ ॥

ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता ॥ मन्त्रसंपूजनार्थं तु  
संस्कारमितरोऽर्हति ॥ ३७ ॥ न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽ



स्य संग्रहः॥नारि<sup>१</sup> न मि<sup>२</sup> त्रं यं विद्या<sup>३</sup>त्तं श्राद्धे भोजयेद्विजम् ॥३८॥

टीका—इन दोनोमेसे जिसका पिता वेदपाठी है उसको चाहै आप वेद न पढा हो परन्तु श्रेष्ठ जानिये और जिसका पिता वेदपाठी नहीं है और आप वेदपाठीहै वह वेदमंत्रोकी पूजाके लिये सत्कारके योग्य है ॥ ३७ ॥ श्राद्धमें मित्रको न भोजन करावै अन्यधनोसे उसकी मित्रता पूरी करनी चाहिये जिसको शत्रु और मित्र न जानै अर्थात् उदासीन वृत्ति होय उस ब्राह्मणको भोजनकरावै ॥ ३८ ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च॥तस्य प्रेत्य फलं नास्ति श्राद्धेषु च हविःषु च॥३९॥ यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः॥सं स्वर्गाच्च्यवते लोकाच्छ्राद्धमित्रो द्विजाधमः॥१४०॥

टीका—जिसके श्राद्ध और हवीमें अर्थात् दैवपित्र्य कर्ममें मित्रोंकी प्रधानता होती है उस श्राद्ध और हविका फल परलोकमें नहीं मिलताहै ॥ ३९ जो मनुष्य शास्त्रके न जानेसे श्राद्धके द्वारा संगत जो मित्रभावहै ताहि कर्ताहै वह श्राद्धमित्रद्विजोंमें अधम स्वर्गलोकसे पतित होताहै अर्थात् स्वर्गको नहीं पाताहै ॥ १४० ॥

संभोजेनो साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः॥इहैवास्ते तु सां लोके गौरं धेवैकवेर्मनि ॥४१॥ यथेरिणे बीजमुष्वा न वप्ता लभते फलम् ॥ तथाऽनृचे ह विदत्त्वा न दाता लभते फलम् ॥ ४२ ॥

टीका—जिसमें बहुतसे मनुष्यमिलिकै साथ भोजन करें वह सहभोजिनी दक्षिण-पिशाचका धर्म होनेसे द्विजों करि पैशाचीकही गई है उसका फल मैत्री है इसकारणसे वह इसीलोकमें है परलोकमें ऐसे फल देनेवाली नहीं होती है जैसे एकघरमें स्थित अंधी गौ दूसरे घरमे नहीं जासकती ॥ ४१ ॥ जैसे ऊसरमें बीजवोयकै बोनेवाला फलको नहीं पाताहै ऐसे मूर्खको भोजन कराकै दाता श्राद्धके फलको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

दातृन्प्रतिग्रहितुंश्च कुरुते फलभागिनः ॥ विदुषे दक्षिणां दत्त्वा विधिवत्प्रेत्य च ह च ॥ ४३ ॥ कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वारि॥द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निर्फलम् ॥४४॥

टीका—वेदतत्वके जाननेवाले ब्राह्मणको शास्त्रके अनुसार दिया हुआ दान देनेवाले और लेनेवाले दोनोंको इस लोक तथा परलोकमें फल देताहै ॥ ४३ ॥ विद्वान् ब्राह्मणके न मिलनेपर गुणवान् मित्रको भोजन करावै और शत्रु वि-



द्वानभी होय तौ उसको भोजन न करावै क्योंकि शत्रु करि खाया श्राद्ध पर लोकमें निष्फल होताहै ॥ ४४ ॥

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वचं वेदपारगम् ॥ शाखान्तगमर्थोऽध्वर्युं  
छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ ४५ ॥ एषामन्यतमो यस्य भुञ्जीत श्राद्धं  
मर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छार्धती साप्तपौरुषी ॥ ४६ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मरूप शाखा पढ़नेवाले ऋग्वेदीको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावै और वैसेही अर्थात् समस्तवेदके पढ़नेवाले यजुर्वेदीको भोजन करावै और समाप्तिपर्यन्त वेद पढ़नेवाले ब्राह्मणको भोजन करावै ॥ ४५ ॥ इन संपूर्ण शाखा पढ़नेवाले बहुत आदिमेंसे जिसके यहां सत्कारपूर्वक भोजन करताहै उसकी पुत्र आदि सात पुरुषोंकी सदा बरोबर सातपुरुषोंतक पितरोंकी तृप्ति होतीहै ॥ ४६ ॥

एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ॥ अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः  
सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥ ४७ ॥ मातामहं मातुलं च स्वस्नीयं श्वशुरं  
गुरुम् ॥ दौहित्रं विपतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥ ४८ ॥

टीका—हव्यकव्य दोनोके देनेमें जो संबंध रहित श्रोत्रिय आदिकोंको दिया जाता है यह मुख्य कल्प है और मुख्यके न होनेमें आगे कहा हुआ अनुकल्प जानिये जो सदा सज्जनो करिकै किया गयाहै ॥ ४७ ॥ नाना मामा भानजा ससुर गुरु दौहिता जमाई और बंधु कहिये मौसी तथा बुआका पुत्र आदि ऋत्विक् तथा याज्य इन दशको मुख्य श्रोत्रिय आदिके न होनेमें भोजन करावै ॥ ४८ ॥

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥ पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते  
परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ ४९ ॥ ये स्तेनपतितकृोबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।  
तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ १५० ॥

टीका—धर्मका जाननेवाला दैव श्राद्धमें ब्राह्मणकी भोजनकेलिये यत्नसे परीक्षा न करे लोककी प्रसिद्धिहीसे यह साधुतासे भोजन कराने योग्यहै और फिर पितृसंबंधी कार्यके आनेपर पिता पितामह आदिकी परीक्षा करनी योग्य है ॥ ४९ ॥ चोर पतित कहिये महापातकी नपुंसक नास्तिक कहिये जो परलोकको नमानै इन सबोंको दैव और पितृकर्ममें मनुने अयोग्य कहाहै ॥ १५० ॥

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कर्तव्यं तथैवाजयन्ति च ये पूंगास्तां



ॐ श्राद्धे न भोजयेत् ॥ ५१ ॥ चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्र-  
यिणस्तथा ॥ विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकर्ष्ययोः ॥ ५२ ॥

टीका—जटाधारी होय अथवा मूढमुढाये होय ऐसा ब्रह्मचारी और वेदपढने रहित अर्थात् जिसका यज्ञोपवीतही हुआ है वेद नहीं पढाया गया और बुरी; चमडीवाला और जुआरी और जो बहुतसे मनुष्योंको यजनकराताहै जैसे ग्रामया-जक इन सर्वोंको श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ५१ ॥ वैद्योंको मंदिर धारियोंको मा-सवेचनेवालोको वणिज करनेवालोको दैवपित्र्यकर्ममें भोजन न करावै ॥ ५२ ॥

प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्च  
व त्यक्ताग्निर्वाहुषिस्तथा ॥ ५३ ॥ यक्ष्मी च पशुपालश्च परि-  
वेत्ता निराकृतिः ब्रह्मद्रिष्ट परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एवं च ॥ ५४ ॥

टीका—गाँवकी और राजाकी आज्ञा करनेवाला जैसे हलकारा कुनखी कहिये जिसके नख रोगसे बिगड़े होय और काले दातवाला गुरुकी आज्ञा माननेवाला और जिसने श्रौत स्मार्त अग्नि छोडदी है और व्याजखानेवाला ये सब दैव-पित्र्यकर्ममें वर्जित है ॥ ५३ ॥ क्षयीरोगवाला और पशुपाल जो जीविकाके लिये बकरी भेड आदिका चरानेवाला और परिवेत्ता परिवित्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और निराकृति कहिये पंचयज्ञोका न करनेवाला और ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाला और गणाभ्यन्तर कहिये गणके लिये त्याग किये हुए धनआ-दिसे जीविकाकरनेवाला ये दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ॥ पौर्नर्भवश्च काणश्च य-  
स्य 'चोपपतिर्गृहे' ॥ ५५ ॥ भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापित  
स्तथा ॥ शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वागुदुष्टः कुण्डगोलकौ ॥ ५६ ॥

टीका—कुशीलव कहिये नाचनेवाला स्वांग आदिसे जीविका करनेवाला और अवकीर्णी जिसका व्रत स्त्री के योगसे बिगडगया होय चाहे ब्रह्मचारी हो वा संन्या-सी और वृषलीपतिकहिये जिसने सवर्णा न व्याहि शूद्रासे व्याह किया होय और पुनर्भू पुत्र जो आगे कहेंगे और काना जिसके घरमें उपपति कहियें जा-रहै ये सब दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करने योग्य हैं ॥ ५५ ॥ नौकरीलेकर पढा-नेवाला तथा नौकरी लेकर पढनेवाला और व्याकरण आदिमें शूद्रका शिष्य और तैसेही शूद्रका गुरु और कठोर वाणी बोलनेवाला और कुंड जो पतितके जीते हुए जा



रसे उत्पन्न होय और गोलक जो पतिके मरने पीछे जारसे उत्पन्न होय ये सदैव पित्र्यकर्ममें वर्जितहैं ॥ ५६ ॥

अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ब्राह्मैर्यो नैश्व संबन्धैः  
संयोगं पतितैर्गतः ॥ ५७ ॥ अंगारदाही गरुदः कुण्डांशी सोमवि-  
क्रयी ॥ समुद्रयायी बन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥ ५८ ॥

टीका—विनाकारणके मातापिता और गुरुका त्याग करनेवाला अर्थात् उनकी सेवा आदि न करनेवाला और पठना तथा कन्यादान आदिसे जिसका पतितोंसे मेल है ये सब दैव पित्र्यकर्ममें त्याग करनेयोग्य हैं ॥ ५७ ॥ घरजलानेवाला और विषदेनेवाला और कुंडका अन्न खानेवाला और सोमलताका बेचनेवाला और समुद्रमें जो जहाजपर चढिके द्वीपांतरोको जाय और राजा आदिकोंकी स्तुति पढ़नेवाला और तेलके लिये तिल आदि बीजोंका पीसनेवाला और झूठीगवाही देनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ५८ ॥

पित्रां विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ॥ पांपरोग्यभिर्ज्ञस्तश्च  
दाम्भिको रसविक्रयी ॥ ५९ ॥ धनुःशराणां कर्ता च यश्चाग्नेदि  
धिषूपतिः ॥ मित्रध्रुक द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ १६० ॥

टीका—पिताके साथ शास्त्रार्थमें अथवा लोकमें जो व्यर्थ विवाद करताहै और कितव जो आप जुआ खेलना नहीं जानताहै परंतु अपनेलिये औरोंका खेलानेवाला तथा मद्यपीनेवाला और कोढ़ी और निर्णय न होने परभी जिसको महापातक आदि लागि रहे हैं और छलसे धर्म करनेवाला और ईश आदिके रसका बेचनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ५९ ॥ धनुष और बाणका बनानेवाला और जेठी बहिनका व्याह न होनेपर जो व्याही जाय उसको अग्नेदिधिषू कहते हैं उसका पति और जे मित्रकी बुराई करे और जो जुआ खेलनेवाला और पुत्र करि पढाया हुआ पिता ये भी सब वर्जितहैं ॥ १६० ॥

भ्रामरी गण्डमाली च शिष्यथो पिशुनस्तथा ॥ उन्मत्तोऽन्धश्च  
वृज्याः स्युर्वेदनिन्दक एव च ॥ ६१ ॥ हस्तिगोश्वोदमको नक्षत्रै  
र्यश्च जीवति ॥ पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च ॥ ६२ ॥

टीका—मिरगीरोगवाला और कंठमालारोगवाला और श्वेतकुष्ठयुक्त और दुर्जन और उन्मादरोगवाला और अंधा और वेदकी निंदा करनेवाला ये सब वर्जितहैं ॥ ६१ ॥



हाथी बैल घोडा और ऊंट इन सबोंका सिखानेवाला और ज्योतिषसे जीविका करनेवाला और खेलके लिये पिंजरेमें रखकर पक्षियोंका पालने वाला और शस्त्र-विद्याका सिखानेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६२ ॥

स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ॥ गृहसंवेशको दूतो वृक्षा रोपक एव च ॥ ६३ ॥ श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च । हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानां चैव याजकः ॥ ६४ ॥

टीका—वहते हुए प्रवाहोंके पुल आदिको तोड़के दूसरे देशमें लेजानेवाला और उन्ही जलोकी निजगतिका रोकनेवाला और वास्तुविद्या जो घर आदि बनानेकी विद्या है उससे जीविका करनेवाला और हलकारा और नौकरी लेकर वृक्षोंका लगानेवाला धर्मके लिये नहीं क्योंकि लिखा है कि, 'पञ्चाभ्ररोपी नरकं न याति' अर्थात् धर्मके निमित्त पांच आमके पेड़ोंका लगानेवाला नरकको नहीं जाता है इति ये सब ऊपर कहे हुए वर्जित हैं ॥ ६३ ॥ खेलकेलिये कुत्तोंका पालनेवाला और बाजोंके बेचने खरीदनेसे जीविका करनेवाला और कन्यासे गमन करनेवाला और हिंसा करनेवाला और शूद्रोंकी वृत्ति करनेवाला और विनायकादि गणोंका यज्ञ करनेवाला ये सब वर्जित हैं ॥ ६४ ॥

आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा ॥ कृषिजीवीश्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च ॥ ६५ ॥ औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा ॥ प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥

टीका—गुरु और अतिथिके अभ्युत्थान आदि आचारसे रहित और क्लीब कहिये जो धर्मकार्यमें उत्साहरहित होय वह नपुंसक पहले कहचुके हैं और नित्य मागनेसे दूसरेको दिक्क करनेवाला और जो आप खेति करिके खाताहै वह श्लीपदरोगसे मोटे पैरवाला और किसीका सधुओंने जिसकी निंदा की है वह ये सब वर्जित हैं ॥ ६५ ॥ मेढा भैंसी आदिसे जीविका करनेवाला पर और पूर्वा पुनर्भूका पति और धर्मार्थ नहीं किंतु धन लेकर प्रेतका लेजानेवाला और ये सब यत्नसे वर्जनीय हैं ॥ ६६ ॥

एतान्विगर्हिताचारानपौङ्खेयान्द्विर्जाधमान् ॥ द्विजातिप्रवरो विद्वा नुभयत्र विवर्जयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ॥ तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥ ६८ ॥



टीका—इस जन्ममें निंदितहैं अचार जिनके ऐसे स्तेन अर्थात् चोर आदि-  
काको और पूर्वजन्ममें इकठ्ठे कियेहुए निंदित कर्मोंसे हुआ है काणापन जि-  
नको ऐसे मनुष्योंको और अपांक्तेय कहिये जो सज्जनोंके साथ एक स्थानमें  
बैठकर भोजनके योग्य न होय ऐसे नीच ब्राह्मणोंको शास्त्रका जाननेवाला ब्रा-  
ह्मण दैवपित्र्यकर्ममें त्याग करै ॥ १६७ ॥ जैसे तृणकी अग्नि हविजलानेको नहीं  
समर्थ होती हविडालनेसे आप बुद्धिजाती है तौउसमें होम निष्फलहै ऐसेही वे-  
दाध्ययन शून्यब्राह्मण तृणकी अग्निके समानहै उसको देवताके नामसे छोडाहवि  
न देना चाहिये क्योंकि भस्ममें होम नहीं किया जाताहै ॥ १६८ ॥

अपाङ्कदाने यो दातुर्भवत्यूर्ध्वं फलोदयः । दैवे हविषि पित्र्ये वा  
तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६९ ॥ अत्रतैर्यद्विजैर्भुक्तं परिवेत्तादिभि  
स्तथा । अपांक्तेयैर्यदन्त्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ १७० ॥

टीका—पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे ब्राह्मणको दैव तथा पित्र्य हवि देनेसे  
दाताको देनेके पीछे जो फल होताहै उनको संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६९ ॥ वेदके  
ग्रहणके अर्थ जो व्रतहै उससे रहित तैसेही परिवेत्ता आदिकों करकै तथा अन्य-  
अपांक्तेय स्तेन आदिको करकै जो हव्यकव्य खायागया उसको राक्षस खाते है अ-  
र्थात् वह श्राद्ध निष्फल होताहै ॥ १७० ॥

दारोग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्तां स विज्ञेयः प  
रिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ ७१ ॥ परिवित्तिः परिवेत्ता यया च प-  
रिविद्यते ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥ ७२ ॥

टीका—परिवेत्ता अग्निका लक्षण कहतेहैं ॥ जो सहोदर बड़े भाईका न व्याह  
होनेपर और अग्निहोत्र रहित होनेपर विवाह और स्मार्त्त अग्निका ग्रहण कर-  
ताहै वह परिवेत्ता और उसका जेठा भाई परिवित्ति होता है ॥ १७१ ॥ प्रसं  
गसे परिवेदन संबंधी पांचोका अनिष्टफल कहते हैं ॥ परिवित्ति और परिवेत्ता  
जिस कन्यासे विवाह करता है उस कन्याका देनेवाला और विवाह कराने-  
वाला याजक अर्थात् उसविवाहका होम करनेवाले पांचमें समेत सब वे नरकको  
जाते हैं ॥ ७२ ॥

भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः ॥ धर्मेणापि नियुक्ता  
यां संज्ञे यो दिधिर्भूषतिः ॥ ७३ ॥ परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कु  
ण्डगोलकौ ॥ पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः ॥ ७४ ॥



टीका-मरे हुए भाईकी आगे कहे हुए नियोग धर्मसे भी नियोगकी गई स्त्रीमें एक एक बार ऋतुमें गमन करे इत्यादि विधिको छोड़कर कामसे आलिंगन चुंबन आदि जो करता है अथवा वारंवार प्रवृत्त होता है उसको दिधिषूपति कहते हैं ॥ ७३ ॥ पराई स्त्रियोंमें कुंड और गोलक नाम दोनो पुत्र उत्पन्न होते हैं पतिके जीवते हुए जारसे उत्पन्न कुंड होता है और पतिके मरने पीछे उसीभांति गोलक होता है ॥ ७४ ॥

तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च ॥ दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् ॥ ७५ ॥ अपाङ्क्तयो यावतः पाङ्क्तयान् भुञ्जानाननुपैश्याति ॥ तावतां न फलं प्रेत्य दाता प्राप्नोति बालिर्शः ॥ ७६ ॥

टीका-पराई स्त्रीमें उत्पन्न हुए वे कुंड और गोलक दोनौ प्राणी इस लोकमें कीर्ति आदिको और परलोकमें देनेवालेके हव्यका नाश करते हैं अर्थात् देनेवालों करिदिये हुए हव्यकव्योंको निष्फल करते हैं ॥ ७५ ॥ सज्जनोंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके योग्य नहीं ऐसे स्तेन आदि जितने पंक्तिमें भोजन योग्योंको देखता है उतनोंके भोजनका फल उस श्राद्धमें मूर्ख दाता नहीं पाता है इससे जैसे स्तेन आदि न देखे ऐसे करना चाहिये ॥ ७४ ॥

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्ठेः श्वित्रि शतस्य तु ॥ पापरोगी सहस्रस्य दार्तुर्नाशयते फलम् ॥ ७७ ॥ यावतः संस्पृशेदं ब्रह्मणा च्छूद्रयाजकः ॥ तावतां न भवेदातुः फलं दानस्य पौर्तिकम् ॥ ७८ ॥

टीका-अंधादेख नहीं सकता परंतु देखनेयोग्य स्थानमें जानेसे पंक्तियोग्य नव्वे ब्राह्मणोंके भोजन फलको नाश करता है ऐसेही काणा साठिका और श्वेतकुष्टी सौका और पापरोगी हजारका फल नाश करता है ॥ ७७ ॥ शूद्रके यज्ञ आदिमें ऋत्तिकू जितने ब्राह्मणोंको अंगोंसे छूता है अर्थात् जितने श्राद्धमें भोजन करनेवालोंकी पंक्तिमें बैठता है उन सबोंकी पूर्तिक फल देनेवालेको नहीं मिलता है ॥ ७८ ॥

वेदविच्चापि विप्रोऽस्य लोभात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ विनाशं व्रजति क्षिप्रमामपात्रमिवाम्भसि ॥ ७९ ॥ सोमविक्रयिणे विष्टां भिषजे पूयशोणितम् ॥ नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं तु वार्धुषे ॥ १८० ॥

टीका-वेदका जाननेवालाभी जो ब्राह्मण लोभसे शूद्रयाजकका दान लेता है



वह पानीमें कच्चे मट्टीपात्रके समान शीघ्रही शरीर आदिसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ सोमलता बेचनेवालेके लिये जो दिया जाता है वह देनेवालेके भोजनके लिये विष्टा हो जाती है अर्थात् देनेवाला दूसरे जन्ममें विष्टा खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है ऐसेही वैद्यकेदेनेसे पीव और रक्त होता है अर्थात् दाता दूसरे जन्ममें पीवरक्त खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होता है और देवलकको दिया हुआ नष्ट होजाता है अर्थात् निष्फल होता है और व्याज खानेवालेको दिया हुआ अप्रतिष्ठ कहिये आश्रय रहित होनेसे निष्फलही है ॥ १८० ॥

यं तु वाणिजके दत्तं नेह नान्मुत्र तद्भेदवत् ॥ भस्मनीव हुतं हव्यं  
तथा पौनर्भवे द्विजे ॥ ८१ ॥ इतरेषु त्वपाङ्क्तयेषु यथोद्दिष्टेष्व  
साधुषु ॥ मेदोसृङ्मांसमज्जास्थि वर्दन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ ८२ ॥

टीका—श्राद्धमें जो वाणिज करने वालेके लिये दियाजाता है वह इस लोक तथा परलोकमें फलका देनेवाला नहीं होता है और जो पुनर्भू पुत्रके लिये दिया हुआ है वह भस्ममें होमी हुई हविके समान निष्फल होता है ॥ ८१ ॥ विशेष करि जिनका फल नहीं कहा है ऐसे पंक्तिमें भोजनके योग्य पहले कहे हुए स्तेन आदिकोंके लिये दिया हुआ जो अन्न वह देनेवालेके भोजनके मेदा रुधिर मांस मज्जा और हाड होजाता है यह पण्डित कहते हैं यहांभी दूसरे जन्ममें मेदा रुधिर आदि खानेवालोंकी जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ८२ ॥

अपाङ्क्तयोपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः ॥ तान्निबोधत  
कात्स्न्येन द्विजाभ्यान्पङ्क्तिं पावनान् ॥ ८३ ॥ अग्न्याः सर्वेषु वेदेषु स-  
र्वप्रवचनेषु च ॥ श्रोत्रियान्वयजाश्चैवं विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ८४ ॥

टीका—एक पंक्तिमें बैठे हुए स्तेन आदिकों करि दूषित किई हुई पंक्तिजिन ब्राह्मणों करि पवित्र की जाती है उन पवित्र करनेवाले ब्राह्मणोंको संपूर्णतासे आप सुनियो ॥ ८३ ॥ चारों वेदोंमें अन्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् जिन्होंने अच्छी तरहसे चारों वेद पढ़े हैं वे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और प्रकर्ष करिके जो वेदके अर्थको कहें वे प्रवचन कहाते हैं अर्थात् अंग उनमें अग्न्य कहिये श्रेष्ठ अर्थात् छहो अंगोंके जाननेवाले चारों वेदोंके ज्ञाता ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं और श्रोत्रियान्वयजा कहिये दशपीढीसे वेद पढ़नेवालोंके वंशमें उत्पन्न ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं ॥ ८४ ॥



त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ ब्रह्मदेयात्मसंता-  
नो ज्येष्ठसामग एव च ॥ ८५ ॥ वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी  
सहस्रदः ॥ शतायुश्चै व विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ८६ ॥

टीका—त्रिणाचिकेत यजुर्वेदका एक भाग है उसका व्रत करनेवाला ब्राह्मण त्रि-  
णाचिकेत होता है १ वह और पंचाग्निहोत्रि २ और त्रिसुपर्ण ऋग्वेदका एक भाग  
है उसका पढ़नेवाला ब्राह्मण त्रिसुपर्ण कहा जाता है वह ३ और जो शिक्षा आदि छः  
अंगोंको पढा होय वह षडङ्गवित् ४ ब्राह्मविवाहमें विवाही हुईसे उत्पन्न पुत्र ५ ज्येष्ठ  
साम आरण्यमे गाये जाते हैं उनका गानेवाला ६ ये छः पंक्तिपावन जानने योग्य  
हैं ॥ ८५ ॥ वेदके अर्थका जाननेवाला १ और वेदके अर्थका कहनेवाला २ ब्रह्म-  
चारी ३ हजार गौओंका वा अधिकका देनेवाला ४ और सौवर्षकी अवस्थाका श्रो-  
त्रिय ५ ब्राह्मण पंक्तिके पवित्र करनेवाले जानिये ॥ ८६ ॥

पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते ॥ निमन्त्रयेत त्र्यव्रान्सम्य  
ग्विप्रान्यथोदितान् ॥ ८७ ॥ निमन्त्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा  
भवेत्सदा ॥ न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च तद्भवेत् ॥ ८८ ॥

टीका—श्राद्धकर्मके प्राप्तहोनेपर श्राद्धके दिनसे एक दिन पहले जो न हो सके  
तौ उसी दिन जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसे तीन अथवा एक ब्राह्मणको सत्कार-  
पूर्वक निमन्त्रण करे ॥ ८७ ॥ श्राद्धमें न्योता दिया गया ब्राह्मण न्योतेके दिनसे श्रा-  
द्धके दिनरातितक संयम नियमसे रहे अर्थात् स्त्रीसंग आदि न करे और अवश्य  
करनेयोग्य जप आदिको छोड़कर वेदके अध्ययनको भी न करे और श्राद्ध करने-  
वालाभी इसी नियमसे रहे ॥ ८८ ॥

निमन्त्रितानि पितर उर्पतिष्ठन्ति तान्द्विजान् ॥ वायुवच्चानुगच्छ-  
न्ति तंथासीनानुपासते ॥ ८९ ॥ केतितस्तु यथान्यायं हव्यकव्ये  
द्विजोत्तमः ॥ कथंचिदप्यतिक्रामन्पार्पः सूकरतां व्रजेत् ॥ ९० ॥

टीका—न्योतेगये ब्राह्मणोंमे पितर अदृश्यरूपसे स्थित होते हैं और प्राणपवनके  
समान चलते हुएके साथ चलते हैं और बैठनेपर समीप बैठते हैं तिससे उनको  
नियमसे रहना चाहिये ॥ ८९ ॥ हव्यकव्यमें शास्त्रके अनुसार निमन्त्रण किया गया  
ब्राह्मण न्योतेको अंगीकार करके किसीप्रकारसे भोजन न करताहुआ उस पापसे  
दूसरे जन्ममें शूकर होता है ॥ ९० ॥



आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते ॥ दातुर्यदुष्कृतं किं  
चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९१ ॥ अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्म  
चारिणः ॥ न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ९२ ॥

टीका—श्राद्धमें निमंत्रण किया हुआ जो ब्राह्मण वृषलीके साथ भोग करताहै वह देनेवालेके पापको प्राप्त होताहै वृषलीका अर्थ यह है कि वृषस्यन्ती कहिये कामकी इच्छासे जो पतिको चंचल करती है वह वृषली कहाती है इस व्युत्पत्तिसे श्राद्धमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणकी व्याही हुई ब्राह्मणीभी वृषली हो सकती है ॥ ९१ ॥ क्रोधरहित और शौचपरा कहिये वाहरी शौच मट्टी पानी आदिसे भीतरी रागद्वेष आदिका त्याग तिसकरकै युक्त और सदा ब्रह्मचारी अर्थात् सर्वदा स्त्रीसंयोग आदिसे रहित और शुद्धके छोड़नेवाले और महाभाग कहिये दया आदि आठ गुणों करिकै युक्त अनादि देवतारूप पितर हैं तिससे भोजन करने वालेको तथा श्राद्धकरनेवालेको क्रोध आदिसे रहित होना चाहिये ॥ ९२ ॥

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः ॥ ये च यैरुपचर्याः स्यु  
नियमैस्तान्निबोधत ॥ ९३ ॥ मनोहरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः  
सुताः ॥ तेषामृषीणांसर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ ९४ ॥

टीका—इन सब पितरोंकी जिस्से उत्पत्ति हुई है और जे पितर जिन ब्राह्मण आदि कों करि जिन नियमोंसे शास्त्रोक्त कर्मों करि उपचार करनेयोग्य होते हैं उन सर्वोंको सुनिये ॥ ९३ ॥ हिरण्यगर्भके पुत्र मनुके जे मरीचि आदि पुत्र पहले कहे गये हैं उन सब ऋषियोंके पुत्र सोमपा आदि पितृगण मनु आदिकौने कहे हैं ॥ ९४ ॥

विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः ॥ अग्निष्वात्ताश्च  
देवानां मरीचा लोकविश्रुताः ॥ ९५ ॥ दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वो  
रगरक्षसाम् ॥ सुपर्णाकिनराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ ९६ ॥

टीका—विराटके पुत्र सोमसदनाम साध्योंके पितर हैं और मरीचिके पुत्र अग्निष्वात्ता लोकमें विख्यात देवताओंको पितर कहे गये है ॥ ९५ ॥ दैत्य दानव यक्ष गन्धर्व उरग राक्षस सुपर्ण और किन्नरोंके बर्हिषद नाम पितर कहे गये हैं ॥ ९६ ॥

सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः ॥ वैश्यानामाज्यपा न



म शूद्राणां तुं सुकालिनः॥९७॥सोमपास्तु कवेः पुत्रां हविष्मन्तो  
ऽङ्गिरःसुताः॥पुलस्त्यस्याज्यपाःपुत्रावसिष्ठस्य सुकालिनः ॥९८॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंके सोमपा आदि चारों पितर कहे गये हैं ॥  
अर्थात् ब्राह्मणोंके सोमपा क्षत्रियोंके हविर्भुज वैश्योंके आज्यपा और शूद्रोंको  
सुकालिन ॥ ९७ ॥ कविजे भृगु हैं तिनके सोमपा नाम पुत्र हैं और अंगिराके  
हविर्भुज पुत्र हैं पुलस्त्यके आजपा नामहैं और वसिष्ठके सुकालीन है ॥ ९८ ॥

अग्निदग्धानग्निदग्धान्काव्यान्बर्हिषदस्तथा ॥ अग्निष्वात्तांश्च सौ  
म्यांश्च विप्राणामेवं निदिशेत्॥९९॥यं एते तु गणा मुख्याः पि  
तृणां परिकीर्तिताः॥तेषामपीह निज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम्॥२००॥

टीका—अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद अग्निष्वात्त और सौम्य इनको  
ब्राह्मणोंहीको पितर जानिये ॥ ९९ ॥ जो ये प्रधानभूत पितरोंके गण कहे गये हैं  
तिनकेभी इस जगतमें पुत्र पौत्र आदि अनन्त पितर जानने योग्य हैं इस श्लोकमें  
सूचितही वरवरेण्य इत्यादि और भी मार्कण्डेयआदि पुराणोंमें सुने जाते हैं ॥ २०० ॥

ऋषिभ्यःपितरो जाताःपितृभ्यो देवमानवाः ॥ देवभ्यस्तु ज-  
गत्सर्वचरं स्थाण्वनुपूर्वशः ॥ १ ॥ राजतैर्भाजनैरेषामथो वा  
राजतन्वितैः ॥ वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ॥ २ ॥

टीका—मरीचि आदि ऋषियोंसे कहे हुए क्रमके अनुसार पितर हुए और  
पितरोंसे देवता तथा दानव उत्पन्न हुए और देवताओंसे जंगमस्थावर जगत् क्र-  
मसे उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ चांदीके पात्रोंसे अथवा चांदीयुक्त पात्रोंसे अथवा तामे  
आदिके पात्रोंसे श्रद्धापूर्वक पितरोंको दिया हुआ जलभी अक्षय सुखका कारण  
होताहै फिर अच्छी खीर आदिका तौ क्या कहना है ॥ २ ॥

देवकार्याद्विजातीनां पितृकार्यं विशिष्यते ॥ दैवं हि पितृकार्यं  
स्य पूर्वमाप्ययनं श्रुतम् ॥ ३ ॥ तेषामारक्षभूतं तु पूर्वं दैवनि यो  
जयेत् ॥ रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् ॥ ४ ॥

टीका—देवताओंके लिये जो कार्य किया जाता है वह देवकार्य कहाता है उ-  
स्से पितरोंका कार्य द्विजातियोंको अवश्य कर्त्तव्य कहा है इससे पितृश्राद्धकी मु-



ख्यता और दैव अंग है जिस्से दैवकर्म पितृकृत्यका परिपूर्ण करनेवाला कहागया है ॥ ३ ॥ उन पितरोंका रक्षारूप अर्थात् रक्षा करनेवाले विश्वेदेव ब्राह्मणोंका निमंत्रण करै क्योंकि रक्षारहित श्राद्धको राक्षस छीन लेते हैं ॥ ४ ॥

दैवाद्यन्तं तदीहेतुं पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् ॥ पित्राद्यन्तं त्वीहमानः  
क्षिप्रं नश्यति सान्वयः ॥ ५ ॥ शुचि देशं विवित्तं च गोमये-  
नोपलेपयेत् ॥ दक्षिणांप्रवणं चैवं प्रयत्नेनोपपादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—इसीसे वह पित्र्यश्राद्ध दैवकर्म है आदि और अंतमें जिसके दैवहै ऐसा करै पित्र्य जिसके आदि अंतमें होय ऐसा न करै और पित्र्य जिसकी आदि अंतमें होता है ऐसे श्राद्धको करता हुआ पुरुष कुटुंब सहित शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ५ ॥ शुद्ध तथा एकांत देशको गोबरसे लिपावै और यत्नसे दक्षिणकी और झुका हुआ रखवै ॥ ६ ॥

अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैवं हि ॥ विविक्तेषु च तुष्यन्ति  
दत्तेन पितरः सदा ॥ ७ ॥ आसनेषूपकुंसेषु बर्हिष्मत्सु पृथक्पृ-  
थक् उपस्पृष्टोदकान् सम्यग्विप्रास्तानुपवेशयेत् ॥ ८ ॥

टीका—अवकाशोंमें और चोक्ष कहिये स्वभावसे शुवन आदि स्थानोंमें और नदी आदिके किनारोंमें और शून्यस्थानोंमें किये हुए श्राद्धआदिसे पितर सदा सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थानमें कुशोंसमेत जुदे २ विछाये हुए आसनोंपर पहले निमंत्रित स्नान आचमन किये हुए ब्राह्मणोंको अच्छीतरह बैठावै इहां देव ब्राह्मणके आसनपर दो कुश रखवै और पितृब्राह्मणके आसनोंमें प्रत्येक पर दक्षिणको जिसका अग्रहै ऐसा एक एक कुश रखना चाहिये ॥ ८ ॥

उपवेश्य तु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् ॥ गन्धमाल्यैः सुरभि-  
भिरर्चयेद्देवपूर्वकम् ॥ ९ ॥ तेषामुदकमनिय सपवित्रांस्तिलान-  
पि ॥ अग्नौकुर्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैः सह ॥ २१० ॥

टीका—उन अनिदित ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठायकै केसरि आदि सुगंध और माला धूप आदिसे पहले देवपूजन करिकै पूजै ॥ ९ ॥ उन ब्राह्मणोंके अर्घजलसे पवित्र तिलोंको मिलाकर उन ब्राह्मणोंके साथ आज्ञा लेकर अग्निमें आगे कहा हुआ होम करै ॥ २१० ॥

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वाप्ययनमादितः ॥ हविर्दानेन विधिर्व



त्पश्चात्संतर्पयेत्पितॄन् ॥ ११ ॥ अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाँणावेवोप  
पादयेत् ॥ यो ह्यग्निः सं द्विजो वि प्रेमन्त्रं दर्शभिर्हच्यते ॥ १२ ॥

टीका—पहले विधिपूर्वक पर्युक्षण आदिको करके हविके देनेसे अग्नि सोम और य-  
मको प्रसन्न करिके पीछे अन्न आदिसे पितरोंको तृप्त करे ॥ ११ ॥ अग्निके न हो-  
नेमें फिर ब्राह्मण हाथहीमें पहले कही हुई तीनि आहुति दे जिसे जो अग्नि है  
वही ब्राह्मण है यह वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंने कहा है ॥ १२

अक्रोधनान्सुप्रसादान्वदंत्येतान्पुरातनान् ॥ लोकस्याप्ययने युक्ता  
ञ्छ्राद्धदेवान्द्विजोत्तमान् ॥ १३ ॥ अप्सव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृ-  
त्य विक्रमम् ॥ अप्सव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकं भुवि ॥ १४ ॥

टीका—क्रोधरहित प्रसन्न मुख और प्रवाहकी अनादितासै पुराने और लोककी  
वृद्धिके लिये उपाय करनेवाले ऐसे उत्तम ब्राह्मणोंको मनु आदि आचार्य श्राद्धका  
पात्र कहते हैं ॥ १३ ॥ अग्नौकरण और होम करनेके क्रमको अप्सव्य कहिये दा-  
हिनी ओर धरिके तिस पीछे अप्सव्य हो दाहिने हाथसे पिंड धरनेकी भूमिमें  
जल छिड़के ॥ १४ ॥

त्रींस्तु तस्माद्धविःशेषात्पिण्डान्कृत्वा समाहितः ॥ औदकेनैवं वि-  
धिना निर्वपेदक्षिणामुखः ॥ १५ ॥ न्युप्यपिण्डांस्ततस्तान्स्तुं प्रयतो  
विधिपूर्वकम् ॥ तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्यालेपभागिनाम् ॥ १६ ॥

टीका—उस अग्नि आदिके होमसे बचे हुए अर्थात् निकालनेसे शेष रहे अन्नसे  
तीनि पिंड बनाके जलदानहीके विधिसे दाहिने हाथसे सावधान एकाग्रचित्त हो  
दक्षिणको मुख करि कुशोंके उपर रखे ॥ १५ ॥ अपने गृहमें कही हुई विधिसे  
उन पिंडोंको कुशोंके ऊपर स्थापित करि उन कुशोंके मूलमें लेपभुजस्तृप्यन्तु ऐसे क-  
हिके लेपके भोज करनेवाले प्रपितामहके पिता आदि तीनि पुरुषोंकी तृप्तिके लिये  
एक कुशसे हाथको पोंछिदे ॥ १६ ॥

आचम्योदकपरावृत्य त्रिराग्न्य शनैरसून् ॥ षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्या-  
त्पितृनेव च मन्त्रवित् ॥ १७ ॥ उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्ति-  
के पुनः ॥ अवजिघ्रेच्च तान्पिण्डान्यथान्युप्तान्समाहितः ॥ १८ ॥

टीका—इस पीछे आचमन करि उत्तराभिमुख हो शक्तिके अनुसार तीनि प्राणा  
याम करिके वसंताय नमस्तुभ्यम् ऐसे कहि छह ऋतुओंको नमस्कार करे फिर



नमो वः पितर इत्यादि मंत्रको पढ़ि दक्षिणाभिमुख हो नमस्कार करै ॥ १७ ॥  
 पिंड देनेसे पहले पिंड धरनेके स्थानमें धरे हुए जलके पात्रमें शेष रहे जलको  
 प्रत्येक पिंडकी समीप भूमिमें क्रमसे फिर छोड़दे फिर उन पिंडोंको जिस क्र-  
 मसे रख्वाथा उसी क्रमसे उठाके सावधान हो सूँव ॥ १८ ॥

पिण्डेभ्यस्त्वंलिपैकां माँत्रां समादायानुपूर्वशः ॥ तानेवं विप्रांनां  
 सीनान्द्विधिवत्पूर्वमाशयेत् ॥१९॥ ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामे-  
 व निर्वपेत् ॥ विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वंकं पितरमाशयेत् ॥२०॥

टीका—पिंडोंमेंसे लिये हुए छोटे २ भागोंको पिताके पिंडके क्रमहीसे लेकर उन्ही  
 पिता आदि ब्राह्मणोंको भोजनकालमें भोजनसे पहले जिमावें और विधिपूर्वक पिंड  
 करनेके अनुसार पिताका नाम लेकर जो पिंड दिया गया है उसके अवयवरू-  
 प पितृब्राह्मणको भोजनकरावै ऐसेही पितामह प्रपितामहके पिंडोंकाभी करै ॥  
 ॥ १९ ॥ पिताके जीवते हुए मरे हुए पितामह आदि तीनोंका श्राद्ध करै अथ-  
 वा पिताके स्थानमें उसी निजपिताको भोजन करावै और पितामह प्रपितामह-  
 के ब्राह्मणभोजन करावै और दो पिंड दे ॥ २० ॥

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चोपि पितामहः ॥ पितुः सं नाम  
 संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम् ॥२१॥ पितामहो वा तच्छ्राद्धं भु-  
 ज्जीतेत्यब्रवीन्मनुः ॥ कामं वा समनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् ॥२२

टीका—जिसका पिता तौ मरगया होय और पितामह जीवता होय वह पि-  
 ता और पितामहका श्राद्ध करै और गोविंदराजका यह मतहै कि जिसके पिता  
 औ प्रपितामह मरिगये होय वह पिताके लिये पिंडदेकर पितामह सें परे दोके  
 लिये पिंड दे इस विष्णुके वचनसे प्रपितामह और उसके पिताको पिंड दे ऐसा  
 व्याख्यान कियाहै ॥ २१ ॥ जैसे जीवता हुआ पिता भोजन कराने योग्य है  
 ऐसेही पितामहभी पितामहब्राह्मणके स्थानमें भोजन कराने योग्य है पिता और  
 पितामहके ब्राह्मण भोजन करावै और पिंडदान करै अथवा जीवते हुए पिताम-  
 हसे तुह्नी अपनी रुचिके अनुसार करौ ऐसी आज्ञा पाकै अपने पितामहको भो-  
 जन करावै अथवा पिता और प्रपितामहके दो श्राद्ध करै और विष्णुके वचनसे  
 पिता प्रपितामह और वृद्ध प्रपितामहके तीनि श्राद्ध करै ॥ २२ ॥

तेषां दत्त्वा तु हस्तेषु सप्तवित्रं तिलोर्दकम् ॥ तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत्



स्वं धैषामस्त्वि<sup>११३</sup>ति ब्रुवन् ॥ २३ ॥ पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्न  
स्य वृद्धितम् ॥ विप्रान्तिके पितृन्ध्यायच्छन्नकैरुपनिक्षिपेत् ॥ २४ ॥

टीका—उन ब्राह्मणोंके हाथोंमें कुशोंसमेत तिलोदक दैकै वह पहले कहा  
हुआ पिंडका अल्पभाग पित्रे स्वाधाअस्तु इत्यादि मंत्रको पढता हुआ पिता  
आदि तीनि ब्राह्मणोंके लिये क्रमसे दे ॥ २३ ॥ अन्नका वर्धित कहिये भराहुआ  
वह लोही आदि पात्र अपने हाथोंमें लेकर पितरोंका चितवन करता हुआ पाप-  
के स्थानसे लाकर ब्राह्मणोंके समीप परोसनेके लिये हौलेसे धर दे ॥ २४ ॥

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते ॥ तद्विप्रलुम्पन्त्यसुराः स-  
हसां दुष्टचेतसः ॥ २५ ॥ गुणांश्च सूपशाकाद्यान्पयो दधि  
घृतं मधु ॥ विन्यसेत्प्रयतः पूर्वं भूमावेवं समाहितः ॥ २६ ॥

टीका—दोनो हाथोंमें नही स्थित अर्थात् एक हाथसे लाया गया अन्न जो  
ब्राह्मणोंके समीप पढुचाया जाताहै वह दुष्ट बुद्धिअसुर छीन लेते हैं तिससे एक  
हाथसे लाकै न परोसना चाहिये ॥ २५ ॥ व्यंजन कहिये चटनी आदिको अथ  
वा दालि शाक आदि और दूध दही मीठा शूद्र आदि शुद्ध सावधान और एका  
ग्रचित्त हो अच्छी भांति जैसे फैलें नही ऐसे अपने पात्रमें स्थित सब पदार्थों  
को भूमिहीमें रक्खै पट्टे आदिपर न रक्खै ॥ २६ ॥

भक्ष्यं भोज्यं च विविधं मूलानि च फलानि च ॥ हृद्यानि चैवं मां  
सानि पानानि सुरभीणि च ॥ २७ ॥ उपनीय तु तत्सर्वं शन्नकैः  
सुसमाहितः ॥ परिवेषयेत् प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् ॥ २८ ॥

टीका—भक्ष्य सुंदर अच्छे लड्डु आदिको और भोज्य खीर आदिको तथा  
नाना प्रकारके फल मूलोंको और हृदयके प्यारे मांसो तथा सुगंधित जलको भूमि-  
हीमें रक्खै ॥ २७ ॥ इस सब अन्न आदिको ब्राह्मणके समीप लाय सावधान शुद्ध  
ओर एकाग्रचित्त हो क्रमसे परोसै यह मीठा है यह खट्टा है ऐसे मधुर आदि गुणों  
को कहता जाय ॥ २८ ॥

नोस्त्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतं वदेत् ॥ न पादेन स्पृशेदन्नं  
न चैतदवधूनयेत् ॥ २९ ॥ अस्त्रं गमयति प्रेतान्कोपोऽरीर्न  
नृतं शुनः ॥ पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥ ३० ॥



टीका-परोसनेके समय कभी आंसू न डालै न क्रोध करै न झूठ बोलै और अन्नको पैरसे न छूवै और न इसको पात्रमें उछालै ॥ २५ ॥ निकाला हुआ आसूँ श्राद्धके अन्नको भूतोंको पहुँचाता है पितरोंको नहीं पहुँचाता है और क्रोध शत्रुओंको और झूठ बोलना कुत्तोंको और पैरसे छूना राक्षसोंको और उछाला हुआ पाप करनेवालोंको तिससे रोना आदि न करै ॥ २३० ॥

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्वर्धादमत्सरः ॥ ब्रह्माद्याश्च कथाः कुंर्यात्पितृणामेतदीप्सितम् ॥ ३१ ॥ स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥ आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥ ३२ ॥

टीका-जो जो अन्न व्यंजन आदि ब्राह्मणोंको रुचे उसको मत्सररहित हो कै दे और परमात्माके निरूपणकी वार्त्ता करै इसलियेकि पितरोंको यह अपेक्षित है ॥ ३१ ॥ वेद मानव आदि धर्मशास्त्र सौपर्ण मैत्रावरुणादिक आख्या न महाभारत आदि इतिहास ब्रह्मपुराण आदिपुराण और श्रीसूक्त शिवसूक्त आदि खिल श्राद्धमें ब्राह्मणोंको सुनावै ॥ ३२ ॥

हर्षयेद्ब्राह्मणांस्तुष्टो भोजयेच्च शनैःशनैः ॥ अन्नाद्येनासंकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् ॥ ३३ ॥ व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् ॥ कुंतपं चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् ॥ ३४ ॥

टीका-आप प्रसन्न होकै प्यारि वचनोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करै और अन्नको मीठे तथा खीर आदिसे हौले २ भोजन करावै यह खीर बड़ी स्वादिष्ट है यह लड्डु बहुत अच्छा है लीजिये ऐसे गुणोंको कहकर वारंवार लेनेके लिये ब्राह्मणोंकी प्रेरणा करै ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थितभी दौहित्रको श्राद्धमें यत्नसे भोजन करावै और आसनमें नेपालका कंबलदे और श्राद्धकी भूमिमें तिलोंको बिखेर दे ॥ ३४ ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुंतपस्तिलाः ॥ त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ ३५ ॥ अंत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्धुञ्जी रस्ते च वाग्यताः ॥ न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रां पृष्टां हविर्गुणान् ॥ ३६ ॥

टीका-श्राद्धमें दौहित्र कुंतप और तिल ये तीनि पवित्र हैं और यहां श्राद्धमें शौच क्रोध न करना और जलदी न करना इन तीनोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३५ ॥ जिस अन्नका भोजन उष्ण उचित है वह उष्णपरौसे फल आदि उष्णदे और ब्राह्मण मौन होकै भोजन करै वह अन्न स्वादु है अथवा नहीं स्वादु है ऐसे अन्न आ-



दिके गुण दाता करिकै पूछे गये ब्राह्मण मुख आदिकी चेष्टासेभी न कहै ॥ ३६ ॥

यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥ पितरस्तु विदश्नन्ति  
यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ ३७ ॥ यद्रेष्ठितशिरा भुङ्क्ते यदुङ्क्ते दक्षि-  
णमुखः ॥ सोपानत्कश्च यदुङ्क्ते तद्वैरक्षांसि भुञ्जते ॥ ३८ ॥

टीका—जबतक अन्नमें उष्णता रहती है और जबतक ब्राह्मण मौन भोजन करते हैं और जबतक ब्राह्मण हविके गुण नहीं कहे जाते हैं तबतक पितर भोजन करते हैं ॥ ३७ ॥ वस्त्र आदि शिरमें लपेटके तथा दक्षिणको मुख करिकै और जूता पहिरे हुए जो भोजन करता है उसको राक्षस खाते हैं पितर नहीं खाते हैं ति-  
स्से ऐसा न करना चाहिये ॥ ३८ ॥

चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च ॥ रजस्वला च षण्ढश्च ने-  
क्षेत्रं भृतो द्विजान् ॥ ३९ ॥ होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिधी-  
क्ष्यते ॥ देवे कर्मणि पित्र्ये वा तद्वच्छत्ययथातथम् ॥ २४० ॥

टीका—चाण्डाल गांवका सूअर मुरगा कुत्ता रजस्वला स्त्री और नपुंसक ये-  
जैसे ब्राह्मण भोजनके समय न देखें ऐसा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अग्निहोत्र  
आदिमें गौ सुवर्ण आदिके दानमें अपने अभ्युदयके लिये ब्राह्मण भोजनमें द-  
र्शपौर्णमास आदि दैव कर्ममें और श्राद्ध आदि पितृ कर्ममें जो इन करिकै  
देखा जाय तो जिसके लिये वह किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है अ-  
र्थात् निष्फल होजाता है ॥ २४० ॥

प्राणेन सूकरो हन्ति पक्ष्वातेन कुक्कुटः ॥ श्वा तु दृष्टिनिपातेन रूपं  
शोनावरवर्णजः ॥ ४१ ॥ खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि  
वा भवेत् ॥ हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः ॥ ४२ ॥

टीका—शूकर उस अन्न आदिकी गंधको सूंघ करि कर्मको निष्फल कर दे-  
ताहै तिस्से सूंघनेके योग्य स्थानमें उसको न आने दे और मुरगा परोकी पवनसे  
इस लिये वह भी परोकी पवन लगनेके स्थानसे दूर करनेयोग्य है और कुत्ता  
देखनेसे और शूद्र छूनेसे द्विजातिके श्राद्धको निष्फल कर देताहै ॥ ४१ ॥ खंजा  
कहिये पंगुला होय अथवा काणा होय दाताका दास होय अथवा अन्य शूद्र  
होय और हीन वा अधिक अंगका मनुष्य होय उसकोभी उस श्राद्धके स्था-  
नसे निकाल दे ॥ ४२ ॥



ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि भोजनार्थमुपस्थितम् ॥ ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः  
शक्तिः प्रतिपूजयेत् ॥ ४३ ॥ सार्ववर्णिकमन्नाद्यं संनीयाप्तव्यं वा  
रिणा ॥ संमुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि ॥ ४४ ॥

टीका—अतिथिरूप ब्राह्मण होय अथवा और कोई भोजनके लिये भिक्षुक उस  
काल आया होय तौ उसकाभि श्राद्धके पात्रभूत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर यथा शक्ति  
अन्नके भोजनसे वा भिक्षा देनेसे संस्कार करै ॥ ४३ ॥ सब प्रकारके अन्न आदिको  
व्यंजन आदिकोंमें मिला एक करि जलमें भिगो कै भोजन किये हुए ब्राह्मणोंके  
आगे भूमिमें कुशोंके ऊपर फैलाकै डाल दे ॥ ४४ ॥

असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् ॥ उच्छिष्टं भागधे  
यं स्याद्भेषु विकिरंश्च यः ॥ ४५ ॥ उच्छेषणं भूमिगतमजिह्वस्या  
शैठस्य च ॥ दासवर्गस्य तर्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते ॥ ४६ ॥

टीका—संस्कारके अयोग्य बालकोंका तथा विना दोषके कुलकी स्त्रियोंके त्याग  
करनेवालोंका पात्रमें स्थित उच्छिष्ट अन्न जो कुशोंपर बिखरा जाता है वह भाग होता  
है अर्थात् उनको वही मिलता है ॥ ४५ ॥ जो उच्छिष्ट भूमिमें गिरता है वह आ-  
लस्य और कुटिलता रहित दासोंके समूहका भाग पित्र्यकर्ममें मनु आदि कहते हैं ४६

आसपिण्डक्रियाकर्म द्विजातेः संस्थितस्य तु ॥ अदैवं भोजयेच्छ्रा  
द्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ ४७ ॥ सहपिण्डक्रियायां तु कृतायाम  
स्य धर्मतः ॥ अनयैवावृता कार्ये पिण्डनिर्वपणं सुतैः ॥ ४८ ॥

टीका—सपिण्डीकरणश्राद्ध पर्यंत शीघ्र मरे हुए द्विजातिका वैश्वदेव ब्राह्मण भोजन  
रहित श्राद्ध निमित्तका अन्नसे ब्राह्मणको भोजन करावै और एक पिंड दे ॥ ४७ ॥  
जिसका यह एकोदिष्ट श्राद्ध किया है उसका धर्मसे निजगृहमें कहि हुई विधिसे स-  
पिण्डीकरण श्राद्ध करनेपर इसी परिपाटीसे कहे हुए अमावास्या श्राद्धकी पद्धतिसे  
पिण्डोंका निर्वपण कहिये श्राद्ध पुत्रों करि सर्वत्र मृताह कहिये मरनेके दिन आदिमें  
करना चाहिये ॥ ४८ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति ॥ स मूढो नरैकं यो  
ति कालंसूत्रमवाक्शिराः ॥ ४९ ॥ श्राद्धभुग्वृषलीतल्पं तदहयोऽ  
धिगच्छति ॥ तस्याः पुंसीषे तन्मासं पितरस्तस्य शरिते ॥ २५० ॥



टीका—श्राद्ध भोजनका उच्छिष्ट अन्न जो शूद्रको देता है व मूर्ख अधोमुखहोके कालसूत्रनाम नरकमें जाता ॥ ४९ ॥ श्राद्धका भोजन करनेवाला जो ब्राह्मण उसी-दिन रातिमें स्त्रीसंग करता है उसके पितर उस स्त्रीकी विष्टामें एकमहीनेतक पड़े रहते हैं ॥ २५० ॥

पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः ॥ आचान्तांश्चानुजानी  
यादभितो रम्यतामिति ॥ ५१ ॥ स्वधास्त्वित्येवं तं ब्रूयुर्ब्राह्मणो  
स्तदनन्तरम् ॥ स्वधाकारः परां ह्यशीः सर्वेषु पितृकर्मसु ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको तृप्त जानि भोजन करलिया ऐसे पूछकर आचमन करावै आ-चमन किये उनको भी ऐसा संबोधन दे जाइये ऐसे कहै ॥ ५१ ॥ आज्ञा देनेके पीछे ब्राह्मण श्राद्ध करनेवालेसे स्वधास्तु ऐसे कहै जिस्से सब श्राद्ध तर्पण आदि पितृकर्ममें स्वधा शब्दका बोलना सबसे बड़ा आशीर्वाद है ॥ ५३ ॥

ततो भुक्तेवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत् ॥ यथा ब्रूयुस्तथा कुर्या  
दनुज्ञातस्ततो द्विजैः ॥ ५३ ॥ पितृभ्यः स्वदितमित्येवं वाच्यं गोष्ठे  
तुं सुश्रुतम् ॥ संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि ॥ ५४ ॥

टीका—स्वधाशब्द कहनेके पीछे ब्राह्मणोंके भोजनकरनेसे बचे हुए अन्नको अन्नशेषभी है ऐसे कहिकै उन ब्राह्मणोंके आगे धरदे इस अन्नसे यह करो ऐसी आज्ञा लेकर जेसा वे कहैं वैसे शेष अन्नका खरच करै ॥ ५३ ॥ पितृ श्राद्धमें स्वदित अर्थात् अच्छा भोजन हुआ ऐसे बोले । श्राद्धमें सुश्रुत अर्थात् अच्छाश्रवणकिया ऐसे कहे । और अभ्युदयश्राद्धमें संपन्न अच्छाहुवा ऐसे कहे और दैवकर्ममें रुचित ऐसे कहना ॥ ५४ ॥

अपराह्णस्तथा दर्भा वास्तुसंपादनं तिलाः ॥ सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजांश्चा  
स्याः श्राद्धकर्मसु संपदः ॥ ५५ ॥ दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि  
च सर्वशः ॥ पवित्रं यच्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंपदः ॥ ५६ ॥

टीका—अमावास्या श्राद्धका कहना यहां मुख्य है तिस्से अमावास्याके मध्ये यह अपराह्ण काल अर्थात् मध्याह्न कहाहै प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् इस वचनसे वृद्धिश्राद्ध आदिमें प्रातःकाल आदि काल दूसरी स्मृतियोंमें कहनेसे ॥ आसन आदिके लिये कुशा और गोवर आदिसे श्राद्धके स्थानका शुद्ध करना और विकिरण आदिके



लिये तिल और मृष्टि कहिये उदारतासे अन्न आदिका देना और मृष्टि कहिये अन्न आदिकोंका शुद्ध करना और पंक्ति पावन ब्राह्मण ये श्राद्धमें संपत्ति है इससे और अंगोसे इनकी उत्कृष्टता सूचित हुई कि इनका श्राद्धमे होना आवश्यक-कहैं यह सूचित किया ॥ ५५ ॥ कुश और पवित्र कहिये मंत्र और पूर्वाह्निकाल कहिये पहला पहर और सब हविष्य कहिये मुनिअन्न आदि सब और पहले कहा हुआ पवित्र कहिये वास्तुसंपादन आदि ये सब हव्य कहिये दैव कर्मकी समृद्धि हैं ॥ ५६ ॥

मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् ॥ अक्षारलवणं चैवं प्रकृत्या ह विरुच्यते ॥५७॥ विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वा ग्यतः शुचिः ॥ दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतमान्वरान्पितॄन् ॥५८॥

टीका—मुनि कहिये वानप्रस्थके अन्न नीवार आदि और दूध और सोमलताका रस अनुपस्कृत कहिये बिगडा न होय ऐसा दुर्गंध आदिसे रहित मांस और अक्षार लवण कहिये विना बनाया हुआ सेंधव आदि ये स्वाभाविक हवि मनुआदिकौने कहे हैं ॥ ५७ ॥ उन ब्राह्मणोंका विसर्जन करिके एकाग्रचित्त मौनी और शुद्ध हो दक्षिण दिशाको देखता हुआ आगे कहे हुए इन चाहै हुए वरोंको पितरोंसे मागै ॥ ५८ ॥

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥ श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयं च नोऽस्तिर्वीति ॥५९॥ एवं निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदन्तरम् ॥ गां विप्रमज्जमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् ६०

टीका—हमारे कुलमें दाता पुरुष बढै और पढवने पढाने तथा अर्थके ज्ञानसे वेद वृद्धको प्राप्त होय और पुत्रपौत्र आदि बढैं और हमारे कुलमें वेदके अर्थोंसे श्राद्ध न जाय और देनेयोग्य धन आदि बहुतसा होय ॥ ५९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे पिण्डदान करिके वांछित वर मागने पीछे गौ ब्राह्मण अथवा बकरेको वे पिण्ड खुला दे अथवा अग्निमे वा जलमें डालदे ॥ ६० ॥

पिण्डनिर्वपणं केचित्परस्तादेव कुर्वते ॥ वयोभिः स्वाद्यन्त्यन्ये प्राक्षिपन्त्यनलेऽप्सु वा ॥ ६१ ॥ पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ॥ मर्ध्यमं तु तैतः पिण्डमद्यात्सम्यक्सुतार्थिनी ॥ ६२ ॥

टीका—कोई आचार्य ब्राह्मणभोजन के पीछे पिण्डदान करतेहैं और कोई प-



क्षियोंको पिंड खुलाते हैं अथवा आगिमें जलमें डाल देते हैं ॥ ६१ ॥ धर्म अर्थ काममे मन बाणी काय कर्मसे पतिही मुझे सेवा करने योग्य हैं यह व्रत जिसके होय वह पतिव्रताधर्मसे व्याही सवर्णा और प्रथम विवाही स्त्री श्राद्धकी क्रियामें श्रद्धायुक्त पुत्रकी चाहनेवाली उन पिंडोमेंसे बीचके पितामहके पिंडका भोजन करै ॥ ६२ ॥

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ॥ धनवन्तं प्रजावन्तं  
सात्त्विकं धार्मिकं तथा ॥ ६३ ॥ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायं  
प्रकल्पयेत् ॥ ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्त्वा बान्धवानपि भोजयेत् ॥ ६४ ॥

टीका—उस पिंडके खानेसे वह स्त्री बड़ी उमरवाले कीर्ति और धारणा करनेवाले बुद्धियुक्त और धनपुत्र आदि युक्त गुणी पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ६३ ॥ तिस पीछे हाथोंको धोके अपनी ज्ञाति जिमावै उनके लिये पूजापूर्वक अन्न दे माताके पक्षवालोंकोभी सत्कार पूर्वक जिमावै ॥ ६४ ॥

उच्छेषणं तु तर्त्ति ष्टेद्यार्वाद्भिप्रा विसर्जिताः ॥ ततो गृहबलिं कुर्या  
दिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ६५ ॥ हविर्यच्चिररात्राय यच्चानन्त्या  
य कल्प्यते ॥ पितृभ्यो विधिवदत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६६ ॥

टीका—वह ब्राह्मणोका उच्छिष्ट उस समयतक रहै जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन होय और ब्राह्मणोंके निकलजानेपर स्थान शुद्ध करना चाहिये तिस पीछे श्राद्धकर्म संपन्न होनेपर वैश्वदेव बलि होमकर्म नित्यश्राद्ध और अतिथिभोजन करने चाहिये ॥ ६५ ॥ जो हवि पितरोंके लिये विधिसे दिया जाता है वह बहुत कालकी तृप्तिके लिये होता है सो मैं संपूर्णतासे कहोंगा ॥ ६६ ॥

तिलैर्वीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैर्वा ॥ दत्तेन मांसं तृप्यन्ति विंधि  
वर्त्पितरो नृणाम् ॥ ६७ ॥ द्वौ मांसौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान्हारि  
रणेन तु ॥ औरंभ्रेणार्थं चतुरः शार्कुनेनार्थं पञ्च वै ॥ ६८ ॥

टीका—तिल धान जव काले उडद जल मूल और फल इनमेंसे कोई एक शास्त्रके अनुसार श्राद्धसे दिया जाय उससे मनुष्योंको पितर एक महिने तक तृप्त रहते हैं ॥ ६७ ॥ पढीन आदि मछलियोंके मांससे दो महिने तक पितर तृप्त रहते हैं और हरिणके मांससे तीनि महिनेतक और मेढके मांससे चार महिने तक द्विजातिके भक्ष्य पक्षियोंके मांससे पांच महिने तृप्त रहते हैं ॥ ६८ ॥



षण्मासांश्छागमासेन पार्षतेन च सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मासेन  
रौरवेण नैवै वै तु ॥ ६९ ॥ दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषा-  
मिषैः ॥ शशकूर्मयोस्तु मासेन मासानेकादशैव तु ॥ ७० ॥

टीका-बकरेके मांससे छः महिने तृप्त रहते हैं और पृषतनाम चित्रमृगके मांससे सात महिनेतक और हरिणके मांससे आठ महिनेतक और रुरुनाम मृगके मांससे नौ महिनेतक तृप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ जंगली सूअर और भैंसेके मांससे १० महिनेतक तृप्त रहते हैं और खरगोश तथा कछुएके मांससे ग्यारह महिनेतक तृप्ति रहती है ॥ ७० ॥

सर्वत्सरं तु गव्येन पर्यसा पार्यसेन च ॥ वार्धीणसस्य मासेन तृ-  
प्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ७१ ॥ कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषं  
मधु ॥ आनन्त्यायैवं कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ ७२ ॥

टीका-एक वर्षतक गौके दूधसे अथवा उसमेंकी दुई खीरसे संतुष्ट रहते हैं और नदी आदिमें पानी पीनेसे जिसके दोनोकान और जीभ जलको छुवै ऐसे सपेद बूटे बकरेको त्रिपिब और वार्धीणस कहते हैं उस बकरेके मांससे बारह वर्षकी तृप्ति होती है ॥ ७१ ॥ कालशाकनाम एक प्रकार शाक और महाशल्क कहिये एक प्रकारकी मछली खड्ग कहिये गेंडा और लोहामिष कहिये लाल बकरा इनके मांस और शहत और सब मुनियोंके अन्न अर्थात् नीवार आदि बन्के अन्न ये सब अनन्त तृप्तिके लिये होते हैं ॥ ७२ ॥

यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् ॥ तदप्यक्षयमेव स्या-  
द्दर्पासु च मघासु च ॥ ७३ ॥ अपि नः स कुले जायद्यो नो दद्यात्त्र-  
योदशीम् ॥ पार्यसं मधुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥ ७४ ॥

टीका-वर्षाऋतुकी मघा नक्षत्रयुक्त भाद्रपदकृष्ण त्रयोदशीके दिन जो कुछ मधुके साथ दिया जाता है वहभी अक्षय तृप्तिके लिये होता है ॥ ७३ ॥ पितर निश्चय करिके ऐसा चाहते हैं कि हमारे कुलमें कोई ऐसा उत्पन्न होय जो हमारे लिये वर्षाऋतुकी मघायुक्त भाद्रकृष्ण त्रयोदशीमें अथवा और किसी तिथिमें भी हस्तीकी छायाके पूर्वदिशामें जानेपर मधु घृतयुक्त खीर दे ॥ ७४ ॥

यद्यद्दाति विधिर्वत्सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ तत्तत्पितृणां भवति



परं त्रानन्तमक्षयम् ॥ ७५ ॥ कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा च-  
तुर्दशीम् ॥ श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथेता न तथेतराः ॥ ७६ ॥

टीका—अच्छे प्रकारसे श्रद्धायुक्त जो जो पितरोंके लिये देता है वह सब अ-  
न्न परलोकमें पितरोंकी तृप्तिके लिये अनंत और अक्षय होता है ॥ ७५ ॥  
कृष्णपक्षमें दशमी १ एकादशी २ द्वादशी ३ त्रयोदशी ४ अमावास्या ५ ये  
पांच तिथि श्राद्धकरनेके लिये प्रशस्त हैं ऐसी अन्य तिथि नहीं ॥ ७६ ॥

युंक्षु कुर्वन् दिनैर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ अयुंक्षु तु पितॄन्सर्वा-  
न्प्रेजां प्राप्नोति पुष्कलाम् ॥ ७७ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षा  
द्विशिष्यते ॥ तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्नादपरह्ना विशिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—द्वितीया चतुर्थी आदि युग्म तिथियोंमें और भरणी रोहिणी आदि यु-  
ग्म नक्षत्रोंमें श्राद्ध करता हुआ पुरुष सब वांछित कामोंको प्राप्त होता है और प्र-  
तिपदा तृतीया आदि अयुग्म तिथियोंमें और अश्विनी कृत्तिका आदि अयुग्म  
नक्षत्रोंमें श्राद्धसे पितरोंको पूजता हुआ पुष्कल धनविद्यासे पुष्ट पुत्र आदि  
संततिको प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ ज्योतिषकी रीतिसे महीनोंका आरंभ शुक्लपक्षसे  
होता है जैसे अपरपक्ष कहिये कृष्णपक्ष परपक्ष कहिये शुक्लपक्षसे श्राद्धका  
अधिक फल देनेवाला होता है ऐसे पहले आधे दिनसे दूसरा आधादिन श्राद्धमें  
अधिक फल देनेवाला है ॥ ७८ ॥

प्राचीनावीतिना सम्यगपसंव्यमतंन्द्रिणा ॥ पितॄन्मनिधनात्कार्यं  
विधिर्वद्वर्भपाणिना ॥ ७९ ॥ रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी किर्तिता  
हि सा ॥ संध्यायोरुभयोश्चैवं सूर्ये चैवाचिरो दिते ॥ ८० ॥

टीका—दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रख आलस्य रहित कुश हाथमें ले अप-  
संव्यही शास्त्रके अनुसार सब पितृकर्म अंततक करै ॥ ७९ ॥ रात्रिमें श्राद्ध न करै  
कारण यह है कि श्राद्धनाश करनेका गुण होनेसे मनु आदिकोंने इसको राक्षसी  
कहा है और दोनो संध्या ओंमें न करै और सूर्यके शीघ्र उदय होनेपर न करै ॥ ८० ॥

अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ हेमन्तग्रीष्मवर्षासु  
पाश्र्वयज्ञिकमन्वहम् ॥ ८१ ॥ न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ  
विधीयते ॥ न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विर्जन्मनः ॥ ८२ ॥



टीका—इस कही हुई विधिसे संवत्सरके मध्यमें तीनिवार अर्थात् हेमंत ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें श्राद्ध करना चाहिये सो तौ समयाचारसे कुंभ वृष और कन्याके सूर्य होनेपर करै और पंचयज्ञोमें जो एकमप्याशयेद्विप्रं अर्थात् एक ब्राह्मणकोभी भोजन करावै इस वचन से कहे हुए श्राद्धको तौ प्रतिदिन करै ॥ ८१ ॥ अग्नेःसोमयमाभ्यां च इस मंत्रसे विधान किया हुआ पितृयज्ञका अंगभूत होम श्रौत स्मार्त अग्निसे भिन्न लौकिक अग्निमें शास्त्रने नही कहा है तिससे लौकिक अग्निमें अग्नौकरण होम न करना चाहिये किंतु ब्राह्मणके हाथमें करना चाहिये और अग्निहोत्रि ब्राह्मणको अमावास्याके विना कृष्णपक्षकी दशमी आदिमें श्राद्ध कहाहै और मृताहश्राद्धतौ नियत होनेसे कृष्णपक्षमेंभी और तिथिमें नही निषेध किया जाता है ॥ ८२ ॥

यदेव तर्पयत्यग्निः पितृन्स्नात्वा द्विजोत्तमः॥ते नैव कृत्स्नमाप्नोति  
पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥८३॥ वसून्वदन्ति तु पितृन् रुद्राश्चैव पि-  
तामहान् ॥ प्रपितामहांस्तथादित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी ॥ ८४ ॥

टीका—पांचयाज्ञिक श्राद्ध न होनेमें यह विधि है ॥ जो उत्तम द्विज स्नान करकै जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसीसे संपूर्ण पितृयज्ञकी क्रियाके फलको प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ जिस्से पिता आदि वसु आदि हैं यह अनादि श्रुति है इसीसे पिता-ओंको वसु नाम देव और पितामहोंको रुद्र और प्रपितामहोंको आदित्य मनु आदि कहते हैं तिससे श्राद्धमें पिताआदिरूपसे ध्यान करनेयोग्य हैं ॥ ८४ ॥

विघसांशी भवेन्नित्यं नित्यं वामृतंभोजनः ॥ विघसो भुर्क्तशेषं  
तु यज्ञशेषं तथांमृतम् ॥८५॥ एतद्रोऽभिहितं सर्वं विधानं पार्श्व-  
यज्ञिकम् ॥ द्विजातिमुख्यवृत्तीनां विधानं श्रूयतामिति ॥ ८६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

टीका—सदा विघसका भोजन करनेवाला होय और सदा अमृतका भोजन करने-वाला होय विघस और अमृत शब्दोंका अर्थ करते हैं ब्राह्मण आदिकोंके भोजनसे बचे हुएको विघस कहते हैं और दर्शपौर्णमास आदि यज्ञोंसे बचा हुआ पुरोडाश आदि अमृत कहा जाता है ॥ ८५ ॥ यह पंचयज्ञोंके करनेकी विधि तुमसे सब कही अब द्विजोंमें मुख्य जो ब्राह्मण हैं उसकी वृत्तियों जो मृत आदि हैं उनका अनुष्ठान सुनिये यह भृगुजी सब महर्षियोंसे कहते हैं ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनय पण्डित केशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां  
कुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



## अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः ॥ द्वितीयमायुषो  
भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १ ॥ अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण  
वा पुनः ॥ यां वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ २ ॥

टीका—पहला चौथाई जो आयुष्यका भाग है तिसमें यथाशक्ति गुरुकुलमें वास करि दूसरे आयुष्यके चौथाई भागमें विवाह करिके घरमें वास करै ॥ १ ॥ जीवोंसे द्रोहको न करके जो इसका असंभव होय तौ थोड़ेसे द्रोहको करके जो वृत्ति कहिये जीवनका उपाय है उसके आश्रयसे भार्या भृत्य और पंचयज्ञोंके करनेसे युक्त हो ब्राह्मण आपत्तिरहित कालमें जीवें क्षत्रिय आदि नहीं ॥ २ ॥

यात्रामात्रप्रसिद्धयर्थं स्वैः कर्मभिरंगहितैः ॥ अक्लेशेन शरी-  
रस्य कुर्वीत धनसंचयम् ॥ ३ ॥ ऋतानृतताभ्यां जीवेत्तु मृतेन  
प्रमृतेन वा ॥ सत्यानृतताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥ ४ ॥

टीका—प्राणोंकी रक्षा और शास्त्रिय कुटुंबको बढाता हुआ तथा नित्यकर्मोंको करता हुआ केवल शरीर निर्वाहके भोगके लिये नही शास्त्रमें कहे हुए ऋतआदि अर्जनरूप कर्मोंसे शरीरके क्लेश विना धनका संग्रह करै ॥ ३ ॥ आपत्ति रहित समयमें ब्राह्मण ऋत और अनृतसे मृत और अमृतसे तथा सत्य और अनृतसे जीविका करै और विना आपत्तिके सेवासे कभी जीविका न करै ॥ ४ ॥

ऋतमुच्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयच्छितम् ॥ मृतं तु यांचितं भैक्षं  
प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ ५ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेनैवापि  
जीव्यते ॥ सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—खेत आदिमें पड़े हुए एक एक अन्नके दानके चुटकीसे बीननेको उच्छ कहतेहैं और अनेक धान्योंकी वालिभुटिया फली आदिके बीननेको शिल कहते हैं उन दोनोंको सत्य समान फल है इससे उनको ऋत कहते हैं विना मागे प्राप्त हुआ अमृतके समान सुखका कारण होनेसे अमृत है और मागा हुआ भिक्षा समूह मरनेके समान पीडा उत्पन्न करनेसे मृत कहाताहै अग्निहोत्रि गृहस्थको भिक्षामें कच्चे ज़ाबल आदि लेने चाहिये पके हुए नही क्योंकि पराई अग्निमें पकाये हुएका अग्निमें होम नही हो सकता है और कर्षण जो भूमिका जोतनाहै वह भू-



मिमें स्थित अनेक जीवोंके मरनेका कारण होनेसे बहुत दुःखरूप फलका देने-  
वाला होनेसे जो प्रकर्ष कहिये अधिकतासे मृतके समान होय सो अमृत कहा जाता  
है ॥ ५ ॥ बहुधा सच्चे झूटे व्यवहारसे होता है इससे वाणिज्यको सत्यानृत कहते हैं  
परंतु वाणिज्यमें शास्त्रसे झूट सच्चकी आज्ञा नहीं है तिसपरभी इसका सत्यानृतही  
नाम है उस वाणिज्यसेभी जीविका करै और इस श्लोकमें जो च शब्द है इ-  
स्से व्याजभी जाना गया अर्थात् आपत्तिमें व्याजसेभी जीविका करै और सेवा  
तौ दीन दृष्टिसे देखना और स्वामीके धमकाना नीच कामोंका करना आदि सेवा  
कुत्ता कीसी वृत्ति कही गई है इससे ब्राह्मण उसका त्याग करै अर्थात् सेवासे  
कभी जीविका न करै ॥ ६ ॥

कुशूलधान्यको वां स्यात्कुम्भीधान्यैक एव वां ॥ त्र्यहैहिको वर्षि  
भवेदश्वस्तनिक एव वां ॥ ७ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां  
गृहमेधिनाम् ॥ ज्यायान्परः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तमः ॥ ८ ॥

टीका-ईट आदिसे बने हुए अन्न रखनेके घरके कुशूल कहते हैं उसमें भरे हु-  
ए धान्यका संचय करनेवाला होय अथवा एकवर्षके निर्वाह योग्य धान्यका संग्र-  
ह करनेवाला कुम्भी धान्य कहा जाता है वह होय अथवा त्र्यहैहिक उसको कह-  
तें हैं जिसके तीनिदिनको निर्वाहके योग्य अन्न होय ऐसा होय अथवा जो क-  
लह होय उसको श्वस्तन कहते हैं ऐसा अन्न जिसके होय वह श्वस्तनिक कहता  
है सो न होय उसको अश्वस्तनिक कहते हैं ऐसा होय अर्थात् रोज उत्पन्न करके  
निर्वाह करनेवाला होय ॥ ७ ॥ इन चारि कुशूल धान्य आदि गृहस्थ ब्राह्मणोंमें  
जो शेषमें बढाहै अर्थात् पहलेसे दूसरा और दूसरेसे तीसरा इस क्रमसे श्रेष्ठजानिये  
जिस्से वह जीविकाके संकोचसे स्वर्ग आदि लोकोका जीतनेवाला होता है ॥ ८ ॥

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते ॥ द्वाभ्यामेकं चतुर्थस्तु  
ब्रह्मसन्नेन जीवति ॥ ९ ॥ वर्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरा-  
यणः ॥ ईष्टीः पार्वीयनान्तीयाः केवला निर्वपेत्सर्दा ॥ १० ॥

टीका-इन चारों कुशूल धान आदि गृहस्थोंमें जिसके बहुतसे पोष्यवर्ग कहि-  
ये पालनकरने योग्य बहुतसा कुंडुब है वह ऋत अयाचित भिक्षा खेती वाणि-  
ज्य इन पांचसे और छठे कुसीद अर्थात् व्याज इन छ कर्मोंसे जीविका करे और  
अन्य जिसके थोडा कुंडुब है वह याजन प्रतिग्रह और अध्यापन इन तीनों  
से जीविका करै और उस्से अन्य याजन तथा अध्यापनसे जीविका करै और



कहे हुए तीनोंकी अपेक्षा चौथा फिर ब्रह्मसत्र जो पढाना है तिस्से जीविका करै ॥ ९ ॥ शिल और उच्छसे जीनेवाला ब्राह्मण धनसे करनेयोग्य दूसरे कर्मोंमें असमर्थ होनेसे अग्निहोत्रहीमें लगारहै पर्व और अयनके अंतकी इष्टि अर्थात् दर्श पौर्णमास और आग्रयणात्मिक सदा करै ॥ १० ॥

न लोके वृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन ॥ अजिह्मामंशठां शुद्धां  
जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम् ॥ ११ ॥ संतोषं परमार्स्थाय सुखार्थी सं-  
यतो भवेत् ॥ संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ १२ ॥

टीका—जीविकाकेलिग्रे लोकवृत्त कहिये झूठी प्यारी बातके कहनेको और विचित्र हंसीकी कथा आदिको न करै और अजिह्मा कहिये झूठे अपने गुणोंके कहने आदि पापसे रहित और अशठा कहिये दंभ आदि कपटसे रहित और शुद्ध कहिये वैश्य आदिकी वृत्तियोंसे नही मिली हुई ब्राह्मणकी जीविका करै ॥ ११ ॥ संभवके अनुसार भृत्योंके तथा अपने प्राणोंके निर्वाहके लिये आवश्यक और पंचयज्ञोंके करनेहीके योग्य धनसे अधिक चाहना न करनेको संतोष कहते हैं उस संतोषका भली भांति आश्रय ले बहुतसे धनके जोडने में संयम करै जिस्से इस संसारमें संतोषही सुखका कारण है और परलोकमें स्वर्ग आदिके सुखका कारण है इस्से विपर्यय कहिये उलटा असंतोषहै सो दुःखका कारण है क्योंकि बहुत धन जोडनेके श्रमसे बहुत दुःख उत्पन्न होनेके कारण संपत्ति तथा विपत्तिमें क्लेश होताहै ॥ १२ ॥

अतोऽन्यतमया वृत्त्या जीवंस्तु स्नातको द्विजः ॥ स्वर्गायुष्ययश-  
स्यानि व्रतानीमानि धारयेत् ॥ १३ ॥ वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं  
कुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धि कुर्वन् यथांशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥

टीका—इन कही हुई वृत्तियोंमेंसे किसी एक वृत्तिसै जीवता हुआ स्नातक ब्राह्मण स्वर्ग आयु और यशके हितकारी आगे कहे हुए व्रतोंको यथा संभव करै यह मुझको करना चाहिये यह न करना चाहिये इस प्रकारका जो संकल्प है उसको व्रत कहते हैं ॥ १३ ॥ वेदमें तथा स्मृतिमें कहा हुआ अपने आश्रमका कहा हुआ कर्म जीवने पर्यंत आलस्यरहित होके करै जिस कारणसे सामर्थ्यके अनुसार करता हुआ परमागति कहिये मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

न हेतार्थान्प्रसंगेन न विरुद्धेन कर्मणा ॥ न विद्यमानेष्वर्थेषु



नान्तर्यामिणि यत्तस्तैतः ॥ १५ ॥ इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत  
कामतः ॥ अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिर्वर्तयेत् ॥ १६ ॥

टीका—प्रसंग जो गाना बजाना है तिस्से द्रव्यको न जोड़ै और शास्त्रविरुद्ध कर्म जो अयाज्य याजनादिक है तिस्से भी न जोड़ै और धन होनेपरभी न जोड़ै और धनके न होनेपरभी जो और प्रकार होय तौ इधर उधर पतित आदिकोंसेभी न ले ॥ १५ ॥ इंद्रियोंके अर्थ कहिये विषय जे रूप रस गंध स्पर्श आदि निषिद्ध नहीं है उनमें अर्थात् अपनी स्त्री आदिके भोगमें कामसे अत्यंत सक्त न होय क्योंकि विषय अस्थिर है और स्वर्ग तथा मोक्ष रूप कल्याणविरोधी हैं यह जानके इनसे मनसे निवृत्त होय ॥ १६ ॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान्स्वाध्यायस्य विरोधिनः ॥ यथातथास्यापयंस्तु  
सां ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ १७ ॥ वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्य  
भिजनस्य च ॥ वेषवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह ॥ १८ ॥

टीका—वेदाभ्यासके विरोधी जो धनवानके समीप बहुत जाना खेतीलोक यात्रा आदि है उन सबको त्याग करै तौ कहिये कि भृत्योंका और अपना पालन कैसे होय यह शंका करिकै कहते हैं जैसे तैसे स्वाध्यायके अविरोधी किसी उपायसे भृत्योंका और अपना पोषण करै जिस्से नित्यवेदाभ्यासमें लगा रहना यही स्नातककी कृतार्थता है ॥ १७ ॥ अवस्था क्रिया धन वेद और कुल इनके अनुरूप वेष बोल चाल और बुद्धि करता हुआ इस लोकमें विचरै जैसे तरुण अवस्थामें माला गंध लेपन आदिका धारण करना और त्रिवर्गकी अनुसरण करनेवाली वाणी और बुद्धि ऐसेही कर्म आदिकोंमें जानिये ॥ १८ ॥

बुद्धिवृद्धिकरण्यांशु धन्यानि च हितानि च ॥ नित्यं शास्त्राण्यवे  
क्षेतं निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १९ ॥ यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं  
समधिगच्छति ॥ तथातथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ २० ॥

टीका—वेदके विरोध नहीं और शीघ्रही बुद्धिके बढ़ानेवाले व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदिशास्त्रोंको तथा धन्य कहिये धनके लिये हित बार्हस्पत्य औशनस आदि अर्थशास्त्रोंको और हितकहिये जिनका उपकार देखा गयाहै ऐसे वैद्यक ज्योतिष आदिकोंको तैसेही वेदार्थके बोध करानेवाले निगमनाम ग्रंथोंको



विचारकरै ॥ १९ ॥ जैसे जैसे पुरुष शास्त्रको अच्छीतरहसे पढ़ता है वैसे वैसे विशेष कर जानता है और अन्य शास्त्रोंके विषयकोभी विशेष ज्ञान इसको रुचता है अर्थात् उज्ज्वल होता है ॥ २० ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ॥ नृत्यज्ञं पितृयज्ञं च यथा  
शक्ति न ह्यपयेत् ॥ २१ ॥ एतानेके महायज्ञान्यज्ञशास्त्रविदो  
जनाः ॥ अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति ॥ २२ ॥

टीका—ऋषियज्ञ १ देवयज्ञ २ भूतयज्ञ ३ पितृयज्ञ ४ नृत्यज्ञ ५ इन पांचयज्ञोंको यथाशक्ति कभी न छोड़े ॥ २१ ॥ गृहस्थके बाहरी तथा भीतरी यज्ञ करनेके शास्त्र जाननेवाले कोई गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ आदि नाम इन पांच महायज्ञोंको ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे बाहरी चेष्टाओं करि रहित हो पांच बुद्धिद्रियोंहीमें पांच जे रूप ज्ञान आदि हैं तिनका संयम करते हुए संपादन करते हैं यहा हु धातुका संपादन अर्थ है ॥ २२ ॥

वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदा ॥ वाचि प्राणे च पश्यन्तो  
यज्ञनिर्वृत्तिर्मक्षयाम् ॥ २३ ॥ ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येते मखैः  
सदा ॥ ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा ॥ २४ ॥

टीका—कोई ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ वाचिक कहिये प्राणवायुमें यज्ञ करनेके अक्षय फलको जानते हुए सदा वाणीमें प्राणको होमतेहै और वाणीको प्राणमें अर्थात् बोलता हुआ वाणीको प्राणमें होमताहै और नही बोलनेसे श्वास लेता हुआ प्राणमें वाणीको होमताहै इस्से ध्यान करना चाहिये यह विधान किया जाताहै इस्से अनंत अमृतरूप आहुतियोंको जागते सोते सदा होमकरता है निश्चय बाहरी दीहुई और आहुतियां कर्ममयी होती हैं ॥ २३ ॥ ब्रह्मनिष्ठ और ब्राह्मण सब भांति ब्रह्मज्ञानहीसे इन यज्ञों करि यजन करते हैं अर्थात् इन यज्ञोंको करते हैं कैसे करतेहै इसपर कहते हैं ज्ञान है मूल जिसका ऐसी इन यज्ञोंकी क्रियाकी उत्पत्ति को जानते हुए ॥ २४ ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोः सदा ॥ दर्शने चार्धमासान्ते  
पौर्णमासेन चैवं हि ॥ २५ ॥ संस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वन्ते  
द्विजोऽध्वरैः ॥ पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्मखैः ॥ २६ ॥

टीका—उदित होमपक्षमें दिन आदिमें और रातिकी आदिमें और आनुदिन



तथा होमपक्षमें दिनके अंतमें और रातिके अंतमें अथवा उदित होमपक्षमें दिन की आदिमें और दिनके अंतमें और अनुदित होम पक्षमें रातिकी आदिमें और रातिके अंतमें अग्निहोत्र करै और कृष्णपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें दर्शनाम कर्मसे और शुक्लपक्षरूप आधे महीनेके अंतमें पौर्णमास नामकर्मसे यजन करै ॥ २५ ॥ पहले जोरे हुए धान्य आदि सस्यके समाप्त होनेपर अथवा न समाप्त होनेपरभी नवीन धान्यकी उत्पत्तिमें आग्रयण जो नवीन सस्यकी इष्टि है तिस्से यजन करै तथा ऋतुके अंतमें चातुर्मास्य यज्ञसे यजन करै और अयनोंकी आदिमें अर्थात् उत्तर तथा दक्षिण अयनके आरंभमें पशुसे यजन करै अर्थात् पशुबंधनाम यज्ञकरै और शिशिर ऋतु करि वर्षके समाप्त होनेपर वसंत ऋतुमें सोमरससे करने-योग्य ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञोंसे यजन करै ॥ २६ ॥

नानिष्ट्वा नवसंस्थेष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः ॥ नवान्नमद्यान्मां  
सं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ २७ ॥ नवेनानर्चितो ह्यस्य पशुहव्ये  
न चाग्नयः ॥ प्राणानेवांतुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः ॥ २८ ॥

टीका-बड़ी आयुकी चाहनेवाला अग्निहोत्री द्विज नवीन सस्यकी इष्टि किये विना नवीन अन्नको न खाय और पशुयाग किये विना मांस न खाय ॥ २७ ॥ जिस्से नवीन अन्नसे और पशु हव्यसे नही पूजे हुए नवीन अन्न और मांसके चाहनेवाले अग्नि अग्निहोत्रीहीके प्राणोंके खानेके इच्छा करते है ॥ २८ ॥

आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलैर्न वा ॥ नास्य कश्चिद्भेदे हे  
शक्तिर्तोऽनर्चितोऽतिथिः ॥ २९ ॥ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्र-  
तिकाच्छठान् ॥ हेतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ ३० ॥

टीका-शक्तिके अनुसार आसन भोजन शय्या जल कंद फल आदिसे नही पूजा गया अतिथि इस गृहस्थके घरमें न बसै ॥ २९ ॥ पाषण्डी कहिये वेदसे बाहरी व्रत तथा चिन्होंके धारण करनेवाले शाक्य भिक्षु क्षपणक आदि और विकर्मस्थ क-हिये निषेध की हुई वृत्तिसे जीवनेवाले और बैडालव्रतिका कहिये बकवृत्ति जिनके लक्षण आगे कहेंगे और शठ कहिये जो वेदमें श्रद्धा न रखते होय और हेतुक कहि-ये वेदके विरोधी तर्कोंसे व्यवहार करनेवाले इनमेंसे जो कोई अतिथिके समयमेंभी आवै तौ उसका वाणीमात्रसेभी सत्कार न करै ॥ १३० ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान्श्रोत्रियान्गृहमेधिनः ॥ पूजयेद्धव्यकव्येन



विपरीतांश्च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ शक्तितोऽपचमानेभ्यो दातव्यं गृह-  
मेधिना ॥ संविभागश्च भूतेभ्यः कर्तव्योऽनुपरोधतः ॥ ३२ ॥

टीका—जो वेदोको समाप्त करि और व्रतोंको नही समाप्त करि घरको लौटता है वह विद्यास्नातक होताहै और जो व्रतोंको समाप्त करि वेदोंको नही समाप्त करि जो घरको लौटताहै वह व्रतस्नातक कहा जाताहै और जो दोनोंको समाप्त करि लौटताहै वह विद्याव्रतस्नातक कहा जाताहै इन श्रोत्रिय तीनों स्नातकोंको गृहस्थ हव्यसे पूजै ॥ ३१ ॥ गृहस्थ अपचमान कहिये जो अपने हाथसे पाक नही करते ऐसे ब्रह्मचारी संन्यासी और पाषंडीको शक्तिके अनुसार अन्नका भोजन दे और अपने कुटुंबके अनुरोधसे वृक्ष आदि पर्यंत प्राणियोंको जल आदिसेभी संविभाग कर्तव्य है ॥ ३२ ॥

राजतो धनैर्मन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा ॥ याज्यान्तेवासिनो-  
र्वीर्षि न त्वन्यत इति स्थितिः ॥ ३३ ॥ न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा  
शक्तः कथंचन ॥ न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे संति ॥ ३४ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित स्नातक द्विजातिसे प्रतिग्रहका संभव होनेपरभी शास्त्रके अ-  
नुसार चलनेवाले क्षत्रिय अर्थात् राजासे अथवा यजमानसे और शिष्योंसे पहले  
धनकी इच्छा करै वे न होय तौ अन्यभी द्विजातिसे धन ग्रहण करै उसके अभावमें  
तौ सबसे ले यह आपत्तिका धर्म कहैगे और से न ले यह मर्यादा है सो आपत्ति छो-  
डकै है ॥ ३३ ॥ विद्या आदिके योगसे दान लेनेमें समर्थभी स्नातक ब्राह्मण कहे  
हुए राजा आदिके प्रतिग्रहके मिलनेपर क्षुधासे दुखी नहोय और धन होनेपर पुराने  
और मैले वस्त्र धारण न करै ॥ ३४ ॥

कृतकेशनखश्मश्रुदान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ॥ स्वाध्याये चैव युक्तः  
स्यान्नित्यं मात्महितेषु च ॥ ३५ ॥ वैणवीं धारयेद्यष्टिं सोदकं च  
कमण्डलुम् ॥ यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले ॥ ३६ ॥

टीका—कटे है केश नख और दाढी मूछ जिसके ऐसा होय और दांत कहिये  
तपके केशका सहनेवाला होय सपेदवस्त्र रक्खै और बाहरी भीतरी शुद्धतासे युक्त  
रहै और वेदके अभ्यासमें लगा रहै और औषध आदिके सेवनसे अपने हितमें सदा  
तत्पर रहै ॥ ३५ ॥ बांसकी लाठी लिये रहै और जलसे भरा हुआ कमण्डलु रक्खै और  
यज्ञोपवीत कुशकी मुट्ठी तथा सुंदर सोनेके दोनो कुंडल ब्रह्मचारि धारण करै ॥ ३६ ॥



नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नारस्तं यान्तं कदाचन॥ नोपसृष्टं नवारिस्थं  
न मध्यं नभसो गतम् ॥ ३७ ॥ न लब्धयेद्वत्संतत्रिं न प्रधावेच्च  
वर्षति ॥ न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमिति धारणी ॥ ३८ ॥

टीका—उदय होते हुए और अस्त होते हुए सूर्यके मंडलको संपूर्ण न देखे  
तथा राहुग्रहसे ग्रसे हुए और जलसे प्रतिबिंब पड़े हुए तथा आकाशके मध्यमे  
स्थित अर्थात् मध्यान्हके सूर्यको न देखे ॥ ३७ ॥ बछड़ा बाधनेकी रस्सीको न  
उलंघे और मेघवर्षनेके समय नहीं दौरे और अपनी देहकी परछाहीको  
जलमें न देखे ॥ ३८ ॥

मृदं गां दैवतं विप्रं धृतं मधुं चतुष्पथम् ॥ प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्र-  
ज्ञातांश्च वनस्पतीन् ॥ ३९ ॥ नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तं  
वदर्शने ॥ समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४० ॥

टीका—मृगीका ढेर, गौ, पाषाण आदिके बने हुए देवता, ब्राह्मण, घी, सहत  
चौराहा और बड़े प्रमाणसे जाते हुए वट पीपल आदि वृक्ष इन सबोंको मार्गमें  
दाहिने देकर चलै ॥ ३९ ॥ कामसे पीडितभी पुरुष रजोदर्शनमें निषिद्धछुनेके  
तीन दिन स्त्रीसे भोग न करे और गमन न करते हुएभी उसके साथ एक पलंगपर  
न सोवै ॥ ४० ॥

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ॥ प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुं  
रायुश्चैव प्रहीर्यते ॥ ४१ ॥ तां विवर्जयतस्तस्य रजसा सम-  
भिप्लुताम् ॥ प्रज्ञां तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥ ४२ ॥

टीका—रजस्वला स्त्रीसे भोग करनेवाले पुरुषके प्रज्ञा, तेज, बल, आंखि ये सब  
नष्ट होजाते हैं तिससे उसका त्याग करै ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्रीमें न गमन करने-  
वाले मनुष्यके प्रज्ञा, तेज, नेत्र, आयु ये सब बढ़ते हैं तिससे उसको बचावै ॥ ४२ ॥

नाश्रियाद्धार्यया सार्धे नैनामीक्षेत चाश्रतीम् ॥ क्षुवतीं जृम्भमाणां  
वा न चासीनां यथासुखम् ॥ ४३ ॥ नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्य-  
क्तमनावृताम् ॥ पश्येत्प्रस्रवन्तीं च तेजस्कां मो द्विजोत्तमः ॥ ४४ ॥

टीका—स्त्रीके साथ एकपात्रमें न खाय और खाती हुई छिकती हुई जम्हाती  
हुई और बेपर्द बैठी हुईको न देखे ॥ ४३ ॥ तेजकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अ-



पनी आंखोंको आंजती हुई और तेल लगाती हुई तथा स्तन ढकनेके वस्त्रसे रहित और बालकको जन्मती हुई स्त्रीको न देखे ॥ ४४ ॥

नान्नमर्द्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥ न मूत्रं पंथि कुर्वीत  
न भस्मनि न गोव्रजे ॥ ४५ ॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न  
च पर्वते ॥ न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन ॥ ४६ ॥

टीका—एकवस्त्र पहिरे हुए भोजन न करे अर्थात् कंधेपर अंगोछा डारले और नंगा होके स्नान न करे और मार्गमें लघुबाधा न करे और भस्ममें तथा गौओंके स्थानमें मूत्र तथा मलका त्याग न करे ॥ ४५ ॥ हलसे जुते हुए खेतमें जलमें ईंट आदिसे बनाये हुए अग्निके स्थानमें पर्वतपर पुराने देवताके स्थानमें और वांवीमें कभी मूत्रका त्याग न करे ॥ ४६ ॥

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नपि च स्थितः ॥ न नदीतीरमांसाद्य  
न च पर्वतमस्तके ॥ ४७ ॥ वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यं-  
स्तथैव गांः ॥ न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ४८ ॥

टीका—जीवों समेत गढिल्लोमें चलता हुआ खड़ा हुआ नदीके किनारे और पर्वत के शिखरपर कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥ ४७ ॥ पवन अग्नि ब्राह्मण सूर्य जल और गौको देखता हुआ कभी मलमूत्रका त्याग न करे ॥ ४८ ॥

तिरस्कृत्योच्चैरेत्काष्ठलोष्टपत्रतृणादिना ॥ नियम्य प्रयतो वाचं  
संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः ॥ ४९ ॥ मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवा कुर्यादु-  
दङ्मुखः ॥ दक्षिणाभिमुखो रात्रौ संध्योश्च यथा दिवा ॥ ५० ॥

टीका—काठ डेला फूस और सूखे पतों आदिसे भूमिको ढकिके मौन हो शरीर को वस्त्र आदिसे लपेटे हुए शिरमें वस्त्र बांधिके मलका त्याग करे अर्थात् दिशा जाय ॥ ४९ ॥ दिनमें तथा दोनो संध्याओंमें उत्तरको मुख करके और रात्रिमें दक्षिणको मुख करके मलमूत्रका त्याग करे ॥ ५० ॥

छायामान्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः कु-  
र्यात्प्राणवार्धाभयेषु च ॥ ५१ ॥ प्रत्याग्निं प्रतिसूर्यं च प्रतिसोमोद-  
कद्विजान् ॥ प्रतिगां प्रतिवातं च प्रज्ञा नश्यति मेहतः ॥ ५२ ॥

टीका—रात्रिके समय छायामें अथवा अंधकारमें और दिनमें छाया तथा



कुहिर आदिके अंधकारमें दिशा विशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राणोंके नाश होनेके भयमें इच्छापूर्वक मुखको करिकै मलमूत्रका त्याग करै ॥ ५१ ॥ अग्नि सूर्य चंद्रमा जल ब्राह्मण गौ पवन इनके सन्मुख मलमूत्र त्याग करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है ॥ ५२ ॥

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नृणां नक्षेत च स्त्रियम् ॥ नोमेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ  
न च पादौ प्रतापयेत् ॥ ५३ ॥ अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभि  
लङ्घयेत् ॥ न चैनं पादतः कुर्यान्न प्राणोवाधमाचरेत् ॥ ५४ ॥

टीका—अग्निको मुखसे न फूँके पंखा आदिसे जगाले और तंगी स्त्रीको मैथुनके विना कभी न देखै और अपवित्र मूत्र विष्टा आदि अग्निमें न डालै और अग्निमें पैरोंको न तपावै ॥ ५३ ॥ खाटिया आदिके नीचे अग्निकी अंगीठी न रक्खै और अग्निको न उलाँघै ओर सोया हुआ पैरोंकी ओर अग्निको न रक्खै और प्राणोंको पीडा देनेवाला काम न करै ॥ ५४ ॥

नाश्रीयत्संधिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् ॥ न चैव प्रलि-  
खेद्धूमि नोत्तमनोपहरेत्सज्जम् ॥ ५५ ॥ नाप्सु मूत्रं पुंरीषं वा घृविनं वा  
समुत्सृजेत् ॥ अमेध्यलित्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ॥ ५६ ॥

टीका—संध्याके समय भोजन दूसरे ग्राममें जाना और सोना इनको न करै और रेखा आदिसे भूमिको न लिखै और धारणकी हुई मालाको आप न उतारै किंतु दूसरेसे उतरवा दे ॥ ५५ ॥ जलमें मूत्र विष्टा और कफ आदि अपवित्र वस्तु ओंसे भरे हुए वस्त्र अथवा और कुछ खानेसे वचा हुआ अपवित्र रुधिर और कृत्रिम अकृत्रिम भेदसे दो प्रकारके विष जलमें न डालै ॥ ५६ ॥

नैकैः स्वपेच्छून्यगेहे शयानं न प्रबोधयेत् ॥ नोदक्ययाभिभाषेत  
यज्ञं गच्छेन्न चावृतः ॥ ५७ ॥ अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च  
सन्निधौ ॥ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत् ॥ ५८ ॥

टीका—सूने घरमें अकेला न सौवै और सोते हुए धन विद्या आदि करि अपनेसे अधिकको न जगावै और रज्जुस्त्राला स्त्रीसे वातचीत न करै और विना वरण किया हुआ अर्थात् ऋत्विक् न होकर यज्ञमें न जाय देखनेको तौ जाय ॥ ५७ ॥ अग्निके घरमें गौओंके निवासमें बहुतसे ब्राह्मणोंके समीप और वेद पाठ तथा भोजनके समयमें बांह समेत दाहिने हाथको वस्त्रसे बाहर निकालै ॥ ५८ ॥



नै वारयेद्ग्रां धर्यन्तीं न चार्चक्षीत कस्यचित् ॥ नै दिवीन्द्रांगुधं  
दृष्ट्वा कस्यचिद्दर्शयेद्बुधः ॥ ५९ ॥ नार्धार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि  
बहुले भृशम् ॥ नैकैः प्रपद्येताध्यानं नै चिरं पर्वते वसेत् ॥ ६० ॥

टीका—दूध वा जल पीती हुई गौको मने न करै और दूसरेके दूध आदि पीती हुईको उससे न कहै और निषिद्ध दर्शनके दोषका जाननेवाला आकाशमें इंद्र धनुषको देखिकै और किसीको न दिखावै ॥ ५९ ॥ जिस ग्राममें बहुतसे अधर्मी रहते होंय और जिसमें बहुतसे मनुष्य कठिन रोगोंसे पीडित होय उस ग्राममें अत्यंत वसना योग्य नहीं है और मार्गमें अकेला कभी न चलै और बहुतकालतक पर्वतपर न वसै ॥ ६० ॥

नै शूद्रराजे निवसेन्नार्धार्मिकं जनावृते ॥ नै पाषण्डिगर्णाक्रान्ते  
नोपमृष्टेऽन्त्यजैर्नृभिः ॥ ६१ ॥ नै भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्त-  
मार्चरेत् ॥ नातिप्रगे नातिसायं नै सायं प्रातराशितः ॥ ६२ ॥

टीका—जिस देशमें शूद्रराजा होंय वहां न वसे और अधर्मी मनुष्यों करि बाहरसे घेरे हुए ग्रामआदिमें न वसै और वेदसे बाहरी चिन्होंके धारण करनेवालों करि वश किये हुए तथा चांडाल आदि अंत्यजों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें न वसै ॥ ६१ ॥ चिकनाई निकाले हुए पीना आदिको न खाय और दोवारमें भी अति तृप्ति न करै अर्थात् बहुत पेट भरकै न खाय और सूर्यके उदयकाल तथा अस्तकालमें भोजन न करै और जो प्रातःकाल बहुत पेट भरकै खा ले तौ संध्या-भोजन न करै ॥ ६२ ॥

नै कुर्वीत वृथाचेष्टां नै वार्यञ्जलिना पिबेत् ॥ नै त्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यां  
न्नै जातु स्यात्कुतूहली ॥ ६३ ॥ नै नृत्येदथवा गीयेन्नै वादित्राणि  
वादयेत् ॥ नास्फोटयेन्नै च क्ष्वेडेन्नै च रक्तो विरार्वयेत् ॥ ६४ ॥

टीका—वृथा चेष्टा न करै और अंजलीसे जल न पीवै और गोदीमें रखकै लड्डू आदि न खाय और विना प्रयोजनके यह क्या है ऐसे जाननेकी इच्छा की कुतूहल न करै ॥ ६३ ॥ शास्त्रसे भिन्न नाचना गाना बजाना न करै ताल न ठोकै तौतली बोली न बोले और प्रसन्नतामें भरकै गधा आदिका शब्द न करै ॥ ६४ ॥

नै पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भोजने ॥ नै भिन्नभाण्डे भु-



जीतं न भावप्रतिदूषिते ॥ ६५ ॥ उपानहौ च वासश्च धृतम-  
न्यै न धारयेत् ॥ उपवीतमलंकारं स्रजं करकमेवं च ॥ ६६ ॥

टीका-कांसेके पात्रमें पैर न धोवै और तांबा चांदी सोना इनको छोड़कर और धातु  
ओंके फुटे पात्रमें भोजन न करै और जिस्से मनको घिना होय ऐसे भावदूषित  
पात्रमें न खाय ॥ ६५ ॥ जूता कपड़ा यज्ञोपवीत अलंकार फुलोकी माला और क  
मंडल दूसरेके जूठे किये हुए इनको न धारण करै ॥ ६६ ॥

न विनीतैर्व्रजेर्जुयैर्न च क्षुद्र्याधिपीडितैः ॥ न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरै  
र्न वालंविधिरूपितैः ॥ ६७ ॥ विनीतैस्तु व्रजैर्नित्यमाशुगैर्ल-  
क्षणान्वितैः ॥ वर्णरूपोपसंपन्नैः प्रतोदेनार्तुदन्भृशम् ॥ ६८ ॥

टीका-बिना सिखाये हुऐ हाथी घोडा आदि वाहनोमें और मुख तथा रोगसे दुखी  
और जिनके सींग आंखि और खुर टूटि फूटि गये हैं और बंडि पूछके वाहनोमें चढ  
कर न चलै ॥ ६७ ॥ सिखाये हुए जलदी चलनेवाले शुभसूचक लक्षणों करिकै  
युक्त सुंदर रंग और मनोहर सूरतिके वाहनोमें चाबुक आदिसे बहुत पीडा न देता  
हुआ गमन करै ॥ ६८ ॥

बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं भिन्नं तथासनम् ॥ न च्छिन्द्यान्नखलो-  
मानि दंतैर्नोत्पाटयेन्नखान् ॥ ६९ ॥ न मृच्छोष्टं च मृद्गीयान्न च्छि-  
न्द्यात्करजैस्तृणम् ॥ न कर्म निष्फलं कुर्यान्नैयत्यामसुखोदयम् ७०

टीका-बालातप कहिये पहले उदय हुए सूर्यका घाम अथवा कन्याकी संक्रांति  
का घाम और जलते हुए मुरदेका धुआं तथा टूटा फूटा आसन ये वर्जितहैं और  
नही बडे हुए नख तथा रोमोंको न काटै और दांतोसे नखोंको न चावै ॥ ६९ ॥  
बिनाकारण मट्टी तथा डेलोंको मर्दन न करै और नखोंसे तिनके न तोडै और  
दृष्ट अदृष्ट है फलरहित कर्म न करै और आगे दुखदेनेवाला कर्म न करै जैसे अजीर्णमे  
भोजन ॥ ७० ॥

लोष्टमदीं तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ॥ स विनीतः व्रजत्याशु  
सूचकोऽशुचिरेव च ॥ ७१ ॥ न विगर्ह्यकथां कुर्याद्देहिमाल्यं न  
धारयेत् ॥ गवां च यानं पृष्ठेन संवथैव विगर्हितम् ॥ ७२ ॥

टीका-डेलोंका मर्दन करनेवाला और तिनकोका छेदन करनेवाला तथा नखोंका



चवानेवाला मनुष्य और सूचक कहिये खल जो पराये दोषोंके न होनेपर उनको कहै और अशुचि कहिये जो बाहरी शौचसे रहित होय ये शीघ्रही देह धन आदिसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ शस्त्रके तथा लोकके व्यवहारमें हठसे वातचीत न करें और केशोंके समूहसे बाह्य मालाको न धारण करै और पीठ पर चढ़कै बैलोंकी सवारी सब प्रकारसे निषिद्ध है पीठिके कहनेसे उन करि खींचे हुए रथ आदिमें चढ़नेका निषेध नहि है ॥ ७२ ॥

अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वेष्टम वाव्रतम् ॥ रात्रौ च वृक्षमूला  
नि दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ७३ ॥ नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयं नो  
पानहौ हरेत् ॥ शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थं न चांसने ॥ ७४ ॥

टीका-परकोटा, आदिसे घिरे हुए ग्राममें अथवा घरमें द्वारको छोड़कै दूसरे मार्गसे अर्थात् परकोटेको फलांग कर न जाय और रात्रिमें वृक्षके मूलके पास न बैठे उनको दूरहीसे त्याग करै ॥ ७३ ॥ दांव लगाये बिना कभीभी अर्थात् हंसीमेभी पांसे न खेलें और पैरोमें पहिरनेके सिवाय आप अपने जूते हाथसे दूसरे देशको कभी न ले जाय और शय्यापर बैठके न खाय और बहुतसा अन्न हाथमें रखकै क्रमसे न खाय और आसनपर भोजनके पात्रको रखकै भोजन न करै ॥ ७४ ॥

सर्वं च तिलसंबद्धं नाद्यादस्तमिते रवौ ॥ न च नग्नः शयीते न  
चोच्छिष्टः केचिद्व्रजेत् ॥ ७५ ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु  
संविशेत् ॥ आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥

टीका-जो कुछ तिलोंसे मिला हुआ पदार्थ लड्डु आदि हैं उनको रात्रिमें न खाय और इस लोकमें नंगा होकै न सोवै और जूठा होकै कही न जाय ॥ ७५ ॥ जलसे गीले पेर होनेपर भोजन करै और गीले पैरोंसे सोवै नही और गीले पैरोंसे भोजन कर्त्ता हुआ पुरुष बड़ी आयुको प्राप्त होता है अर्थात् शतायु होता है ॥ ७६ ॥

अचक्षुर्विषयं दुर्गं न प्रमाद्येत कर्हिचित् ॥ न विण्मूत्रमुदीक्षेत् न  
बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥ ७७ ॥ अधितिष्ठेन्न केशास्तु न भस्मास्थि  
कर्पालिकाः ॥ न कार्पासांस्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ॥ ७८ ॥

टीका-जहां नेत्रोंसे नही देख सकते ऐसे वृक्षवेलि गुल्म आदिसे घने वन आदि दुर्ग कहिये कठिन स्थानमें कभी न जाय क्योंकि वहां सांप चोर आदि-



के छुप रहनेका संभव है और विष्टा तथा मूत्रको न देखें और बाहोंसे नदीको न उतरें अर्थात् पैर कर नदीके पार न जाय ॥ ७७ ॥ जो बहुत दिनोंतक जीवना चाहै तौ बाल भस्म हाड खपरा विनौला भूसी इन पर न बैठे ॥ ७८ ॥

नं संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुलकसै ॥ नं मूर्खैर्नोर्वलिसैश्च नान्त्यै  
नान्त्यावसायिभिः ॥ ७९ ॥ नं शूद्राय मतिं दद्यान्मोच्छिष्टं न हवि-  
ष्कृतम् ॥ नं चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्यं व्रतमादिशेत् ॥ ८० ॥

टीका—पतित चाण्डाल पुष्कस मूर्ख धन आदिके मदसे गर्वित और अंत्य कहिये अंत्यज धोबी आदि और अंत्य कहिये अंत्यावसायी जो निषादकी स्त्रीमें चाण्डालसे उत्पन्न है ये दूसरे ग्रामकेभी रहनेवाले होंय तौभी इनके साथ एक वृक्षकी छायामें समीप न बसै ॥ ७९ ॥ शूद्रको मति न दे अर्थात् दृष्ट अर्थका उपदेश न करै और दाससे भिन्न शूद्रको जूठा न दे और हविष्कृत कहिये हविकाशेष न दे और धर्मका उपदेश न करै और प्रायश्चित्तरूप व्रतभी इसको साक्षात् उपदेश न करै किन्तु ब्राह्मणको बीचमें करकै उसको उपदेश करै ॥ ८० ॥

यो ह्यस्य धर्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् ॥ सोऽसंवृतं नाम तमः  
सह ते नैव मज्जति ॥ ८१ ॥ नं संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदा-  
त्मनः शिरः ॥ नं स्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः ८२

टीका—जिस्से जो शूद्रको धर्म कहता है और जो प्रायश्चित्तका उपदेश करता है वह उस शूद्रसमेत जिसमें अंधकार बहुत है ऐसे असंवृतनाम नरकमें डूबता है ॥ ८१ ॥ मिले हुए दोनो हाथोंसे अपने शिरको न खुजावै और जूठे हाथोंसे अपने शिरको न छुवै और शिरकेविना नित्य नैमित्तिक स्नान न करै ॥ ८२ ॥

केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतां निवर्जयेत् ॥ शिरःस्नातश्च तैलेन  
नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥ ८३ ॥ नं राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराज-  
न्यप्रसूतितः ॥ सूनाचक्रध्वजवृतां वेशे नैव च जीवताम् ॥ ८४ ॥

टीका—क्रोधसे बाल पकडना और चोंट मारना ये दोनो वाते शिरमें न करै और अपने शिरसे न्हाये हुएके किसी अंगको तैलसे न छुवै ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रियसे उत्पन्न नहीं है ऐसे राजासे धनको न ग्रहण करै और सूनावाले चक्रवाले तथा ध्वजवालोंसे सूना कहते हैं प्राणीके वृधके स्थानको सो जिसके होय उसको सूनावाला कहते हैं अर्थात् पशुको मारकै मास बेचनेवाला कसाई आदि और बीजोका वध करि बेचकै



जीवनेवाला चक्रवाला कहाता है जैसे तेली और मद्यको बेचकर जीवनेवालेको ध्वजवान् कहतेहैं जैसे कलाल और वेशसे जीविका करनेवाले जैसे वेश्या बहुरूपिया आदि इनके धनको न ग्रहण करै ॥ ८४ ॥

दशसूनासंमं चक्रं दशचक्रसंमो ध्वजः ॥ दशध्वजसंमो वेशो दश  
वेशसंमो नृपः ॥ ८५ ॥ दशं सूनासंहस्त्राणि यो वाहयति सौ-  
निकः ॥ तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ॥ ८६ ॥

टीका-दशसूनावालोंमें जितना दोष होता है उतना एक तेलीमें होता है और दश तेलियोंमें जितना दोष होताहैं उतना एक कलालमें होता है और दशकलालमें जितना दोष होता है उतना एक वेश्या वा बहुरूपियामें होताहै और जितना दशवेश्या वा बहुरूपियामें होता है उतना एक राजामें मनु आदिकोने कहाहै ॥ ८५ ॥ जो सूनावाला दजहजार जीवोंका वध करता है उसकी बराबर राजा मनु आदिकोने कहाहै तिससे राजाका धन लेना नरकका कारण होनेसे भयानक है ॥ ८६ ॥

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवार्तिनः ॥ स  
पर्यायेण यातीमन्नरंकानेकविंशतिम् ॥ ८७ ॥

टीका-जो राजाका और शास्त्रका उलंघन करनेवाले कृपणका धन लेता है वह क्रमसे आगे कहे हुए इक्कीस नरकोंमें जाताहै ॥ ८७ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ नरकं कालसूत्रं च महान-  
रकमेव च ॥ ८८ ॥ संजीवनं महावीचिं तपनं संप्रतापनम् ॥ संहातं  
च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकम् ॥ ८९ ॥ लोहशंकुमृजीषं च  
पन्थानं शाल्मलीं नदीम् ॥ असिपत्रवनं चैव लोहदारकमेव च ९० ॥

टीका-नरक गिनाते हैं जैसे तामिस्र १ अंधतामिस्र २ महारौरव ३ रौरव ४ कालसूत्र ५ महानरक ६ इन नरकोंका स्वरूप मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें विस्तारसे कहा है वहांसे जानना चाहिये ॥ ८८ ॥ संजीवन ७ महावीचि ८ तपन ९ संप्रतापन १० संहात ११ सकाकोल १२ कुड्मल १३ पूतिमृत्तिक १४ ॥ ८९ ॥ लोहशंकु १५ ऋजीष १६ पन्थान १७ शाल्मली १८ नदी १९ असिपत्रवन २० लोहदारक २१ ॥ ९० ॥

एतद्विदन्तो विद्रांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति



प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः॥११॥ ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानु  
चिन्तयेत् ॥ कार्यकेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ १२ ॥

टीका—प्रतिग्रह नानाप्रकारके नरकोंका कारण है इस बातके जाननेवाले धर्मशास्त्र और पुराण आदिके जाननेवाले दूसरे लोकमें कल्याणके चाहनेवाले ब्राह्मण राजाका दान नहीं लेते हैं ॥ ११ ॥ ब्राह्मणमुहूर्त्त जो रातिका पिछला पहर हैं उसमें जागे फिर धर्म तथा अर्थका आपसमें विना विरोधके करनेके लिये चिंतवन करे और धर्म अर्थके इकट्ठे करनेमें जो शरीरके क्लेशहैं उनकोभी विचारै अर्थात् जिसमें शरीरको अधिक क्लेश होय और धर्म तथा अर्थ थोडा होय तो उसको छोड दे और ब्रह्मकर्म-रूप वेदके तत्त्वका निश्चय करे क्योंकि उस समयमें बुद्धिका प्रकाश होता है ॥१२॥

उत्थायावश्यं कृत्वा कृत्तशौचः समाहितः॥पूर्वा संध्यां जपस्तिष्ठ  
ष्टेत्स्वकाले चोपरां चिरम् ॥१३॥ ऋषयो दीर्घसंध्यात्वाहीर्धमा-  
युरवायुयुः ॥ प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥ १४ ॥

टीका—तिसपीछे प्रातःकाल शय्यासे उठकर वेग होनेपर दिशा बाधा होकै आगे कहे हुए शौचको करि एकाग्रचित्त हो प्रातःकालकी संध्या बहुत देरतक गायत्री जपता हुआ करे जबतक सूर्यका उदय होय तबतक यह संध्याकी विधि कही है आयु आदि कामनावाला पुरुष उदयके उपरांतभी जप करे सायंकालकी संध्याको भी अपने समयमें प्रारंभ करि ताराओंके उदयके उपरांतभी जपता हुआ स्थित रहे ॥१३॥ जिसे ऋषि बड़ी देरतक संध्या करनेसे बढी आयु प्रज्ञा बढी कीर्ति और वेदाध्ययन आदिसें संपन्न यशको प्राप्त हुए तिससे आयु आदिका चाहनेवाला पुरुष बढी देरतक संध्यापासन करे ॥ १४ ॥

श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां वाप्युपौकृत्य यथाविधि॥ युक्तं छन्दांस्यधी-  
यात् मासान्विप्रोऽवर्षश्चमान् ॥ १५ ॥ पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्भि  
हिरुत्सर्जनं द्विजः॥माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहनि॥१६॥

टीका—श्रावणीमें अथवा भाद्रपदकी पूर्णमासीमें अपने गृहके अनुसार उपा-  
कर्म नाम कर्मको करिकै साढेचार महीनेतक उनमें तत्पर हो वेदोंको पढे ॥ १५ ॥ तिस पीछे साढेचार महीनोंमें जब पुष्यनक्षत्र आवै तब ग्रामसे बाहर जाकै अपने गृहके अनुसार उत्सर्गनाम कर्म करे अथवा माघशुक्लके पहले दिन पूर्वाह्न समयमें करे ॥ १६ ॥



यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गं छन्दसां बहिः॥विरमेतं पक्षिणीं रात्रिं  
तदेवैकमहर्निशम् ॥९७॥ अत ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः  
पठेत् ॥ वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत् ॥ ९८ ॥

टीका- ऐसे कहे हुए शास्त्रके अनुसार ग्रामसे बाहर वेदोंका उत्सर्गनामकर्म करिकै पक्षिणी रातिमें ठहर जाय पढ़े नहीं पहला और पिछला दो दिन जिसके पक्षोंके समान होंय उनके बीचकी रात्रिको पक्षिणी कहते हैं इस पक्षमें तौ उत्सर्गके रातिदिन और दूसरे दिनभी दिनमें न पढ़ना चाहिये दूसरी रात्रिमें तौ पढ़ना चाहिये अथवा उसी उत्सर्गके दिन रातिमें अनध्याय करे ॥ ९७ ॥ उत्सर्गके पढ़नेके उपरांत मंत्र ब्राह्मणरूप वेदको शुक्लपक्षमें पढ़े और शिक्षाव्याकरण आदि वेदके अंगोंको कृष्णपक्षमें पढ़े ॥ ९८ ॥

नविस्पृष्टमधीयत न शूद्रजनसन्निधौ ॥ न निशान्ते परिश्रान्तो  
ब्रह्माधीत्यं पुनः स्वपेत् ॥ ९९॥ यथोदितेन विधिना नित्यं छन्द  
स्कृतं पठेत् ॥ ब्रह्मं छन्दस्कृतं चैवं द्विजो युक्तो ह्यनार्पदि ॥ १०० ॥

टीका-स्वरवर्ण आदिके स्पष्ट उच्चारणके विना और शूद्रके समीप न पढ़े और रातिके पिछले पहर सोनेसे उठकर वेदको पढ़ि थका हुआ फिर न सोवे ॥ ९९ ॥ यथोक्त विधिसे नित्य छन्दस्कृत कहिये गायत्री आदि छंदो करि युक्त मंत्रसमूहको पढ़े आपत्तिरहित समयमें सामर्थ्य होनेपर वेद ब्राह्मण और मंत्र समूहको कही हुई विधिसे युक्त हो द्विज पढ़े ॥ १०० ॥

इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् ॥ अध्यापनं च कुर्वाणः  
शिष्याणां विधिपूर्वकम् ॥ १ ॥ कर्णस्त्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसु  
समूहने ॥ एतौ वर्षास्वर्नध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥ २ ॥

टीका-इन आगे कहे हुए सभ अनध्यायोंको उक्त विधिसे पढ़ता हुआ शिष्य और पढ़ता हुआ गुरु वर्जित करे ॥ १ ॥ रातिमें कानोंसे सुननेयोग्य शब्द करनेवाले पवनके चलनेपर और दिनमें धूलि उड़ानेवाले पवनके चलनेपर न पढ़े वर्षाकालमें इन अनध्यायोंको तत्कालके अनध्यायोंके जाननेवाले मनु आदि कहते हैं ॥ २ ॥

विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोलकानां च संपुंवे ॥ आर्कालिकमर्नध्या  
यमेतेषु मनुरब्रवीत् ॥ ३ ॥ एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृता



ग्रिषु ॥ तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने ॥ ४ ॥

टीका-बिजलीका चमकना गर्जना और इन सबके एकसाथ होनेपर और इधर बहुतसे उल्कापात अर्थात् तारोंके टूटने पर उस समयसे लगकै दूसरे दिन उसी समयतक मनुने अकालिक अनध्याय कहा है ॥ ३ ॥ जौ अभ्रहोत्रके समय बिजली आदि इन सब उत्पातोंको एकसाथ प्रकट हुए जानै तौ वर्षाऋतुमें अनध्याय करै सदा नहीं और ऋतुमें अभ्रहोत्रके समय मेघके देखनेहीसे अनध्याय होताहै वर्षाऋतुमें नहीं होताहै ॥ ४ ॥

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने ॥ एतान्कालिकान्वि-  
द्यादनध्यायानृतावपि ॥ ५ ॥ प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनि-  
तनिःस्वने ॥ सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषरात्रौ यथा दिवा ॥ ६ ॥

टीका-आकाशमें उत्पन्न हुए उत्पात शब्दके होनेपर और भूमिकंप होनेपर ओर ज्योति जे हैं सूर्य चंद्र तारागण तिनके उपद्रव होनेपर इन अनध्यायोंको अकालके जानै और ऋतुमेंभी वर्षाके विषे भूकंप आदि दोषके लिये नहीं होते हैं इस अभिप्रा-  
यसे ऋतौअपि यह कहा ॥ ५ ॥ होमके अग्निके प्रकाशित करनेपर संध्यासमय जौ बिजली और गर्जना होय वर्षा न होय तौ सज्योति अनध्याय होताहै अकालका नहीं है उनमें जौ प्रातःकालकी संध्यामें बिजली और गर्जना होय तौ जब सूर्य-  
ज्योति है तबतक एकदिनका अनध्याय होताहै और जौ सायंकालकी संध्यामें होवे तौ जब नक्षत्र ज्योति है तबतक रातिभरका अनध्याय होता है और बिजली गर्जना तथा वर्षा तीनोंमेंसे जौ वर्षानाम तीसराही होय तो जैसे दिनमें अनध्याय होताहै ऐसेही रात्रिमेंभी अर्थात् दिनरातिका अनध्याय होताहै ॥ ६ ॥

नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च ॥ धर्मनैपुण्यका-  
मानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ ७ ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य  
च संनिधौ ॥ अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥ ८ ॥

टीका-धर्मकी अधिकता चाहनेवालेको ग्राम तथा नगरमें सदा अनध्याय होताहै और दुर्गन्धके आनेमें सदा अनध्याय होता है ॥ ७ ॥ जिस ग्रामके भीतर स्थित मुर्दा जाना जाय उसमें और वृषल जहां अधर्मी होय उसके समीप और रोकनेका शब्द हो-  
नेपर और किसी कामके लिये बहुत मनुष्योंका मेल होनेपर अनध्याय होताहै ॥ ८ ॥



उदके मध्यरात्रे च विष्णुर्त्रस्य विसर्जने॥ उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव  
मनसापि न चिन्तयेत् ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य  
केतनं ॥ त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्मं राज्ञो राजोश्च सूतके ॥ ११० ॥

टीका—जलमें और आधी रातिमें चार मुहूर्ततक और मूत्र तथा पुरीषके त्यागनेके समय और अन्नके भोजन आदिसे जूठा होनेपर और निमंत्रणके समयसे श्राद्ध भोजनके दिनरातितक मनसेभी वेदका चिंतवन न करै ॥ ९ ॥ जो एकहीके लिये किया जाय वह एकोद्दिष्ट कहिये नवश्राद्ध उसमें न्योता मानिकै निमंत्रण समयसे और क्षत्रिय जो देशका स्वामी है उसके पुत्रजन्म आदिके सूतकमें तथा राहुके सूतक अर्थात् सूर्य चंद्रके ग्रहणमें तीनि रात्रितक विद्वान् वेद न पढ़ै ॥ ११० ॥

यावदेकानुद्दिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति ॥ विप्रस्य विदुषो देहं  
तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् ॥ १११ ॥ शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावस-  
थिकाम् ॥ नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च ॥ ११२ ॥

टीका—एकोद्दिष्ट श्राद्धका उच्छिष्ट कुंकुम चंदन आदिका लेप विद्वान् ब्राह्मणके देहमें रहै तबतक तीनि दिनसे उपरांतभी वेद न पढ़ै ॥ १११ ॥ शय्या पर पडाहुआ आसनपर पैर रखै हुए और दोनो घोटुओंको मोड़के और मांस खायके और जनन तथा मरणके सूतकका अन्न खायके वेदको न पढ़ै ॥ ११२ ॥

नीहारे वाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः॥ अमावास्याचतुर्दश्योः  
पौर्णमास्यष्टकासु च ॥ ११३ ॥ अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति  
चतुर्दशी ॥ ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ११४ ॥

टीका—कुहिरमें और वाणके शब्दमें ओर दोनो संध्याओंमें और अमावास्या तथा चतुर्दशीको पूर्णमासी और अष्टमीको वेद न पढ़ै ॥ ११३ ॥ अमावास्या गुरुको मारती है और चतुर्दशी शिष्यको और अष्टमी तथा पूर्णमासी वेदको भुलाती है तिस्से ये सब वेदके पढ़नेमें वर्जित है ॥ ११४ ॥

पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमयविरुते तथा॥ श्वखरोष्ट्रे च रुर्वति पंडू  
च न पठेद्विजः ॥ ११५ ॥ नाधीयीत इमशानान्ते ग्रामान्ते गो-  
ब्रजेऽपि वा॥ वसित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ११६ ॥



टीका-धूलिके बरसनेमें दिशाओंके दाहमें ओर स्यार कुत्ता गधा ऊंट इनके शब्द करनेपर और पंक्तिमें बैठकर ब्राह्मण वेदको न पढ़े ॥ १५ ॥ श्मशानके तथा ग्रामके समीप और गौओंके स्थानमें और मैथुन समयके वस्त्र पहिरिके और श्राद्धका अन्न लेकर वेदको न पढ़े ॥ १६ ॥

प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ तदा लभ्यां  
प्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजैः स्मृतः ॥ १७ ॥ चोरैरुपहृते ग्रामे  
संभ्रमे चाग्निकारिते ॥ आकालिमनर्ध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ॥ १८ ॥

टीका-प्राणी गौ अश्व आदि अथवा अप्राणी वस्त्र माला आदि इनको दानके समय हाथसे पकड़कर अनध्याय होताहै क्योंकि पाण्यास्यः अर्थात् हाथही हैं मुख जिसके ऐसा ब्राह्मण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ चोरों करि उपद्रव किये हुए ग्राममें और अग्निसे घर जलाने आदिके समयमें और दिव्य अंतरिक्ष तथा भूमिके अद्भुत उत्पातोंमें अकालका अनाध्याय जानिये ॥ १८ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् ॥ अष्टकांस्तु त्वहोरात्रमृ-  
त्वंन्तास्तु च रात्रिषु ॥ १९ ॥ नाधीयीताश्च मारुतो न वृक्षं न च हस्ति-  
नम् ॥ न नावं न खरं नोष्ट्रं न रिणं स्थो न यानरगः ॥ १२० ॥

टीका-उपाकर्म और उत्सर्गमें तीन रात्रिका अनध्याय कहाहै और तैसंहि अगहनकी पूर्णिमाके उपरांत कृष्णपक्षकी तीन अष्टमियोंमें रात्रिदिनका अनध्याय होताहै और ऋतुओंके अंतके रात्रिदिनका अनाध्याय होताहै ॥ १९ ॥ घोड़ा वृक्ष हाथी नाव गधा और ऊंट इनपर चढ़ा हुआ और ऊषरदेशमें तथा गाड़ि आदि सवारीमें चलता हुआ वेदको न पढ़े ॥ १२० ॥

न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे ॥ न भुक्तमात्रे न जीर्णे  
न वामित्वा न सूतके ॥ २१ ॥ अतिथिश्चाननुज्ञाप्य मारुते वाति  
वा भृशम् ॥ रुंधिरे च भुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते ॥ २२ ॥

टीका-विवाद कहिये बातोंकी लड़ाईमें और कलह कहिये लठी डंडा आदिके चलनेमें और जिसमें युद्ध नहीं होने लगाहै ऐसी सेनामें और युद्धमें और भोजनके पीछे जबतक हाथपैर गीले रहैं तबतक और अन्नके न पचनेमें और वमन करिके और खट्टीडकार आनेपर वेदको न पढ़े ॥ २१ ॥ अध्ययन करताहों यह आज्ञा जबतक अतिथिको नहीं दीजाती है तबतक और आंधी चलनेपर



और शरीरसे रुधिर निकलनेपर और रुधिर न निकलनेपरभी शस्त्रसे घाव होनेपर वेदको न पढ़े ॥ २२ ॥

सामध्वनावृग्यजुषी नार्धीयीत कदाचन ॥ वेदस्याधीत्य वाप्यन्तं मारण्यकमधीत्य च ॥ २३ ॥ ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः ॥ सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः<sup>१२</sup> ॥ २४ ॥

टीका—सामकी ध्वनि सुनि जानेपर ऋक् और यजुको कभी न पढ़े और वेदको समाप्त करि आरण्यकनाम वेदके एकदेशको पढ़कै उस रातिदिन दूसरा वेद न पढ़े ॥ २३ ॥ ऋग्वेद देवदैवत्यहै अर्थात् देवताही इसके देवताहैं और यजुर्वेद मनुष्यदेवता होनेसे अथवा बहुधा मनुष्योंके कर्म उपदेश करनेसे मानुष है और सामवेद पितृदेवता होनेसे पित्र्यहै पितृकर्म करिकै आचमन करना कहाहै तिससे उसकी ध्वनि अशुचिसिही है अशुचिही नहींहै इससे उसके सुननेपर ऋक् और यजु न पढ़े ॥ २४ ॥

एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयीनिष्कर्षमन्वहम् ॥ क्रमशः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीर्यते ॥ २५ ॥ पशुमण्डूकमाजरीश्वसर्पनकुला-  
खुभिः ॥ अन्तरागमने विद्यादनर्घ्यायमर्हन्निशम् ॥ २६ ॥

टीका—तीनो वेदोंके देव मनुष्य पितृदेवताहै इस बातको जानते हुए विद्वान् त्रयी निष्कर्ष कहिये तीनो वेदोंका निकाला हुआ सार प्रणवव्याहृति सावित्रिरूप अर्थात् पहले क्रमसे प्रणव व्याहृति और सावित्रीको पढ़कर पीछे वेदका अध्ययन करते हैं ॥ २५ ॥ गौ आदिपशु भेदक विलाव कुत्ता साप न्योला और मूसा ये जो गुरुशिष्यके बीचमें होकै निकल जाय तौ दिनरातिका अनाध्याय जानिये ॥ २६ ॥

द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनर्घ्यायौ प्रयत्नतः ॥ स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धा-  
मात्मानं चाशुचिं द्विजः ॥ २७ ॥ अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीं  
चतुर्दशीम् ॥ ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥ २८ ॥

टीका—जूठनि आदिसे विगडी हुई वेदपाठकी भूमिको और कहे हुए शौचसे रहित आपको इन दोनो अनाध्यायोंको द्विज यत्नसे वर्जित करै ॥ २७ ॥ अमावास्या अष्टमी पूर्णमासी और चतुर्दशीको स्नातद्विज ऋतुकालमेंभी स्त्रीसे भोग न करै सदा ब्रह्मचारी रहै ॥ २८ ॥

न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ॥ न चांसोभिः सहाजं



स्रनोविज्ञाते जलाशये ॥ २९ ॥ देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययो  
स्तथा ॥ नाक्रमेत् कामतच्छायां बभ्रुणो दीक्षितस्य च ॥ १३० ॥

टीका—भोजन करिकै अपनी इच्छासे स्नान न करै और रोगी होकै स्नान न करै और महानिशा जो बीचके रातिके दो पहरहैं उनमें और वस्त्रोंसमेत और विना जाने हुए जलाशय अर्थात् नदी तलाव आदिमें स्नान न करै ॥ २९ ॥ पत्थर आदिके बने हुए देवता ओंकी गुरुकी राजाकी स्नातककी आचार्यकी कपिलकी और दीक्षितकी छायाको न उलांघै ॥ १३० ॥

मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रे च श्राद्धं भुक्त्वा च सौमिषम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत् चतुष्पथम् ॥ ३१ ॥ उद्धर्तनमपस्नानं विष्णूत्रे रक्तमेव च ॥ श्लेष्मनिष्टचूतवान्तानि नाधि तिष्ठेतुं कामतः ॥ ३२ ॥

टीका—दिनके मध्यमें आधी रातिमें और मांससमेत श्राद्धको खायकै और दोनो संध्याओंमें चौराहेमें न जाय ॥ ३१ ॥ उवटनेका उतरा हुआ चून आदि स्नानका जल विष्ठा मूत्र थूका हुआ कफ और वमन किया हुआ इनसबोंमें जानकै किसीके ऊपर न बैठे ॥ ३२ ॥

वैरिणं नोपसेवेत् सहाय्यश्चैव वैरिणः ॥ अर्धामिकं तस्करश्च परस्यैव च योषितम् ॥ ३३ ॥ न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ॥ यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ३४ ॥

टीका—वैरीका और उसके मित्रका और अधर्मी चौरका तथा पराई स्त्रीका कभी सेवन न करै ॥ ३३ ॥ उस लोकमें पुरुषकी आयु घटानेवाला ऐसा कुछ नहीं है जैसा पराई स्त्रीका सेवन ॥ ३४ ॥

क्षत्रियश्चैव सर्पश्च ब्राह्मणं च बहुश्रुतम् ॥ नावमन्येत वैभूषणः कृशानपि कदाचन ॥ ३५ ॥ एतत्रयं हि पुरुषं निर्दहेदवमानितम् ॥ तस्मादेतत्रयं नित्यं नावमन्येत बुद्धिमान् ॥ ३६ ॥

टीका—धन आयु आदिकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य क्षत्रिय सर्प बहुश्रुत ब्राह्मण और दुर्बलोंका कभी अपमान न करै ॥ ३५ ॥ तिरस्कार किये हुए ये क्षत्रिय आदि तीनो पुरुषको जलाव देते हैं तिससे बुद्धिमान इन तीनोंका कभी अपमान न करै ॥ ३६ ॥



नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसंमृद्धिभिः ॥ आत्मृत्योः श्रियमन्वि  
च्छेन्नैर्नामन्येत दुर्लभाम् ॥३७॥ सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रू-  
यात् सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥३८॥

टीका—धनके लिये उद्यम करनेपर जो धन न मिले तौ मैं मंद भाग्य हूँ  
ऐसे कहकर अपनी निंदा न करे किंतु मरनेतक लक्ष्मीकी सिद्धिके लिये यत्न करे  
इसको दुर्लभ न माने ॥ ३७ ॥ देखा और सुना हुआ सत्य कहै और जैसे तुझा  
रे पुत्र हुआ है ऐसी प्यारी बात कहै और देखा सुनाभी अप्रिय जैसे तुझारा  
पुत्र मरगया ऐसा अप्रिय न कहै और प्यारीभी बात झूठ न कहै यह वेदमूलक  
सनातन धर्म है ॥ ३८ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येवं वा वदेत् ॥ शुष्कवैरं विवादं च न  
कुर्यात् केनचित् सह ॥३९॥ नातिकल्पं नातिसाथं नातिमध्य-  
न्दिने स्थिते ॥ नाज्ञातेन समं गच्छेत् नैको न वृषलैः सह ॥१४०॥

टीका—भद्रं भद्रं अर्थात् बहुत अच्छा २ ऐसे कहै अथवा भद्र ऐसाही अर्थात्  
अच्छा ऐसे कहै सूखा वैर तथा विवाद किसीसे न करे ॥ ३९ ॥ न बहुत स-  
वैरे न बहुत संध्याको न ठीक दुपहरमें और विन पहचानके साथ न अकेला न  
और वृषलोंके साथ गमन करे ॥ १४० ॥

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान् विद्याहीनान् वयोऽधिकान् ॥  
रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ४१ ॥ न  
स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान् ॥ न चापि  
पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान् दिवि ॥ ४२ ॥

टीका—हीनअंगवालोंका अधिकअंगवालोंका मुखोंका बूढ़ोंका और रूप तथा द्रव्यसे  
हीन अर्थात् कुरूप और कंगालोंकी और हीन जातिका कभी काना आदि शब्द  
करकर पुकारनेसे निंदा न करे ॥ ४१ ॥ भोजन करिकै वा मलमूत्रका त्याग करि  
कै ब्राह्मण विना शौच और आचमनके और ब्राह्मण तथा अग्निको न छुवै ॥ ४२ ॥

स्पृष्टैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् ॥ गोत्राणि चैवं सर्वा-  
णि नाभि पाणितलेन तु ॥१४३॥ अनातुरः स्वानि खानि न स्पृ-



शेदनिमित्ततः॥रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्जयेत्॥४४॥

टीका—अशुद्धतामें इन गौ आदिको छूकर आचमन करि हाथमें लिये हुए जलसे प्राणोंको और नेत्र आदि इंद्रियोंको और शिर कंधा जानु पैर और नाभिको हथेलीसे छुवै ॥ ४३ ॥ अच्छे भलेमें अपनी इंद्रियोंके नाक कान आदि छेदोंको विनाकारण न छुवै और छुपानेके योग्य लिंगके समीपके तथा कांस आदिके वालोंकोभी विनाकारण न छुवै ॥ ४४ ॥

मङ्गलाचारयुक्तः स्यात् प्रयतात्मा जितेन्द्रियः॥जपेच्च जुहुयाच्चै<sup>११</sup>  
वनित्यमग्निमतन्द्रितः ॥४५॥ मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रय-  
तात्मनाम् ॥ जपतां जुह्वताञ्चैव विनिर्पातो न विद्यते ॥ ४६ ॥

टीका—चाहेहुए अर्थकी सिद्धिको मंगल कहते हैं उसका कारणके होनेसे गोरोचना आदिका लगाना मंगलहै और गुरुसेवा आदि आचार हैं उसमें लगा रहै अर्थात् सदा आचार करता रहै और बाहरी तथा भीतरी शौचसे युक्त जितेन्द्रिय रहै और गायत्री आदिका जप और विहित होमकों आलस्यरहित हो नित्यकरै ॥ ४५ ॥ मंगल तथा आचारसे नित्य शुद्ध और जप तथा होममें लगेहुए पुरुषोंको दैवी तथा मानुषी उपद्रव नहीं होतेहै ॥ ४६ ॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमर्तन्द्रितः ॥ तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुप  
धर्मोऽन्य उच्यते ॥ ४७ ॥ वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव  
च ॥ अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् ॥ ४८ ॥

टीका—नित्यकर्मके समयमें कल्याणका कारण होनेसे प्रणवरहित गायत्री आदिवेदकों आलस्य छोड़कै जपै जिस्से उस श्रेष्ठ ब्राह्मणका धर्म मनु आदि कहते हैं और धर्म तौ मुनियों करि उससे नीचा कहा गया है ॥ ४७ ॥ सदा वेदके अभ्यासमें और शौच तप तथा अहिंसा आदिसे पूर्व जन्मकी जातिका स्मरण करनेवाला होताहै ॥ ४८ ॥

पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः ॥ ब्रह्माभ्यासेन चा-  
जस्रमनन्तं सुखमश्नुते ॥ ४९ ॥ सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्  
पर्वसु नित्यशः ॥ पितृंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ ५० ॥

टीका—पूर्वजन्मकी जातिको स्मरण करताहुआ अर्थात् बहुतसे जन्मोंका स्मरण करता हुआ उनमें गर्भ जन्म जरा मरणके दुःखोंकोभी स्मरण करता हुआ संसारसे विरक्त हो सदा ब्रह्महीका अभ्यास करताहै अर्थात् श्रवण मनन और



ध्यानसे साक्षात् करताहै उससे अनंत अविनाशी परमआनंदका प्रकट होनाही है लक्षण जिसका ऐसे मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ सूर्यहै देवता जिनके ऐसे होमोंको और अनिष्ट दूर होनेके लिये शांति होमोंको पूर्णमासी और अमावास्याको सदा करै तैसे अंगहनकी पूर्णिमाके उपरांत तीन कृष्णपक्षकी अष्टमियोंमें अष्टका नाम कर्मसे और श्राद्धसे और उसके भीतर कृष्णपक्षकी नवमी तिथियोंमें अन्वष्टका कर्मसे परलोकमें गयेहुए पितरोंका यजन करै ॥ १५० ॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसचेनम् ॥ उच्छिष्टष्टान्नं निषे-  
कञ्च दूरादेवं समाचरेत् ॥ ५१ ॥ मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधा-  
वनं मज्जनम् ॥ पूर्वाह्णं एवं कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् ॥ ५२ ॥

टीका—अग्निगृहसे एक बाण चलानेकी भूमिसे कुछ आगे बढकर दूर मूत्र पुरीषका त्याग पैरोंका धोना और जलसमेत जूठे अन्नका तथा वीर्यका त्याग करै ॥ ५१ ॥ मैत्र कहिये दिशाबाधा जाना और देहका प्रसाधन कहिये प्रातःकालका स्नान दतन करना अंजन लगाना इन सब बातोंको पूर्वाह्ण कहिये दिनके पहलेही भागमें करै ॥ ५२ ॥

देवतान्यभिर्गच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ईश्वरं चैवं रक्षार्थं  
गुरुनेवं च पूर्वसु ॥ ५३ ॥ अभिवादयेद्दृष्ट्वांश्च दद्याच्चैर्वासनं  
स्वर्कम् ॥ कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् ॥ ५४ ॥

टीका—पाषाण आदिके बनेहुए देवताओंके मंदिरमें और धर्मात्मा ब्राह्मणोंके समीप और राजा तथा गुरुकहिये पिता आदिके समीप अपनी रक्षाके लिये अमावास्या आदि पर्वोंमें उनके दर्शनको जाया करै ॥ ५३ ॥ घरमें आयेहुए गुरुओंको नमस्कार करै और उनके बैठनेको अपना आसन दे और हाथ जोरिकै उनके समीप बैठे और जब वे चलै तौ उनके पीछे पहुंचानेको चलै ॥ ५४ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु ॥ धर्ममूलं निषेवेत सदा  
चारमर्तन्द्रितः ॥ ५५ ॥ आचाराल्लभते ह्यायुराचारदीप्सिताः  
प्रजाः ॥ आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ५६ ॥

टीका—वेद और स्मृतियों करकै अच्छी भांति कहा गया और अध्ययन आदि अपने कर्मोंसे संबंध रखनेवाले और धर्मका कारण ऐसे साधुओंके आचारको आलस्यरहित हो सदा सेवन करै ॥ ५५ ॥ आचारसे वेदमें कही हुई आ



युको प्राप्त होताहै और चहाहुई पुत्र पौत्र और पुत्रीरूप सन्तानको तथा बहुतसे धनको प्राप्त होताहै आचारही अशुभ फलके सूचित करनेवाले देहमें स्थित कुलक्षण-को निष्फल कर देताहै ॥ ५६ ॥

दुराचारो हि<sup>१</sup> पुरुषो लोके भवति निन्दितः॥ दुःखभागी च सततं  
व्याधितोऽल्पायुरेव<sup>२</sup> च ॥ ५७॥ सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचार  
वान्नरः ॥ श्रद्धधानोऽनसूयश्च<sup>३</sup> शतं वर्षाणि जीवति ॥ ५८ ॥

टीका—दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होताहै और सदा दुःखका भोगनेवाला रोगी और अल्पायु होताहै तिस्से सदा आचारयुक्त रहै ॥ ५७ ॥ जो सदा आचार-वान् है और श्रद्धायुक्त है और पराये दोषोंको नही कहता है वह अपने शुभसूचक लक्षणोंसे शून्यभी सौवर्षकी आयुको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ॥ यद्यदात्मवशं तु स्या-  
त्तत्तत्से<sup>१</sup> वेत यत्नतः॥ ५९ ॥ सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं  
सुखम् ॥ एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १६० ॥

जो जो कर्म पराये आधीन है अर्थात् दूसरे कहनेपर होसकताहै उसको यत्नसे त्याग करै और जो स्वाधीन है, अर्थात् अपनी देहसे होसकताहै उसको यत्नसे त्याग करे ॥ ५९ ॥ सब पराये आधीन काम अर्थात् दूसरे के कहनेसे जो होसकै वह दुःखका कारण है और सब अपने आधीन सुखका कारण है यही सुखदुःखका कारण जानै ॥ १६० ॥

यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः ॥ तत्प्रयत्नेन कुं-  
र्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्॥६१॥ आचार्य च प्रवक्तारं पितरं मा-  
तरं गुरुम् ॥ न हि स्याद्ब्राह्मणान्गार्श्च<sup>२</sup> सर्वाश्चैव<sup>३</sup> तपस्विनः ॥ ६२ ॥

टीका—जिसकामके करते हुए करनेवालेका आत्मा संतुष्ट होय उसको जतनसे करै और जिस्से संतुष्ट न होय उसको न करै ॥ ६१ ॥ आचार्य जो यज्ञोपवीत कराकै वेद पढानेवाला होय उसको और प्रवक्ता कहिये वेदके अर्थके व्याख्यान करनेवालेको और पिता माता तथा गुरुको और ब्राह्मण गौ तथा सब तपस्वि योंको न मारै अर्थात् उनसे प्रतिकूल न वर्त्तै यहां हिंसा शब्दका प्रतिकूल वर्त्तना अर्थ है ॥ १६२ ॥

नास्ति क्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम्॥द्वेषं दम्भं च मानं



चं क्रो<sup>१</sup>धं तैर्क्षयं च<sup>२</sup> वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ परस्य दण्डं नो<sup>३</sup> द्यच्छेत्क्रुद्धो नै<sup>४</sup>व  
निर्पातयेत् ॥ अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा<sup>५</sup> शिष्टैर्यथै<sup>६</sup> ताडयेत्तु तौ<sup>७</sup> ॥ ६४ ॥

टीका—नास्तिकता अर्थात् परलोक नहीं है ऐसे बुद्धिको वेदकी निंदाको तथा दे-  
वताओंकी बुराई करनेको द्वेष दंभ अहंकार क्रोध और क्रूरताको छोड़ दे ॥ ६३ ॥  
क्रोधितहो दूसरेके मारनेको लाठी आदि न उठावै और न दूसरेके शरीरमें मारे पुत्र  
शिष्य स्त्री और दास इनको छोड़कै अर्थात् अपराध करनेपर इनको शिक्षाके लिये  
आगे कहे हुए प्रकारसे ताडना करै ॥ ६४ ॥

ब्राह्मणायैव गुयैव द्विजातिर्वधकाम्यया ॥ शतं वर्षाणि तामिह  
नरके परिवर्तते ॥ ६५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्-  
वकम् ॥ एकविंशतिमांजातिः पापयोनिषु जायते ॥ ६६ ॥

टीका—द्विजाति भी ब्राह्मणके मारनेके लिये लाठी आदिके उठानेही पर मारकै  
नहीं सौ वर्षतक तामिस्रनाम नरकमें भ्रमता है ॥ ६५ ॥ क्रोधसे जानकर तिनकेसेभी  
ब्राह्मणको मारिकै इक्कीस जन्मोंतक कुत्ता आदिकी पापयोनियोंमें उत्पन्न होता है ६६

अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगद्गतैः ॥ दुःखं सुमहदाप्नोति  
प्रेत्याप्राज्ञतया नरः ॥ ६७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति म-  
हीतलात् ॥ तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽर्थते ॥ ६८ ॥

टीका—युद्ध न करते हुए ब्राह्मणको अंगमें मूर्खतासे रुधिर उत्पन्न करकै परलोक  
में बड़े दुःखको पाता है ॥ ६७ ॥ खड्गआदिसे मारे हुए ब्राह्मणके अंगसे निकला  
हुआ रुधिर भूमिमें गिरकै जितने धूलिकै द्रव्यणुकोंको समेटाताहै उतनी वर्षोंतक परलो-  
कमें मारनेवाला स्यार आदिकोंकरि खाया जाता है ॥ ६८ ॥

न कदाचिद्विजे<sup>१</sup> तस्माद्विद्वानवगुरेदपि<sup>२</sup> ॥ न ताडयेत्तृणेनापि<sup>३</sup> न  
गात्रात्स्त्रावियेदसृक्<sup>४</sup> ॥ ६९ ॥ अधार्मिको नरो यो<sup>५</sup> हि<sup>६</sup> यस्य चाप्यं  
नृतं धनम् ॥ हिंसारतश्च यो<sup>७</sup> नित्यं ने<sup>८</sup> हासौ<sup>९</sup> सुखमेधते ॥ १७० ॥

टीका—तस्से विद्वान् कभी ब्राह्मणके ऊपर लाठी आदि उठावैभी नहीं औ-  
र तिनकेसेभी ताडन न करै और न शरीरसे रुधिर निकालै ॥ ६९ ॥ जो नर  
अधर्मी अर्थात् शास्त्रमें मनेकिये हुए अगम्यागमन आदिका करनेवाला और जिसके



गवाहीसे व्यवहारके निर्णय आदिमें झूठ बोलनाही धनका उपाय है अर्थात् झूठी-  
गवाही देकर धन लेताहै और जो पराई हिंसाको करताहै वह इस लोकमें  
सुखी नहीं रहता है ॥ १७० ॥

नँ सीदँन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ॥ अधार्मिकाणां पापाना  
माशुं पश्यन्विपर्ययम् ॥ ७१ ॥ नाधर्मैश्चरितो लोके सर्वः फलति  
गौरिव ॥ शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ७२ ॥

टीका-शास्त्रमें कहेहुए धर्मको हुआ मनुष्य धन आदिके न होनेसे दुःख-  
पानेपरभी कभी अधर्ममें बुद्धि न करे यद्यपि अधर्मसे व्यवहार करनेवाले  
धनआदि संपत्तियों करि युक्तभी दिखाई देतेहैं तिसपरभी उन अधर्म चोरी  
आदि व्यवहारके करनेवाले पापियोंको उससे उत्पन्न हुए पापसे शीघ्रही धन आ-  
दिका नाशभी दीखता है इससे अधर्ममें कभी बुद्धिको न लगावे ॥ ७१ ॥ किया  
हुआ अधर्म लोकमें गौ जो भूमि है तिसके समान शीघ्रही फल देनेवाला नहीं  
होता है जैसे भूमिमें बीजोंके बोतेही सुंदरवालि मुट्टे आदि नहीं उत्पन्न होतेहैं  
किन्तु जब ऋतु आती है तभी होते है ऐसेही जब अधर्म फलके सन्मुख  
होताहै तब करनेवालेको जडसे उखाड देताहै अर्थात् देह धन आदि  
समेत नष्ट होजाताहै ॥ ७२ ॥

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नृपु ॥ न त्वैव तु कृतोऽधर्मः  
कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ ७३ ॥ अधर्मेणैधते तार्वर्ततो भद्राणि  
पश्यति ॥ ततः सर्पत्नाञ्जयति संमूलस्तु विनश्यति ॥ ७४ ॥

टीका-जो अधर्म करनेवालेके देह धनके नाश आदिफलको नहीं करताहै  
तौ उसके पुत्रोंमें नहीं तौ पौत्रोंमें करता है निष्फल नहीं जाता है ॥ ७३ ॥  
अधर्मसे उसके फल होनेतक ग्राम धन आदिसे बढताहै तिस पीछे बहुतसे  
सेवको और गौ घोडे आदि हतवस्तुओंको पाताहै तिस पीछे आपसे निर्बल  
शत्रुओंको जीतताहै पीछे कुछकालमें अधर्मका फल होनेके कारण देह धन  
पुत्रों आदि समेत नाशको प्राप्तहोताहै ॥ ७४ ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ॥ शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण  
वाग्ब हूदरसंयतः ॥ ७५ ॥ परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्म  
वर्जितौ ॥ धर्म चाप्यसुखोदकं लोकविकुष्टमेव च ॥ ७६ ॥



सत्यधर्म और सज्जनोंके आचार तथा शौचमें सदा प्रीति करै और धर्मसे शिष्योंको शिक्षादे और वाणी बाहु तथा उदर इनका संयम करै वाणी का संयम सत्यबोलना बाहुका संयम बाहुबलसे किसीको पीडा न देना उदर का संयम जैसा मिलै वैसा थोडा भोजन करना ॥ ७५ ॥ जो अर्थ और काम धर्मको विरोधी होय तौ उनको त्याग करै जैसे चोरी आदिसे द्रव्यका इकठ्ठे करना और दीक्षाके दिन यजमानकी स्त्रीसे भोग करना और जिस धर्ममें आगे दुःख उत्पन्न होय उसकाभी त्याग करै जैसे पुत्र आदि बहुतसे पालने योग्य होनेपर सर्वस्वका दान करना और लोकमें निंदित जैसे कलियुगमें मध्यमाष्टकादि श्राद्धोंमें गोवध आदिका करना ॥ ७६ ॥

नं पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः ॥ न स्याद्वाक्चपलश्चैवं  
न परद्रोहकर्मधीः ॥ ७७ ॥ येनास्य पितरो याता येन याताः  
पितामहाः ॥ तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥ ७८ ॥

टीका—हाथपैर आदिकी चपलताको न करै हाथकी चपलता जैसे विना प्रयोजनके वस्तुओंका उठाना धरना और पैरोंकी चपलता जैसे विनाप्रयोजनके भ्रमण आदि करना और नेत्र चापल्य जैसे पराई स्त्रीका देखने आदिका स्वाद और वाणीकी चपलता जैसे बहुत निंदाकी बातें बकना इन सबोंका त्याग करै और अनृजु कहिये कुटिल न होय और परद्रोह जो पराई हिंसा है तिसकी बुद्धि न करै ॥ ७७ ॥ बहुत प्रकारका शास्त्रका अर्थ होनेपर जिस धर्म मार्ग से इसके पिता चले और जिसे इसके पितामह चले उसी मार्गसे चले वही सज्जनोंका मार्ग है उसमें चलताहुआ अधर्मकरि नही मारा जाताहै ॥ ७८ ॥

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ॥ बालवृद्धातुरैर्वैद्यै-  
र्ज्ञातिसंबन्धिवान्धवैः ॥ ७९ ॥ मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुं-  
त्रेण भार्यया ॥ दुहित्रा दासवर्गेण विवाहं न समाचरेत् ॥ १८० ॥

टीका—ऋत्विक् पुरोहित कहिये शांतिआदिका करनेवाला और आचार्य मामा अतिथि तथा संश्रित कहिये अनुजीवि और ज्ञाति कहिये पिताके पक्षके और संबंधी कहिये जमाई शाला आदि और बांधव कहिये माताके पक्षके और यामि कहिये बहिनि पुत्रवधू आदि इनसबोंसे वाणीका कलह अर्थात् बातोंका झगडा नकरै ॥ ७९ ॥ माता पिता और यामी कहिये बहिनि पुत्रवधू आदि भाई पुत्र स्त्री बेटी और नौकरोंके समूहके साथ विवाद न करै ॥ १८० ॥



एतैर्विवादान्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥एभिर्जितैश्च जयति स-  
र्वल्लोकांनिभान्गृही॥८१॥आचार्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता  
प्रभुः ॥ अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चत्विजः ॥ ८२ ॥

टीका-इन ऋत्विक् आदिकोंके साथ विवादोंको छोड़कर अज्ञानसे किये हुए सब पापोंसे छूटि जाता है और इनके साथ विवादकी उपेक्षा करनेसे गृहस्थ आगे कहे हुए इन सब लोकोंको जीति लेता है ॥ ८१ ॥ आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है और प्राजापत्य लोकका पिता स्वामी है और इंद्रलोकका अतिथि तथा देवलोकके ऋत्विज् स्वामी है विवाद छोड़नेसे इन सबोंके संतुष्ट होनेसे ब्रह्मलोक आदिकी प्राप्ति होती है ॥ ८२ ॥

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बान्धवाः॥संबन्धिनो ह्यपांलोके  
पृथिव्यां मातृमातुलौ ॥८३॥ आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्ध  
कृशातुराः॥भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः ॥८४॥

टीका-वहनि तथा पुत्रवधू अप्सराओंके लोककी अधिष्ठात्रीहैं और बांधव वैश्वदेव लोकके और संबन्धि वरुण लोकके और माता तथा मामा पृथिवीके स्वामीहैं इनकी प्रसन्नतासे अप्सराओंके लोक आदिकी प्राप्ति होतीहै ॥ ८३ ॥ बालक वृद्ध कृश कहिये धनहीन और आश्रित आतुर ज्येष्ठ भाई पिताके समान है तिस्से वहभी प्रजापति लोकका स्वामी है और भार्या तथा पुत्र अपनाही शरीर-है इसे अपने साथ कैसे विवाद हो सकता है ॥ ८४ ॥

छाया स्वं दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम् ॥ तस्मादेतैरधिक्षितः  
सहेता संज्वरः सदा ॥ ८५ ॥ प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्ज-  
येत् ॥ प्रतिग्रहेण ह्यस्यांशुं ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥ ८६ ॥

टीका-अपने दासोंका समूह सदा अनुगामी होनेसे अपनी छायाहीके समान है विवादके योग्य नहीं है और पुत्री तौ बहुतही कृपाका पात्र है तिस्से इन करिकै तिरस्कार किया हुआ भी संताप न करकै सहले विवाद न करै ॥ ८५ ॥ विद्या तप और आचारयुक्त होनेसे दान लेनेका अधिकारी होनेपरभी उसमें वारंवार प्रवृत्तिको छोड़दे अर्थात् दान न ले कारण यह है कि दान लेनेसे वेदपठन आदिसे उत्पन्न इसका ब्राह्मणतेज अर्थात् प्रभाव शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ८६ ॥

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे ॥ प्राज्ञः प्रतिग्रहं कु-



यादवँसीदन्नपि क्षुधा ॥ ८७ ॥ हिरण्यं भूमिमश्वं गौमैत्रं वाँसस्ति  
लान्धृतम् ॥ प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तुं भस्मोभवंति दारुवत् ॥ ८८ ॥

टीका-वस्तुओंकी दान लेनेमें धर्मके लिये हितकारी विधानके बिना जानें बुद्धिमान् क्षुधासे पीड़ित होने परभी दान न ले आपत्तिके बिना तौ फिर क्या कहना है ॥ ८७ ॥ सोना भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल और घी इनका दान लेता हुआ मूर्ख दान रूपि अग्निसे काष्ठके समान उसी समय भस्म हो जाता है फिर उत्पत्तिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

हिरण्यमायुरन्नं च भूगोश्चाप्योषतस्तनुम् ॥ अश्वश्चक्षुस्त्वचं वाँसो  
धृतं तेजस्तिर्लौः प्रजाः ॥ ८९ ॥ अंतपास्त्वन्धीयानः प्रति  
ग्रहरुचिर्द्विजैः ॥ अम्भस्यश्मप्लवेनेव सहते नैव मर्ज्जति ॥ ९० ॥

टीका-सुवर्ण और अन्नका दान लेने वाले मूर्खकी आयुको जलाते हैं और भूमि तथा गौ शरीरको जलाते हैं घोड़ा नेत्रोंको वस्त्र त्वचाको घी तेजको और तिल संतानको जलाते हैं ॥ ८९ ॥ तप और विद्यासे शून्य और दानकी इच्छा करनेवाला ब्राह्मण दानका अधिकारी न होनेसे मनमें विचारेही हुए उस दानसे अयोग्य दानरूप पापयुक्त दातासमेत नरकमें ऐसे डूबता है जैसे पत्थरकी नावसे जलको उतरता हुआ उस नावसमेत जलमें डूब जाता है ॥ ९० ॥

तस्मादविद्वांन्विभिर्याद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् ॥ स्वल्पकेनाप्य  
विद्वांन्निह पैङ्गे गौरिवँ सीदति ॥ ९१ ॥ न वार्यपि प्रयच्छेत्तुं बैडाल  
व्रतिके द्विजे ॥ न बर्कव्रतिके विप्रे न वेदविदि धर्मवित् ॥ ९२ ॥

टीका-तिस्से मूर्ख पुरुष जिसकिसी छोटी वस्तुके भी दानसे डरै क्योंकि सुवर्णका तौ क्या कहना थोड़े दामके सीसा आदिके लेनेसे कीचमें फसकै गौके समान नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥ लेनेवालेका धर्म कहिकै अब देनेवालेका धर्म कहते हैं कौआ कुत्ता आदिको जो दिया जाता है वहभी धर्मज्ञ बिडालव्रति ब्राह्मणको न दे इस अधिकताके कहनेसे दूसरी चीजोंका दान मनाकिया जाता है केवल जल-हीका दान नहीं पाषण्डिनो विकर्मस्थान् इस्से बैडालव्रतिके लिये अतिथियनसे सत्कार करिकै द्रव्यदान आदिका निषेधकिया यहांतौ धनका दान मनाकिया जाता है इसीसे विधिनाप्यर्जितं धनं यह आगे कहेंगे और अवेदविद् कहनेसे यह जाना गया कि जबतक पढ़ा लिखा मिलै तबतक मूर्खको न दे ॥ ९२ ॥



त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि<sup>३</sup> विधिनाप्यर्जितं धनम् ॥ दातुं भवत्यनर्थं  
य परत्रादातुरेव च ॥ ९३ ॥ यथा पुवेनौपलेन निर्मज्जत्युदके  
तरन् ॥ तथा निर्मज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ ९४ ॥

टीका—इनतीनि बिडालवृत्ति आदिकोमें न्यायसे जोडा हुआ भी धन देनेसे देनेवाले और लेनेवालेको परलोकमें नरकका कारण होनेसे अनर्थके लिये होता है ॥ ९३ ॥ जैसे पत्थरकी बनीहुई नाव आदिसे जलमें तिरता हुआ उसके साथही नीचे जाता है ऐसेही दान और प्रतिग्रहके शास्त्रके न जाननेवाले दाता और लेनेवाला दोनो नरकको जाते हैं ॥ ९४ ॥

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्छाद्विको लोकदम्भकः ॥ बैडालव्रतिको  
ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थ  
साधनतत्परः ॥ शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ ९६ ॥

टीका—जो बहुतसे मनुष्योंके सामने धर्म करता है और लोकमें आप कहता है तथा औरोंसे कहाता है उसका धर्मही चिन्हहीसाहै इस कारण वह धर्म ध्वजी कहा जाता है और लोभी कहिये परायेधनकी इच्छा रखनेवाला और छाद्विक कहिये छल करने वाला और लोकदम्भक कहिये धरोहड आदिके पचा-जानेसे लोगोंका ठगानेवाला और हिंस्र कहिये दूसरेकी हिंसाका स्वभाववाला और सर्वाभिसंधक कहिये पराये गुणोंको न सहकर सबकी निंदा करनेवाला और बिडालव्रती कहिये जैसे बिलाव बहुधा मूसा आदिके मारनेकी रुचिसे ध्यानमें लगासा नम्रहोकै बैठता है ऐसेही उसको जानिये ॥ ९५ ॥ अधोदृष्टि कहिये जो अपनी नम्रता दिखानेके लिये सदा नीचेहीको देखता है और नैकृतिक कहिये जो निष्ठुरतायुक्त हो पराये अर्थको बिगाडकर अपने स्वार्थमें लगाकर और शठ कहिये कुटिल और मिथ्याविनीत कहिये कपटसे नम्रतायुक्त और बकव्रतचरः बगलेकासाव्रत करनेवाला जैसे बगुला मछलियोंके मारनेके लिये झूठमूठको नम्रतासे बैठता है ॥ ९६ ॥

ये बकव्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः ॥ ते पतन्त्यन्धतां  
मिस्रे तेन पापेन कर्मणां ॥ ९७ ॥ न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा  
व्रतं चरेत् ॥ व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम् ॥ ९८ ॥

टीका—जे ब्राह्मण बकवृत्तिवाले हैं और जे बिडालव्रती हैं वे उस पापकर्मसे अंधतामिस्त्रनाम नरकमें गिरते हैं ॥ ९७ ॥ पापकरिके प्रायश्चित्तरूप प्राजापत्य आदि



व्रतकरता हुआ ऐसा न कहै कि मैं धर्मके अर्थ करता हों स्त्री शूद्र मूर्ख आदि जनो-  
को मोहित करता हुआ ऐसा न करै ॥ ९८ ॥

प्रेत्येह चेदृशां विप्रां गृह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ छंदानां चरितं यच्च व्रतं  
रक्षांसि गच्छति ॥ ९९ ॥ अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजी-  
वाति ॥ स लिङ्गिनां हरेत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते<sup>१२</sup> ॥ २०० ॥

टीका-परलोकमें तथा इस लोकमें ऐसे ब्राह्मण ब्रह्मवादियों करि निंदाकिये जाते  
हैं और जो व्रत छलसे किया जाता है वह राक्षसोंको प्राप्त होता है ॥ ९९ ॥ जो ब्र-  
ह्मचारी आदि नहीं है और ब्रह्मचारी आदिकोंके चिन्ह भेखला मृगचर्म दंड आदि  
वेष जाना जाता उनकी वृत्तिसे भिक्षाभ्रमण आदिकरि जीविका करता है वह ब्रह्म-  
चारी आदिकोंका जो पाप है उसको अपनेमें खींचि लेता है और कूकुर आदिकी  
योनिमें उत्पन्न होता है ॥ २०० ॥

परकीयनिपानेषु न स्नायाच्च कदाचन ॥ निपांनकर्तुः स्नात्वा तु  
दुष्कृतांशेन लिप्यते ॥ १ ॥ यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृ-  
हाणि च ॥ अदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीर्यभाक् ॥ २ ॥

टीका-पराये बनाये हुए ताल आदिमें कभी स्नान न करै उनमें नहायकै उनके  
बनावनेवालेके पापसे चौथाई भागका पानेवाला होता है विनावनाई हुई नदी आदि  
न होय तौ पराये बनाये हुए तालआदिमें प्रदानसे पहले पांच पिंडोंका उद्धार करि  
नहाना चाहिये ॥ १ ॥ पराया यान आसन कुआ बाग और घर जो विनादिये  
इनका भोग करै तौ बनवानेवालेके पापके चतुर्थ अंशका भागी होता है ॥ २ ॥

नदीषु देवस्नातेषु तडागेषु सरैः सु च ॥ स्नानं समाचरेन्नित्यं ग-  
र्तप्रस्रवणेषु च ॥ ३ ॥ यमोन्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥  
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४ ॥

टीका-नदीमें देवताओंके नामसे प्रसिद्ध तडागोंमें और प्रसिद्ध सरों गतोंमें  
अर्थात् जिनकी गति आठ हजार धनुषसे कम नहीं है उनमें चारिहाथका एक  
धनुष होता है और झरणोंमें स्नान करै ॥ ३ ॥ पंडित जनोंका सदा सेवन करै और  
नित्यानियमोंका सेवन न करै यम जैसे ब्रह्मचर्य १ दया २ क्षमा ३ ध्यान ४ सत्य  
५ कपट न करना ६ अहिंसा ७ चोरी न करना ८ मधुर बोलना ९ इंद्रियोंका



वश करना और नियम जैसे स्नान १ मौन २ उपवास ३ यज्ञ करना ४ वेद पढ़ना ५ शिश्न इंद्रियका रोकना ६ निगम ७ गुरुकी सेवा ८ शौच ९ क्रोध न करना १० प्रमाद न करना ११ यमौको न करता हुआ केवल नियमोंको करता हुआ पुरुष पतित होता है ॥ ४ ॥

नांश्रोत्रियतते यज्ञे ग्राम्याजिहुते तथा ॥ स्त्रियां क्लीबेन च हुते  
भुञ्जीत ब्राह्मणः कंचित् ॥५॥ अश्लीकमेतत् साधूनां यत्र जुह्वत्य  
भी हविः ॥ प्रंतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका—जो वेदपाठी नहीं है ऐसे मनुष्यकरि आरंभ किये हुए और बहुतोंके यजन करानेवाले करि होमे हुए और स्त्री तथा नपुंसक करि होम किये हुए यज्ञमें ब्राह्मण कभी न भोजन करै ॥ ५ ॥ पहलेकहे हुए वह याजक आदि जिसमें होम करते हैं वह कभी शिष्टोंको अश्लीक कहिये अलक्ष्मी देनेवाला है अर्थात् देवताओंको प्रतिकूल है तिस्से इसको न करावै ॥ ६ ॥

मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदाचन ॥ कैशकीटावपन्नञ्च  
पदां स्पृष्टञ्च कामतः ॥ ७ ॥ भूण्ण्रावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्च  
प्युदक्यया ॥ पतत्रिणार्वालीढञ्च शुनां संस्पृष्टमेव च ॥ ८ ॥

टीका—सिड़ी क्रोधी तथा रोगीका अन्न और बालों तथा कीड़ोंके योगसे बिगडा हुआ और जानकर पैरसे छुआ हुआ अन्न कभी न खाय ॥ ७ ॥ गर्भहत्या गोहत्या आदिसे पतितोंकरि देखा हुआ अन्न और रजस्वला स्त्री करि छुआ हुआ तथा पक्षियों करि खाया हुआ और कुत्तोंकरि छुआ हुआ अन्न न खाय ॥ ८ ॥

गवां चान्नमुपघ्रातं घृष्टान्नञ्च विशेषतः ॥ गर्णान्नं गणिकान्नञ्च विदु  
षां च जुगुप्सितम् ॥ ९ ॥ स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णो वाडुषि-  
कस्य च ॥ दीक्षितस्य कर्दरस्य बद्धस्य निर्गडस्य च ॥ १० ॥

टीका—गौका सूंघा हुआ और घृष्टान्न कहिये कौन खानेवाला है ऐसे कहिके जो अन्न यज्ञ आदिमें दिया जाय और गणान्न कहिये मठ तथा ब्राह्मणोंके समूहका अन्न और वेश्याका अन्न और विद्वान् करि दुष्ट है ऐसे कहि कहि करि निंदाकिया गया अन्न विशेष करि कहिये बहुत दोषयुक्त होनेसे उस अन्नको कभी न खाय ॥ ९ ॥ चोरी तथा गानेकी जीविकावालेका और बड़ाई तथा व्याज लेनेवालेका और दीक्षित तथा कृपणका और बेरियोंसे बधे हुएका अन्न कभी न खाय ॥ १० ॥



अभिशस्तस्य पैण्डस्य पुंश्चल्यां दाम्भिकस्य च ॥ शुक्तं पर्युषि  
तत्रैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च ॥ ११ ॥ चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्यो  
च्छिष्टभोजिनः ॥ उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्याचान्तमनिर्देशम् ॥ १२ ॥

टीका-अभिशस्त कहिये जिसको लोकमें महापातक लगिरहा है उसका नपुंसक का व्यवहारिणी स्त्रीका और दाम्भिक कहिये छलसे धर्म करनेवाले बिडालव्रती आदिका अन्न न खाय और शुक्त जो स्वभावसे मीठा दही आदि जल आदिके मिलनेसे खट्टा हुआ और पर्युषित कहिये रातिका बसा हुआ और शूद्रका अन्न कभी न खाय और उच्छिष्ट कहिये भोजनसे बचा हुआ अन्न किसीका न खाय और गुरूका जूठा तौ विहित है इससे खाय ॥ ११ ॥ चिकित्सासे जीविका करनेवालेका अर्थात् वैद्यका और मांस बेचनेके लिये पशुओंके मारनेवालेका और क्रूर कहिये कुटिल प्रकृतिका और जूठा खानेवालेका अन्न न खाय और उग्रान्न कहिये शूद्रामें क्षत्रियसे उत्पन्नका और सूतिका स्त्रीके लिये जो अन्न किया जाय उसको उसके कुलकेभी न खाय एक पंक्तिमें स्थित औरोंका अपमान करि जहां अन्न खाते हुए किसीकरि आचमन किया जाय वह पर्याचान्त कहा जाता है उस अन्नको और दशदिनके भीतर सूतिकाका अन्न न खाय ॥ १२ ॥

अनर्चितं वृथामांसमवीर्यायाञ्च योषितैः ॥ द्विषदन्नं नगय्यन्नं  
पतिर्तान्नमवक्षुतम् ॥ १३ ॥ पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणं-  
स्तथा ॥ शैलूषेतुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥ १४ ॥

टीका-पूजाके योग्यको जो अनादरसे दिया जाय और वृथा मांस जो देवताके लिये न किया जाय उसको और पति पुत्र रहित स्त्रीका और शत्रूका अन्न और नगरका तथा पतितोंका अन्न और जिसके ऊपर छीक हुई ऐसा अन्न न खाय ॥ १३ ॥ पिशुन कहिये जो पीठिपीछे दूसरेकी बुराई करता है उसका और बहुत झूठ बोलनेवाला जैसे झूठा गवाही आदि उसका और क्रतुविक्रयी कहिये मेरे यज्ञका फल तुझारा हो ऐसे कहकर जो धन देता है उसका और नटका तथा दरजीका और कुतन्न जो उपकार करनेवालेकीभी बुराई करै उसका अन्न न खाय ॥ १४ ॥

कर्मरस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च ॥ सुवर्णकर्तुर्वर्णस्य श-  
स्त्रविक्रयिणस्तथा ॥ १५ ॥ श्वर्वांशौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेज-  
कस्य च ॥ रज्जकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ १६ ॥



टीका—लोहारका तथा निषादका और नट तथा गवैयासे भिन्न जो तमासा आदि करिकै जीविका करते हैं उनका और स्वनारका और बांसकी चीजें बनाकर बेचनेवालेका और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न न खाय ॥ १५ ॥ आखेटके लिये कुत्ते पालनेवालेका और मद्यबेचनेवालेका तथा धोबीका रंगरेजका निर्दयीका और जिसके घरमें अज्ञानसे जार रहता है उसका अन्न न खाय ॥ १६ ॥

मृष्यन्ति ये चोपपत्तिं स्त्रीजितानां च सर्वशः ॥ अनिर्दशं च प्रे-  
तान्नमृतुष्टिकरमेव च ॥ १७ ॥ राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मव-  
र्चसम् ॥ आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ १८ ॥

टीका—जो घरमें जाने हुए स्त्रीके जारको सहते हैं उनके अन्नको न खाय और जो सब कामोंमें स्त्रीके आधीन रहते हैं उनका और दशदिनके भीतर प्रेतका अन्न और जिससे संतोष नहोय ऐसा अन्न न खाय ॥ १७ ॥ राजाका अन्न तेजका नाश करता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजका नाश करता है और स्वनारका अन्न आयुका नाश करता है और चमारका अन्न यशका नाश करता है ॥ १८ ॥

कारुकान्नं प्रजां हन्ति बलं निर्णेजकस्य च ॥ गणान्नं गणिकान्नं च  
लोकेभ्यः परिक्रन्तति ॥ १९ ॥ पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्या स्त्वै-  
र्नामिन्द्रियम् विष्टां वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥ २० ॥

टीका—कारुक जो सूफकार आदि हैं उनका अन्न संततिका नाश करता है और धोबीका बलको तथा गण और गणिका का अन्न और शुभकर्मोंसे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंको दूर करता है ॥ १९ ॥ चिकित्सकके अन्नमें पीवके खानेके समान दोष है और व्यभिचारिणीका अन्न वीर्यके समान है और व्याजखानेवालेका अन्न विष्टाके समान है और शस्त्र बेचनेवालेका अन्न विष्टासे भिन्न कफ आदि मलके समान है ॥ २० ॥

य एतेऽन्ये त्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्त्तिताः ॥ तेषां त्वगांस्थि-  
रोमाणि वदन्त्यन्नं मनीषिणः ॥ २१ ॥ भुक्तातोऽन्यतमस्यान्नमम-  
त्या क्षपणं त्र्यहम् ॥ मर्त्या भुक्ताचरेत्कुच्छं रेतोविण्मूत्रमेव च ॥ २२ ॥

टीका—यहां कहे हुआंसे अन्य जो अभोज्यान्न इस प्रकरणमें पढे हैं उनका अन्न त्वचा हाड और रोमाओंके समान है अर्थात् त्वचा हाड और रामांके खानेमें जो दोष होता है वही उनके अन्नके खानेमें जानना चाहिये ॥ २१ ॥ इनमेंसे



किसीका अन्न विनाजाने खाय तौ तीनिदिन उपवास करै और जानकर खाय तौ कृच्छ्र करै और वीर्य मूत्र विष्टाके खानेमेंभी यही कृच्छ्रव्रत जानिये ॥ २२ ॥

नार्द्याच्छ्रद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः ॥ अर्द्धादीताममेवा-  
स्माद्वृत्तावेकरात्रिकम् ॥ २३ ॥ श्रोत्रियस्य कर्दर्यस्य वदान्य  
स्य च वार्धुषेः ॥ मीमांसित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ॥ २४ ॥

टीका-विद्वान् द्विज श्राद्ध आदि पंचयज्ञों करि शून्य शूद्रका पक्वान्न खाय परन्तु जो और कहींसे न मिलसकै तौ एक रात्रिके निर्वाह योग्य कच्चाही अन्न इस्से ले पक्वान्न नहीं ॥ २३ ॥ एक वेदपढा हुआ कृपण और दूसरा दाता वृद्धिजीवी इन दोनोंका अन्न देवताओंने गुणदोषोंको विचारि समान कहा है क्योंकि दोनोंके गुण तथा दोष समानहैं ॥ २४ ॥

तान्प्रजापतिराहैत्य मां कृध्वं विषमं समम् ॥ श्रद्धापूर्तं वदान्यस्य  
हृतमश्रद्धयेतरत् ॥ २५ ॥ श्रद्धयेष्टं च पूतं च नित्यं कुर्यादैतान्द्रि-  
तः ॥ श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैधनैः ॥ २६ ॥

टीका-देवताओंसे आकर ब्रह्मा बोलेकि विषम अन्नको सम मत करो विष-  
मका सम करना अनुचित है फिर उन दोनोंमें क्या विशेष है यह अपेक्षा हो-  
नेपर वेही बोले कि दान देनेवाले वार्धुषिकका अन्न श्रद्धासे पवित्र होता है  
और कृपणका अन्न श्रद्धा न होनेके कारण हत कहिये दूषित तथा अधम होता  
है ॥ २५ ॥ वेदीके मध्यमें जो यज्ञ आदि कर्म किया जाता है उसको इस कहतेहैं  
उस्से अन्य तलाव कुआ प्याऊ बाग आदिको पूत कहते हैं इन दोनों कर्मोंको  
सदा आलस्य रहित हो फलकी इच्छा छोड श्रद्धासे करै जिस्से न्यायसे इकट्ठे  
किये हुए धनसे श्रद्धापूर्वक कियेगये वे दोनोंकर्म अक्षय मोक्षरूप फलके  
देनेवाले होते हैं ॥ २६ ॥

दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् ॥ परितुष्टेन भावेन पार्त्रं  
मासौद्य शक्तितः ॥ २७ ॥ यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनान-  
सूयया ॥ उत्पत्स्यते हि तत्पार्त्रं यत्तारयति सर्वतः ॥ २८ ॥

टीका-विद्या तथा तपोयुक्त ब्राह्मणको प्राप्त होकै ऐष्टिक पौर्तिक कहिये अंत-  
र्वेदि बहिर्वेदि दान धर्मको परितोषनाम अंतःकरणके धर्मसे शक्तिके अनुसार  
करै ॥ २७ ॥ याचना कियेगये ईर्षारहित पुरुष करिकै थोडाभी शक्तिके अनुसार



ना चाहिये जिस्से सदा देनेवालेको कभी न कभी ऐसाभी पात्र मिलजायगा जो नरकमें डारनेवाले सब पापसे छुड़ादेगा ॥ २८ ॥

वारिदस्त्वृत्तिर्माप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ तिलप्रदः प्रजामिष्टां दी  
पदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ २९ ॥ भूमिदो भूमिर्माप्नोति दीर्घमैर्युर्हिर  
ण्यदः ॥ गृहदोऽग्न्याणि वेदमानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ २३० ॥

टीका—जलका देनेवाला क्षुधापिपासा दूरि होनेसे तृप्तिको प्राप्त होता है और अन्नका देनेवाला अक्षय सुखको और तिलका देनेवाला चाही हुई संत  
तिको और दीपका देनेवाला उत्तम नेत्रोंको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ भूमि  
का देनेवाला भूमिको और सुवर्णका देनेवाला बड़ी आयुको और घरका  
देनेवाला बहुत अच्छे घरोंको और रूपेका देनेवाला संपूर्ण जनोके नेत्रोंका  
मनोहर रूपको प्राप्त होता है ॥ २३० ॥

वासोदश्चन्द्रसौलोक्यमश्विसौलोक्यमश्वदः ॥ अनडुहः श्रियं पुं  
ष्टांगो दो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥ ३१ ॥ यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्य  
मभयप्रदः ॥ धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् ॥ ३२ ॥

टीका—वस्त्रोंका देनेवाला चंद्रके समान लोकोंको प्राप्त होता है चंद्रलोकमें चंद्रके  
समान विभूति बसती है और घोड़ेका देनेवाला अश्विनीकुमारके लोकको  
और बलवान् बैलका देनेवाला बहुतसी लक्ष्मीको और गौका देनेवाला  
सूर्यलोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ रथ आदि वाहनोंका तथा शय्याका  
देनेवाला स्त्रीको और अभयका देनेवाला अर्थात् प्राणियोंकी हिंसा न करनेवाला  
प्रभुताको और धान्य कहिये धान जब उडद मूग आदिका देनेवाला बहुत  
कालतक रहनेवाले सुखको और ब्रह्म जो वेद है उसका देनेवाला अर्थात्  
वेदका पढ़ानेवाला तथा व्याख्यान करनेवाला ब्रह्मकी सार्ष्टिता कहिये समान  
गतिभावको अर्थात् उसकी तुल्यताको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेवं दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ॥ वार्यन्नगोमहीवासस्ति  
लकाश्चनसर्पिषाम् ॥ ३३ ॥ येनयेन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छ  
ति ॥ तं तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ ३४ ॥

टीका—जल अन्न धेनु भूमि वस्त्र तिल सुवर्ण और घृत आदि सबोंके दानसे  
वेदका दान अधिक फलका देनेवाला है ॥ ३३ ॥ जिस जिस भाव कहिये



अभिप्रायसे अर्थात् मुझे स्वर्ग मिलै और मुमुक्षुको मोक्षके अभिप्रायसे निष्काम जिस जिस दानको देता है उसी भावसे उपलक्षित उस उस दानके फल द्वारा दूसरे जन्ममें पूजित हो प्राप्त होता है अर्थात् जिस फलके अभिप्रायसे दान देता है वही फल उसको मिलता है ॥ ३४ ॥

योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददत्यर्चितमेव च ॥ तांबुभौ गच्छंतः स्वर्गं  
नरकं तु विपर्यये ॥ ३५ ॥ न विस्मयेत तपसा वदेदिष्टां च नानृतं ॥  
नात्तोऽप्यपवेद्विप्रांन् दत्त्वा परिकीर्तयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—जो दाता सत्कारपूर्वक देता है और जो लेनेवाला उस दानको सत्कारपूर्वक लेता है वें दोनो स्वर्गको जाते हैं और विपर्यय कहिये उलटे होनेमें नरक होता है अर्थात् विनासत्कारके देने लेने वाले दोनो नरक गामी होते हैं ॥ ३५ ॥ कियें हुए चांद्रायण आदि तपमें कैसे मैने यह कठिनकाम करालिया ऐसे आश्चर्य न करै और यज्ञ करिके झूठ न बोलै और ब्राह्मणोंकरि पीडित होनेपर भी उनकी निंदा न करै और गौ आदि देकर मैने यह दिया ऐसे दूसरेसे न कहै ॥ ३६ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥ आयुर्विप्रापवादेन  
दानं च परिकीर्तनात् ॥ ३७ ॥ धर्मज्ञैः संचिनुयाद्ब्रह्मीकमि  
व पुत्तिकाः ॥ परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडन् ॥ ३८ ॥

टीका—झूठसे यज्ञ निष्फल हो जाता है और आश्चर्यसे तप और ब्राह्मणके अपमानसे आयु और कहनेसे दान निष्फल होजाता है ॥ ३७ ॥ सब जीवोंकी पीडाका त्याग करता हुआ परलोकमें सहायके लिये शक्तिके अनुसार हौले हौले धर्मको ऐसे बढावै जैसे दींवक बांवीको बढाती है ॥ ३८ ॥

नामुत्रहि सहायार्थं पिता मातां च तिष्ठतः ॥ न पुत्रंदारा न ज्ञाति  
र्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ ३९ ॥ एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्र  
तीयते ॥ एकोऽनुभुक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ४० ॥

टीका—जिस्से परलोकमें सहायरूपी कार्यकी सिद्धिके लिये पिता माता पुत्र स्त्री और जातिके नही स्थित होते हैं किंतु एक धर्मही दूसराहो उपकार लिये स्थित होता है तिस्से पुत्र आदिकोसेभी बडे उपकार करने वाले धर्मको करै ॥ ३९ ॥ प्राणी एकही उत्पन्नको होता है और एकही मरजाता है और एकही पुण्य तथा पाप को भोगता है माता आदिके साथ नही तिस्से मातादिकोंकी अपेक्षासेभी धर्मको न छोडै ॥ ४० ॥



मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ॥ विमुखा बान्धवा  
र्यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ ४१ ॥ तस्माद्धर्मसहायार्थं नित्यं संचि  
नुयाच्छनैः ॥ धर्मेण हि सहायेन तमस्तरेति दुस्तरम् ॥ ४२ ॥

टीका—मृत कहिये मन प्राण आदि करि छोड़े हुए शरीरको काष्ठ तथा लो-  
हके समान भूमिमें छोड़कै भाई बंधु मुह फेरकै चले जाते हैं मरे हुए जीवके  
साथ नहीं जाते हैं और धर्म तो उसके साथ जाता है ॥ ४१ ॥ जिस कारण  
सहाय करने वाले धर्मसे दुस्तरतम कहिये कठिनाईसे उतरने योग्य नरक आदि-  
के दुःखको उतर जाता है तिससे धर्मको सहाय भावसे सदा हौले हौले करै ॥ ४२ ॥

धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ॥ परलोकं नयंत्याशु भा  
स्वन्तं स्वशरीरिणम् ॥ ४३ ॥ उत्तमैरुत्तमैर्नित्यं संबन्धानाचरेत्सं  
हं ॥ निनीषुः कुलमुत्कर्षमधनधर्मांस्त्यजेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धर्ममें लगे हुए पुरुषको दैवयोगसे पाप हो जानेपर प्राजापत्य आदि  
तपरूप प्रायश्चित्तसे पापके नाश होनेपर प्रकाशमान उस पुरुषको धर्मही शीघ्र  
स्वर्ग आदि परलोकको पहुँचाता है स्वशरीरिण कहिये ब्रह्मस्वरूप यद्यपि लिंग  
शरीरमें बैठा हुआ जीवही जाता है तिसपरभी ब्रह्मका अंश होनेसे ब्रह्मस्व-  
रूपत्व हो सकता है जो धर्मही परलोकको ले जाता है तो धर्मको करै न अच्छी-  
रीतिसे पढ़े हुए वेद और न नानाप्रकारके पढ़े हुए शास्त्र वहां जाते हैं ज-  
हां एकधर्म इसके साथ जाता है ॥ ४३ ॥ कुलकी उन्नति चाहनेवाला पुरुष विद्या  
आचार जन्म आदिसे उत्कृष्ट पुरुषोंके साथ सदा कन्यादान आदि संबंधों करै  
और हीन संबंधोंके छोड़दे और जो उत्तम न मिले तो अपनी बराबरीमें करै ॥ ४४ ॥

उत्तमानुत्तमान्गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्जयन् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामे  
ति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ ४५ ॥ दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैर  
संवसन् ॥ अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ ४६ ॥

टीका—उत्तमोंके साथ संबंध करता हुआ और हीनोंको छोड़ता हुआ ब्रा-  
ह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है और उलटे आचारसे शूद्रताको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥  
दृढकारी कहिये आरंभ कियेका पूराकरनेवाला और मृदु कहिये कठोर नहीं  
और दांत कहिये शीत घाम आदिके द्रव्यका सहनेवाला पुरुष क्रूर आचारवाले  
पुरुषोंके साथ मेलको छोड़ता हुआ पराई हिंसासे निवृत्त और वैसाही व्रत क-



रने वाला दम कहिये इंद्रियोके संयमसे तथा दानसे स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

ऐधोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं चै यत् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्व  
थाभयदक्षिणाम् ॥ ४७ ॥ आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादग्रचो  
दिताम् ॥ मेने प्रजार्पतिग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४८ ॥

टीका—काष्ठ जल फल मूल मधु और विनामागा हुआ अन्न कुलटा पाषण्डी और पतित आदिकोंको छोड़ सर्वतः कहिये शूद्र आदिकोंसेभी कच्चाही ग्रहण करै और अपनी रक्षारूप अभयको चांडालादिकोंसेभी अंगीकार करै ॥ ४७ ॥ देनेके स्थानमें लाईगई और आगे रक्खीगई और लेनेवाले करि आप तथा दूसरेके मुहसे पहले नही मागीगई और देनेवालेने भी पहले नही कहा किमें तुमको देता हों ऐसी सुवर्ण आदिरूप भिक्षाको सिद्ध अन्नको नही पतित आदिकोंको छोड़ पाप करनेवालेसेभी लेनेयोग्य ब्रह्माने कही है ॥ ४८ ॥

नां श्रान्ति पितरस्तस्य दश वर्षाणि पञ्चचै ॥ न च हव्यं वहत्यग्निं  
यस्तामभ्यवमन्यते ॥ ४९ ॥ शय्यां गृहोन्कुशान्गन्धानपः पुष्पं  
मणीन्दधि ॥ धाना मत्स्यान्पयो मांसं शकं चैव न निर्णुदेत् ॥ ५० ॥

टीका—उस पुरुष करि श्राद्धमें दिये हुए कव्यको पितर पंद्रह वर्षोंतक नही खाते हैं और यज्ञोंमें उस करिके दिये हुए पुरोडाश आदि हव्यको अग्निदेवता ओके लिये नही पहुंचाता है जो उस भिक्षाको अंगीकार नही करता है ॥ ४९ ॥ शय्या घर कुश और गंध कहिये गंधयुक्त कपूर आदि और जल फूल मणि दही तथा धान कहिये भूजे हुए जव और चामल मछली दूध मांस और शाक इन वस्तुओंके लेनेमें निषेध न करै ॥ ५० ॥

गुरुन्भृत्यांश्चोर्जिहीर्षन्नाचिष्यन्देवतातिथीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णी  
यान्नर्तुर्तृप्येत्स्वयं तंतः ॥ ५१ ॥ गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तै  
र्गृहे वसन् ॥ आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन्गृह्णीयात्साधुतः सदा ॥ ५२ ॥

टीका—क्षुधासे पीडित माता पिता आदि गुरुओंको और स्त्री आदि सेवको-को उस्से वचानेके लिये पतित आदिकोंको छोड़ि सर्वतः कहिये शूद्र आदि असा धुओंसेभी ग्रहण करै परंतु उसकों आप न खाय ॥ ५१ ॥ माता पिता आदिके मरनेपर अथवा उनके जीवते हुए उनसे पृथक् घरमें वसता हुआ अपनी जीविका की इच्छासे सदा सज्जनोसे भिक्षाको ग्रहण करै ॥ ५२ ॥



आर्थिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ॥ एते शूद्रेषु भोज्या  
ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ ५३ ॥ यादृशोऽस्य भवेदात्मा यादृ-  
शं च चिकीर्षितम्॥ यथा चोपचरेदैनं तथात्मानं निवेदयेत् ५४

टीका—आर्थिक कहिये खेती करनेवाला और जो जिसकी खेती करता है वह उसका भोज्यान्न है ऐसेही अपने कुलका मित्र और जो जिसका गोपाल हैं और जो जिसका दास है और जो जिसका नाई है काम करता है और जो में दुर्गतिमें हों तुझारी सेवाकरता हुआ तुझारेही समीप बसताहों ऐसे कहकह कर अपना निवेदन करै ऐसा शूद्र उसका भोज्यान्न है ॥ ५३ ॥ शूद्रको जैसे अपना निवेदन करना चाहिये सो कहते हैं इस शूद्रका कुलशील आदिसे जैसा इसका आत्मा कहिये स्वरूपहै और इसको जो काम करना वांछित है और जैसे इसको सेवा करनी है उस प्रकार आपको कहै ॥ ५४ ॥

योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा संस्तु भाषते ॥ सं पापंकृतमो लोके  
स्तेन आत्मोपहारकः ॥ ५५ ॥ वाच्यार्था नियताः सर्वे वाङ्मूला  
वाग्विनिःसृताः ॥ तांस्तूर्यः स्तेनयेद्वाचं सं सर्वस्तेर्यकृन्नरः ॥ ५६ ॥

टीका—जो कोई कुल आदिमें और है और आपको औरही सज्जनोमें कहताहै वह लोकमें बडाही पापी है और आपका चुरानेवाला चोर है और चोर दूसरी वस्तुओंको चुराताहै यह तौ सबमें प्रधान आपहीको चुराता है ॥ ५५ ॥ सब अर्थशब्दोहीमे वाच्यभावसे नियतहै और शब्दोंका मूल वाणी है क्योंकि सबवातें शब्दोहीसे जान कर कीजातीहैं इस्से वाणीसे निकले कहे जाते है इस्से जो उस वाणीको चुराताहै अर्थात् अन्यथा कहताहै वह मनुष्य सब भांति चोरी करनेवाला होताहै ॥ ५६ ॥

महर्षिपितृदेवानां गत्वा नृपं यथाविधि ॥ पुत्रे सर्वे समासंज्य  
वंसेन्मार्ध्यस्थमाश्रितः ॥ ५७ ॥ एकांकी चिंतयेन्नित्यं विवित्ते हितं  
मात्मनः ॥ एकांकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ॥ ५८ ॥

टीका—गृहस्थहीका यह संन्यास प्रकार कहते है वेद पढनेसे महर्षियोंका और पुत्रके उत्पन्न करनेसे पितरोंका और यज्ञसे देवताओंका ऋण शास्त्रके अनुसार दूर करि सब कुटुंबके भारको योग्य पुत्रमें स्थापित करि मध्यस्थताका



आश्रय ले पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोड़ि ब्रह्मबुद्धिसे सर्वत्र समदृष्टि हो  
घरहीमें रहै ॥ ५७ ॥ कामके कर्मोंका और धनके जोड़नेका त्याग करि पुत्र  
करि कियी हुई जीविकासे शरीर निर्वाह करता हुआ अकेला एकान्त स्थानमें  
अपने हितकारी वेदान्तमें कहे हुए जीवके ब्रह्मभावका सदा ध्यान करै जिसे  
उसका ध्यान करता हुआ ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप उत्कृष्ट श्रेयको प्राप्त होता है ५८

एषोदितौ गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती ॥ स्नातकव्रतकल्प  
श्च संत्त्ववृद्धिकरः शुभः ॥ ५९ ॥ अनेन विप्रो वृत्तेन वर्तयन्वेदशा  
स्त्रवित् ॥ व्यपेतकल्मषो नित्यं ब्रह्मलोके महीर्यते ॥ २६० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

टीका—यह ऋत आदि वृत्ति गृहस्थ ब्राह्मणकी शाश्वती कहिये नित्य कही  
गई आपत्तिमें तौ अनित्य कहेंगे और सतोगुणका बढ़ानेवाला अच्छा स्नातकके  
व्रतका कल्प कहिये विधि कहा गया ॥ ५९ ॥ इस शास्त्रमें कहे हुए आचा-  
रसे वेदका वेत्ता ब्राह्मण नित्यकर्मसे क्षीण पापहो ब्रह्मज्ञानकी अधिकतासे ब्र-  
ह्मही लोक हुआ उसमें लीन हो सबसे अधिक महिमाको प्राप्त होता है ॥ २६० ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मन्तनुजपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

## अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्स्नातकस्य यथो दितान् ॥ इदं मूर्ध्नुर्महात्मानं  
मर्नलप्रभवं भृगुम् ॥ १ ॥ एवं यथोक्तं विप्राणां सर्वधर्ममनुतिष्ठता  
म् । कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो ॥ २ ॥

टीका—ऋषियोंने स्नातकके कहे हुए धर्मोंको सुनकर महात्मा और परमार्थमें  
तत्पर और अग्निसे उत्पन्न ऐसे भृगुजीसे वचन बोले यद्यपि पहले अध्यायमें  
दश प्रजापतियोंमें भृगुनारदमें वच इस वचनसे भृगुकीभी सृष्टि मनुहीसे कही  
तिसपरभी कल्पके भेदसे अग्निसे उत्पन्न कहे जाते हैं इसमें श्रुति प्रमाण है जै  
से तस्ययद्रेतसः प्रथममुददीप्यततदसावादित्योऽभवद्यद्वितीयमासीत्तद्भृगुरिति इसी से य  
ह व्युत्पत्ति की गई कि अष्टाद्रेतसः उत्पन्नत्वाद्भृगुः अर्थात् गिरे हुए वीर्यसे उ-



त्पन्न होनेसे भृगु कहीये ॥ १ ॥ ऐसे यथोक्त अपने धर्मके करनेपाले और श्रुति तथा शास्त्रके जाननेवाले ब्राह्मणोंकी वेदमें कही हुई आयुसे पहले कैसे मृत्यु होती है क्योंकि आयुके कम होनेका कारण जो अधर्म है उसका अभाव है संपूर्ण संदेहोंके दूर करनेमें समर्थ होनेसे प्रभो यह संबोधन दिया ॥ २ ॥

सं तानुवाच धर्मात्मा महर्षिन्मानवो भृगुः ॥ श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ३ ॥ अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ॥ आलस्यादर्द्रदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ४ ॥

टीका-वे मनुके पुत्र धर्मात्मा भृगु जिस दोषसे थोड़े कालमें मृत्यु ब्राह्मणोंको मारनेकी इच्छा करता है उस दोषको सुनिये इस भांति उन महर्षियोंसे बोले ॥ ३ ॥ वेदोंका अभ्यास न करनेसे और अपने आचारके छोड़नेसे और सामर्थ्य होनेपर अवश्य करनेयोग्य कामोंमें नहीं उत्साहरूप आलस्यसे और खाने योग्य वस्तुओंके दोषसे मृत्यु ब्राह्मणोंको मारता है ॥ ४ ॥

लशुनं गृजनं चैव पलाण्डुंकर्कानिचै ॥ अभक्ष्याणि द्विजातीनामर्धप्रभवानिचै ॥ ५ ॥ लोहितान्वृक्षनिर्यासान्वश्चनप्रभवांस्तथा ॥ शैलुं गव्यं चैव पर्युषं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

टीका-वेदका अनभ्यास आदि तौ कह चुके अब अन्नके दोष कहते हैं लशुन गृजन प्याज धरतीके फूल और अशुद्धविष्टा आदिमें उत्पन्न चौलाई आदि ये द्विजातियोंको अभक्ष्य हैं शूद्रोंको नहीं ॥ ५ ॥ लालरंगके वृक्षोंके गोंद और काटनसे उत्पन्न रस और शैलु कहिये बहुवारकफल और नवीन व्याई हुई गौके दूधकी पेउसी इन सबोंको यत्न सब वर्जित करै ॥ ६ ॥

वृथा कृसरसंयावं पार्यसापूपमेवचै ॥ अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषिचै ॥ ७ ॥ अनिर्दशायागोः क्षीरमौष्ट्रमैकैशफं तथा ॥ आविकं संधिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पर्यः ॥ ८ ॥

टीका-वृथा कर कहिये देवताके निमित्त नहीं केवल अपने लिये कृसर कहिये तिल चावल मिलाकै किया हुआ भात और संयाव कहिये घी दूध गुड और गहूँके चूनसे बनी लपसी और दूध तथा चावलोकी खीर और पुआ वृथा पक इन सबोंको वर्जित करै और यज्ञ आदिमें जो अभिमंत्रित नहीं है ऐसे पशुका मांस और देवताओंके लिये किये अन्नको नैवेद्य लगानेके पहले और हवींषि कहि-



ये पुरोडाश आदि होमसे पहले वार्जित करै ॥ ७ ॥ दशदिनके भीतर व्याई हुई गौका दूध गौके कहनेसे जिनका दूध पिया जाता है वे सब पशु जानने चाहिये तिससे बकरी और भैसकाभी दूधव्यानेसे दसदिनतक वार्जित है तथा ऊंठका और एक खुरवाले घोडा आदिका और भेडका और संधिनी कहिये उठी हुई गौका दूध न पीवै और विवत्सा कहिये जिसका बछरा मरिगया है ऐसी गौका और जिसका बछरा पास नहीं है उसकाभी न पीवै और बच्चाके मरनेपर बकरी तथा भैसका मना नहीं है ॥ ८ ॥

आरण्यानां चै सर्वेषां मृगाणां माहिषं विना ॥ स्त्रीक्षीरंचै व वज्र्या  
नि सर्वशुक्तानि चैवहि ॥ ९ ॥ दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु सर्वं च द  
धिसंभवम् ॥ यानि चैवाभिषूयन्ते पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ १० ॥

टीका-भैसको छोड़के हाथी आदि सब जंगली पशुओंका दूध और स्त्रीका दूध और सशुक्त वार्जित हैं शुक्त उसको कहते हैं जो स्वभावसे मीठा आदिरसका लवलेहसे जल आदिके योग्यसे खट्टे हो जाते हैं ॥ ९ ॥ शुक्तोंमें दही भक्ष्य कहिये खानेयोग्य है और दहीसे उत्पन्न सब मट्ठाआदि भक्ष्य हैं शुभ कहिये अच्छे पुष्प मूल फल तथा जलसे जो संधाने किये जाते हैं वेभी भक्ष्य हैं शुभ इस विशेषणसे यह जाना गया कि जिन वस्तुओंके संधानेमें नसा होता है वे मनें की गई है ॥ १० ॥

ऋव्यादाञ्छकुनान्सर्वास्तथा ग्रामनिवासिनः ॥ अनिर्दिष्टांश्चैकं श्रा  
पांष्टिं द्विभं चै विवर्जयेत् ॥ ११ ॥ कलविकं लव हंसं चक्राङ्गं ग्रा  
मकुट्टम् ॥ सारसं रज्जुवालं च दात्यूहं शुक्रं सारिके ॥ १२ ॥

टीका-ऋव्याद कहिये कच्चे मांसके खानेवाले गीध आदि सब पक्षियोंका तथा कबूतर आदि ग्रामके पक्षियोंका और नहीं कहे हुए एक खुरवाले पशुओंका तथा टटहरी पक्षीका मांस वार्जित करै अर्थात् न खाय ॥ ११ ॥ ग्रामके तथा जंगली चिरोटा तथा प्लवनाम पक्षी हंस चकवा गांवका मुरगा सारस रज्जुवाल पपैया तोता और मैना ये सब पक्षी अभक्ष्य हैं अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १२ ॥

प्रतुंदाञ्जालपादांश्च कोयष्टिनखविष्किरान् ॥ निमज्जतश्च मत्स्या  
दान् शौनं वल्लूरमेव च ॥ १३ ॥ बकं चै व बलाकांश्च काकोलं ख  
जरीटकम् ॥ मत्स्यादान्विड्ग्राहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः ॥ १४ ॥

टीका-प्रतुद कहि जों चोंचसे फोड़कर खाते हैं जैसे कठफोरा आदि और



जालपाद कहिये जिनके पंजेमें महीनखालका जाल होता है जैसे वत्तक आदि और कोयष्टिकनाम पक्षी और नखविष्किर कहिये जो पंजोसे कुरेदि २ खाते हैं और आज्ञा दिये हुए जंगली कुकुट आदिकोंसे जुदे वाज आदि और जो जलमें डूबक मारकै मछलियोंको पकड़ते हैं जैसे मडु आदि और सूना जो मारनेका स्थान है उसमें स्थित मांस और बद्धूर कहिये सूखा मांस ये सब वर्जित हैं ॥ १३ ॥ बगला तथा बलाका द्रोण काक खंजन और मछलियोंके खानेवाले और भी पक्षियोंसे भिन्न मगर आदि तथा विड्वराह कहिये विष्टा खानेवाले सूअर और सब प्रकारकी मछलियोंको वर्जित करै अर्थात् इनका मांस न खाय ॥ १४ ॥

यो यस्य मांसमश्नाति सै तन्मांसाद उच्यते ॥ मर्त्स्यादः सर्वमांसादं  
स्तस्मान्मर्त्स्यान्निर्वर्जयेत् ॥ १५ ॥ पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ  
हव्यकव्ययोः ॥ राजीवान्सिंहतुण्डांश्च शल्कांश्चैव सर्वशः ॥ १६ ॥

टीका—जो जिसके मांसको खाताहै वह उसके मांसका खानेवाला कहा जाताहै जैसे विलाव मूषिकका खानेवाला कहाताहै ऐसेही मर्त्स्याद कहनेसे वह सब प्रकारके मांसका खानेवाला कहनेयोग्य है तिससे मछलियोंको न खाय ॥ १५ ॥ पठीन मछली और रोहू मछली आद्य कहिये खानेयोग्य कही हैं और हव्यकव्यमे नियुक्त हैं और आगे कहे हुए लक्षणोंकरि युक्त राजीव सिंहतुण्ड और शल्कसमेत सब आद्य कहिये भक्षण करने योग्यहैं अर्थात् ये सब हव्यकव्यके विनाभी खाने योग्य हैं ॥ १६ ॥

नै भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान् ॥ भक्षयेष्वपि समुद्दिष्टां  
नसर्वान्पञ्चनखांस्तथा ॥ १७ ॥ श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्म  
शशांस्तथा ॥ भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वानुरनुष्टांश्चैकतोदतः ॥ १८ ॥

टीका—जो बहुधा अकेले विचरते हैं जैसे सर्प आदि उनको न खाय और नाम तथा जातिके भेदसे जिनको नही जानते हैं ऐसे मृगों और पक्षियोंको न खाय और भक्ष्यत्व करिके कहे हुए सब पंचनखों अर्थात् वानर आदिको न खाय ॥ १७ ॥ श्वाविध कहि सेधानाम जीवभेद और शल्यक कहिये ऐसेही और गोह तथा गैडा कछुआ और शशा इनको पंच नखोंमें मनु आदि भक्ष्य कहते हैं और एक और दांतोकी पंक्तिवालोंमें ऊटको वर्जित करते है ॥ १८ ॥

छत्राकं विड्वराहं च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ॥ पलाण्डुं गृञ्जनं चैव



मर्त्या जग्ध्वा पतेद्विजैः ॥ १९ ॥ अमृत्यैतानि षट् जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ यतिचान्द्रायणं वापिशेषेषूपवसेदहः ॥ २० ॥

टीका—धरतीका फूल विष्ठाखानेवाला सुअर लहसन गांवका मुरगा प्याज गाजर इनमें किसीको जानकै खाय गौ द्विजाति पतित होय तिस पीछे पतितका प्रायश्चित्त करै ॥ १९ ॥ इन छत्राक आदि छः चीजोंको जानि बूझि खायके ग्यारहें अध्यायमें कहे हुए सात दिनोमें होने योग्य कृच्छ्रसान्तपन नाम व्रत अथवा यति चान्द्रायण करै और इनसे भिन्न लाल वृक्षोंके गोद आदिके खानेमें दिनरात्रिका उपवास करै ॥ २० ॥

संवत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रं द्विजात्तमः ॥ अज्ञातभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः ॥ २१ ॥ यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वर्ध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः ॥ भृत्यानांचैव वृत्त्यर्थमर्गस्त्यो ह्यचरेत्पुरा ॥ २२ ॥

टीका—द्विजाति विनाजाने खाये हुएको शुद्धिके लिये एकवर्षमें एकभी कृच्छ्र प्राजापत्यनाम करै और फिर जानें हुए अभक्ष्यभक्षण दोषकी शुद्धिके लिये जो कहाहै उसी प्रायश्चित्तको करै ॥ २१ ॥ ब्राह्मण आदिको करिकै यज्ञके लिये प्रशस्त कहिये शस्त्रमें कहे हुए मृग तथा पक्षी मारनेयोग्य हैं और अवश्य पालनेयोग्य भृत्यों तथा वृद्धमातापिता आदि पोषणके लिये करै ॥ २२ ॥

बभूवुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् ॥ पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च ॥ २३ ॥ याँत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमर्गहितम् ॥ तत्पयुषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ २४ ॥

टीका—जिस्से पुराने यज्ञोंमें और ऋषियोंके यज्ञोंमें भक्ष्य कहिये खानेयोग्य मृगों और पक्षियोंके मांसका पुरोडाश कहिये यज्ञ भाग कहाहै ॥ २३ ॥ जो कुछ भोज्य वस्तु घी तेल आदि स्नेहसे पकी हुई लड्डु आदि तथा खीर आदि भोज्य वस्तु किसी वस्तुके पडनेसे बिगडी न होय और बासीभी होय तौ उसको घी तेल आदि भिलाकै खाय तथा पुरोडाश आदि बासीभी भोजनकालमें स्नेहसंयोगशून्यभी भोजन करै ॥ २४ ॥

चिरस्थितमपि त्वार्द्यमस्नेहांतं द्विजातिभिः ॥ यवगोधूमजं सर्वं पर्यसन्नैव विक्रिया ॥ २५ ॥ एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः ॥ मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विविधं भक्षणवर्जने ॥ २६ ॥



टीका—अनेक रात्रिके वसेभी जब गेहूं और दूधके पदार्थोंको चिकनाई मिलानेके विनाभी द्विजाति भक्षण करै ॥ २५ ॥ द्विजातियोंका यह संपूर्ण भक्ष्य अभक्ष्य कहा इस पीछे मांसके खाने औ छोड़नेकी विधि कहोंगा ॥ २६ ॥

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया ॥ यथाविधि नियुक्त  
स्तुं प्राणानामेवं चांत्यये ॥ २७ ॥ प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिर  
कल्पयत् ॥ स्थावरं जङ्गमं चैवं सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥ २८ ॥

टीका—प्रोक्षणनाम संस्कारसे शुद्ध किये हुये और यज्ञसे बचे हुए मांसको ब्राह्मण भक्षण करै और जो ब्राह्मणोंकी मांस खानेकी इच्छा होय तौभी नियमहीसे एकवार खाय तथा श्राद्धमें और मधुपर्कमें गृह्यवचनके अनुसार नियमसे मांस खाना चाहिये और दूसरा आहार न मिलनेसे प्राणोंका नाश होता होय और रोगका कारण होय तौ नियमसे मांस खाय ॥ २७ ॥ प्रजापतिने यह सब प्राणका अन्न बनाया तौ कौनहै सो कहते हैं जैसे जंगम पशु आदि और स्थावर धान जव आदि यह सब उसको भोजन है तिससे प्राणोंकी रक्षाके लिये जीव मांसको खाय ॥ २८ ॥

चरणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः ॥ अहस्ताश्च सहस्तानां शू  
राणां चैवं भीरवः ॥ २९ ॥ नात्ता दुष्यत्यदन्नाद्योऽप्राणिनोऽहन्य  
हन्यपि ॥ धात्रैव मृष्टा ह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च ॥ ३० ॥

टीका—चर कहिये चलनेवाले जो हरिण आदि हैं उनके अचर कहिये तृण घास भक्ष्यहैं और डाढवाले वाघ आदिकोंके विना डाढवाले हरिण आदि भक्ष्यहैं और हाथोंवाले जो मनुष्य आदि हैं उनके विना हाथोंकी मछली आदि भक्ष्यहैं और शूर जो सिंह आदि हैं उनको भीरु कहिये डरपोकने हाथी आदि भक्ष्य कहिये खानेयोग्य है ॥ २९ ॥ खानेयोग्य प्राणियोंको प्रतिदिन खाता हुआभी खानेवाला दोषयुक्त नहीं होताहै जिस्से विधाताहीने खानेयोग्य और खानेवाले बनाये इनकहे हुए तीन श्लोकोंमें प्राणोंके नाशकी संभव होनेपर मांस खानेकी प्रशंसाकी है ॥ ३० ॥

यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष देवो विधिः स्मृतः ॥ अतोऽन्यथां प्रवृ-  
त्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते ॥ ३१ ॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य परो-  
पकृतमेव वा ॥ देवान्पितृन्श्वांचयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति ॥ ३२ ॥



टीका—यज्ञके लिये उसके अंगभूत मांसका खाना यह दैवविधि कही है और इसे अन्यथा अर्थात् विना यज्ञके मांस खाना राक्षसविधि कही जाती है ॥ ३१ ॥ मोल लेकर अथवा आप उत्पन्न करिकै अथवा और किसी करि लायकै दिये हुए मांसको देवता तथा पितरोंको देकर शेषको खाता हुआ पुरुष पापको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञोऽनापदि द्विजः ॥ जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्यै तैर्यजेतेऽवशः ॥ ३३ ॥ न तादृशं भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः ॥ यादृशं भवति प्रेत्यै वृथा मांसानि खादतः ॥ ३४ ॥

टीका—मांस खानेकी विधिका जाननेवाला द्विज विना आपत्तिकालके देवादि की पूजन विधिके विना मांस न खाय जिस्से विनाविधिके मांसको खायकै जिनका मांस वह खाताहै उन करिकै परलोकमें वह परवश होकै उन पशुओं करिकै खाया जाताहै ॥ ३३ ॥ धनके लिये मृगोंको मार कर जीविका करनेवाले वहेलिया आदिकोंको वैसा पाप नहीं होता है जैसा देवता तथा पितरोंके विना दिये हुए मांसके खानेवालेको परलोकमें होताहै ॥ ३४ ॥

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसं नात्ति मानवः ॥ संप्रेत्यै पशुं तां याति संभवंनेकविंशतिम् ॥ ३५ ॥ असंस्कृतान्पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदार्चन ॥ मन्त्रैस्तु संस्कृतानद्याच्छार्धतं विधिमास्थितः ॥ ३६ ॥

टीका—श्राद्धमें तथा मधुपर्कमें शास्त्रके अनुसार नियुक्त हो जो पुरुष मांसको नहीं खाताहै वह मरके इक्कीस जन्मोंतक पशु होताहै ॥ ३५ ॥ वेदमें कहे हुए मंत्रोंसे प्रोक्षण आदि संस्कार न किये हुए पशुओंको ब्राह्मण आदि कभी न खाय और श्रावत कहिये प्रवाहकी अनादितासे नित्य जो पशुयाग आदि विधि है तिसमें स्थित संस्कार किये हुए मांसोंको खाय ॥ ३६ ॥

कुर्याद् घृतपशुं संगे कुर्यात्पिष्टपशुं तथा ॥ न त्वेवं तु वृथा हन्तुं पशुमिच्छेत्कदार्चन ॥ ३७ ॥ यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो हं मारणम् ॥ वृथापशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्यै जन्मनिजन्मनि ॥ ३८ ॥

टीका—जो बहुतही खानेकी इच्छा होय तौ घीका अथवा चूनका पशु बनाकै खाय और देवताओंके निमित्त विना कभी पशुओंके मारनेकी इच्छा न करै ॥ ३७ ॥



देवताके उद्देशविना अपने लिये जो पशुओंको मारताहै वह वृथा पशु मारने-  
वाला मरकै जितने पशुके रोमा है उतनेही जन्मोंमें मारा जाता है तिस्से पशुको  
वृथा न मारै ॥ ३८ ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टां स्वयमेवं स्वयंभुवा॥ यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य त-  
स्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥ ओषधीः पशवो वृक्षास्तित्यर्धः पक्षि-  
णस्तथा ॥ यज्ञार्थं निर्धनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः ॥ ४० ॥

टीका-यज्ञके लिये पशुके मारनेमें दोष नहीं है यह कहते हैं यज्ञकी सिद्धि  
के लिये प्रजापतिने आपही पशु उत्पन्न किये और यज्ञ कहिये अग्निमें डाली हुई  
आहुति इस सब जगतकी वृद्धिके लिये होती है तिस्से यज्ञमें जो वध हैं वह अवध  
है अर्थात् वध नहीं है ॥ ३९ ॥ औषधी कहिये धान जव आदि और पशु कहिये  
छाग आदि और वृक्ष यज्ञस्तंभ आदिके लिये और तिर्यच कहिये कछुआ आदि  
और पक्षी चिरोटा आदि यज्ञके लिये नाशको प्राप्त हुए फिर दूसरा जन्म होने  
पर ऊंची जातिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

मधुपर्कं च यज्ञे च पितृदेवतकर्मणि ॥ अत्रैवं पशवो हिंस्यां नान्यं  
त्रेत्येवर्वीर्म्मनुः ॥ ४१ ॥ एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्वेदतत्त्वार्थवि  
द्विजः ॥ आत्मानं च पशुं चैवं गर्मयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥

टीका-समांसो मधुपर्कः अर्थात् मांस समेत मधुपर्क होताहै इस वचनसे म-  
धुपर्कमें और यज्ञकर्ममें और ज्योतिष्टोम आदि पित्र्य तथा दैवकर्ममें पशु मार-  
नेयोग्य हैं अन्यत्र नहीं मनुजीने यह कहा ॥ ४१ ॥ इन मधुपर्क आदि पदार्थों  
में पशुओंको मारता हुआ वेदके तत्व अर्थका जाननेवाला द्विज आपको तथा  
पशुको उत्तमागति जो स्वर्ग आदिके भोग योग्य अद्भुत देह तथा देशमें  
पहुंचायदेता है ॥ ४२ ॥

गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः ॥ न वेदविहितां हिंसां  
मार्पद्यपि समाचरेत् ॥ ४३ ॥ यां वेदविहितां हिंसां नियताऽस्मि  
श्वराचरे ॥ अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ ॥ ४४ ॥

टीका-गृहस्थाश्रममें तथा ब्रह्मचर्य आश्रममें और वानप्रस्थ आश्रममें बसता  
हुआ प्रशस्त आत्मावाला द्विज अशास्त्रीय कहिये शास्त्रमें नहीं कही हुई हिं-  
साको न करै ॥ ४३ ॥ वेदमें कही हुई कर्मविशेषमें तथा देशकाल आदिमें



नियत हिंसाको इस स्थावर जंगमरूप जगतमें अहिंसा जानै जिस्से और प्रमाणों-  
काभी धर्म वेदहीसे सब निकलाहै ॥ ४४ ॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्ममुखेच्छया ॥ स जीवैश्च मृ-  
तैश्चैव नैकचित्सुखमेधते ॥ ४५ ॥ यो बन्धनवधकेशान्प्राणिनां न  
चिकीर्षति ॥ स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥ ४६ ॥

टीका-जो अपने सुखकी इच्छासे हिंसा न करनेवाले जीवोंको मारताहै  
वह इस लोकमें तथा परलोकमें सुख नहीं पाताहै ॥ ४५ ॥ जो प्राणियोंके बांध  
ने तथा मारनेके केशको नहीं किया चाहता है और सबके सुखका चाहनेवाला है  
वह अनंत सुखको प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

यद्धचायति यत्कुरुते धृतिं वर्ध्नाति यत्र चै॥ तद्वामो'त्ययत्नेन  
'यो हिनस्ति' न किंचन॥ ४७ ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्प-  
द्यते क्वचित्॥ न च प्राणिर्वधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥ ४८ ॥

टीका-धर्म आदि मेरे होय यह जो चिंतवन करताहै और जो कल्याण क-  
रनेवाले धर्मको करताहै और जिस परमार्थके ध्यान आदिमें धीरजको बांधताहै  
उस सबको सहजहीमें प्राप्त होताहै जो दुःख देनेवाले डांस मच्छड आदिकोंको  
भी नहीं मारताहै ॥ ४७ ॥ प्राणियोंके मारनेविना कही मांस नहीं उत्पन्न हो-  
ताहै और प्राणियोंका मारना स्वर्गका कारण नहीं है किन्तु नरकहीका कारण  
है तिस्से मांसको छोडदे ॥ ४८ ॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधवन्धौ च देहिनाम्॥ प्रसमीक्ष्य निवर्तेत  
सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ ४९ ॥ न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा  
पिशाचवत्॥ स लोके प्रियंतां याति व्याधिभिश्च न पीडयेत्॥ ५० ॥

टीका-शुक्र और शोणित अर्थात् वीर्य और रुधिररूप घिन उपजानेवाली मांस  
की उत्पत्तिको जानि और प्राणियोंके मारने तथा बांधनेको क्रूरकर्म जानि सर्व-  
प्रकारके मांसको अर्थात् कहे हुएभी मांसको न खाय तौ विना कहेका क्या कहना है  
॥ ४९ ॥ जो मनुष्य कही हुई विधिको छोड पिशाचके समान मांसको नहीं खाताहै  
वह लोकका प्यारा होताहै और रोगोंसेभी नहीं पीडित होताहै ॥ ५० ॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ॥ संस्कर्ता चोपहर्ता च



खादकश्चेति घातकाः ॥५१॥ स्वमांसं परमासेन यो वर्धयितुमिच्छति ॥ अनभ्यर्च्य पितृन् देवांस्ततोऽन्यो नास्त्यपुण्यकृत ॥५२॥

टीका—अनुमंता कहिये जिसकी आज्ञा विना मार न सकै और विशसिता जो अंगोंका काटकर जुदा २ करै और क्रयविक्रयी जो मोल ले और बैचे और संस्कर्त्ता जो पाक करै और उपहर्त्ता कहिये परोसनेवाला और खादक कहिये खानेवाला ये सब घातक कहिये मारनेवाले हैं ॥ ५१ ॥ अपने शरीरके मांसको दूसरेके शरीरके मांसको देवता पितरोंकी पूजाके विना जो बढ़ाना चाहताहै उससे और पापी नहीं है ॥ ५२ ॥

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ मांसानि च न खादेद्यस्तं योः पुण्यफलं समम् ॥ ५३ ॥ फलमूलाशनैर्मेघैर्मुन्यन्नानां च भोजनैः ॥ न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ ५४ ॥

टीका—जो सौवर्षतक प्रत्येक वर्षमें अश्वमेधसे यजन करताहै और जो जन्मभर मांसको नहीं खाता उन दोनोंके पुण्यका फल स्वर्ग आदिके समान है ॥ ५३ ॥ पवित्र फलमूलोंके खानेसे और वानप्रस्थोंकरि खानेयोग्य तृण धान्य समा आदिके खानेसेही वह फल नहीं मिलताहै जो शास्त्रमें नियम किये हुए मांसके न खानेवालेको मिलताहै ॥ ५४ ॥

मांसभक्षयितामुत्र तस्य मांसमिहाद्वयहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५५ ॥ न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ ५६ ॥

टीका—इस लोकमें जिसके मांसको मैं खाताहूँ परलोकमें वह मुझको खायगा पंडितोंने मांसशब्दका यही अर्थ किया है ॥ ५५ ॥ मांस और मदिरा इनके भक्षणमें दोष नहीं है जिस्से खाने पीने और मैथुन आदिमें प्रवृत्ति यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है और छोड़नेका तो बड़ा फलहै अब इसका अभिप्राय यह है कि मांसभक्षण मदिरापान मैथुन इन तीनोंके विधान करनेवाले जो वाक्य हैं वे प्रवृत्ति करानेवाले नहीं हैं क्योंकि अप्रवृत्ति तो इच्छाहीसे होती है तब ये सब वाक्य व्यर्थ होकै यज्ञमें मांस भक्षण विवाहमें मैथुन और सौत्रामणी यज्ञमें मद्य पीना इन सर्वोंके करनेसे दोषका न होना सूचित करते हैं और इन सब वचनोंका अभिप्राय इन तीनोंके न करनेमेंही है ॥ ५६ ॥



प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिं तथैव च ॥ चतुर्णामपि वर्णानां  
यथावदनुपूर्वशः ॥ ५७ ॥ दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूडे च सं  
स्थिते ॥ अशुद्धा बान्धवाः सर्वे सूतके च तथोच्यते ॥ ५८ ॥

टीका—ब्राह्मण आदि चारोवर्णोंकी प्रेतशुद्धि कहिये पिता आदिके मरनेपर पुत्र आदिकी शुद्धिको ब्राह्मण आदिके क्रमसे जो जिसवर्णका है उसकी और द्रव्य जो तैजस अर्थात् धातु आदिकी शुद्धिको आगे कहेंगे ॥ ५७ ॥ दांतोंके उत्पन्न होनेपर और दांत होनेके पीछे और मुंडन तथा यज्ञोपवीतके होनेपर जो लडका मरजाय तौ सर्पिंड और समानोदक बांधव अशुद्ध होते हैं तैसे लडका लडकी के उत्पन्न होनेमें अशुद्ध होते हैं यह कहते हैं ॥ ५८ ॥

दशाहं शार्वमाशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते ॥ अर्वाक् संचयनाद-  
स्थानां त्र्यहमेकाहमेव च ॥ ५९ ॥ सर्पिण्डता तु पुरुषे सप्तमे वि-  
निवर्तते ॥ समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने ॥ ६० ॥

टीका—सात पुरुषोत्तक सर्पिण्डता कहेंगे सर्पिण्डोंमें मरनेका आशौच कहिये सूतक ब्राह्मणोंमें दशराति दिनका कहाहैं और अस्थिसंचयनके पीछे तीनि दिनरातिका अथवा एक दिनरातिका होताहै इसकी व्यवस्था यहहै कि वेदके मंत्र ब्राह्मण दोनो भागोंको जाननेवाला होय और अग्निहोत्र करता होय उसको एक दिनरातिका तथा जो केवल वेदहीको पढा होय और अग्निहोत्र न करता होय उसको तीनि रातिदिन तक और जो वेद पढना तथा अग्निहोत्र दोनोसें रहितहै परंतु स्मृतिमें कही हुई अग्निसे युक्तहै तौ उसको चारि दिनरातितक और सब गुणोंसेही न होय तौ उसको दश दिनरातितक आशौच होताहै ॥ ५९ ॥ सातमें पुरुषमें सर्पिण्डता दूर होजाती है और समानोदक भाव तौ फिर हमारे कुलमे अमुक नामका हुआ इस प्रकार जन और नाम दोनोके ज्ञान न होनेमे दूर होताहै ॥ ६० ॥

यथेदं शार्वमाशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते ॥ जननेऽप्येवमेव स्यात्  
त्रिपुणं शुद्धिं मिच्छताम् ॥ ६१ ॥ सर्वेषां शार्वमाशौचं मातां पि  
त्रोस्तु सूतकम् ॥ सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पितां शुचिः ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे यह दशदिन आदिका आशौच मरनेमें कहाहै ऐसेही अच्छी भांति



शुद्धि चाहनेवाले सर्पिण्डोंके जन्ममेंभी दशही दिनका सूतक होताहै ॥ ६१ ॥ मरनेके कारण नहींछूनेरूप आशौच सब सर्पिण्डोंको समान होताहै और जन्मके कारणसे तौ मातापिताहीको दश दिनतक न छूनेरूप सूतक होताहै उसमेंभी यह विशेष है कि जननानिमित्त सूतक माताको दशदिन तक होताहै पिता तौ स्नानसे छूनेयोग्य होताहै ॥ ६२ ॥

निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुद्ध्यति ॥ वैजिकादभिसंबन्धादुत्सृज्यादथ त्र्यहम् ॥ ६३ ॥ अह्ना चैकेन रात्र्या च त्रिरात्रैरेव च त्रिभिः ॥ शवस्पृशो विशुद्ध्यन्ति त्र्यह्नादुदकदार्यिनः ॥ ६४ ॥

टीका-मैथुनके विनाभी कामसे वीर्यस्खलन होने अर्थात् निकलनेमें स्नान करनेसे पुरुष शुद्ध होताहै और बिना कामके स्वप्न आदिमें मूत्रके समान वीर्य के स्खलित होनेपर स्नानके विनाभी गृहस्थकी शुद्धि होतीहै और ब्रह्मचारीकी तौ कामकेविनाभी स्वप्नमें स्खलित होनेसे स्नानसे शुद्धि कही है और पह लेपतिको छोडकर जिस स्त्रीने दूसरा पति कियाहै उस स्त्रीमें दूसरे पतिसे संतति उत्पन्न होनेपर पतिको तीनि दिनरातिका आशौच होताहै ॥ ६३ ॥ सर्पिण्ड तीनि दिनरातिमें शुद्ध होते हैं और जो सर्पिण्ड पहले कहे हुए गुणों करि युक्त होय तौ वह एक दिनरातमें शुद्ध होय वे जो स्नेह आदिसे मृतक छुवें तौ दशही दिनमें शुद्ध होते हैं और समानोदक तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ६४ ॥

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समार्चयन् ॥ प्रेतहारैः संमं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ६५ ॥ रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥ रजस्युपरंते सार्धै स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ६६ ॥

टीका-गुरु कहिये आचार्य आदि असर्पिण्डका दाह करकें शिष्यभी प्रेतके लेजानेवाले गुरुके सर्पिण्डोंके समान दश दिनरातिमें शुद्ध होताहै ॥ ६५ ॥ तीसरे महीनेसे लगाके जितने महीनोंके गर्भका पात होताहै उतनेही दिनरातिमें चारोंवर्णकी स्त्री शुद्ध होतीहै यह छ महीनेतक जानिये इसके उपरांत अपनी जातिका कहा हुआ शौच उनमें जानिये और रजस्वला स्त्री रजके बंद होनेपर पाचवेंदिन स्नानसे कर्म योग्य होती है और छूनेयोग्य तौ चौथेदिन स्नानकरनेसेही शुद्ध होती है ॥ ६६ ॥

नृणामकृतचूडानां विशुद्धिनैशिकी स्मृता ॥ निर्वृत्तचूडकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ६७ ॥ ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्वा-



न्धवाँ बहिः ॥ अलंकृत्यं शुचौ भूमाँवस्थिसंचयनाद्विंते ॥ ६८ ॥

टीका—विना मुंडन किये हुए बालकोंके परनेपर सपिंडोंकी रातदिनमें शुद्धि होती है और मुंडन होजानेके पीछे यज्ञोपवीतसे पहले मरनेमें तीनि रात्रिमें शुद्ध होति है ॥ ६७ ॥ दो वर्षसे कम विना मुंडन किया हुआ बालक मरै तौ उसको माला आदिसे शोभित करि ग्रामके बाहर लेजाकै शुद्ध भूमिमें गाडदे अस्थि संचय न करै ॥ ६८ ॥

नास्यं कार्योऽग्निसंस्कारो न च कार्योदकक्रिया ॥ अरण्ये काष्ठ-  
वत्यक्त्वा क्षपेयुर्यहमेव च ॥ ६९ ॥ नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवै-  
रुदकक्रिया ॥ जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वार्षिकृते सति ॥ ७० ॥

टीका—इस दो वर्षके मरे हुए बालकका न अग्निसंस्कार करै और न जलदान करै किंतु वनमें काठके समान छोडकै तीनि रातिदिनका आशौच मानै ॥ ६९ ॥ तीनि वर्षसे काम अवस्थाके बालकको उसके सपिंड जलदान न करै और दांत उत्पन्न होनेपर तथा नामकरण होजानेपर जलदान तथा अग्निसंस्कार करना चाहिये और प्रेतका पिंडश्राद्ध आदि बनिसकै तौ करे क्योंकि करनेसे प्रेतको आनंद होताहै और जो न करै तौ कुछ दोष नहीं है ॥ ७० ॥

सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं स्मृतम् ॥ जन्मन्येकोदकानां तु  
त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते ॥ ७१ ॥ स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छु-  
ध्यन्ति बान्धवाः ॥ यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः ॥ ७२ ॥

टीका—साथ पढनेवालेके मरनेमें एकादिनका आशौच होताहै और समानोदकोंके पुत्रका जन्म होनेपर तीनरात्रिमें शुद्धि होती है ॥ ७१ ॥ विना व्याही हुई बाग्दत्ता कहिये जिनका बातोसे संबध हुआ है उन लडकियोंके मरनेमें बांधव कहिये पति आदि तीनि दिनमें शुद्धहोते हैं और विवाह होनेके पीछे मरनेमें पिता भाई आदि तीनि दिनमें शुद्ध होते हैं ॥ ७२ ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निर्मज्जेषुश्च ते त्र्यहम् ॥ मांसाशनं च नाश्री-  
युः शैयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥ ७३ ॥ संनिधावेष वै कल्पः शावां शौ-  
चस्य कीर्तितः ॥ असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः संबन्धिवान्धवैः ॥ ७४ ॥

टीका—क्षारलवण कहिये बना हुआ नोनका न खाना तथा नदी आदिमें तीन दिनतक स्नान करना और मांस न खाना तथा जुदे २ भूमिमें सोना चाहिये



॥ ७३ ॥ मृतकके समीप रहनेमें यह शावाशौच कहिये मरणनिमित्तक आशौच कहाहै और समीप न होनेमें संबंधी तथा बांधवोंको जो आगे कहेंगे वह आशौच जानना चाहिये सर्पिण्डोंको संबंधी कहते है औ समानोदकोंको बांधव कहते है ॥ ७४ ॥

विर्गतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्देशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवांशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवांशो विशुध्यति ॥ ७६ ॥

टीका-विदेशमे मरे हुएके समाचार दशदिनके भीतर सुननेमें आवैं तौ दश-दिनमें जितने दिन बाकी रहे होंय उतने दिनतक आशौच मानना चाहिये ॥ ७५ ॥ दशदिनके उपरांत सुननेमें आवैं तौ तीनि दिनराति आशौच जानना और एकवर्ष के उपरान्त सुने तौ जलका स्पर्श करिकै अर्थात् स्नान करिके शुद्ध होय ॥ ७६ ॥

निर्देशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च ॥ सवासां जलमापुत्य शुद्धो भवति मानवः ॥ ७७ ॥ बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते ॥ सवासा जलमापुत्य संद्य एव विशुध्यति ॥ ७८ ॥

टीका-दशदिनके उपरांत जातिका मरना और पुत्रका जन्म सुननेमें आवैं तो वस्त्रोंसमेत स्नान करिकै शुद्ध होय ॥ ७७ ॥ परदेशमें समानोदक बालकका मरना सुनिकै वस्त्रोंसमेत स्नान करनेसे उसीसमय शुद्ध होता है ॥ ७८ ॥

अन्तर्देशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनी ॥ तावत्स्यादंशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्देशम् ॥ ७९ ॥ त्रिरात्रमाहुरांशौचमाचार्ये संस्थिते सति ॥ तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥ ८० ॥

टीका-एकका जन्म होनेपर दशदिनके भीतर दूसरेका जन्म होय और एकके मरनेसे दशदिनके भीतर दूसरा मरै तो पहले आशौचके दूरि होनेमें दूसरा भी दूरि होजाता है ॥ ७९ ॥ आचार्यके मरनेमें शिष्यको तीनि रातिका आशौच होता है ॥ और आचार्यके पुत्र तथा स्त्रीके मरनेमें एक दिनरातिका आशौच होता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८० ॥

श्रोत्रिये तूपसंपन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ मातुले पक्षिणीरात्रि शिष्यात्विग्वान्धवेषु च ॥ ८१ ॥ प्रेतै राज्ञि सज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितः ॥ अश्रोत्रिये त्वंहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ ॥ ८२ ॥



टीका-वेदशास्त्रका पढनेवाला मरै तौ प्रीतिसे उसके समीप रहनेवालेको अथवा उसके घरमें रहनेवालेको तीन रात्रिका आशौच होताहै और मामा शिष्य ऋत्विक् तथा बांधवके मरनेमें पक्षिणी अर्थात् पहले और पिछले दिनसमेत रात्रिका आशौच होता है ॥ ८१ ॥ जिस देशमें ब्राह्मण आदि वसते होय उस देशके राजा अर्थात् अभिषेकयुक्त क्षत्रिय आदिके मरनेमें सज्योति कहिये दिन होय तौ जबतक सूर्य रहैं तबतक और राति होय तौ जबतक तारा रहैं तबतक का आशौच होताहै और श्रोत्रिय मरै तौ तीनिरात्रिका कहाहै रातिमेंभी नही और जो रातिमें मरै तौ रातिहीभरिका यह जानना चाहिये और अंगौसमेंत वेदके पढनेवाले तथा गुरुके मरनेपर एकही दिनका आशौच मानना चाहिये ॥ ८२ ॥

शुद्धयेद्विप्रो दशोहेन द्वादशोहेन भूमिर्षः ॥ वैश्यः पञ्चदशोहेन  
शूद्रो मांसेन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥ न वर्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु  
क्रियाः ॥ न च तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योऽप्यंशुर्चिर्भवेत् ॥ ८४ ॥

टीका-यज्ञोपवीत किये हुए सपिंडके मरनेमें तथा पूरे दिनोंमें जन्म होनेपर वेदपाठरहित ब्राह्मण दशदिनमें शुद्ध होताहै और क्षत्रिय बारहदिनमें तथा वैश्य पंद्रहदिनमें और शूद्र एक महीनेमें शूद्रके यज्ञोपवीतके स्थानमें विवाह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ आशौचके दिनोंको न बढ़ावें और उन दिनोंमेंभी श्रौत अग्निहोत्रके होममें बाधा न करै जो असमर्थ होय तौ पुत्रादिकोंसे करावै इसमें कारण कहते हैं कि जिसे उस अग्निहोत्ररूप कर्मको करता हुआ पुत्र आदि सपिंड अशुद्ध नही होताहै ॥ ८४ ॥

दिवाकीर्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा ॥ श्वं तत्स्पृष्टिनं चैवं  
स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ८५ ॥ आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचि  
दर्शने ॥ सौरान्मन्त्रान्यथोत्साहं पावमानीश्च शक्तितः ॥ ८६ ॥

टीका-चांडालको रजस्वलाको ब्रह्महत्यारे आदिको और दशदिनके भीतर प्रसूता स्त्रीको मुर्देको तथा मुर्देछूनेवालेको छूकर स्नानसे शुद्ध होताहै ॥ ८५ ॥ चांडाल आदि अशुद्धके दर्शन होनेपर श्राद्ध तथा देवपूजा आदिको किया चाहता पुरुष स्नान तथा आचमन करि सूर्य जिनका देवता ऐसे उदुत्यं जात वेदसे इत्यादि मंत्रोंको और पावमानी ऋचाओंको शक्तिके अनुसार जपै ॥ ८६ ॥

नारंस्पृष्ट्वास्थिं संस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति ॥ आचम्यैवं तु निः



स्नेहं गोमालभ्याकर्मोक्ष्यं वा ॥ ८७ ॥ आदिष्टी नोदकं कुर्यादात्र  
तस्य समापनात् ॥ समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिंशत्रेणैव शुध्यति ॥ ८८ ॥

टीका—चिकनाई युक्त मनुष्यकी हड्डीको छूकै ब्राह्मण आदि स्नानसे शुद्ध होते हैं और स्नेह रहित हड्डीके छू आचमन करिकै अथवा गौको छूकै अथवा सूर्यका दर्शन करिकै शुद्ध होता है ॥ ८७ ॥ ब्रह्मचारी व्रतकी समाप्तिपर्यंत प्रेतोदक अर्थात् पूरक पिंडश्चाद आदि प्रेतके कृत्य न करै फिर ब्रह्मचर्यके समाप्त होनेपर प्रेतोदक करिकै तीनि रातितक आशौच मानिकै शुद्ध होता है ॥ ८८ ॥

वृथा संकरजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् ॥ आर्त्तमनस्त्यागिनां  
चैव निवर्ते तोदकक्रिया ॥ ८९ ॥ पाषण्डमाश्रितानां च चरन्तीनां  
चैव कामतः ॥ गर्भभर्तृद्वुहां चैव सुरापीनां च योषिताम् ॥ ९० ॥

टीका—अपने धर्मका छोड़नेवाला और हीन जातिके पुरुषसे ऊंची जातिकी स्त्रीमें उत्पन्न तथा झूठे संन्यासका धारण करनेवाला और व्यर्थ कहिये शास्त्रसे मने किये हुए विष आदिमें जानकर मरनेवाला इन सबोंके मरनेमें जलदान न करै ॥ ८९ ॥ वेदसे बाहर गेरुआ कपड़े और मूड मुडाना आदि व्रतोंसे पाषण्ड करनेवाली और अपनी इच्छासे जहां तहां फिरनेवाली और गर्भपात तथा पतिका वध करनेवाली और मद्य पीनेवाली द्विजातिकी स्त्रीको इन सबोंके मरनेमें जलदान न करना चाहिये ॥ ९० ॥

आचार्यै स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ॥ निर्हृत्य तुं व्रती  
प्रेतान्न व्रतेन विद्युज्यते ॥ ९१ ॥ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरंद्वारेण  
निर्हरेत् ॥ पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथायोगं द्विजन्मनः ॥ ९२ ॥

टीका—आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत कराकै संपूर्ण शास्त्राओंको पढ़ावै और उपाध्याय जो वेदका एक देश अथवा अंगशिक्षा आदि पढ़ावै पिता माता और गुरु जो एक वेदका अथवा सबवेदोंके एकदेशका व्याख्यान करै इन सबोंकी दाह आदि प्रेतक्रिया करनेसे ब्रह्मचारीके व्रतका लोप नहीं होता है ॥ ९१ ॥ मरेहुए शूद्रको पुरके दक्षिणद्वारमें होकर निकालै और द्विजातियोंको यथायोग्य कहिये युक्तिसे हीनवैश्य क्षत्रियके क्रमसे पश्चिम उत्तर पूर्वके द्वारोंमें होकर निकालै ॥ ९२ ॥

न राज्ञामर्घदोषोऽस्ति व्रतिनां न च सत्रिणाम् ॥ ऐन्द्रं स्थानमुपा  
सीनां ब्रह्मभूता हितेसंदा ॥ ९३ ॥ राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः



( १६६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

शौचं विधीयते ॥ प्रजानां परिरक्षार्थमांसनञ्चात्र कारणम् ॥९४॥

टीका—राजा व्रती कहिये ब्रह्मचारी चांद्रायण आदि व्रतोंका करनेवाला तथा सत्री कहिये यज्ञ करनेवाला इन तीनोंको सपिंडके मरने आदिमें आशौच दोष नहीं लगता है क्योंकि राजा तौ इंद्रके स्थानमें स्थित है और ब्रह्मचारि व्रती तथा यज्ञ करनेवाला ये सदा ब्रह्मका स्वरूपहैं ॥ ९३ ॥ राज्यपदमें बैठे हुए राजा-कीशी शुद्धि कही है प्रजाओंकी रक्षाके लिये राज्यपदमें बैठनाही आशौच न लगनेका कारण है ॥ ९४ ॥

डिवाहवंहतानां च विद्युतां पार्थिवेन च ॥ गोब्राह्मणस्य चैवाथे  
यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ ९५ ॥ सोमाग्न्यर्कानिलेन्द्राणां वित्ताप्यं  
त्योर्यमस्य च ॥ अष्टानां लोकपालानां वपुधरिर्यते नृपः ॥ ९६ ॥

टीका—जिसमें राजा नहीं है उस युद्धमें जो मारे गये हैं और विजली अर्थात् वज्रसे जो मारे गये हैं मारनेके योग्य अपराध करनेमें राजा करि जो मारे गये और गौ तथा ब्राह्मणके लिये ये युद्धके विनाभी जलअग्नि तथा व्याघ्र आदि करि मारे गये और जिस पुरोहित आदिका राजा अपने कामके लिये शुद्धि चाहै उन सबोंकी शीघ्रही शुद्धि होती है ॥ ९५ ॥ चंद्रमा अग्नि सूर्य वायु इंद्र कुबेर वरुण यम इन आठों लोकपालोंके शरीरको राजा धारणकरता है ॥ ९६ ॥

लोकेशाधिष्ठितो राजा नैस्यांशौचं विधीयते ॥ शौचाशौचं हि म-  
त्यानां लोकेशः प्रभवाप्ययम् ॥ ९७ ॥ उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्मह-  
र्त्तस्य च ॥ सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः ॥ ९८ ॥

टीका—राजा ऊपरके श्लोकमें कहे हुए इंद्र आदि लोकपालोंके अंशोंसे युक्त होता है इसलिये राजाको आशौच नहीं लगता है कारण यह है कि मनुष्योंका जो शौच और आशौच है सो लोकपालोंसे उत्पन्न होता है तथा दूर होता है ॥ ९७ ॥ संग्राममें उठे हुए खड्ग आदि शस्त्रोंसे लाठी फट्ठर आदिसे नहीं किंतु क्षत्रियधर्मसे सन्मुख मारे गये पुरुषका उसीसमय ज्योतिष्मोम आदियज्ञ समाप्त होता है अर्थात् यज्ञफलसे वह युक्त होता है और आशौचभी उसी समय समाप्त होजाता है यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ९८ ॥

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनार्थधम् ॥ वैश्यं प्रतोदं र-  
श्मीन्वा यष्टि शूद्रः कृतक्रियः ॥ ९९ ॥ एतद्गोऽभिहितं शौचं स-



पिण्डेषु द्विजोत्तमाः॥असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिं निबोधतं ॥१००

टीका—आशौचके अंतमें श्राद्ध आदि कृत्य करिके ब्राह्मण दाहिने हाथसे जलको छूकरि शुद्ध होताहै और क्षत्रिय हाथी आदि वाहनोंको तथा खड्ग आदि शस्त्रोंको और वैश्य अग्रभागमें लोह लगे हुए बैलोंके हांकनेकी लकड़ीको अथवा जोतेको और शूद्र बांसकी दंडिकाको छूकरि शुद्ध होताहै ॥ ९९ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो मैंने तुमसे यह आशौच सपिण्डोंके मरनेमें कहा अब असपिण्डोंके मरनेमें प्रेत शुद्धिको सुनो ॥ १०० ॥

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत् ॥ विशुध्यति त्रिंशत्रे  
ण मातुरातांश्च बान्धवान् ॥ १ ॥ यद्यन्नमर्त्ति तेषां तु दशहिनैव  
शुद्ध्यति ॥ अनन्दन्नमर्त्तैर्व न चैर्त्तस्मिन्मृहे वसेत् ॥ २ ॥

टीका—असपिण्ड मरे हुए ब्राह्मणको मित्रतासे श्मशानमें लेजाय करि तथा माताके सगे भाई बहिनी आदि बाधवोंको पहुचायके ब्राह्मण तीनि रात्रिमें शुद्ध होताहै ॥ १ ॥ जो लेजानेवाला आशौचयुक्त मरे हुएके सपिण्डोंको अन्न खायतौ दशही दिनमें शुद्ध होय और जो उनका अन्न न खाय और उनके घरमें न वसे तौ तीन दिनरातिहीमें शुद्ध होजाय और उसके घरमें तौ वसे परंतु उसके सपिण्डोका अन्न न खाय तौ पहले कही हुई तीनि रात्रिमें शुद्ध हो ॥ २ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च॥स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वा-  
ग्निं धृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शू-  
द्रेण नाययेत्॥अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता॥४॥

टीका—अपनी जातिके तथा ओर जातिके मृतकके साथ अपनी इच्छासे जायके वस्त्रोंसमेत स्नान करि और अग्निको छू घी खायके शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ स मान जातिके स्थित होनेपर पुत्र आदि मृतकको शूद्रसे न उठवावे क्योंकि उसकी आहुति शूद्रके स्पर्शसे दूषित हो स्वर्गके लिये हित नहीं होती है अर्थात् स्वर्गमें नहीं पहुचाती है अपनोंके होनेपर इसके कहनेसे यह जान गया कि ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय और क्षत्रियके न होनेमें वैश्य वैश्यके भी न होनेमें शूद्रसेभी उठवाके मृतकको लिवाय जाय ॥ ४ ॥

ज्ञानं तपोग्निराहारो मृन्मनो वार्युपांजनम् ॥ वार्युः कर्मार्ककौलौ  
चै शुद्धेः कर्तृणि देहिनाम् ॥ ५ ॥ सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं



स्मृतम् ॥ योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृदारिशुचिः शुचिः ॥ ६ ॥

टीका-ज्ञान तप अग्नि आहार मृत्तिका मन जल लेप पवन कर्म सूर्य और काल ये देहियोंकी शुद्धि करनेवाले है ॥ ५ ॥ सब शौचौमें अर्थात् मट्टी पानी आदिसे देहकी शुद्धि और मनकी शुद्धि इन सबोमें अर्थशुद्धि कहिये अन्यायसे पराये धनके लेनेकी इच्छाको छोड़कर धनका इकठ्ठा करना सबसे अधिक शौच मनु आदिकोंने कहाहै क्योंकि जो धनमें शुद्धहै वह शुद्धहै और जो मृत्तिका तथा जलसे शुद्धहै और धनमें अशुद्धहै वह अशुद्धही है ॥ ६ ॥

क्षान्त्या शुद्ध्यन्तिविद्वांसो दानेनौकार्यकारिणः ॥ प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तर्माः ॥ ७ ॥ मृत्तोयैः शुद्ध्यते शोध्यं नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ रजसा स्त्री र्मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः ॥ ८ ॥

टीका-दूसरेके अपकार करनेपर उसके बदलेके अपकार करनेमें बुद्धि न करने रूप क्षमासे पंडित शुद्ध होते हैं औ नही करनेयोग्य कामके करनेवाले दानसे और जिनके पाप छुपे हुएहैं वे जपसे और वेदका अर्थ तथा चांद्रायण आदि तपके जाननेवाले एकादश अध्यायमें कहेंगे उस तपसे शुद्ध होतेहैं ॥ ७ ॥ मल आदिसे दूषित शोधने योग्य मृत्तिका तथा जलसे शोधे जाते है और श्लेष्मा आदि अशुद्धसे दूषित नदीका प्रवाह वेगसे शुद्ध होताहै और परपुरुषसे मैथुनके संकल्पसे दूषितहै मनजि सका ऐसी स्त्री प्रतिमासमें रजोधर्मसे उसपापसे शुद्ध होती हैं और ब्राह्मण छठेअध्यायमें जो कहेंगे उस संन्याससे शुद्ध होताहै ॥ ८ ॥

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ ९ ॥ एष शौचस्य वै प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः ॥ नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम् ॥ १० ॥

टीका-पसीना आदिसे दूषित अंगजलके धोनेसे शुद्ध होतेहैं और निषिद्धचित्ता आदिसे दूषित मन सत्यसे शुद्ध होताहै और सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें अवच्छिन्नजीव आत्मा ब्रह्मविद्या तथा पापके नाशकरनेवाले तपसे शुद्ध होताहै और अन्यथा ज्ञानसे दूषित बुद्धि यथार्थविषयकेज्ञानसे शुद्धहोतीहै ॥ ९ ॥ मैनशरीरके शौचका यह निश्चय तुमसे कहा अब नानाप्रकारके द्रव्योंमें जो जिस्से शुद्ध होताहै उसके निर्णयको सुनौ ॥ १० ॥

तैजसानां मणीनां च सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ भस्मनाद्भिर्मृदा चै



व<sup>११</sup> शुद्धिरुक्तौ मनीषिभिः ॥ ११ ॥ निर्लेपं काञ्चनं भाण्डमद्भि<sup>१२</sup> रे  
व<sup>१३</sup> विशुध्यति ॥ अञ्जमश्ममयं चैव<sup>१४</sup> राजतं चानुपस्कृतम् ॥ १२ ॥

टीका—तैजस कहिये सुवर्ण आदिकोंकी और मरकत आदि मणियोंकी और सब पत्थरकी वस्तुओंकी भस्म जल तथा मट्टीसे मनु आदिकोंने शुद्धि कहीहै ॥ ११ ॥ उच्छिष्ट आदिके लेपसे रहित सुवर्णका पात्र और जलसे उत्पन्न शंख सीप आदि और पत्थरका पात्र तथा रेखारहित चांदीका पात्र भस्म आदिसे रहित केवल जलसे शुद्ध होताहै ॥ १२ ॥

अपामग्रे<sup>१५</sup> च संयोगाद्धैमं रौप्यं च<sup>१६</sup> निर्बभौ ॥ तस्मात्तयोः स्वयोन्यै  
व<sup>१७</sup> निर्णेको गुणवर्त्तरः ॥ १३ ॥ ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणैः सीस  
कस्यै च<sup>१८</sup> ॥ शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ १४ ॥

टीका—जल और अग्निके संयोगसे सोना और रूपा उत्पन्न हुआ हैं तिससे उनके कारण अर्थात् उत्पन्न करनेवाले जल और अग्निहीसे शुद्धि सबसे उत्तम है ॥ १३ ॥ तांबा लोहा कांसा पीतलि रांग और सीसा इनका भस्म तथा खटाईके पानीसे यथायोग्य अर्थात् जो जिसके योग्य होय उससे उसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

द्रवाणां चैव<sup>१९</sup> सर्वेषां शुद्धिराष्ट्वनं स्मृतम् ॥ प्रोक्षणं संहतानां च<sup>२०</sup>  
दारवाणां च<sup>२१</sup> तक्षणम् ॥ १५ ॥ मूर्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञक  
मणि ॥ चमसानां ग्रहाणां च<sup>२२</sup> शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ १६ ॥

टीका—कौआ कीडा आदि करि दूषित किये गये एक पसेभर घी तेल आदिकी प्रादेशप्रमाण दो कुशके पत्रोंको उसमें डालकर उछालनेसे और शय्या-आदि जो उच्छिष्ट आदिसे दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे और काष्ठका कठो-ता आदि जो उच्छिष्ट आदिसे अत्यंत दूषित होय तौ उनकी छीलनेसे शुद्धि होती है ॥ १५ ॥ यज्ञमें चमस ग्रह तथा अन्य यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि पहले हाथसे मलकै जलके धोनेसे होती है ॥ १६ ॥

चरूणां क्षुब्धवाणां च<sup>२३</sup> शुद्धिरुष्णेन वारिणां ॥ स्फ्यशूर्पशकाटानां  
च<sup>२४</sup> मुसलोलूखलस्य च ॥ १७ ॥ अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्य  
वाससाम् ॥ प्रक्षालनेन त्वल्पां नमद्भिः शौचं<sup>२५</sup> विधीयते ॥ १८ ॥



टीका-चिकनाई करि युक्त चरु स्रुक् आदिकी शुद्धि उष्णजलके धोनेसे होती है और जिनमें चिकनाई नहीं है उनकी यज्ञके लिये केवल जलसे शुद्धि होती है और स्फ्य सूप गाढी मूसल और ओखलीकी शुद्धि उष्णजलसे होती है ॥ १७ ॥ बहुतसे धान्य और वस्त्र जो चांडाल आदि करि दूषित होय तौ जलके छिडकनेसे उनकी शुद्धि होती है बहुत उसको कहते हैं जो एक पुरुषके लेचल-नेसे अधिक होय उससे थोड़ेकी शुद्धि मनु आदिने धोनेसे कही है ॥ १८ ॥

चैलवच्चर्मणां शुद्धिर्वदलानां तथैव च ॥ शाकमूलफलानां च धान्यं  
वच्छुद्धिरिष्यते ॥ १९ ॥ कौश्याविकंयोर्हृषैः कुतपानामरिष्टकैः ॥  
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥ १२० ॥

टीका-छूनेयोग्य पशुके चर्मके पात्र और वांसके पात्रकी शुद्धि वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये और शाक मूल फल इनकी शुद्धि धान्यकी शुद्धिके समान जानिये ॥ १९ ॥ रेशमी और ऊनी वस्त्रकी शुद्धि खारी मट्टीसे होती है और नेपालके कंबलोंकी रीठके चूर्णसे और पट्टवस्त्रकी वेलके फलसे और अलसी की छालिका वस्त्र सपेद सरसोंसे शुद्ध होता है ॥ १२० ॥

क्षौमवच्छुद्ध्यङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च ॥ शुद्धिर्विजानता कार्या  
गोमूत्रेणोदकेन वा ॥ २१ ॥ प्रोक्षणात्तृणकाष्ठं च पलांलं चैव शु  
द्धयति ॥ मार्जनोपाञ्जनैर्वैश्म पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २२ ॥

टीका-शंखका पात्र तथा छूनेयोग्य पशु हाथी आदि तिनके दांत सींग तथा हाडके पात्रकी शुद्धि अलसीके वस्त्रकी शुद्धिके समान जानिये अर्थात् सपेद सरसोंके कल्कसे अथवा गोमूत्रसे शुद्धि होती है ॥ २१ ॥ चांडाल आदिके छूनेसे दूषित तृण काट और प्यार जलके छिडकनेसे शुद्ध होते हैं और रजस्वला आदिके वसनेसे दूषित घर झाडने और लीपनेसे शुद्ध होता है और उच्छिष्ट आदिसे दूषित मट्टीका वासन फिरी पकानेसे शुद्ध होता है ॥ २२ ॥

मघैर्मूत्रैः पुंरीषैर्वा ष्ठीर्वनैः पूर्यशोणितैः ॥ संस्पृष्टं नैव शुद्धयेत्  
पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥ २३ ॥ संमार्जनोपाञ्जनैः सेकेनोल्लेखनेन  
च ॥ गर्वां च परिवासेन भूमिः शुद्ध्यति पञ्चभिः ॥ २४ ॥

टीका-मघ मूत्र विष्टा थूक पीव तथा रुधिरसे बिगडा हुआ मट्टीका पात्र फिरी पकानेसे शुद्ध नहीं होता है ॥ २३ ॥ झाडने लीपने छिडकने खोदने अर्थात् कुछ मट्टीके छीलनेसे तथा गौओंके रहनेसे इन पांच धातोंसे भूमि शुद्ध होती है ॥ २४ ॥



पक्षिजगंधं गवाघ्रातमवधूतमवधूतम्॥दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षे-  
पेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥ यावन्नापैत्यमेध्यात्ताद्रन्धो लेपश्च तत्कृ-  
तः ॥ तावन्मृद्धारि चादेयं संवासु द्रव्यशुद्धिषु ॥ २६ ॥

टीका-कौआ गीध आदिको छोडकै अन्य पक्षियोंकरि कुछ खाया हुआ और गौ करि सूंघा हुआ तथा पैरसे छुआ हुआ और जिसके ऊपर छींक हुई और बाल तथा कीडोंसे दूषित थोड़ी भट्टीके डालनेसे शुद्ध होताहै ॥ २५ ॥ अप-  
वित्र विष्टा आदिसे लिपी वस्तुसे जबतक उसका गंध तथा लेप शेष रहै तबतक सब वस्तुओंको शुद्धके लिये मट्टी और जलसे मांजै ॥ २६ ॥

त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्नि-  
र्णितं यच्च वार्चा प्रशस्यते ॥ २७ ॥ आपः शुद्धा भूमिर्गता वैतृष्यं  
यासुगोर्भवेत् ॥ अव्याप्ता श्रद्धामेध्यात्ता गन्धवर्णरसान्विताः ॥ २८ ॥

टीका-देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन वस्तु पवित्र की हैं एक तौ अदृष्ट अर्थात् जिसका दूषित होना आंखिसे नहीं देखा गयाहै और दूसरा दूषित होने की शंका होनेपर जलसे धोना और तीसरा दूषित होनेकी शंका होते ही पवित्र होय इस ब्राह्मणकी वाणीसे जो प्रशस्तहै ॥ २७ ॥ जितने जलमें एक गौकी प्यास दूर होय गंध वर्ण और स्वाद जिसका न बिगडा होय और अपवित्र वस्तुसे युक्त न होय शुद्ध भूमिमें स्थित होय ऐसा जल शुद्ध कहाहै ॥ २८ ॥

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् ॥ ब्रह्मचारिगतं भ-  
क्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ २९ ॥ नित्यमास्यं शुचि स्त्रिणां  
शकुनिः फलपातने॥प्रसवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगग्रहेण शुचिः १३०

टीका-देवता तथा ब्राह्मण आदिके लियेभी माला आदिके बनानेमें माली आदि कारीगरोंके हाथ शुद्ध विशेषके न करनेपरभी स्वभावहीसे सदा शुद्ध हैं तै-  
सेही जन्म मरणमें अपने काममें शुद्धहै और ब्रह्मचारीकी भिक्षा विना न्हाई स्त्रीके देने और गली आदिमें चलनेपरभी सदा शुद्धहै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २९ ॥ स्त्रियोका मुख सदा पवित्रहै और कौआ आदि पक्षियोंकी चोचके लगानेसे गिरा हुआ फल शुद्धहै और गौके दुहनेके समय दूधके पन्हुआनेमें बछडेका मुख शुद्ध है और कुत्ता जब मृग आदिकोंको मारनेको पकडै तब उस-  
काममें वहभी शुद्ध होताहै ॥ १३० ॥



श्वभिर्हतस्यै यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् ॥ क्रव्याद्विश्वं हतस्या  
 न्यैश्चण्डालाद्यैश्च दस्युभिः ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वं नाभेर्यानि खानि तानि  
 मेघ्यानि सर्वशः ॥ यान्यधस्तान्यमेघ्यानि देहाच्चैर्वमलाश्च्युताः ॥

टीका—कुत्तों करि मारे हुए मृग आदिका मांस मनुजीनें शुद्ध कहाहै तथा और  
 कच्चे मांसके खानेवाले वाघ वाज आदिकों करि और मृगोंको मारकर जीविका  
 करनेवाले बहेलिया आदि करि मारे हुए मृग आदिका मांस पवित्र है ॥ ३१ ॥  
 नाभिके ऊपर जे इंद्रिया हैं वे सब पवित्र हैं इससे उनके छूनेमें अपवित्रता नही  
 होतीहै और जो नाभिके नीचे हैं वे अशुद्ध हैं और देहसे निकले हुए देहके मलसे  
 अशुद्ध होतेहैं ॥ ३२ ॥

मक्षिकां विप्रुषश्छाया गौरैश्चः सूर्यरश्मयः ॥ रंजो भूर्वायुरग्निश्च  
 रंषश्चै मेघ्यानि निर्दिशेत् ॥ ३३ ॥ विण्मूत्रोत्सर्गशुद्धं चार्थं मृदायादे  
 यमर्थवत् ॥ देहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वर्पि ॥ ३४ ॥

टीका—अपवित्र वस्तुकी छूनेवालीभी मक्खियां और मुखसे निकले हुए छोटे  
 २ जलके कण और पतित आदि न छूनेयोग्यकी छाया और गौ घोडा सूर्यके  
 किरण रज भूमि पवन अग्नि ये सब चांडाल आदिके छूनेपरभी छूनेमें अशुद्ध नही  
 होते हैं ॥ ३३ ॥ विष्टा तथा मूत्रका जिनसे त्याग किया जाताहै उन गुदा आदिकी  
 शुद्धिके लिये प्रयोजन मात्र कहिये जितनेसे बारहों छिट्रोंके बसा आदि मलों  
 के गंध तथा लेपकी शुद्धि होजाय उतनी मट्टी तथा जल लेना चाहिये  
 अन्यस्मृतियोंसे जाना गया कि पहिली छः इंद्रियोंकी शुद्धिके लिये मट्टी और  
 जल लेने चाहिये और दूसरे छःकी शुद्धिके लिये केवल जल लेना चाहिये ॥ ३४ ॥

वसां शुक्रमसृङ्मज्जां मूत्रं विट् प्राणकर्णविट् ॥ श्लेष्माश्रुदूषिकां  
 स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३५ ॥ एका लिङ्गे गुदे तिस्र स्त-  
 थैकत्र करे दश ॥ उभयोः सप्त दातव्यां मृदः शुद्धिर्मभीप्सता ॥ ३६ ॥

टीका—वसा कहिये देहकी चिकनाई और वीर्य रुधिर मज्जा कहिये शिरके भीतर  
 इकट्ठा हुआ स्नेह मूत्र विष्टा नाक तथा कानका मैल कफ आंसू आंखोका कीचर  
 तथा पसीना ये बारह मनुष्योंके शरीरके मैलहैं ॥ ३५ ॥ मूत्र तथा पुरीषके  
 त्याग करनेके पीछे शुद्धता चाहनेवाला पुरुष लिंगमें एकवार जलसमेत मट्टी  
 लगावै और गुदामें तीनवार और एक वांये हाथमें दशवार लगावै और सातवार  
 दोनो हाथ मिलायकै मट्टीलगावै ॥ ३६ ॥



एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्॥त्रिगुणं संन्यासिनां स्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्या चान्ते उपस्पृशेत्॥वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमंश्च सर्वदा ॥ ३८॥

टीका—यह शौच गृहस्थोंका कहा गया और ब्रह्मचारियोंको इससे दूना करना चाहिये और वानप्रस्थोंको तिगुना और संन्यासियोंको चौगुना करना चाहिये ॥ ३७ ॥ मूत्रा तथा पुरीषका त्यागकरना कहे हुए शौचके पीछे तीनिवार आचमन करिकै इन्द्रियोंको अर्थात् नाभिसे ऊपरके छिद्रोंको छुवै और वेदका अध्ययन किया चाहै अथवा अन्न खाना चाहै तौ सदा यह विधि करै ॥ ३८ ॥

त्रिरार्चामेदपः पूर्व द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्॥शारीरं शौचमिच्छं हिं स्त्रीशूद्रस्तु सकृत्सकृत् ॥ ३९ ॥ शूद्राणां मांसिकं कार्यं वपनं न्यार्यवर्तिनाम्॥वैश्यवच्छौर्चकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ४०

टीका—देहकी शुद्धिका चाहनेवाला पुरुष पहले तीनिवार जलका आचमन करै तिस पीछे दोवार मूख धोवै और स्त्री तथा शूद्र एकवार आचमन करै ॥ ३९ ॥ शास्त्रके अनुसार चलनेवाले और ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंको महीने महीनेमें मुंडन करना चाहिये और मृतक सूतक आदिमें वैश्यके समान आशौच मानना चाहिये और ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट भोजन करना चाहिये ॥ ४० ॥

नोच्छिष्टं कुर्वते मुख्या विप्रुषोऽङ्गे पतन्ति याः॥नैश्मश्रूणि गतां न्यास्यान्नं दन्तान्तरं धिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्॥भौमिकैस्ते समाज्ञेया नैतैरप्रयतो भवेत् ४२

टीका—मुखमेंसे निकले हुए थूकके छोटे छोटे बूंद शरीरपर गिरनेसे तथा मुखमें गये हुए मूछों के बाल और दांतोकी संधिमें अटका हुआ अन्न अशुद्धताको नही करताहै ॥ ४१ ॥ औरोंको आचमन करनेके लिये जल देते हुए मनुष्यके पैरोंपर जलके बूंद गिरते हैं वे शुद्ध भूमिमें भरे हुए जलके समान हैं उनसे अशुद्ध नही होताहै ॥ ४२ ॥

उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन॥अनिधायैवं तद्द्रव्यं माचान्तः शुचिर्तामियात् ॥ ४३ ॥ वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्॥आर्चामेदेवं भुक्त्वांन्नं स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥ ४४ ॥



टीका—कंधे आदिपर स्थित किसी वस्तुको लिये हुए जो उच्छिष्ट करि छुआ जाय तौ उस वस्तुको लियेही हुए आचमन करनेसे शुद्ध होताहै और वह वस्तुभी शुद्ध होतीहै ॥ ४३ ॥ वमन हुआ होय अथवा विरेचन हुआ होय तौ स्नान करि घी खाय और जो भोजनके पीछेही वमन करै तौ केवल आचमन करे स्नान तथा घृत भक्षण न करै और मैथुन करिके स्नान करै ॥ ४४ ॥

सुप्त्वां क्षुत्त्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृत्तानि च ॥

पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आर्चामेत्प्रयतोऽपि सन् ॥

॥ ४५ ॥ एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च ॥

उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्मान्निबोधत ॥ ४६ ॥

टीका—सोयकै छीककै थूककै झूठबोलकै और जल पीकै जो वेद पढा चाहै तौ शुद्धभी होनेपर आचमन करै ॥ ४५ ॥ यह ब्राह्मण आदिवर्णों के जन्ममरण आदिमें दशरात्र आदिकी सब आशौचविधिं तथा सब द्रव्योंकी अर्थात् धातुवस्त्र जल आदिकी शुद्धि तुमसे कही अब स्त्रियोंके करनेयोग्य धर्मोंको सुनिये ॥ ४६ ॥

बाल्या वा युवत्या वा वृद्ध्या वापि योषिता ॥ नै स्वातन्त्र्येण क-  
र्त्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि ॥ ४७ ॥ बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणि  
ग्राहस्य यौवने ॥ पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्रीस्वतन्त्रताम् ४८ ॥

टीका—बालकपनमें तरुण अवस्थामें अथवा वृद्ध अवस्थामें स्थित स्त्रीको घरमें भी कुछ काम स्वाधीन होकै न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ बालकपनमें पिताके वशमें रहै और तरुण अवस्थामें पतिके आधीन रहै और पतिके मरनेपर पुत्रोंके और जो पुत्र न होय तौ उनके सपिण्डोंके और सपिण्डभी न होय तौ पिताके पक्षके और जो दोनो पक्ष न होय तौ जाति तथा राजा आदिके आधीन रहै कभी स्त्री स्वतंत्र न होय ॥ ४८ ॥

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नैच्छेद्द्विरहमात्मनः ॥ एषां हि विरहेण  
स्त्रीर्गर्ह्यै कुर्यादुभे कुले ॥ ४९ ॥ सदा प्रहृष्ट्या भाव्यं गृहका-  
र्येषु दक्षया ॥ सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चासुक्तहस्तया ॥ १५० ॥

टीका—पिता पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक् न होय क्योंकि इनसे अलग रहनेसे कुलटापनको प्राप्तहो पिता तथा पतिके दोनो कुलोंको निंदित रक



ती है ॥ ४९ ॥ सदा प्रसन्न मुख घरके कामोंमें चतुर और कम खरच करनेवाली स्त्रीको होना चाहिये ॥ १५० ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भार्ता चानुमते पितुः ॥ तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लब्धयेत् ॥ ५१ ॥ मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजोपतेः ॥ प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ५२ ॥

टीका—पिता अथवा पिताकी आज्ञासे उसका भाई जिसको देवै जीवते हुए उस पतिकी सेवा करै और मरे हुएका उल्लंघन न करै अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करै ॥ ५१ ॥ विवाहमें स्वस्त्ययन कहिये शांतिके मंत्रोंका पढ़ना और ब्रह्माके लिये जो योग होताहै सो इन स्त्रियोंके मंगलके लिये होताहै अर्थात् इष्टकी प्राप्तिके निमित्त कर्म है और जो प्रथम प्रदान कहिये वाग्दानरूप कर्म है वही पतिके स्वामी होनेका कारणहै ॥ ५२ ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ॥ सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योषितः ॥ ५३ ॥ विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः ॥ उपचर्यः स्त्रियां सार्ध्या संततं देववत्पतिः ॥ ५४ ॥

टीका—ऋतुकालमें अथवा ऋतुभिन्नकालमें मन्त्रसंस्कार करनेवाला पति इस लोकमें तथा परलोकमें सुख देनेवालाहै ॥ ५३ ॥ शील करि रहित होय अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला होय अथवा विद्या आदि गुणों करि हीन होय तिस-परभी पतिव्रता स्त्रीको पति देवताके समान करने योग्यहै ॥ ५४ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम् ॥ पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ ५५ ॥ पाणिग्राहस्य सार्ध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा ॥ पतिलोकमभीप्सन्ती नार्चरेत्किंचिदप्रियम् ॥ ५६ ॥

टीका—जैसे पतिकी किसी स्त्रीके रजोधर्म आदिके योग्यसे उपस्थित न होनेपर दूसरी स्त्रीसे यज्ञकी सिद्धि होजाती है ऐसे स्त्रियोंकी भर्ताके विना यज्ञसिद्धि नहीं होती है और भर्ताकी आज्ञाविना व्रत तथा उपवासभी नहीं है किंतु भर्ताकी सेवाहीसे स्त्री स्वर्गलोकमें पूजित होती है ॥ ५५ ॥ पतिकी सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोककी इच्छा करनेवाली पतिव्रतास्त्री जीवते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछभी अप्रिय न करै मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा कहे हुए श्राद्धके न करनेसे होताहै ॥ ५६ ॥



कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ॥ न तु नामापि गृहीयां  
तपत्यौ प्रेते परस्य तु ॥५७॥ आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्र-  
ह्मचारिणी ॥ यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम् ॥५८॥

टीका-पतिके मरनेपर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पतिका नामभी न ले  
किन्तु पवित्र फूल मूल फलोंसे थोड़ा आहार करिके देहको क्षीण करे ॥ ५७ ॥  
क्षमायुक्त नियमवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्मको चाहनेवाली तथा मधु मांस  
मैथुनके त्यागरूप ब्रह्मचर्यसे शोभित मरण पर्यंत रहै और जो पुत्ररहितभी होय तौ  
पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करे ॥ ५८ ॥

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ॥ दिवं गतानि विप्राणा  
मकृत्वा कुलसंततिम् ॥५९॥ भृते भर्तारि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये  
व्यवस्थिता ॥ स्वर्गं गच्छन्त्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥

टीका-बालकपनसे ब्रह्मचारी जिन्होंने विवाह नहीं किये ऐसे सनक वालखिल्य  
आदि हजारों ब्राह्मण कुलकी वृद्धिकेलिये संततिके उत्पन्न किये विनाभी स्वर्गको  
गये ॥ ५९ ॥ अच्छाहै आचार जिसका ऐसी स्त्री भर्ताके मरनेपर परपुरुषसे  
मैथुनको न करके पुत्ररहितभी स्वर्गको जाती है जैसे वे सनक वालखिल्य पुत्र न  
होनेपरभी स्वर्गको गये ॥ १६० ॥

अपत्यलोभाद्यां तु स्त्री भर्तारमतिवर्त्तते ॥ सेहं निन्दामवाप्नोति  
पतिं लोकाच्च हीर्यते ॥६१॥ नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चार्थ्य  
न्यपरिग्रहे ॥ न द्वितीयश्च साध्वीनां कंचिद्भर्तापदिश्यते ॥६२॥

टीका-भरे पुत्र उत्पन्न होय उससे मैं स्वर्गको जाउंगी इस लोभसे जो स्त्री  
भर्ताका उल्लंघन करती है अर्थात् व्यभिचार करती है वह इस लोकमें निंदाको  
प्राप्त होती है और उस पुत्रसे स्वर्गको नहीं प्राप्त होती है ॥ ६१ ॥ जिसे भर्तासे  
भिन्न पुरुषसे उत्पन्न वह संतति शास्त्रीय नहीं होती है दूसरी स्त्रीमें उत्पन्न किई  
हुई पूजा उत्पन्न करनेवालेकी नहीं होती है और अच्छे आचारवाली स्त्रियोंका  
शास्त्रमें कही दूसरा पति नहीं कहा है ॥ ६२ ॥

पतिं हित्वा पकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ॥ निन्द्यैव सा भवेच्छोके  
परपूर्वति चोच्यते ॥६३॥ व्यभिचारानु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति  
निन्द्यताम् ॥ शर्गालयोनि प्राप्नोति पापरागेश्च पीड्यते ॥६४॥



टीका—अपकृष्ट कहिये क्षत्रिय आदि अपने पतिको छोड़कर उत्कृष्ट कहिये ब्राह्मण आदिका आश्रय लेती है वह लोकमें निंदित होती है और इसका दूसराभर्ता है ऐसे कही जाती है ॥ ६३ ॥ पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निंदाको प्राप्त होती है और मरकै सृगाली ( स्यारी ) होती है और कुष्ठ आदि पापरोगों करि पीडित होती है ॥ ६४ ॥

पतिं यां नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सां भर्तृलोकमाप्नोति  
संद्भिः सांध्वीति<sup>१</sup> चोच्यते ॥ ६५ ॥ अनेन नारी वृत्तेन मनोवा  
ग्देहसंयता ॥ ईहाङ्ग्यां कीर्तिमाप्नोति पतिंलोकं परत्र च ॥ ६६ ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयतहो पतिका उल्लंघन नहीं करती है वह भर्ताके साथ उत्पन्न किये हुए लोकोंको जाती है और सज्जनोकरि पतिव्रताभी कहि जाती है ॥ ६५ ॥ इस स्त्रीधर्मके प्रकारसे कहे हुए आचारसे मन वाणी और कायसे सावधान स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्तिको प्राप्त होती है और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किये हुए स्वर्ग आदिलोकोंको प्राप्त होती है ॥ ६६ ॥

एवंवृत्तां सर्वर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् ॥ दाहयेदग्निहोत्रेण  
यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६७ ॥ भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्त्वाग्नीर्नन्त्यै  
कर्मणि ॥ पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ ६८ ॥

टीका—दाहके धर्मका जाननेवाला द्विजाति कहे हुए आचार करि युक्त आपसे पहले मरी हुई सर्वर्णा स्त्रीको श्रौत तथा स्मार्त अग्निसे और यज्ञपात्रोंसे दाह करै ॥ ६७ ॥ पहले मरी हुई भार्याके लिये अन्त्यकर्ममें दाहके निमित्त अग्नि देकै गृहस्थाश्रमकी इच्छा करता हुआ पुत्रके होते वा अन होते दूसरा विवाह करै और श्रौत तथा स्मार्त अग्नियोंका आधान करै अर्थात् अग्निहोत्रको-ग्रहणकरै ॥ ६८ ॥

अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्नं हापयेत् ॥ द्वितीयमायुषो  
भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ १६९ ॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे  
भृगुप्रोक्तायां संहितायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

टीका—इस तीसरे अध्यायमें कही हुई विधिसे प्रतिदिन पंचयज्ञोंको न छोड़ै और दूसरे आयुष्यके भागमें विवाह करिकै गृहस्थके कहे हुए धर्मोंको करता हुआ घरमें बसै ॥ १६९ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपंडितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृतायां कुल्लूक-  
भट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौशौचविधिकथनोनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



## अथ षष्ठोऽध्यायः

एवं गृहोश्रमे स्थित्वा विधिर्वितस्नातको द्विजः ॥ वने वसेतुं नि-  
यतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥ गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीप-  
लितमात्मनः ॥ अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥

टीका—जिसका समावर्तन कहिये गृहस्थाश्रमका ग्रहण हुआ है ऐसा स्नातक द्विज कहे हुए प्रकारसे शास्त्रके अनुसार गृहस्थाश्रमको करिकै निश्चयपूर्वक यथा-विधि आगे कहेहुए धर्मसे विशेष करि जितेन्द्रिय हो वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहण करे ॥ १ ॥ गृहस्थ जब अपनी देहकी त्वचाको शिथिल देखै और वालोंको सपेद देखै और पुत्रके पुत्र उत्पन्न हुआ देखै तब विषयोंमें वैराग्य युक्त हो वानप्रस्थ आश्रमके लिये वनका आश्रय ले ॥ २ ॥

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छेदम् ॥ पुत्रेषु भार्या निक्षि-  
प्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्नि-  
परिच्छेदम् ॥ ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नित्येन्द्रियः ॥ ४ ॥

टीका—ग्राम्य जो धान जब आदि हैं तिनके आहारको और गौ घोडा शय्या आसन आदि उपकरणोंको छोड़ि भार्याके रहते साथ जानेकी इच्छा न होय तौ पुत्रोंमें राखि और जो साथ जाना चाहै तौ उसके साथही वनको जाय ॥ ३ ॥ श्रौत अग्निको तथा उसके उपकरण छुक् छुवा आदिको लेकर ग्रामसे वनमें निकल जितेन्द्रिय हो वनमें वसे ॥ ४ ॥

मुन्यन्नैर्विविधैर्धैः शकैर्मूलफलेन वा ॥ एतान्येव महार्थज्ञा-  
न्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥ वसीत चर्म चरिं वा सायं स्नायात्प्रागे-  
तथा ॥ जटांश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ ६ ॥

टीका—मुनियोंके अन्न कहिये नानाप्रकारके नीवार आदि अन्नोसे और वनमें उत्पन्न हुए पवित्र शाक मूल फलोंसे गृहस्थ कहे हुए इन पंचमहायज्ञोंको शास्त्रके अनुसार करै ॥ ५ ॥ मृगचर्मको अथवा वस्त्रखंडको धारण करै और हारीतने तौ बल्कल आदिकीभी आज्ञा दी है और सायंकाल तथा प्रातःकाल स्नान करै और शिरमें जटा डाढी मूछ तथा नखोंको सदा धारण करै ॥ ६ ॥

यद्द्रक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्द्वैलिं भिक्षां च शर्कृतः ॥ अम्मूलफलभि



क्षाभिर्ऋचयेदांश्रमागतान् ॥७॥ स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो  
मैत्रः समहितः॥दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ ८ ॥

टीका-जो भोजन करै उसमेंसे शक्तिके अनुसार बलि तथा भिक्षाको दैव और जल मूल फल तथा भिक्षा देकर आश्रममें आये हुए अभ्यागतोंका पूजन करै ॥ ७ ॥ वेदके अभ्यासमें सदा लगा रहै और शीत घाम आदिके दुःखका सहने वाला और सर्वोंका उपकार करनेवाला और सावधान मन सदा देनेवाला और सदा दान लेनेकी इच्छाका न रखनेवाला और सब जीवोंपर दया करनेवाला होय ॥ ८ ॥

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥ दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौ-  
र्णमासं च योगतः ॥ ९ ॥ ऋक्षेष्टयाग्रायणं चैवं चार्तुर्मास्यानि  
चाहरेत् ॥ उत्तरायणं च ऋमशो दक्षस्यायनमेवं च ॥ १० ॥

टीका-शास्त्रके अनुसार वैतानिक अग्निहोत्र करै और अमावास्या तथा पूर्णिमा इन पर्वामें श्रुति स्मृतिमें कहे हुए दर्शपौर्णमाससे यज्ञोंको न छोडै ॥ ९ ॥ नक्षत्रइष्टि तथा आग्रयण कहिये नवसस्यकी इष्टि और चातुर्मास्य तथा उत्तरायण और दक्षिणायन श्रौतकर्मोंको क्रमसे करै ॥ १० ॥

वासंतशरदैर्मैर्ध्वैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः ॥ पुरोडाशांश्चरुंश्चैवं वि-  
धिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ ११ ॥ देवताभ्यस्तु तद्धुत्वां वन्यं मेध्य-  
तरं हविः ॥ शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं चैवं स्वयंकृतम् ॥ १२ ॥

टीका-वसंतऋतुमें तथा शरद ऋतुमें उत्पन्न हुए और अपने हाथसे लाये हुए पवित्र मुनियोंके अन्नसे पुरोडाशचरुको शास्त्रके अनुसार उन २ यज्ञोंकी सिद्धिके लिये करै ॥ ११ ॥ उस वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदिसे बने हुए अत्यंततासे याज्ञके योग्य हविको देवताओंके लिये देकर बाकी आप खाय और अपने बनाये हुए खारीनो न आदि खाय ॥ १२ ॥

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च ॥ मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्या  
त्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ १३ ॥ वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कव-  
कानि च ॥ भूस्तृणं शिथुकं चैवं श्लेष्मातकफलानि च ॥ १४ ॥

टीका-स्थल तथा जलमें उत्पन्न हुए शाकोकों और जंगली यज्ञियवृक्षोंके पुष्प मूल फलोंको तथा हिंगोट आदिके फलोंसे निकले हुए स्नेहोंको खाय ॥ १३ ॥ शहत मांस तथा भूमिमें उत्पन्न हुए धरतीके फूलोंको और मालवदेशमें



भूस्तृणनाम शाकको तथा शिग्रुक कहिये संजनेको औ श्लेष्मातक कहिये लभेरेके फलोंको वर्जित करै ॥ १४ ॥

त्यजेदाश्वयुजे मांसि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम् ॥ जीर्णानि चैव वासांसि  
शाकमूलफलानि च ॥ १५ ॥ न फालकृष्टमश्रीयादुत्सृष्टमपि के  
नचित् ॥ न ग्रामजातान्यातोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ १६ ॥

टीका-पहले इकठ्ठे किये हुए नीवार आदि धान्योंको और जीर्ण वस्त्रोंको और शाक मूछ फलोंको आश्विनमासों त्यागि दे ॥ १५ ॥ वनमेंभी हलसे जुते हुए खेतमें उत्पन्न स्वामी करके छोड़े हुएभी धान आदिको न खाय तैसेही ग्राममें विना जूती भूमिमेंभी उत्पन्न लता वृक्षोंके मूल फलोंको भूखाभी वानप्रस्थ न खाय ॥ १६ ॥

अग्निपकाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा ॥ अश्मकुट्टो भवेद्वापि  
दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ १७ ॥ सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससं  
चर्यिकोऽपि वा ॥ षण्मासनिचयो वा स्यात्सर्मानिचय एव वा ॥ १८ ॥

टीका-अग्निमें पका हुआ जंगली अन्न और कालमें पके हुए फल आदि अथवा ओखली मूसलको छोड़के पत्थरोंसे कूटिके कच्चाही खाय अथवा दांतही हैं ओखलीके स्थानमें जिसके ऐसा होय अर्थात् दांतोहीसे चाविले ॥ १७ ॥ एक दिनके खानेयोग्य अथवा एक मासके योग्य अथवा छः महीनेके योग्य अथवा एक वर्षके निर्वाह योग्य नीवार आदि इकठ्ठा करै ॥ १८ ॥

नक्तं चात्रं समश्रीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तिः ॥ चतुर्थकालिको वा  
स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ १९ ॥ चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे  
च वर्तयेत् ॥ पक्षान्तयोर्वाप्यश्रीयाद्यं वागूं कथितां संकृत् ॥ २० ॥

टीका-सामर्थ्यके अनुसार अन्नको लायके सायंकाल भोजन करै अथवा दिनहीमें अथवा चौथेकालमें भोजन करनेवाला होय सायंकाल प्रातःकालका भोजन मनुष्यों का देवताओंका बनाया हुआ है वहां एकदिन व्रत करिके दूसरे दिन संध्याको भोजन करै अथवा अष्टमकालिक कहिये तीनि राति व्रत करिके चौथेदिनकी रातिमें भोजन करै ॥ १९ ॥ कृष्णपक्षमें एक २ पिंड घटावै और शुक्लपक्षमें एक एक बटावै इत्यादि ग्यारहें अध्यायमें वक्ष्यमाण चांद्रायण व्रतोंसे जीवै ॥ २० ॥

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा ॥ कालपक्वैः स्वयंशीर्णै-  
र्वैखानसमते स्थितैः ॥ २१ ॥ भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रप-  
दैर्दिनम् ॥ स्थानांसनाभ्यां विहरेत्संवनेषूपयन्नपः ॥ २२ ॥



टीका—अथवा कालमें पके हुए अग्निसे नहीं पके वृक्षसे आप गिरे हुए फलोंसे जीवै और वैखानस जो वानप्रस्थहै उसके धर्मके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रके मतमें स्थित रहै ॥ २१ ॥ विना विछौने भूमिमें लोटता हुआ आवै जाय अथवा स्थान आसन आदिमें बैठा रहै और उठै अर्थात् घूमै आवश्यक भोजन आदिको छोड़कै यह नियमहै ऐसेही आगेभी जानिये अथवा पैरोंके अग्रभागसे दिनभर खड़ा रहै और कुछकाल ठहरा रहै वा कुछकाल बैठा रहै बीचमें फिरै नहीं और सवनोमें अर्थात् संध्यासमय प्रातःकाल तथा मध्याह्नमें स्नान करै ॥ २२ ॥

ग्रीष्मे पञ्चतपास्तु रंयाद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥ आर्द्रवासास्तु हे-  
मन्ते क्रमंशो वर्धयंस्तपः ॥ २३ ॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितृन्दे-  
वांश्च तर्पयेत् ॥ तपश्चरंश्चोर्ग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ २४ ॥

टीका—अपना तप बढ़ानेके लिये ग्रीष्म कहिये गरमीकी ऋतुमें चारो और रक्खी हुई चार अग्नियोंके और ऊपर सूर्यके तेजसे अपने शरीरको तपावै और वर्षाऋतुमें मेघवर्षनेके समय खुले स्थानमें छाता आदिके विना स्थित होय और हेमन्त ऋतुमें गीले वस्त्र पहिरै एकवर्षकी गर्मी जाड़ा चौमासा ये तीनि ऋतु करकै यह एकवर्षका नियमहै ॥ २३ ॥ प्रातःकाल मध्याह्न तथा सायंकालके तीनों स्नानोमें देवता ऋषि और पितरोंके तर्पणको करता हुआ तथा औरभी पक्ष तथा मासके व्रत आदि तीव्र-तप करता हुआ अपने शरीरको सुखावै ॥ २४ ॥

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि ॥ अनग्निरनिकेतः  
स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ २५ ॥ अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्म-  
चारी धरांशयः ॥ शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २६ ॥

टीका—वैखानस शास्त्रके विधानसे भस्म आदिको पीकर श्रौत अग्नियोंको अपने भीतर स्थापित करिकै लौकिक अग्नि और घरसे रहित हो मौनव्रतको धारण करि फल मूल खाय नीवार आदि न खाय ॥ २५ ॥ सुखके प्रयोजनोंमें अर्थात् स्वादिष्ट फलोंके खाने और शीत तथा घामके बचानेमें उपाय न करै स्त्रीसे भोग न करै भूमिमें सोवै और रहनेके स्थानोंमें ममता न करै वृक्षोंके नीचे रहै ॥ २६ ॥

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत् ॥ गृहमेधिषु चान्येषु द्वि-  
जेषु वनवासिषु ॥ २७ ॥ ग्रामादाहृत्य वाश्रीयादष्टौ ग्रासान्वने



वसन् ॥ प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शर्कलेन वा ॥ २८ ॥

टीका—वानप्रस्थ ब्राह्मणोंसे प्राणोंकी रक्षाके योग्य भिक्षा लावै और उनके न होनेमे अन्य वनके बसनेवाले गृहस्थ ब्राह्मणोंसे लावै ॥ २७ ॥ ग्रामसे लाकै ग्रामके अन्नके आठग्रास पत्तोंके दोनेमें अथवा सरवा आदिके खंडमें अथवा हाथों-हीमें लेकर वानप्रस्थ भोजन करै ॥ २८ ॥

एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षाविप्रो वने वसन् ॥ विविधांश्चोपनिष-  
दीर्घात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेव  
सेविताः ॥ विद्यातपोविवृद्धयर्थं शरीरस्य च शुद्ध्ये ॥ ३० ॥

टीका—वानप्रस्थ इन नियमोंका तथा वानप्रस्थके शास्त्रमें कहे हुए अन्य नियमोंका अभ्यास करै और उपनिषदोंमें पढ़ी हुई ब्राह्मणका प्रतिपादन करनेवाली अनेक श्रुतियोंका अपनी ब्रह्मत्व सिद्धिके लिये ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै ॥ २९ ॥ जिस्से ये उपनिषद ऋषियों और संन्यासियों तथा वानप्रस्थों करिके अद्वैत ब्रह्मके ज्ञान तथा धर्मकी वृद्धिके लिये सेवन किये गये हैं तिस्से इनका सेवन करै ॥ ३० ॥

अपराजितां वास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः ॥ आनिपातां च्छरीरस्य  
युक्तो वार्यनिलाशनः ॥ ३१ ॥ आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वान्य-  
तमयातनुम् ॥ वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३२ ॥

टीका—जिसकी चिकित्सा न हो सकती होय ऐसे रोग आदिके उत्पन्न हो नेमें अपराजिता जो ईशान्यदिशा है तिसका आश्रय लेकै योगमें निष्ठ हो जल तथा पवनका आहार करता हुआ शरीरके गिरनेतक सीधा चलजाय महाप्रस्थान-नाम यह मरण शास्त्रमें कहाहै इस्से विधिके विना मरनेका निषेधहै शास्त्रमें कहे हुए का नहीं ॥ ३१ ॥ इन पहले कहे हुए अनुष्ठानोंमेंसे किसीएकसे शरीरको छोड़ि दुःखके भयसे रहित हो ब्रह्मलोकमें पूजाको प्राप्त होताहै अर्थात् मोक्ष पाता है ॥ ३२ ॥

वनेषु च विहृत्यैव तृतीयं भार्गमार्युषः ॥ चतुर्थमार्युषो भांगं त्य-  
क्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ ३३ ॥ आश्रमादाश्रमं गत्वा दुर्तहोमो  
जितेन्द्रियः ॥ भिक्षावलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ ३४ ॥

टीका—जो मरता नहीं है उसकेलिये कहते हैं इस भांति वनमें विहार करिकै



अर्थात् नाना प्रकारके कठिण तपोंके करनेसे विषयोंके रागकी शान्तिके लिये आयुके तीसरे भागमें कुछ कालतक वानप्रस्थोंके आश्रममें रहिकै आयुके चौथे भागमें अर्थात् बाकी आयुके समयमें सब भांतिविषयोंके संगको छोड़ि संन्यासाश्रमको धारण करै ॥ ३३ ॥ पहले पहले आश्रमसे आगे आगेके आश्रममें जायकै अर्थात् ब्रह्मचर्यसे गृहस्थाश्रममें और गृहस्थाश्रमसे वानप्रस्थाश्रममें जायकै शक्तिके अनुसार गये हुए आश्रमोंका किया है होम जिसने ऐसा भिक्षा तथा बलिदानके बहुत दिनोंतक करनेसे थका हुआ संन्यासको करता हुआ परलोकमें मोक्षके लाभसे ब्रह्मभूत बड़ीभारी ऋद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो<sup>१</sup> मोक्षे निवेशयेत्॥ अनपाकृत्य मोक्षं तुं सेवमानो ब्रजत्यर्थः॥ ३५ ॥ अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः॥ इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो<sup>२</sup> मोक्षे निवेशयेत्॥ ३६ ॥

टीका-आगेके श्लोकमें कहे हुए तीनि ऋणोंको दूर करिकै ब्राह्मण मोक्षके अंगरूप संन्यासमें मनको लगावै उन ऋणोंके विना दूर किये जो मोक्ष कहिये चौथे आश्रम को धारण करताहै वह नरकमें जाताहै ॥ ३५ ॥ उन्ही ऋणोंको दिखाताहै उत्पन्न होता हुआ ब्राह्मण तीनि ऋणोंसे ऋणी होताहै अर्थात् धनसे देवताओंका और संत-तिसे पितरोंका तथा वेदके पढ़नेसे ऋषियोंका यह श्रुतिमें लिखाहै इसीसे शास्त्रके अनु-सार वेदोंको पढिकै और पर्वोंमें गमन न करना इत्यादिक धर्मोंसे पुत्रोंको उत्पन्न करिकै और सामर्थ्यके अनुसार ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंकोभी करिकै मोक्षके अंगरूप चौथे आश्रममें मनको लगावै ॥ ३६ ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथो सुतान् ॥ अनिष्टान् चैवं यज्ञै  
श्च मोक्षमिच्छन्ब्रजंत्यधैः ॥ ३७ ॥ प्राज्ञोपत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेद  
सदाक्षिणाम् ॥ आत्मन्यग्रोन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रब्रजेद्ब्रह्मात् ॥ ३८ ॥

टीका—द्विजवेदोंको न पढकै और पुत्रोंको न उत्पन्न करिकै और यज्ञोंसे यजन न करिकै मोक्षको चाहता हुआ नरकमें जाताहै ॥ ३७ ॥ यजुर्वेदके उपाख्यान ग्रंथोंमें कहा हुआ और सर्वस्वहै दाक्षिणा जिसमें और प्रजापति जिसका देवता ऐसे यज्ञको करिकै उसकी कही हुई विधिसे अपनेमें स्थापित करिकै वानप्रस्थाश्रमको करिहीकै चौथे आश्रममें वास करै ॥ ३८ ॥

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृह्णात् ॥ तस्य तेजोमया लोका  
भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३९ ॥ यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्प



व्यते भयम् ॥ तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ ४० ॥

टीका—जो सब स्थावरजंगम प्राणियोंको अभय देकर गृहस्थाश्रमसे संन्यासको लेताहै ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले उपनिषदमें नेष्टावाले उस पुरुषके तेजसे सूर्यआदिके प्रकाशरहित हिरण्यगर्भ आदिकोंके लोक प्रकाशित होते हैं उनको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ जिस द्विजसे भूतोंको थोड़ाभी भय नहीं होताहै उसके वर्तमानदेहके नाश होनेपर किसीसेभी भय नहीं होताहै ॥ ४० ॥

आंगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः ॥ समुपोदेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ ४१ ॥ एकं एव चरेन्नित्यं सिद्धचर्यमसहायवान् ॥ सिद्धिमेकस्य संपश्यन्नं जहाति न हीयते ॥ ४२ ॥

टीका—घरसे निकला हुआ पवित्र दंड कमंडलु आदि करि युक्त तथा मौनी और प्राप्त हुए कामोंमें अर्थात् किसीकरि पहुचाये हुए स्वादिष्ट अन्नआदिमें इच्छारहित हो संन्यासधारण करै ॥ ४१ ॥ सब संगरहित एक पुरुषको मोक्षकी प्राप्ति होती है इसबातको अकेलाही सदा मोक्षके लिये विचरै एकही इसके कहनेसे पहले पहिचाने हुए पुत्र आदिका त्याग कहा गया और असहायवाच कहिये सहायक कोई न होय जो एकाकी विचरताहै वह किसीको नहीं छोड़ताहै और न किसीके छोड़नेका दुःख पाताहै न किसी करि वह छोड़ा जाता है और न कोई इस करके छोड़नेके दुःखको अनुभवकराया जाताहै तिससे सर्वत्र ममतारहित सुखको मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥

अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ ४३ ॥ कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता ॥ समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४४ ॥

टीका—लौकिक अग्निके छूनेसे तथा घरसँ रहित और उपेक्षाकरै कहिये शरीरमें रोग आदिके उत्पन्न होनेपर उसके दूरि होनेका उपाय न करै और असंकुसुक कहिये स्थिरबुद्धि रहै और मुनि कहिये मौनी हो भाव जो ब्रह्महै तिसमें मनको एकाग्र लगाकै वनमें दिनराति बसता हुआ केवलभिक्षाहीके लिये ग्राममें आवै ॥ ४३ ॥ मट्टीका खपरा आदि भिक्षाका पात्र और बसनेके लिये वृक्षोंके मूल और मोटा फटा वस्त्र कहिये कोपीन कंथा आदि और सबोंमें ब्रह्मबुद्धि होनेसे शत्रु मित्रका न होना यह मुक्तिका साधन होनेसे मुक्तक्य चिन्ह है ॥ ४४ ॥



नाभिर्नन्देत मरणं नाभिर्नन्देत जीवितम् ॥ कालमेव प्रतीक्षेत  
निर्देशं भूतको यथा ॥ ४५ ॥ दृष्टिपूर्तं न्यसेत्पादं वस्त्रपूर्तं  
जलं पिबेत् ॥ सत्यपूर्तां वदेद्वाचं मनःपूर्तं समाचरेत् ॥ ४६ ॥

टीका—जीवने और मरनेकी इच्छा न करै किंतु अपने कर्मके आधीन मरण  
जो कालहै तिसकी प्रतीक्षा करै जैसे सेवक अपने सेवनकालके शोधनेकी प्रतीक्षा  
करताहै ॥ ४५ ॥ बाल तथा हाड आदि बचानेके लिये आखेंसे देखकर भूमिमें  
पैर रक्खै और वस्त्रसे छानिकै जल पीवै तथा सत्यसे पवित्र वाणी बोलै और  
निषिद्ध संकल्पोंसे रहित मनसे सदा पवित्रात्मा होय ॥ ४६ ॥

अतिवादांस्तितीक्षेत नावमन्येत कंचन ॥ न चे मं देहमाश्रित्य वै  
कुर्वीत केनचित् ॥ ४७ ॥ कुर्वन्तं न प्रति कुद्ध्यचेदाकुष्टः कु  
शलं वदेत् ॥ सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ४८ ॥

टीका—दूसरेकी कही कठोर बातोंको सहिले किसीका अपमान न करै और  
रोग आदिकोंके स्थानमें इस चंचल देहका आश्रय लेकर इसके लिये किसीसे वैर  
न करै ॥ ४७ ॥ क्रोध करनेवालेके ऊपर क्रोध न करै और दूसरा निंदा करै तौ  
मधुर वाणी बोलै आपभी निंदा करै और सप्तद्वारावकीर्णां अर्थात् चक्षु आदि पांच  
बुद्धिद्रिय और मन तथा बुद्धि इन सातों करिकै ग्रहण किये हुए पदार्थोंके मध्ये  
कुछ वचन न कहै किंतु ब्राह्मही विषयक कहै अनृत कहिये नाशहोनेवाले कार्योंके  
मध्ये वाणीको न उच्चारण करै किंतु अविनाशी ब्रह्मके मध्ये प्रणव तथा उपनिषदरूप  
वाणीका उच्चारण करै ॥ ४८ ॥

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ॥ आत्मनैव सहायेन सु-  
खार्थी विचरेदिह ॥ ४९ ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गवि-  
द्यया ॥ नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ ५० ॥

टीका—सदा ब्रह्मके ध्यानमें लगा हुआ और स्वस्तिक आदियोगके आसनमें  
बैठा हुआ दंड कमंडलु आदिमें भी विशेष करि अपेक्षा रहित और निरामिष  
कहिये विषयोंकी इच्छारहित अपने देहहीके सहायसे मोक्षके सुखका चाहनेवाला  
संसारमें विचरै ॥ ४९ ॥ भृकंप आदि उत्पातोंका और नेत्रोंके फडकने आदि  
निमित्तोंके और अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तथा सामुद्रिकसे हाथोंकी रेखाओंके  
फल कहनेसे और नीतिमार्गके उपदेशसे और शास्त्रका अर्थ कहनेसे कभी  
भिक्षा पानेकी इच्छा न करै ॥ ५० ॥



नन्तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः ॥ आकीर्णं भिक्षुकैर्वा-  
न्यैरागारिमुपसंभजेत् ॥ ५१ ॥ कृतकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुं-  
मुम्भवान् ॥ विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ५२ ॥

टीका—वानप्रस्थों करिकै तथा अन्य खानेवाले ब्राह्मणों करिकै और पक्षियों तथा कुत्तों करि युक्त घरमें भिक्षाके लिये न जाय ॥ ५१ ॥ केश नख तथा डाढ़ी मूछोंको रखाये हुये और भिक्षापात्र दंड तथा कमंडलुको लिये हुए सब प्राणियोंको पीडा न देता हुआ सदा विचरै ॥ ५२ ॥

अतैजसानि पात्राणि तस्यस्युर्निर्व्रणानि च ॥ तेषामर्द्धिः स्मृतं  
शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ ५३ ॥ अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदं  
लं तथा ॥ एतानि र्यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ५४ ॥

टीका—सुवर्ण आदि धातुओंको छोडकै छेदों करि रहित संन्यासीके भिक्षापात्र होय उन पात्रोंकी यज्ञमें चमसोंके समान जलसे शुद्धि होती है ॥ ५३ ॥ तंबी काठ मृत्तिका तथा वास आदिके खंड से बने हुए संन्यासियोंके भिक्षापात्र होते हैं यह स्वायंभू मनुने कहाहै ॥ ५४ ॥

एककालं चरेद्भिक्षं न प्रसंजेत विस्तरे ॥ भिक्षे प्रसक्तो हि यं-  
तिविषयेष्वपि सज्जति ॥ ५५ ॥ विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भु-  
क्तवज्जने ॥ वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं र्यतिश्चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका—एकवार प्राणधारणके लिये भिक्षा करै अधिक न करै क्योंकि बहुत भिक्षाके भोजन करनेवाले यतीकी प्रधान धातुके बढनेसे स्त्री आदि विषयोंकी इच्छा होगी ॥ ५५ ॥ रसोईकी धुँआँ दूरि होनेपर और मूसलके कूटनेका शब्द बंद होनेपर तथा रसोईका आगि बुझि जानेपर और गृहस्थतक सबोंके भोजन करलेनेपर त्याग किये हुए सरावोमें यती सदा भिक्षाको करै ॥ ५६ ॥

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैवं न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिकमात्रः  
स्यान्मात्रासंगाद्विर्निर्गतः ॥ ५७ ॥ अभिपूजितलाभास्तु जुगुप्सते  
व सर्वशः ॥ अभिपूजितलाभैश्च र्यतिमुक्तोऽपि बध्यते ॥ ५८ ॥

टीका—भिक्षा आदिके न मिलनेमें दुःखी न होय और मिलनेमें सुखी न होय प्रा-  
णोंके निर्वाह योग्य भोजन किया करै और दंड कमंडलु आदि मात्राओंमेंभी यह



बुराहै इसको छोड़ताहों यह अच्छाहै इसको लेताहों ऐसी बातोंको छोड़दै ॥ ५७ ॥  
आदरसमेत भिक्षाके लाभकी सदा निंदा करै अर्थात् ग्रहण न करै जिस्से सत्कार  
पूर्वक भिक्षा लेनेसे देनेवालेमें स्नेह ममता आदिसे आसन्नमुक्तिभी यति जन्मरूप  
बंधनको प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

अल्पात्राभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च ॥ द्वियमानानि विषये  
रिन्द्रियाणि निर्वर्त्तयेत् ॥ ५९ ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष-  
क्षयेण च ॥ अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ६० ॥

टीका—थोड़े आहारके खानेसे और एकांत स्थानमें रहनेसे. रूप आदि विशेषों  
करि खींची गई इन्द्रियोंको निवृत्त करै अर्थात् विषयोंसे हटावै ॥ ५९ ॥  
इन्द्रियोंके रोकनेसे और रागद्वेषके दूरि होनेसे और प्राणियोंकी हिंसा न करनेसे  
मोक्षके योग्य होताहै ॥ ६० ॥

अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः ॥ निरये चैव पतनं यात-  
नाश्च यर्मक्षये ॥ ६१ ॥ विप्रयोगं प्रियैश्चैव संयोगं च तथोप्रि-  
यैः ॥ जरया चाभिभवं व्याधिभिश्चोपपीडनम् ॥ ६२ ॥

टीका—शास्त्रमें कहे हुएके न करने और निंदितके करनेरूप कर्मके दोषसे उत्पन्न  
हुई मनुष्योंकी पशु आदि योनिकी प्राप्तिका और नरकमें गिरनेका और यमलोकमें  
स्थितका तीव्र खड्गसे काटने आदिसे उत्पन्न श्रुति पुराण आदिमें कही हुई तीव्र  
पीडाओंका चिंतवन करै ॥ ६१ ॥ प्यारे पुत्र आदिके वियोगको और अनिष्ट क-  
हिये न चाहे हुए हिंसक आदिके मिलनेको और बुढापे करि दवाय लेनेको  
तथा रोग आदिसे पीडित होने आदिको कर्मके दोषोंसे उत्पन्न चिंतवन करै ॥ ६२ ॥

देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम् ॥ योनिकोटिसहस्रेषु  
सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ॥ ६३ ॥ अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं श-  
रीरिणाम् ॥ धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ ६४ ॥

टीका—इस देहसे जीवात्माका निकलना अर्थात् मर्मके भेद न करनेवाले बडे  
रोगों करि घिरे हुए और कफ आदि दोषों करि घिरे हुए कंठसे बडी व्यथा  
का तथा गर्भमें उत्पन्न होनेके बडे दुःखयुक्त कुत्ता स्यार आदिकी नीच करोड़ों  
योनियोंमें जानेको अपने कर्मके बंधन चिंतवन करै ॥ ६३ ॥ जीवात्माओंको अध-  
र्मकारण दुःख होनेका और धर्म जिस कारण ऐसा अर्थ ब्रह्मका साक्षात् होना  
तिस्से उत्पन्न मोक्षरूप अक्षय ब्रह्मसुखके मिलनेका चिंतवन करै ॥ ६४ ॥



सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः ॥ देहेषु च संमुत्प-  
त्तिमुत्तमेष्वधमेषु च ॥ ६५ ॥ दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्रा-  
श्रमे रतः ॥ समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥ ६६ ॥

टीका-योगसे अर्थात् विषयोंसे चित्तकी वृत्तिके रोकनेसे परमात्माके स्थूल शरीर आदिकी अपेक्षासे सबके अंतर्धामी भावसे सूक्ष्मता कहिये अवयव रहित होनेका उसके त्यागसे ऊचनीच देव पशु आदि शरीरोंमें जीवोंके शुभ अशुभ फल भोगनेके लिये उत्पन्न होनेका चिंतवन करै ॥ ६५ ॥ जिस किसी आश्रममें स्थित उस आश्रमके विरुद्ध आचारसे दूषित होनेपरभी और आश्रमके चिन्होंसे रहित भी सब भूतोंमें ब्रह्मबुद्धिसे समान दृष्टि होता हुआ धर्मको करै दंड आदि चिन्होंका धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु शास्त्रमें कहे हुएका करना यह धर्मकी मुख्यता दिखानेके लिये कहा है कुछ दंड आदि चिन्होंके त्यागके लिये नहीं कहा है ॥ ६६ ॥

फलं कर्तृकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ॥ न नामग्रहणादेव तस्य  
वारि प्रसीदति ॥ ६७ ॥ संरक्षणार्थं जन्तूनां रात्रावर्हनि वा-  
सदा ॥ शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत् ॥ ६८ ॥

टीका-यद्यपि रीठके वृक्षका फल जलका निर्मल करनेवाला है तबभी उसके नाम लेनेसे जल निर्मल नहीं होता है किंतु फलके डारनेसे ऐसेही केवल चिन्ह-धारण करनाही धर्मका कारण नहीं है किंतु कहे हुएका करना ॥ ६७ ॥ शरीर को दुःख होनेपरभी छोटी चीटी आदिकी रक्षाके लिये रातिमें अथवा दिनमें सदा भूमिको देखकै विचरै ॥ ६८ ॥

अह्ना रात्र्या च याजन्तून्निहन्त्यज्ञानतो यतिः ॥ तेषां स्नात्वा विशु-  
द्धयर्थं प्राणायामान्षडौचरेत् ॥ ६९ ॥ प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयो-  
ऽपि विधिवत्कृताः ॥ व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥ ७० ॥

टीका-यती रातिदिनमें अज्ञानसे जिन प्राणियोंको मारता है उनके मारनेसे उत्पन्न पाप दूर होनेके लिये स्नान करिकै छः प्राणायामोंको करै ॥ ६९ ॥ सा-त व्याहृति और प्रणव करिकै युक्त पूरक कुंभक रेचक विधिसे किये गये तीनि भी प्राणायाम ब्राह्मणका श्रेष्ठ तप जाना चाहिये ॥ ७० ॥



दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मर्लाः ॥ तथेन्द्रियाणां द-  
ह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ७१ ॥ प्राणायामैर्देहे दोषान्धारणा  
भिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वराङ्गुणान् ७२

टीका—जैसे घरियामें रखकै तपानेसे सुवर्ण आदि सब धातुओंके मल जल जाते हैं ऐसेही प्राणायामके करनेसे इंद्रियोंके सब दोष भस्म हो जाते हैं ॥ ७१ ॥ प्राणा यामोंसे राग आदि दोषोंको जलावै और अपेक्षित देशमें परब्रह्म आदिमें मनकी धारणासे पापका नाश करै और प्रत्याहार कहिये विषयोंसे इंद्रियोंके खींचनेसे विषयोंके योगका निवारण करै और ब्रह्मके ध्यानसे जो ईश्वर विषयक नहीं है ऐसे क्रोध लोभ असूया आदि गुणोंको निवारण करै ॥ ७२ ॥

उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ॥ ध्यानयोगेन संपश्ये-  
द्भूतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ७३ ॥ सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न  
निर्वध्यते ॥ दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ ७४ ॥

टीका—शास्त्रसे जिनका अंतःकरण संस्कारयुक्त नहीं है ऐसे पुरुषोंकरि दुःखसे जाननेयोग्य ऐसी इस जीवकी ऊच नीच देव पशु आदिमें जन्मकी प्राप्तिको ध्यानके योगसे कारणसहित भलीभांति जानै तिसपीछे ब्रह्मज्ञानमें निष्ठ होय ॥ ७३ ॥ तत्त्वसे ब्रह्मका साक्षात्करनेवाला पुरुष कर्मोंसे नहीं बंधता है और कर्म उसके फिर जन्मके लिये नहीं समर्थ होते हैं कारण यह है कि पहले इकठे किये हुए पाप पुण्य का ब्रह्मज्ञानसे नाश होजाताहै औ दर्शन जो ब्रह्मका साक्षात्करना है तिससे रहित संसार कहिये जन्ममरणके प्रबंधको प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

अहिसंयेन्द्रियासंगैर्वेदि कैश्चैव कर्मभिः ॥ तपसंश्चरणैश्चोग्रैः सा-  
धयन्तीह तत्पदम् ॥ ७५ ॥ अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणि-  
तलेपनम् ॥ चर्मावर्नद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ ७६ ॥

टीका—निषिद्ध हिंसाके बचानेसे और विषयोंके संगसे इंद्रियोंके रोकनेसे और वेदमें कहे हुए नित्य कर्मोंके करनेसे और तप जे हैं उपवास चांद्रायण आदि तिनके करनेसे इस लोकमें उसके पद अर्थात् ब्रह्ममें अत्यंत लयकौ प्राप्त होते है ॥ ७५ ॥ हड्डीही जिसमें थूनीके समानहैं और स्नायुरूपी रस्सियो से बंधा हुआ है मांस तथा रुधिरसे लिपा हुआ है और चर्मसे मढा हुआ मूत्र तथा विष्ठासे भरा हुआहै इस्से दुर्गन्धयुक्त है ॥ ७६ ॥



जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् ॥ रजस्वलं मनित्यं च भू-  
तावासमिमं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुं  
निर्यथा ॥ तथा त्यजेन्निमं देहं<sup>१</sup> कच्छाद्ग्राहाद्विसुच्यते ॥ ७८ ॥

टीका-बुढापा तथा शोक करि युक्त और नानाप्रकारके रोगोंका स्थान  
और आतुर कहिये क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिमें घबरानेवाला तथा रजोगु  
ण करिकै युक्त और अनित्य कहिये नाश होनेवाले और पृथिवी आदि पांच भू-  
तोंसे बने हुए इस आवास कहिये जीवके घररूप देहको छोड़दे जैसे फिर देह  
न धारण करनेपरै सो करै ॥ ७७ ॥ जो कर्माधीन देहके पातको देखताहै वह  
नदीके किनारेको जैसे वृक्ष छोड़देताहै अर्थात् अपने गिरनेको नही जानता हुआ  
नदीके वेग करि गिराया जाताहै तैसे देहको छोड़ता हुआ ज्ञान तथा कर्मकी अ-  
धिकतासे भीष्म आदिकोंके समान स्वाधीनमृत्यु हो वह जैसे पक्षी अपनी इच्छा  
से वृक्षको छोड़ि देताहै तैसे इस देहको छोड़ता हुआ ग्राहसे मानों ऐसे संसार  
के कष्टसे छूटि जाता है ॥ ७८ ॥

प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम् ॥ विसृज्य ध्यानयोगेन  
ब्रह्माभ्येति<sup>१</sup> सनातनम् ॥ ७९ ॥ यदा भावेन भवति सर्वभावेषु  
निःस्पृहः ॥ तदा सुखमवाप्नो<sup>१</sup>ति प्रेत्यचेहं च शाश्वतम् ॥ ८० ॥

टीका-ब्रह्मके जानने रूप आपने प्रियके हित करनेवालोंमें सुकृतको और अप्रिय  
कहिये अनहित करनेवालोंमें दुष्कृत जो पापहै ताहि राखिकै ध्यानके योगसे नित्य  
ब्रह्ममें लीन होताहै ॥ ७९ ॥ जब परमार्थसे विषयोंमें दोषोंकी भावना करिकै सब  
विषयोंमें अभिलाष रहित होताहै तब इस लोकमें संतोषसे उत्पन्न सुख होताहै और  
परलोकमें अविनाशी मोक्षसुखको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥

अनेन विधिना सर्वास्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः<sup>१</sup> ॥ सर्वद्वन्द्ववि  
निर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ ध्यानिकं सर्वमेवैतद्वदेतदभि-  
शब्दितम् ॥ न ह्यनर्ध्यात्मवित्केश्चिक्रियाफलमुपैश्रुते ॥ ८२ ॥

टीका-पुत्र स्त्री वित्त आदिमें ममतारूप सब संगोंको छोड़कै द्वंद्व जे मान अप-  
मान आदिहै तिनसे छूटि करि इस कहे हुए ज्ञानकर्मके करनेसे ब्रह्ममें आत्यंतिक  
लयको प्राप्त होताहै अर्थात् तद्रूप होजाताहै ॥ ८१ ॥ जो यह पुत्र पौत्र आदिकी  
ममताका त्याग और मान अपमान आदिकी हानि कही सो सब यह ध्यानिक है



अर्थात् आत्माका परमात्मारूपसे ध्यान करने करिकै होताहै जब आत्माको परमात्मा यह जानताहै तब सब सत्त्वोंसे विशेष नहीं होताहै अर्थात् उसका कहीं ममत्व और मान अपमान आदि नहीं होताहै और जो जीवका परमात्मापन कहाहै उसको जो नहीं जानताहै वह ममताका त्याग तथा मान अपमान आदिकी हानिको और मोक्षरूप ध्यानके फलको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ८२ ॥

अधिर्यज्ञं ब्रह्मं जपेदाधिदैविकमेव च ॥ आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ ८३ ॥ इदं शरणमज्ञानामिदमेव विज्ञानताम् ॥ इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ ८४ ॥

टीका—यज्ञकेमध्ये जो वेद प्रवृत्तहै तथा देवताओंके मध्यें जो प्रवृत्तहै तथा जीवके मध्ये जो वेदांतमें “सत्यंज्ञानमनंतब्रह्म” इत्यादिक ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले वेदहै उसको सदा जपै ॥ ८३ ॥ यह वेदनाम ब्रह्म उसका अर्थ नजाननेवालोंकीभी शरण कहिये गतिहै अर्थात् पाठमात्रभी पापके क्षयका कारण है तौ स्वर्ग तथा मोक्षके चाहनेवाले जो उसके अर्थके ज्ञाताहै उनका उनके उपायका उपदेश करने और प्राप्तिका कारण होनेसे यही शरण कहीये गति है ॥ ८४ ॥

अनेन कर्मयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ॥ स विधूयेह पार्ष्णान् परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८५ ॥ एष धर्मोऽनुशिष्टो वो यतीनां नियतात्मनाम् ॥ वेदसंन्यासिकानां तु कर्मयोगं निबोधत ॥ ८६ ॥

टीका—इस क्रमसे कहे हुए अनुष्ठानसे जो संन्यासको धारण करताहै वह इस लोकमें पापको छोड़कर परब्रह्मको प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ कुटीचक बहूदक हंस और परमहंसहै संज्ञा जिनकी ऐसे चारौ यती कहिये संन्यासियोंका साधारण धर्म तुमसे कहा अब यतिविशेष जे कुटीचकनामहै जो वेदमें कहे हुए अग्निहोत्र आदि कर्मके त्यागी है उनके मुख्य वक्ष्यमाण कर्मसंबंधको सुनिये ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ एते गृहस्थप्रभवाश्च त्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ८७ ॥ सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः ॥ यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥

टीका—ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये पृथक् आश्रम कहे ये चारौ गृहस्थसे उत्पन्नहै ॥ ८७ ॥ शास्त्रके अनुसार सेवन किये हुए ये चारों आश्रम कहे हुएके अनुसार करनेवाले ब्राह्मणको मोक्षरूप गतिकों पहुंचाते है ॥ ८८ ॥



सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः॥ गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठं सं त्री-  
नेतान्निर्भाति हि ॥ ८९ ॥ यथा नदीनदाः सर्वे सांगरे यान्ति  
संस्थितिम् ॥ तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ ९० ॥

टीका—इन सब ब्रह्मचारी आदिकोंमें गृहस्थ अग्निहोत्र आदिके करनेसे मनु आ-  
दिकोंने श्रेष्ठ कहाहै जिसे यह गृहस्थ ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और यती इन तीनोंको  
भिक्षा देनेसे पालन करताहै इससेभी यह श्रेष्ठहै ॥ ८९ ॥ जैसे सब नदीनदगंगाशो-  
ण आदि समुद्रमें अवस्थितिको प्राप्त होते हैं ऐसे गृहस्थसे अन्य सब आश्रमी गृह-  
स्थके आधीन जीवन होनेसे उसके समीप अवस्थितिको प्राप्तहोतेहै ॥ ९० ॥

चतुर्भिरपि चैवैते नित्यमाश्रमभिर्द्विजैः॥ दशलक्षणको धर्मः से-  
वितव्यः प्रयत्नतः ॥ ९१ ॥ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय-  
निग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ ९२ ॥

टीका—इन ब्रह्मचर्य आदि चारों आश्रमी द्विजो करिके दशप्रकारकाहै स्वरूप  
जिसका ऐसा धर्म यत्नसे सदा करने योग्यहै ॥ ९१ ॥ धृति कहिये संतोष और  
क्षमा कहिये दूसरे करि अपकार करनेपरभी उसका बदलेका अपकार न करना और  
दम कहिये विकारके कारण विषयके निकट होनेपरभी मनका नही बिगडना और अ-  
स्तेय कहिये अन्यायसे पराये धनका न लेना और शौच कहिये मट्टी तथा जलसे  
देहका शुद्ध करना और इन्द्रिय निग्रह कहिये विषयोंसे चक्षु आदिका रोकना  
और धी कहिये शास्त्र आदिके तत्त्वका ज्ञान और विद्या कहिये आत्मज्ञान और  
सत्य कहिये यथार्थ कहना और अक्रोध कहिये क्रोधका कारण होनेपरभी क्रोध  
न होना यह दशप्रकारका धर्मका स्वरूपहै ॥ ९२ ॥

दशं लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीर्यते ॥ अधीत्य चानुवर्त-  
न्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठ-  
न्समाहितः ॥ वेदान्तं विधिर्वह्नुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ९४ ॥

टीका—जो ब्राह्मण ये दशप्रकारके धर्मस्वरूपोंको पढते हैं और पढकर आत्मज्ञा-  
नकी सहायतासे अनुष्ठान करते हैं वे ब्रह्मज्ञानके उत्कर्षसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त  
होते हैं ॥ ९३ ॥ कहे हैं लक्षण जिसके ऐसे दशप्रकारके धर्मको सावधान मनसे करता  
हुआ गृहस्थकी अवस्थामें उपनिषद् आदिके अर्थके अध्ययन धर्मोंको गुरुके मुखसे सु-  
निकै देवआदि तीनि ऋणोंका शोधनकरि संन्यासको करै ॥ ९४ ॥



संन्यस्य सर्वकर्मणि कर्मदोषानपानुर्दन् ॥ नित्यतो वेदमभ्यस्य पु-  
त्रैश्वर्यं सुखं वसेत् ॥ ९५ ॥ एवं संन्यस्य कर्मणि सर्वकार्यपरमोऽ-  
रूपहः ॥ संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ९६ ॥

टीका—गृहस्थ करि करनेयोग्य अग्निहोत्र आदिकर्मोंको छोडकर विना जाने हुए जीवोंके वध आदिसे उत्पन्न हुए पापोंको प्राणायाम आदिसं नाश करता हुआ जितेंद्रिय हो उपनिषदोंका ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करि पुत्रके घरमें पुत्र करि दिये हुए भोजन वस्त्रसे जीविकाकी चिंतारहित हो सुखसे बसे कुटीचरका यही मुख्य धर्म कहाहै ॥ ९५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे वर्तमान अग्निहोत्र आदि गृहस्थके कर्मोंका त्याग करि आत्माका साक्षात्कार स्वरूप कार्य है प्रधान जिसके ऐसा और बंधका कारण होनेसे स्वर्ग आदिकीभी इच्छारहित संन्यास धर्मसे पा-  
पोंको नाश करि ब्रह्मके साक्षात्कारसे मोक्षरूप परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ ९६ ॥

एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ॥

पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राज्ञां धर्म निबोधत ॥ ९७ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

टीका—ऋषियोंको संबोधन देकर भृगुजी कहते हैं कि तुमसे यह ब्राह्मणका कियाकलाप धर्म कहा उसीका ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ आदिके भेदसे परलोकमें अक्षय चारिप्रकारका फल कहा अब राजसंबंधी धर्मोंको सुनिये इस श्लोकमें तौ ब्राह्मणको चारों आश्रमोंका उपदेश होनेसे और “ब्राह्मणः प्रवजेत्” यह पहले कहाहै तिस्से ब्राह्मणहीका संन्यासमें अधिकार है ॥ ९७ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

राजधर्मोऽप्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ॥ संभवश्च यथा तस्य  
सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥ ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा  
विधि ॥ सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥

टीका—राजा शब्द यहां क्षत्रिय जातिहीका कहनेवाला नहीं है किंतु जिसका राज्यमें अभिषेक हुआहै और जो पुरका पालन करनेवालाहै उसका वाची है इसीसे



“यथावृत्तोभवेन्नृपः” अर्थात् जैसे आचारवाला राजा होय उसके करनेयोग्य धर्मोंको कहौंगा और जिसप्रकारसे राजाको प्रभूने उत्पन्न किया इत्यादिसे उसकी उत्पत्ति और जैसे दृष्ट अदृष्ट फलकी संपत्ति है उस सबको कहौंगा ॥ १ ॥ ब्रह्म जो वेद है तिसकी प्राप्तिके लिये शास्त्रके अनुसार उपनयन संस्कारको प्राप्त जो क्षत्रियहै उसको शास्त्रके अनुसार अपने सब देशकी रक्षा नियमसे करनी चाहिये इससे यह दिखाया गया कि क्षत्रियही मुख्य राज्यका अधिकारी है ॥ २ ॥

अराजके हिं लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् ॥ रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ ३ ॥ इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ॥ चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रां निर्दत्त्यं शाश्वतीः ॥ ४ ॥

टीका—जिस्से राजा रहित जगत्को भयसे सब ओरोंमें चलायमान होनेपर इस सब चर अचरकी रक्षाके लिये राजाको उत्पन्न किया तिस्से राजाको रक्षा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ इंद्र पवन यम सूर्य अग्नि वरुण चंद्र और कुबेर इन सबोंके सारभूत अंशोंको खींचिकरि प्रभूने राजाको बनाया ॥ ४ ॥

यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः ॥ तस्मादभिर्भवत्येष सर्वभूतानि तेजसां ॥ ५ ॥ तपत्यादित्यवैश्वेष चक्षुषि च मर्नासि च ॥ न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ॥ ६ ॥

टीका—जिस्से इंद्र आदि श्रेष्ठ देवताओंके अंशसे राजा उत्पन्न किया गयाहै तिस्सेही राजा सब प्राणियोंसे पराक्रममें अधिक होताहै ॥ ५ ॥ यह राजा अपने तेजसे सूर्यके समान देखनेवालोंकी आखों और मनको तपाताहै पृथ्वीमें इस राजाको कोई सामनेसे नहीं देखि सकताहै ॥ ६ ॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः सं धर्मराट् ॥ स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ ७ ॥ बालोऽपि नैवमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः ॥ महंती देवता ह्येषा नैरूपेण तिष्ठति ॥ ८ ॥

टीका—ऐसे अग्नि आदि पहले कहे हुए देवताओंके अंशसे उत्पन्न होने और उनका कर्म करनेसे वह राजा शक्तिकी अधिकतासे अग्नि आदिका रूप होताहै ॥ ७ ॥ मनुष्य ऐसा समझिकै बालकभी राजा अपमानके योग्य नहीं है जिस्से यह कोई बड़ी देवताहै मनुष्यके रूपसे स्थितहै ॥ ८ ॥

एकमेव दहत्यग्निं नरं दुरूपसर्पिणम् ॥ कुलं दहति राजाग्निः सप-



शुद्रव्यसंचयम् ॥ ९ ॥ कार्यं सोऽवेक्ष्यं शक्तिं च देशकालौ च  
तत्त्वतः ॥ कुरुते धर्मसिद्धयर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः ॥ १० ॥

टीका—जो असावधानीसे अग्निके समीप जाताहै वह दुरुपसर्पी कहाताहै उस  
एकको अग्नि जलाताहै उसके पुत्र आदिको नहीं और क्रोधित हुआ राजा रूप  
अग्नि पुत्र स्त्री भाई आदि सब कुलको और गौ घोडा आदिको सुवर्ण आदि-  
धनसंचयसमेत दोषीको मारताहै ॥ ९ ॥ वह राजा प्रयोजनकी अपेक्षासे देशकाल  
तथा अपनी शक्तिको देखि कार्यकी सिद्धिके लिये तत्वसे बारंवार बहुतसे रूपों-  
को करताहै और शक्तिके न होनेपर क्षमा करताहै और शक्तिको पाकै  
उखाड देताहै ॥ १० ॥

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीविजयश्च पराक्रमे ॥ मृत्युश्च वसति क्रोधे  
सर्वतेजोर्मयो हि सः ॥ ११ ॥ तं यस्तु द्वेष्टि संमोहांतसं विनश्य-  
त्यसंशयम् ॥ तस्य ह्यंशुं विनाशाय राजां प्रकुरुते मनः ॥ १२ ॥

टीका—जिसकी प्रसन्नतामें बहुतसी लक्ष्मी होती है इस्से लक्ष्मीकी इच्छावा-  
लेको राजा सेवन करनेयोग्यहै और जिसके पराक्रममें विजय होताहै और  
जिसके क्रोधमें मृत्यु वसताहै अर्थात् जिसपर क्रोध करताहै उसको मारताहै तिस्से  
जो पुरुष जीवना चाहै वह राजाको क्रोधित न करै जिस्से वह राजा सूर्य अग्नि  
और चंद्रमा आदिके तेजको धारण करताहै ॥ ११ ॥ मूर्खतासे जो उस राजासे  
द्वेष करताहै अर्थात् उसको अप्रसन्न करताहै वह राजाके क्रोधसे निश्चय नाशको  
प्राप्त होताहै जिस्से राजा उसके नाशमें मन लगाताहै ॥ १२ ॥

तस्माद्धर्मं यमिष्टेषु सर्वं व्यवस्येन्नराधिपः ॥ अनिष्टं चाप्यनिष्टेषु  
तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १३ ॥ तस्यार्थं सर्वभूतानां गोप्तारं  
धर्ममात्मजम् ॥ ब्रह्मतेजोर्मयं दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः ॥ १४ ॥

टीका—जिस्से राजा सर्व तेजोमयहै तिस्से अपेक्षितोंमें जिस यज्ञको शास्त्रसे कर-  
नेयोग्य निश्चय करताहै उसको स्थापित करताहै उस धर्मका उल्लंघन न करै ॥ १३ ॥  
उस राजाकी प्रयोजन सिद्धिके लिये सब प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले धर्मस्वरूप  
पुत्र दंडको ब्रह्मके केवल तेजसे बनाया ब्रह्माने पहले पंचभूतोंसे बने हुए देहको  
नहीं बनाया ॥ १४ ॥

तस्य सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ भयाद्भोगाय कं-



लपन्ते स्वधर्मान्नं चलन्ति च ॥ १५ ॥ तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां  
चावेक्ष्य तत्त्वतः ॥ यथार्हतः संप्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्तिषु ॥ १६ ॥

टीका—उस दंडके भयसे स्थावर जंगम सब प्राणि भोग करनेको समर्थ होते हैं और जो दंड न होता तौ बलवान् दुर्बलके धन दारा आदिके लेनेमें और उससे बलवानको उसके तौ किसीकाभी भोग सिद्ध न होता और वृक्ष आदि स्थावरोंके काटनेमें भोगकी सिद्धि न होती तैसेही सज्जनोंकोभी नित्यनैमित्तिक अपने धर्मका करना योग्य हुआ न करनेमें यमयातना कहिये दंडके भयसेही ॥ १५ ॥ उस दंड तथा देश काल शक्ति और विद्या आदिको और जिस अपराधमे जो दंड योग्य होय इत्यादिको शास्त्रके अनुसार तत्वसे समझके अपराधियोंको दंडदे ॥ १६ ॥

सं राजा पुरुषो दण्डः सं नेता शासिता च सं ॥ चतुर्णामाश्रमाणां  
च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १७ ॥ दण्डः शास्तिं प्रजाः सर्वा दण्डं  
एवाभिरक्षति ॥ दण्डः सुतेषु जागति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ १८ ॥

टीका—वही दंड वास्तवमें राजाहै और वही पुरुषहै और सब स्त्रियाँ है और वही नेता कहिये सबके कार्योंका प्राप्त करनेवाला और वही शासिता कहिये आज्ञा देनेवाला और वही चारों आश्रमोंका जो धर्म है उसके प्रतिपादन करनेमे प्रतिभू जो जमानत करनेवालाहै उसके समान मुनियोंने कहाहै ॥ १७ ॥ दंड सब प्रजाओंका शासन करताहै और दंडही सब प्रजाओंकी रक्षा करताहै और सबोंके सोनेपर दंडही जागताहै अर्थात् उसके भयसे चोर आदि नहीं आते हैं और दंडहीको धर्मका कारण होनेसे दंडहीको धर्म जानते हैं यहां कार्यमे कारणका उपचार और इस लोक तथा परलोकके धर्म दंडहीके भयसे किये जाते हैं ॥ १८ ॥

समीक्ष्य सं धूर्तः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ॥ असमीक्ष्य प्रणी  
तंस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ १९ ॥ यदि न प्रणयेद्राजा दण्डं द-  
ण्डेष्वतन्द्रितः ॥ शूलं मत्स्यानिवांभक्ष्यन्दुर्बलान्बलवर्तराः ॥ २० ॥

टीका—शास्त्रकी रीति भली भांति विचारिके अपराधके अनुसार देह धन आदिमें किया गया दंड सब प्रजाओंको प्रीतियुक्त करताहै और विना विचारके लोभ आदिसे किया हुआ सब देश धन पुत्र आदिकोंको नाश कर देताहै ॥ १९ ॥ जो राजा आलस्य रहित होके दंड न दे तौ बलवान् दुर्बलोंको ऐसे मारे जैसे शूलमें छेदिके मछलियोंको भूजते हैं ॥ २० ॥



अद्यात्कार्कः पुरोडाशं श्वाँ च लिह्याद्भविस्तथा॥ स्वाम्यं च न स्या  
त्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तताधरोत्तरम्॥ २१॥ सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो  
हि शुचिर्नरः॥ दण्डस्य हि भयात्सर्वं जगद्भोगार्थं कल्पते ॥ २२॥

टीका—जो राजा दंड न दे तो यज्ञोंमें सब प्रकारसे हविके अयोग्य कौआ पु-  
रोडाश जो यज्ञभाग है तिसे खाय जाय तैसेही कुत्ता खोर आदि हविको चाटि  
जाय और किसीका कहीं अधिकार न होय क्योंकि बलवान् उसको छीनले और  
ब्राह्मण आदिवर्णोंमें जो नीच शूद्र आदि हैं वेही मुख्य होजाय ॥ २१ ॥ दंड करि  
नियममें स्थापित किया गया सब लोक सन्मार्गमें स्थित रहताहै स्वभावसे शुद्ध म-  
नुष्य कठिनतासे मिलताहै तैसेही यह सब जगत् दंडहीके भयसे आवश्यक भोजन  
आदिके भोगमें समर्थ होताहै ॥ २२ ॥

देवदानवगन्धर्वा रक्षांसि पतंगोरगाः ॥ तेषु भोगाय कल्पन्ते  
दण्डेनैव निपीडिताः ॥ २३ ॥ दुष्प्रेयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसे  
तवः ॥ सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ २४ ॥

टीका—इंद्र अग्नि सूर्य वायु आदि देवता तथा दानव गंधर्व राक्षस पक्षी और सर्प-  
भी जगदीश्वरके परमार्थ भयसे पीडितही वरसने आदिके उपकारके लिये प्रवृत्त होते  
है ॥ २३ ॥ दंडके न करनेसे अथवा अनुचित करनेसे ब्राह्मण आदि वर्ण आपसमें  
स्त्रीगमन करनेसे वर्णसंकर होजाय और धर्म अर्थ काम मोक्ष है फल जिनका ऐसे  
सब शास्त्रोंके नियम नष्ट होजाय और चोरी तथा साहस आदिसे दूसरेका अपकार  
करनेसे सब लोकमें उपद्रव उत्पन्न हो जाय ॥ २४ ॥

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डैश्चरति पापहा ॥ प्रजास्तत्र न मुह्यं-  
ति नेतां चेतसाधु पश्यति॥ २५॥ तस्यार्हुः संप्रणेतारं राजानं सत्यं  
वादिनम् ॥ समीक्ष्यकारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ २६ ॥

टीका—जिस देशमें शास्त्रके प्रमाणसे जाना हुआ श्यामवर्ण लाल जिसके नेत्र  
ऐसाहै देवता जिसका ऐसा दंड विचरता है वहां प्रजा व्याकुल नहीं होतीहै जो दंड  
देनेवाला विषयके अनुरूप दंडको भलीभांति जानता होय ॥ २५ ॥ सत्यबोलनेवाले  
और विचारिके करनेवाले तथा तत्त्व अतत्त्वके विचारमें उचित बुद्धिसे शोभायमान  
और धर्म अर्थ कामके जाननेवाले अभिषेक आदि गुणोंकरि युक्त राजाको मनु आ-  
दि दंडका प्रवर्त्तक अर्थात् चलानेवाला कहते हैं ॥ २६ ॥



तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिर्वर्धते ॥ कामात्मा विषमः  
 क्षुद्रो दण्डेनैवं निहन्यते ॥ २७ ॥ दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चा-  
 कृतात्मभिः ॥ धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेवं सबान्धवम् ॥ २८ ॥

टीका—उस दंडको भलीभांति प्रवृत्त करता हुआ राजा धर्म अर्थ और कामसे वृ-  
 द्धिको प्राप्त होताहै और जो विषयकी इच्छा रखनेवाला तथा विषम क्रोध करनेवाला  
 क्षुद्र तथा छलका दंडनेवाला राजा होताहै वह अपनेही किए हुए दंड करि मंत्री आ-  
 दिके कोपसे अथवा अधर्मसे नष्ट किया जाताहै ॥ २७ ॥ दंड अति उत्कृष्ट तेजस्व-  
 रूपहै और अपने शास्त्र कहिये राजनीति करि जिसके आत्माका संस्कार नहीं है ऐ-  
 से पुरुष करि दुःखसे धारण किया जाताहै इससे राजधर्म रहित राजाहीको पुत्रबंधु-  
 समेत नाश करताहै ॥ २८ ॥

ततो दुर्गे च राष्ट्रं च लोकं च सचराचरम् ॥ अंतरिक्षगतांश्चैवं मु-  
 नीन् देवांश्च पीडयेत् ॥ २९ ॥ सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृत  
 बुद्धिना ॥ न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेर्न विषयेषु च ॥ ३० ॥

टीका—दोष आदिकोंकी अपेक्षा विना जो दंड किया जाताहै वह बंधुसमेत राजाके  
 नाशके पीछे धन्य आदि दुर्गको और राष्ट्र कहिये देशको तथा स्थावरजंगम समेत  
 पृथिवी लोकको और हविके न देनेके कारण आकाशमें स्थित ऋषियों तथा देवता-  
 ओंको पीडित करताहै ॥ २९ ॥ मंत्री सेनापति और पुरोहित आदिकी सहायतासे  
 हीन मूर्ख लोभी और जिसकी बुद्धिका शास्त्रसे सत्कार नहीं हुआहै अर्थात् जिसने  
 नीतिशास्त्र नहीं पढ़ाहै और जो विषयोमें लगा हुआ है ऐसे राजा करि न्यायसे दंड  
 नहीं दिया जासक्ताहै ॥ ३० ॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा ॥ प्रणेतुं शक्यते द-  
 ण्डः सुसहायेन धीमता ॥ ३१ ॥ स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्दृष्टदण्ड  
 श्च शत्रुषु ॥ सुहृत्स्वजिह्वाः सिग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः ॥ ३२ ॥

टीका—द्रव्य आदिकी शुद्धतासे जो युक्तहै और जिसकी प्रतिज्ञा सत्यहै और जो  
 शास्त्रसे व्यवहारको करताहै और जिसके सहायक मंत्री आदि अच्छे हैं और जो त  
 त्वको जानताहै ऐसा राजा दंड करि सकताहै ॥ ३१ ॥ अपने देशमें शास्त्रकी रीति  
 से व्यवहार करनेवाला होय और शत्रुओंमें तेज दंड देनेवाला होय और स्वभावसे  
 स्नेहके स्थान मित्रोंमें कुटिल न होय और थोडा अपराध करनेपरभी ब्राह्मणोंमें क्षमा  
 युक्त होय ॥ ३२ ॥



एवंवृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेनापि जीवतः ॥ विस्तीर्यते यंशो  
लोके तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३३ ॥ अतस्तु विपरीतस्य नृपतेर  
जितात्मनः॥संक्षिप्यते यंशो लोके घृतविन्दुरिवाम्भसि ॥ ३४ ॥

टीका-शिलोच्छृत्तिसेभी जीविका करनेवाला अर्थात् जिसके द्रव्यका भंडार खाली होगयाहै ऐसेभी उक्त प्रकारसे चलनेवाले राजाकी कीर्त्ति जलमें तेलकी बूंदके समान लोकमें फैलजाती है ॥ ३३ ॥ कहे हुए आचारसे विपरीत आचारवाले अजितेंद्रिय राजाकी कीर्त्ति जलमें घीकी बूंदके समान लोकमें सकुडि जाती है ॥ ३४ ॥

स्वेस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ॥ वर्णानामाश्रमाणां च  
राजां सृष्टोऽभिरक्षितां ॥ ३५ ॥ तेन यद्यत्सभृत्येन कर्तव्यं र-  
क्षता प्रजाः॥ तत्तद्द्वोऽहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३६ ॥

टीका-क्रमसे अपने अपने धर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण आदि सब वर्णों तथा ब्रह्मचारी आदि आश्रमोंकी रक्षा करनेवाला राजा विधाताने उत्पन्न कियाहै तिस्से उनकी रक्षा न करता हुआ राजा प्रायश्चित्ती होताहै इस्से यह सूचित हुआ कि अपने धर्मके त्यागियोंकी न रक्षा करनेमेंभी राजा प्रायश्चित्ती नहीं होताहै ॥ ३५ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करते हुए मंत्री समेत राजाको जो जो कर्त्तव्यहै वह सब तुमसे कहोंगा ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणान्पर्युपासीत प्रार्थयत्तथाय पार्थिवः ॥ त्रैविद्यवृद्धान्विदुष-  
स्तिष्ठेत्तेषां च शांसने ॥ ३७ ॥ वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेद-  
विदः शुचीन् ॥ वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते ॥ ३८ ॥

टीका-प्रतिदिन प्रातःकाल उठिकै ऋक् यजु साम नाम तीनो विद्याओंके ग्रंथोंके अर्थ जाननेवाले और नीतिशास्त्रके ज्ञाता ब्राह्मणोंका सेवन करै अर्थात् उनकी आज्ञासे काम करै ॥ ३७ ॥ अवस्था तथा तपस्या आदिसे वृद्ध और अर्थ तथा ग्रंथसे वेदके जाननेवाले और बाहर भीतर द्रव्य आदिसे शुद्ध ऐसे ब्राह्मणोंका सदा सेवन करै जिस्से वृद्धका सेवन करनेवाला सदा हिंसा करने वाले राक्षसों करिकै भी पूजा जाताहै अर्थात् वेभी उसका हित करते हैं और मनुष्य तौ बहुतही हित करते हैं ॥ ३८ ॥

तेभ्योऽधिगच्छेद्दिनयं विनीतात्मापि नित्यंशः ॥ विनीतात्मा हि



नृपति<sup>१</sup>र्न विनश्यति कर्हिचित्तं ॥ ३९ ॥ बहवोऽविनयान्नष्टा राजा  
नः सपरिच्छदाः ॥ वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपे<sup>२</sup>दिरे ४०

टीका—स्वाभाविक बुद्धि तथा अर्थशास्त्र आदिके ज्ञानसे नम्रभी अधिक नम्रताके लिये उनसे विनयका अभ्यास करै जिस्से नम्र राजाका कभी नाश न ही होताहै ॥ ३९ ॥ हाथी घोडा धनके भंडार आदि सामग्री करि युक्तभी राजा विनय रहित होनेसे नष्ट होगये और सामग्री हीन बनके रहनेवालेभी बहुतसे विनय-करि राज्यको प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

वेनोविनष्टोऽविनयान्नहुषश्चैव<sup>३</sup> पार्थिवः ॥ सुंदासो यवर्नश्चैव<sup>४</sup> सुमुखो नि<sup>५</sup>मिरेव<sup>६</sup> च ॥ ४१ ॥ पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान्मनुरेव<sup>७</sup> च ॥ कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं<sup>८</sup> चैव<sup>९</sup> गाधिजः ॥ ४२ ॥

टीका—वेन तथा नहुष राजाभी और यवनका पुत्र सुदासनाम तथा सुमुख और निमि ये अविनयसे नाशको प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ पृथु तथा मनुने विनयसे राज्य पाया और कुबेर विनयसे धनके स्वामी हुए और गाधिके पुत्र विश्वामित्रने क्षत्रिय होनेपरभी उसी शरीरसे ब्राह्मणत्व पाया ॥ ४२ ॥

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ॥ आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकंतः ॥ ४३ ॥ इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ॥ जितेन्द्रियो हि शक्रोति वंशे स्थापयितुं प्रजाः ४४

टीका—त्रिवेदीरूपविद्याके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे तीनो वेदोंको ग्रंथसे तथा अर्थसे अभ्यास करै और शाश्वती कहिये सदासे चलि आई हुई नीतिविद्या जो अर्थशास्त्र है तिसको उसके जाननेवालोंसे सीखै तथा युक्ति और प्रत्युत्तरमें सहायता देनेवाली आन्विक्षिकी कहिये तर्कविद्याको तथा उदय और दुखमें हर्ष विषादकी शांत करनेवाली ब्रह्मविद्याको सीखै और वाणिज्य पशु पालन आदि वार्ताको और उसके आरंभ धनके उपायार्थोंको उनके जाननेवाले कर्षक आदि कोंसे सीखै ॥ ४३ ॥ चक्षु आदि इंद्रियोंको विषयोंमें आसक्त होनेसे रोकनेमें सदा यत्न करै क्योंकि जितेन्द्रिय राजा सदा प्रजाओंको वशमें रखनेके लिये समर्थ होताहै ॥ ४४ ॥

दशं कामसंमुत्थानि तथैष्टौ क्रोधजानि च ॥ व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु मही



पतिः ॥ विर्युज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्व्वात्मनैव तुं ॥ ४६ ॥

टीका-आदिमें सुख और अंतमें दुःख देनेवाले दशकामके और आठ क्रोधक व्यसनोको यत्नसे त्याग करै ॥ ४५ ॥ जिस्से कामके व्यसनोमें प्रसक्त कहिये लगा हुआ राजा धर्म तथा अर्थसे हीन होजाताहै और क्रोधके व्यसनोमें प्रसक्त प्रकृति कोपसे देहके नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवोदः स्त्रियो मदः ॥ तौर्यत्रिकं वृथार्था च कामजो दंशको गर्णः ॥ ४७ ॥ पैशुन्यं साहसं द्रोहं ईर्ष्यासूर्यार्थदूषणम् ॥ वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गर्णोऽष्टकः ॥ ४८ ॥

टीका-उन व्यसनोको नामसे दिखाते हैं मृगया कहिये अहेर और अक्ष कहिये जुआ खेलना और सब कामोकी नाश करनेवाले दिनकी नींद और पराये दोषका कहना तथा स्त्रीका भोग और मद्यपानसे उत्पन्न मद और तौर्यत्रिक कहिये नाचना गाना बजाना आदि और वृथा भ्रमण करना यह दशका गण काम जो सुखकी इच्छाहै उससे उत्पन्न है ॥ ४७ ॥ पैशुन्य कहिये अज्ञात दोषका प्रकट करना और साहस कहिये बंधन आदिसे दंड देना और द्रोह कहिये छलसे मारना और ईर्षा कहिये दूसरेके गुणोका न सहना और असूया कहिये पराये गुणोमें दोषोका प्रकट करना और अर्थ दूषण कहिये द्रव्यका ले लेना तथा देनेयोग्यका न देना और वाग्दंड कहिये गाली देना और पारुष्य कहिये ताडन आदि यह आठका गण क्रोधसे उत्पन्न जानिये ॥ ४८ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ॥ तं यत्नेन जयेच्छोभं तज्जावेतावुभौ गर्णौ ॥ ४९ ॥ पानमक्षोः स्त्रियश्चैव मृगया च यथार्कमम् ॥ एतत्कष्टतमं विद्याच्चितुष्कं कामजे गणे ॥ ५० ॥

टीका-जिसको कामसे तथा क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोके गणका कारण स्मृति-योके बनानेवाले जानते हैं उस व्यसनके कारणरूप लोभको यत्नसे त्याग करै जिस्से ये दोनो गण लोभसे उत्पन्न होते हैं कही धनके लोभसे और कही दूसरे प्रकारके लोभसे ॥ ४९ ॥ मद्यका पीना फांसोसे खेलना स्त्रीका भोग और मृगया कहिये अहेर क्रमसे पढे हुए ये चारि कामसे उत्पन्न व्यसनोमेंसे बहुत दोषयुक्त होनेसे इन चारोको अतिशय करिकै दुःखका कारण जानै ॥ ५० ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ॥ क्रोधजोऽपि गर्णे वि



द्यात्कष्टमेतन्निकं सदा ॥ ५१ ॥ सप्तकस्यास्य वैर्गस्य सर्वत्रैवानु-  
षङ्गिणः ॥ पूर्वपूर्वं गुरुतरं विद्याद्वयसनमात्मवान् ॥ ५२ ॥

टीका-क्रोधसे उत्पन्न व्यसनोंके गणमें दंड देना वाणीकी कठोरता तथा अर्थदूषण इन तीनोंको बहुत दोषयुक्त होनेसे सदा अधिक दुःख देनेवाले जानै ॥ ५१ ॥ काम तथा क्रोधसे उत्पन्न इस मद्यपान आदि सात व्यसनोंके गण जो सब राजमंडलमें बहुधा स्थितहै उसमेंसे प्रशस्त चित्तवाला राजा पहले पहलेको अगले अगलेसे अति कठिन जानै सोई कहतें हैं जैसे जुवासे मद्यका पीना अतिकष्ट देनेवालाहै क्योंकि मद्य पीनेसे संज्ञा न रहनेके कारण इच्छापूर्वक चेष्टा करनेसे देह धन आदिके बिगाडनेवाले दोष होते हैं और जुआमें तौ धन आता है अथवा जाताहै और स्त्रीव्यसनसे जुआ अति कष्टका देनेवालाहै जुआमें वैरका उत्पन्न होना आदि नीतिशास्त्रके कहे हुए दोष होते हैं और मूत्रपुरीष आदि वेगोंके रोकनेसे रोगकी उत्पत्ति होती है और स्त्रीव्यसनमें फिर संतानकी उत्पत्ति आदि गुणोंका योगभी है और मृगया तथा स्त्रीका व्यसन इन दोनोंमें स्त्रीव्यसन दुष्टहै उसमें कार्योंका नही देखना और कालके उल्लंघन करनेसे धर्मलोप आदि दोष होते हैं और मृगयामें तौ श्रम करनेसे आरोग्य आदि गुणोंकाभी योगहै इस प्रकार कामसे उत्पन्न चारि व्यसनोंके गणमें पहला पहला भारी दोषयुक्तहै और क्रोधसे उत्पन्न वाक्पारुष्य आदि तीनिमें वाक्पारुष्यसे दंडपारुष्य दुष्टहै क्योंकि अंगच्छेद आदिका समाधान नही होसकताहै और वाक्पारुष्यमें तौ दान मान और पानीके छिडकनेसे क्रोध रूप अग्निकी शांति होसकती है और अर्थदूषणसे वाक्पारुष्य दोषयुक्त तथा मर्मस्थानको पीडा देनेवाला है क्योंकि वाक्पारुष्यकी चिकित्सा अतिकठिनहै सोई कहाहै की "न प्ररोहति वाक्कृतं" अर्थात् वाणीका किया हुआ फिर नही उगताहै अर्थदूषणका तौ बहुत साधन देनेसे समाधान होसकताहै इस भांति क्रोधज तीनि व्यसनोंमें पहला पहला अतिदुष्टहै इससे इसको यत्नसे त्यागिदे ॥ ५२ ॥

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ॥ व्यसन्यधोऽधो व्रजति  
स्वर्गात्यव्यसनी मृतः ॥ ५३ ॥ मौलान्छास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षा-  
न्कुलोद्भूतान् ॥ सचिवान्सर्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ ५४ ॥

टीका-ऊपर कहेहुये व्यसन और मृत्यु उसमेंसे व्यसन बहुत दुःखदाहै कारण व्यसनी मनुष्य व्यसनसे नीचेनीचे बहुत नरकमें जाताहै और निर्व्यसनी मरा हुआ ऊपर स्वर्गमें जाताहै ॥ ५३ ॥ मौल कहिये बापदादेके क्रमसे सेवक होय वेभी



लोभ आदिके क्रमसे अन्यथा करसकते हैं इसके रोकने लिये शास्त्रविदः कहिये शास्त्रके जाननेवाले होंय और शूर होंय तथा शस्त्रविद्याको भली भांति जानते होंय और शुद्ध कुलमें उत्पन्न होंय ऐसे सात अथवा आठ मंत्रियोंको मंत्र आदि करनेके लिये नियत करै ॥ ५४ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ॥ विशेषतोऽसहान्येन  
किंतु राज्ञ्य महोदयम् ॥ ५५ ॥ तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं  
संधिविग्रहम् ॥ स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ५६ ॥

टीका—सुखसेभी करनेयोग्य कामको एक मनुष्य कठिनाईसे करसकता है विशेष करिकै राज्य जिसका बड़ा फल है उसको एक कैसे कर सकता है ॥ ५५ ॥ उन मंत्रियोंके साथ सामान्य कहिये मंत्रोंमें नहीं छुपानेयोग्य ऐसे संधिविग्रह आदिकोंको सोचै और जिससे स्थित होय ऐसे स्थान तथा दंड कोश पुर देशरूप चारि प्रकारके सोचे और जिस्से दंड दिया जाय ऐसे दंड कहिये हाथी घोड़ा रथ पयादे आदिके पोषणका चिंतवन करै और कोश कहिये धनकासमूह उसकी आमदनी तथा खरचका तथा पुरकी रक्षा आदिका और देशके बसनेवाले मनुष्य पशु आदिके धारणकी योग्यताका चिंतवन करै और समुदाय कहिये धान्य हिरण्य आदिके उत्पत्तिस्थानका चिंतवन करै तथा गुप्ति कहिये अपनी और देशकी रक्षा चिंतवन करै और अपने परीक्षा किए हुए अन्नका भोजन करै और प्राप्त हुए धनके प्रशमन कहिये सत्पात्रमें देने आदिका चिंतवन करै ॥ ५६ ॥

तेषां स्वस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक्पृथक् ॥ समस्तानां च  
कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ५७ ॥ सर्वेषां तु विशिष्टेन ब्राह्म-  
णेन विपश्चिता ॥ मन्त्रयेत्परमं मन्त्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् ॥ ५८ ॥

टीका—एकांतमें उन सब सचिवोंके अपने अपने अभिप्रायोंको जानि कार्योंमें जो अपना हित होय उसको करै ॥ ५७ ॥ इन्ही सब सचिवोंमेंसे विशिष्ट कहिये विद्वान् ब्राह्मणके साथ संधिविग्रह आदि वक्ष्यमाण छः गुणोंकरि युक्त प्रकृष्ट मंत्रका निरूपण करै ॥ ५८ ॥

नित्यं तस्मिन्समाश्रितः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् ॥ तेन सार्धं विनि-  
श्चित्य ततः कर्म समारभेत् ॥ ५९ ॥ अन्यानिपि प्रकुर्वीत शुचीन्प्रा-  
ज्ञानवस्थितान् ॥ सम्यगर्थसमाहर्तृनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ६० ॥

टीका—उस ब्राह्मणमें सदा विश्वासयुक्त हो जिनको करै उन सबोंका समर्पणकरै



तिसपीछे उसके साथ निश्चय करिकै सब कर्मोंका आरंभ करै ॥ ५९ ॥ द्रव्यदान आदिसे शुद्ध बुद्धिमान् तथा भलीभांति धनके जोड़नेवाले और धर्म आदिसे परीक्षा किए गये और भी कर्म सचिवोंको राजा नियत करै ॥ ६० ॥

निर्वर्ततास्य यावद्विरितिकर्तव्यता नृभिः ॥ तावतोऽतन्द्रितान्  
दर्शान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६१ ॥ तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् द-  
क्षान् कुलोद्गतान् ॥ शुचीनां कर्मकर्मन्ते भीरून् नन्तर्निवेशने ॥ ६२ ॥

टीका-इस राजाका काम जितने मनुष्योंसे होय उतनेही आलस्य रहित कामोंमें उत्साहवाले और उन कार्योंके जाननेवाले मनुष्योंको वहां नियतकरै ॥ ६१ ॥ उन सचिवोंमेंसें वीर चतुर और अपने कुलकी मर्यादाके रखवेवाले शुद्ध तथा निस्पृहोंको धन उत्पन्न होनेके स्थानमें रखै और अंतर्निवेशने कहिये भोजन शयन तथा रनवास आदिमें भीरुकहिये डरनेवालोंको नियत करै ॥ ६२ ॥

दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ इद्रिंताकारचेषृज्ञं शुचिं  
दर्शं कुलोद्गतम् ॥ ६३ ॥ अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशका-  
लवित् ॥ वपुष्मान् वीतंभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशंस्यते ॥ ६४ ॥

टीका-दृष्ट अदृष्ट अर्थशास्त्रका जाननेवाला और इंगित कहिये अभिप्रायका सूचित करनेवाला और आकार कहिये देहधर्म आदि मुखकी प्रसन्नता अथवा विकृत होना रूप प्रीति तथा अप्रीतिका सूचित करनेवाला और चेष्टा कहिये क्रोध आदिका सूचित करनेवाला हाथोंका फटकारना आदिके तत्वका जाननेवाला और द्रव्यके देने और स्त्री आदि व्यसनसे रहित शुद्धतायुक्त तथा चतुर और कुलीन दूत नियत करै ॥ ६३ ॥ अनुरक्त कहिये लोगोमें प्रीतियुक्त होय और धन स्त्री आदिमें शुद्धतायुक्त होय और दक्ष कहिये चतुर होय और स्मृतिमान् कहिये संदेशको न भूलै और देश तथा कालका जाननेवाला होय और सुरूप कहिये सुंदररूपका होय और निर्भय होय तथा अच्छा बोलनेवाला होय अर्थात् संस्कृत-आदिभी बोल सकै ऐसा दूत राजाका प्रशंसायोग्य होताहै ॥ ६४ ॥

अर्मात्ये दण्डं आयत्तो दण्डे वैर्नयिकी क्रिया ॥ नृपतौ कोशराष्ट्रे  
च दूते संधिर्विपर्ययौ ॥ ६५ ॥ दूत एव हि संधत्ते भिन्नत्येव च  
संहतान् ॥ दूतस्तत्कुर्वते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ ६६ ॥

टीका-सेनापतिके आधीन दंड और दंडके सुंदर शिक्षा और राजाके आधीन देश तथा कोश कहिये द्रव्य समूह हैं और मेल तथा विगाड दूतके आधी-



नहै क्योंकि उसकी इच्छासे होते है ॥ ६५ ॥ दूतही भिन्नोको मिलताहै और जो मिलै है उनको फोडता है और दूत परदेशमें उस कर्मको करताहै जिसे मिले हुए फूटि जातेहैं अथवा नही फूटते है ॥ ६६ ॥

सं विद्यादस्य कृत्येषु निर्गूढेद्भितचेष्टितैः ॥ आकारमिद्भितं चेष्टां  
भृत्येषु च चिकीर्षितम् ॥ ६७ ॥ बुद्ध्या च सर्वं तत्त्वेन परराजचि  
कीर्षितम् ॥ तथा प्रयत्नमार्तिष्ठेयार्त्तमानं न पीडयेत् ॥ ६८ ॥

टीका-वह दूत इस प्रतिपक्षी राजाके कर्त्तव्य कामोंका आकार तथा हृदयका भाव और चेष्टासे जानै और गुप्त दूत प्रतिपक्षी राजाका प्ररिजन होके उस समीप नियोजितकिये गये क्रोधि लोभी और अपमान किये गये सेवकोंमें उनके आकार और हृदयका भाव तथा चेष्टासे प्रतिपक्षी राजाका काम जिसको वह किया चाहताहै जानै ॥ ६७ ॥ जिसके लक्षण कहे है ऐसे दूतके द्वारा प्रतिपक्षी राजाके चाहे हुये कर्त्तव्य कामोंको तत्त्वसे जानिकै ऐसा यत्न करै जिसमें अपनेको पीडा न होय ॥ ६८ ॥

जाङ्गलं सस्यसंपन्नमार्यप्रायमनाविलम् ॥ रम्यमानतंसामन्तं  
स्वाजीव्यं देशमावसेत् ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्ष  
मेव वा ॥ नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ७० ॥

टीका-जिसदेशमें जल तथा तृण कम होता होय और पवन तथा घाम बहुत होता होय तथा बहुतसे धान्य आदिकरि युक्त होय जिसमें बहुतसे धर्मात्मा मनुष्य रहते होंय और रोग आदि जिसमें कम होय और फल फूल वृक्ष लता आदिकोंसे मनोहर होय और जिसमें वीर आदि सब प्रजा नम्रतापूर्वक विकार रहित रहती होय और खेती वाणिज्य आदि जीविका सुलभ होय ऐसे देशका आश्रम लेकर राजा निवास करै ॥ ६९ ॥ धन्वदुर्ग कहिये जिसके चारो ओर १० कोशतक मरु कहिये जल रहित देश होय और मही दुर्ग कहिये पत्थरों अथवा ईटोंसे बना हुआ चौड़ाईसे दुगुणा ऊंचा अर्थात् बारह हाथ आदि ऊंचा और युद्धके लिये चलने फिरने योग्य और रोकयुक्त झरोखा वा रंदोकरि युक्त परकोटेसे घिरा हुआ स्थान और जलदुर्ग कहिये अथवा जलसे सब ओर घिरा हुआ और वार्क्षदुर्ग बाहर चारों ओर चारि कोश तक बडे वृक्षका टोंके लता गुल्मआदिसे व्याप्त होय और नृदुर्ग चारों ओर रहनेवाले हाथी घोडा रथ युक्त बहुतसे पयादों करि रक्षा किया गया होय और



गिरिदुर्ग कहिये बड़ी कठिनतासे चढ़नेके योग्य पहाड़पर सकड़े मार्गोंकरि युक्त भीतर नदी झरणा आदिके जलसे युक्त और बहुत अन्न जिनमें उत्पन्न होताहै ऐसे खेतोंकरि युक्त ऐसे दुर्गोंमेंसे किसी एक दुर्गका आश्रय लेकर राजा अपना नगर बसावै ॥ ७० ॥

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत् ॥ एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते ॥ ७१ ॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ता-श्रयाऽपचराः ॥ त्रीण्युत्तराणि क्रमशः पूर्वङ्गमनरामराः ॥ ७२ ॥

टीका—इन सब दुर्गोंमें गिरि दुर्गके गुण अधिकहैं तिस्से संपूर्ण प्रयत्नोंसे गिरिदुर्गका आश्रय ले क्योंकि इसमें शत्रु कठिनाईसे चढ़ि सकताहै और दूरसे थोड़ेही यत्नसे चलाई हुई शिला आदिसे बहुत शत्रुकी सेना मारी जा सकती है इत्यादिक बहुतसे गुणहै ॥ ७१ ॥ इन दुर्गोंमेंसे तीन पहले दुर्गोंमें मृग आदि रहते हैं उनमें पहले धन्वदुर्गमें मृग रहते हैं और महीदुर्गमें बिलोंके रहनेवाले मूसे आदि रहते हैं अपदुर्गमें मगर आदि जल जीव रहते हैं और अन्य तीन वृक्षदुर्ग आदिकोंमें बंदर आदि रहते हैं उनमें वृक्षदुर्गमें बंदर और चूडुर्गमें मनुष्य तथा गिरिदुर्गमें देवता है ॥ ७२ ॥

यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोर्पहिसन्ति शत्रवः ॥ तथारंयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ एकः शतं योर्धयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ॥ शतं दशसहस्राणि तस्मादुर्गं विधीयते ॥ ७४ ॥

टीका—जैसे दुर्गमें रहनेसे मृगादिकोंको व्याध आदि शत्रु नहीं मार सकते हैं ऐसेही दुर्गमें बैठे हुए राजाको शत्रु नहीं मारसकते ॥ ७३ ॥ जिस्से प्राकार जो किला आदि है उसमें बैठा हुआ एक सौ शत्रुओंसे युद्ध कर सकताहै और प्राकारमें बैठे हुए सौ धनुष्यधारी दशहजार शत्रुओंको लडा सकते हैं तिस्से दुर्ग बनानेका उपदेश किया जाताहै ॥ ७४ ॥

तत्स्यादायुधसंपन्नं धनधान्येन वाहनैः ॥ ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ७५ ॥ तस्य मध्येमुपैर्याप्तं कांरयेद्द्विमात्मनः ॥ गुप्तं सर्वतुल्यं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७६ ॥

टीका—वह दुर्ग खड्ग आदि शस्त्रों तथा धन धान्य हाथी घोड़े आदि वाहनों और ब्राह्मणों तथा कारीगरों और यंत्रों तथा घास प्रानी आदिसे भरा हुआ होय



उस दुर्गके मध्यमें सुंदर और पर्याप्त कहिये पृथक् २ स्त्री गृह देवालय शस्त्र अस्त्रोंका गृह तथा अग्निशाला आदिक बने होंय और वह खाई परकोटे आदिसे रक्षित होय और सब ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले फल फूलों करि युक्त होय और चूनेसे पोता हुआ सपेद होय और बावड़ी आदिके जलसे युक्त होय और वृक्ष जिसमें होंय ऐसा अपने रहनेका घर बनवावै ॥ ७६ ॥

तदध्यास्योद्धेद्भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥ कुंले मर्हति संभूतां  
हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ७७ ॥ पुरोहितं च कुर्वीत वृणुयादेवं  
वर्चस्विजम् ॥ तेऽस्य गृह्याणिकर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च ॥ ७८ ॥

टीका—उस घरमें स्थित होकै समान वर्ण और शुभसूचक लक्षणों करि युक्त बड़े कुलमें उत्पन्न मनकी हरनेवाली सुंदर रूपवती गुणवाली स्त्रीसे विवाह करै ॥ ७७ ॥ अथर्वणकी विधिसे पुरोहितको करै और कर्म करनेके लिये ऋत्विजको वरै वे इस राजाके गृहमें कहे हुए तीनों अग्नियों करि होनेयोग्य कर्मोंको करै ॥ ७८ ॥

यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैरात्मदक्षिणैः ॥ धर्मार्थे च वै विप्रेभ्यो  
दद्याद्भोगान्धनानि च ॥ ७९ ॥ सांवत्सरिकमात्मैश्च राष्ट्रादाहार-  
येद्वलिम् ॥ स्याच्चाम्नायपरो लोके वैतैत पितृवृष्टु ॥ ८० ॥

टीका—राजा अनेक प्रकारके बहुत दक्षिणावाले अश्वमेध आदि यज्ञोंको करै और ब्राह्मणोंका स्त्री गृह शय्या आदि भोगोंको तथा सुवर्णवस्त्र आदि धनोंकोदे ॥ ७९ ॥ राजा समर्थ मंत्रियोंसे वर्षमें लेनेयोग्य धान्य आदिके भागको मंगवावै और लोकमें कर आदिके लेनेमें शास्त्रके द्वारा निष्ठ होय तथा अपने देशके रहनेवाले मनुष्योंमें स्नेह आदिसे पिताके समान वर्तै ॥ ८० ॥

अध्यक्षाम् विविधान्कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः ॥ तेऽस्य संवाण्य  
वै क्षेरघृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ ८१ ॥ आवृत्तानां गुरुकुलाद्रि  
प्राणां पूजको भवेत् ॥ नृपाणामक्षयो ह्येष निर्धिर्ब्राह्मोऽभिधीयते ८२

टीका—हाथी घोडा रथ पयादोंके तथा घनो स्थानोंमें पंडित ओर कामोंके चतुर देखनेवाले मनुष्योंको जुदे २ रक्खै वे इस राजाके उन हाथी घोडे आदि के स्थानोंमें काम करनेवाले मनुष्योंके सब कामोंको अच्छेप्रकारसे करनेके लिये देखैं ॥ ८१ ॥ वेद पढिकै गुरुकुलसे लैटे हुए गृहस्थकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणोंकी नियम करिकै धन धान्यसे पूजा करै ॥ ८२ ॥



न तं स्तेनो न चोमित्रो हरन्ति न च नश्यति ॥ तस्माद्राज्ञा निधा-  
तव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः ॥ ८३ ॥ न स्कन्दते न व्यथते न विन-  
श्यति कर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम् ॥ ८४ ॥

टीका—ब्राह्मणमें रक्खि हुई निधिको न तौ चोर ले सकते हैं न शत्रु अन्यनिधि के समान भूमिमें रक्खा हुआ काल वशसे नाशको प्राप्त होता है अथवा स्थान के भ्रमसे नहीं दीखता है तिस्से अक्षय और अनंत फल जो यह निधिके समान निधि कहिये धनका समूह है सो राजा करि ब्राह्मणोंमें रखनेयोग्य है अर्थात् उनके देनेयोग्य है ॥ ८३ ॥ अग्निमें जो हवि होमी जाती है वह कभी नीचे गिर जाती है कभी व्यथा करे है अर्थात् सूख जाती है और कभी दाह आदिसे नष्ट होजाती है और ब्राह्मणके मुखमें जो होमाजाता है उसमें कहे हुए दोष नहीं होते हैं तिस्से अग्निहोत्र आदिसे ब्राह्मणका देना श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥ प्रार्थिते शतसाहस्रम-  
नन्तं वेदपारगे ॥ ८५ ॥ पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्धाधानतयै  
व च ॥ अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम् ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय आदिके लिये जो दान देना है वह समान फल है अर्थात् जिस देने योग्य वस्तुका फल सुना है उससे अधिक वा न्यून नहीं होता है जो क्रियारहित ब्राह्मण आपको ब्राह्मण कहता उसको ब्राह्मणब्रुव कहते हैं उसको देनेका फल पहलेकी अपेक्षा दूना होता है ऐसे प्रकांत कहिये वेदाध्ययनके आरंभ करनेवाले ब्राह्मणमें लाख गुना फल होता है और सब शास्त्र के पढ़नेवालेमें अनंत फल होता है ॥ ८५ ॥ पात्रको पाकर श्रद्धासे दिया हुआ दान देनेवालेको परलोकमें थोड़ा बहुत फल देनेवाला होता है ॥ ८६ ॥

समोत्तमाधमै राजा त्वाद्भूतः पालयन् प्रजाः ॥ न निर्वर्तेत संग्रामा-  
त्क्षेत्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ८७ ॥ संग्रामेष्वनिर्वर्तित्वं प्रजानां चैव  
पालनम् ॥ शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करो पंरम् ॥ ८८ ॥

टीका—बराबरके बलवाले अथवा अधिक बलवाले वा हीन बलवाले राजाकरि युद्धके लिये बुलाया हुआ राजा प्रजाओंका पालन करता हुआ युद्धसे न हटै और युद्धके लिये बुलाये हुए क्षत्रियको अवश्य युद्ध करना इस क्षत्रियके धर्मका स्मरता रहै ॥ ८७ ॥ युद्धसे न हटना और प्रजाओंका पालन करना तथा ब्राह्मणोंकी सेवा करना ये सब राजाके बहुतही स्वर्ग आदि कल्याणके उपाय हैं ॥ ८८ ॥



आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः॥ युध्यमानाः परं श-  
क्त्यां स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ८९ ॥ न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्य  
मानो रणे रिपून्॥ न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः॥ ९०

टीका—आपसमें स्पर्द्धासे एकको एक मारनेकी इच्छा करनेवाले राजा बड़ी  
शक्तिसे सन्मुख हो युद्धको करते हुए स्वर्गको जाते हैं ॥ ८९ ॥ कूटआयुध कहि-  
ये ऊपरसे काठ आदिसे बने होंय और भीतर उनके तीक्ष्णशस्त्ररूपे हुए होंये ऐसे  
आयुधोंसे युद्ध करता हुआ राजा शत्रुको न मारै और जिनके फल काँटेके आका-  
र टेढे मांसके खीचनेवाले होंय तथा विषके बुझे हुए और अग्नि करि तपाये  
हुए ऐसे बाणोंसे शत्रुको न मारै ॥ ९० ॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ॥ न मुक्तकेशं ना-  
सी न न त्वार्त्तमीति वादिनम् ॥ ९१ ॥ न सुप्तं न विसर्त्ताहं न नम्रं  
न निरायुधम्॥ नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

टीका—आप रथमें बैठा हुआ रथको छोड़िकै भूमिमें खड़े हुएको न मारै तथा  
नपुंसकको और हाथ जोरिके सन्मुख आये हुए को और बाल जिसके खुले  
होय और जो बैठा होय तथा मै तुम्हारा हों ऐसे कहनेवालेको न मारै ॥ ९१ ॥  
सोतेहुएको विना कवचवालेको नंगेको शस्त्ररहितको नहीं लड़नेवालेको युद्ध देखने  
वालेको और दूसरेसे युद्ध न करनेवालेको न मारै ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नाति नातिपरिक्षतम् ॥ न भीतं न परावृत्तं  
संतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥ यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे ह-  
न्यते परैः ॥ भर्तुर्यदुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९४ ॥

टीका—जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूटि गये हैं और जो पुत्र आदिके शोकसे  
व्याकुल है और जो बहुत चोटोंसे व्याकुल है तथा जो युद्धसे भागा है इन सबों-  
को कठिन क्षत्रिय धर्मका स्मरण करता हुआ न मारै ॥ ९३ ॥ डरिकै भागा  
हुआ जो युद्धमें मारा जाता है वह पालन करनेवाले अपने स्वामीके समस्त  
पापोंको प्राप्त होता है ॥ ९४ ॥

यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ॥ भर्ता तत्सर्वमादत्ते  
परावृत्तहतस्य तु ॥ ९५ ॥ रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून्  
स्त्रियः ॥ सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यजयति तस्य तत् ॥ ९६ ॥



टीका-युद्धमें भागिकर मारे गये पुरुषका परलोकके लिये जो कुछ जोड़ा पुण्य वह उसके सब स्वामीको मिलताहै ॥ ९५ ॥ रथ घोड़ा हाथी छत्र धन धान्य पशु स्त्री ये सब और गुड नोन आदि वस्तु और कुप्य कहिये सोना चांदी छोड़के तांबा आदि जो जुदा जीतिकर घरका लावै वह उसीका है और सोना चांदी रत्न आदि धन तौ राजाहीको देना चाहिये ॥ ९६ ॥

राज्ञंश्च दैद्युरुद्धारमित्येषां वैदिकी श्रुतिः ॥ राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दत्तव्यमपृथग्जितम् ॥ ९७ ॥ ऐषोऽनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्मः स नातनः ॥ अस्माद्धर्मान्न च्यवेत क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून् ॥ ९८ ॥

टीका-वे योद्धा जीते हुए धनमेंसे राजाको उद्धारदें अर्थात् जितना उसमें सुवर्ण चांदी रत्न आदि उत्तम धन होय सो और हाथी घोड़े आदि वाहनभी राजाको देने चाहिये और राजाभी साथ जीते हुए धनमेंसे सब योद्धाओंको उनके अधिकारके योग्य बांधिदे ॥ ९७ ॥ यह जो निंदारहित सनातन योद्धाओंका धर्म कहा युद्धमें शत्रुओंको मारनेवाला क्षत्रिय इस धर्मको न छोड़ै ॥ ९८ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ रक्षितं वर्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ॥ ९९ ॥ एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्यादतन्द्रितः ॥ १०० ॥

टीका-नही जीते हुए भूमि सुवर्ण आदिके जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी यत्नसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको वाणिज्य आदिसे बढ़ावै और बड़े हुएको पात्रोंमें दान करै ॥ ९९ ॥ यह चारिप्रकारका पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि हैं तिसका प्रयोजन ऐसा जानै इससे आलस्य रहित हो सदा इसको करै ॥ १०० ॥

अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया ॥ रक्षितं वर्धयेद्दृष्ट्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ १ ॥ नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः ॥ नित्यं संवृतसर्वार्थो नित्यं छिद्रानुसार्यरेः ॥ २ ॥

टीका-जो नही प्राप्तहै उसकी हाथी घोड़ा रथ पयादे रूपदंडसे जीतनेकी इच्छा करै और जीते हुएकी देखनेसे रक्षा करै और रक्षा किये हुएको स्थल तथा जलके मार्गसे वाणिज्य आदि बढ़नेके उपायोंसे बढ़ावै और बड़े हुएको शास्त्रमें कहे हुए विभागसे पात्रोंको दान करै ॥ १ ॥ हाथी घोड़ा युद्ध आदिकी शिक्षाका अभ्यास रक्खै और सदा प्रकाश की हुई शस्त्रविद्या आदिसें अपने पुरुषार्थको प्रकट करै



और मंत्रआचार चेष्टा आदिको सदा गुप्त रखै और सदा शत्रुके व्यसन आदि छिद्रोंके देखनेमें लगा रहै ॥ २ ॥

नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत् ॥ तस्मात्सर्वाणि भू-  
तानि दण्डेनैव प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥ अमाययैव वर्तेत न कथंचन-  
मायया ॥ बुद्ध्येतारिप्रयुक्तां च मायां नित्यं स्वसंवृतः ॥ ४ ॥

टीका—जिसका दंड सदा उद्यतहै उससे सब जगत् डरताहै तिस्से सब जगतको दंडहीसे अपने आधीन करै ॥ ३ ॥ मंत्री आदिकोमें कपटसे न वर्ते जो कपट करै तौ सबोंका विश्वास योग्य न रहै धर्मकी रक्षाके लिये सत्यहीसे व्यवहार करै और यत्नसे अपने पक्षकी रक्षा करता हुआ शत्रुकी किई हुई प्रजाके भेदरूप मायाको दूतके द्वारा जानै ॥ ४ ॥

नॉस्यं च्छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु ॥ गूहेत्कूर्म ईवा  
ज्ञानि रक्षेद्विरमात्तमनः ॥ ५ ॥ बर्कवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च  
परक्रमेत् ॥ वृर्कवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ ६ ॥

टीका—ऐसा यत्न करै जिससे शत्रु प्रकृतिके भेद आदि अपने छिद्रको न जानै और शत्रुके प्रकृतिभेद आदि छिद्रोंको गुप्त दूतसे जानै और कछुआ जैसे अपने मुख चरण आदि अंगोंको अपने देहमें छुपाय लेताहै ऐसे राज्यके अंगमंत्री आदि-कोंको दान सन्मान आदिसे अपने वश करै और दैवसे जो प्रकृतिभेदरूप छिद्र होजाय तौ यत्नसे उसका निवारण करै ॥ ५ ॥ जैसे बगला जैसे जलमें अतिचंचलभी मछलीसे पकडनेके लिये एकाग्र मनसे ध्यान लगाकैं चिंतवन करताहै ऐसेही एकान्तमें रक्षायुक्तभी शत्रुके देश लेने आदि अर्थोंका चिंतवन करै और जैसे सिंह प्रबल बहुत मोटेभी हाथीके मारनेको उछलताही है ऐसे बलवान् करि दवाया हुआ थोड़े बलवाला संपूर्ण शक्तिसे शत्रुके मारनेको चढाई करै और जैसे भेड़िया पालने-वाले करि रक्षा किये हुएभी पशुको रक्षककी असावधानीमें मारिही लेताहै ऐसे दुर्ग आदिमें स्थितभी शत्रुको असावधान पाकैं मारै और जैसे शशा नानाप्रकारके धनुष-धारी व्याधोंके बीचमें आकैं टेढी गतिसे उछलकर भागि जाताहै ऐसे आप निर्बल भी बलवान् शत्रुसे घेरे जानेपर कैसे हू शत्रुकी असावधानी पाकैं गुणवान दूसरे राजाका आश्रय लेनेकैं लिये भागिजाय ॥ ६ ॥

एवं विजयमानस्य येस्य स्युः परिपन्थिनः ॥ तानानयेद्वंशं सर्वा



न्सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ७ ॥ यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमै-  
स्त्रिभिः ॥ दण्डेनैव प्रसह्यतां न चैनैर्वशं मानयेत् ॥ ८ ॥

टीका—इस कहे हुए प्रकारसे विजयमें प्रवृत्त राजाके जे विरोधी होंय उन सबोंको साम दान भेद दंड नाश उपायोंसे वशमें लावै ॥ ७ ॥ वे जो विजयके विरोधी पहले तीनि उपायोंसे न मानै तौ उनको बलसे देश आदिके विगाडने करि युद्धसे हौले २ लघु गुरु दंडके क्रमसे दंडहीसे वश करै ॥ ८ ॥

सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिताः ॥ सामदण्डौ प्रशंस-  
न्ति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये ॥ ९ ॥ यथोद्धरति निर्दाता कंसं धान्यं  
च रक्षति ॥ तथा रक्षेत्रूपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ १० ॥

टीका—चारौ सामादिक उपायोंमें साम दंडहीकी देशकी वृद्धिके लिये पंडित सदा प्रशंसा करते हैं ॥ ९ ॥ जैसे खेतमें साथ उत्पन्न हुए धान्य तृण आदिकोंमेंसे निराव करनेवाला धान्योंकी रक्षा करताहै और तृणोंको उखाडताहै ऐसे राजा देशमें दुष्टोंको मारै और शिष्टोंसमेत देशकी रक्षा करै ॥ १० ॥

मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया ॥ सोऽर्चिराद्भ्रश्यते रा-  
ज्यांजी विताच्च सर्वान्धवः ॥ ११ ॥ शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते  
प्राणिनां यथा ॥ तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ १२ ॥

टीका—जो राजा दुष्ट शिष्टके ज्ञान विना अपने देशके सब मनुष्योंको शास्त्रमे कहे हुए धन लेने तथा मारने आदिके कष्टसे पीडा देताहै वह शीघ्रही देशके वैर नाम प्रजाके कोपसे और अधर्म करि राज्यसे तथा जीनेसे पुत्रादिको समेत भ्रष्ट होजाताहै ॥ ११ ॥ जैसे आहार आदिके रोकने करि शरीरके सुखानेसे प्राणियोंके प्राण क्षीण होजातेहैं ऐसेही राजाओंकेभी देशको पीडा देनेसे प्रजाके कोप आदि करि प्राणनाशको प्राप्त होते हैं तिससे राजाको अपने शरीरके समान देशकी रक्षा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ॥ सुसंगृहीतराष्ट्रो हि  
पार्थिवः सुखमेधते ॥ १३ ॥ द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्मम-  
विष्टितम् ॥ तथा ग्रामशतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ १४ ॥

टीका—देशकी रक्षा करनेमें आगे कहे हुए इस उपायको करै जिससे देशकी रक्षा करनेवाला राजा विना श्रमके बढताहै ॥ १३ ॥ दो ग्रामोंको मध्यमें तथा तीनि



के व पांचके अथवा सौ ग्रामोंके बीचमें गुल्म कहिये रक्षा करनेवाले पुरुषोंके समूह-  
को सच्चे प्रधानपुरुषको उसका अधिष्ठाता करिके देशकी रक्षाका स्थान करै ॥ १४ ॥

ग्रामस्याधिपतिं कुर्यादशग्रामपतिं तथो ॥ विंशतीशं शतेशं  
च सहस्रपतिमेवं च ॥ १५ ॥ ग्रामदोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनैः स्वयम् ॥ शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशती-  
शिनम् ॥ १६ ॥ विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ॥  
शंसेद्ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ १७ ॥

टीका—एकग्रामका दशग्रामका बीसका तथा सौके स्वामी नियत करै ॥  
॥ १५ ॥ एकगांवका स्वामी जो गांवमें हुए चोर आदि दोषोंका आप प्रबंध न  
करसकै तो दश गांववालेसे कहे और ऐसेही दशगांववाला बीस गांववालेसे और  
बीस गांववाला सौ गांववालेसे कहे ऐसा होनेपर चोर आदि कंटकोंका अच्छी रीतिसे  
उद्धार होताहै ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥

यानि राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः ॥

अन्नपानेन्धनदीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात् ॥ १८ ॥

टीका—एक ग्रामके अधिकारीकी वृत्ति कहते है जो अन्नपान इंधन आदि ग्रामवा-  
सियोंको प्रतिदिन राजाके लिये देनेयोग्य होय उसको वर्षमें देनेयोग्य धान्यके अ-  
ष्टम भाग आदिको छोडके ग्रामकास्वामी जीविका ले लिये ग्रहण करै ॥ १८ ॥

दशी कुलं तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च ॥ ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः  
सहस्राधिपतिः पुरम् ॥ १९ ॥ तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्या  
णि चैव हि ॥ राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येद्वितन्वितः ॥ १२० ॥

टीका—धर्मका एक हल आठ बैलोंका होता है और जीविकावालोंका छः  
बैलोंका और गृहस्थोंका चार बैलों और दो बैलोंका ब्रह्महत्यावालोंका एक ह-  
ल होताहै यह हारीतस्मृतिमें लिखाहै छः बैलोंका मध्यम हल होताहै ऐसे दो-  
हलोंसे जितनी भूमि जोती जाय उसको कुल कहते है उसको एक ग्रामका स्वा-  
मी जीविकाके लिये ग्रहण करै ऐसेही बीस ग्रामका स्वामी पांच कुलोंको ग्रहण  
करै और सौ ग्रामका स्वामी एक मध्यम ग्रामको और हजारका स्वामी एक  
मध्यम पुरको जीविकाके लिये ग्रहण करै ॥ १९ ॥ उन ग्रामके बसनेवा-  
लोंके ग्रामसंबंधी कामो तथा निज कामोंको राजाका हित करनेवाला मंत्री आ-  
लस्यको छोडकर देखै ॥ १२० ॥



नगरेनगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ॥ उच्चैःस्थानं घोररूपं न  
क्षत्राणामिदं ग्रहम् ॥ २१ ॥ स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेवं सदा  
स्वयम् ॥ तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्ग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ २२ ॥

टीका—प्रत्येक नगरमें उच्चैःस्थानं कहिये कुल आदिसे बड़े और प्रधानभूत  
तथा हाथी घोड़े आदि सामग्रीसे भयानक नक्षत्रोंमें शुक्र आदि ग्रहके समान  
तेजस्वी कार्य द्रष्टाको नगरका स्वामी करै ॥ २१ ॥ वह नगरका अधिकारी ग्रा-  
मके स्वामी आदिकोंको विना प्रयोजन सबकालमें बलसे देखै और दूतोंसे सर्वोंकी  
मनकीं बातोंको जानै ॥ २२ ॥

राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ॥ भृत्या भवन्ति  
प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमां प्रजाः ॥ २३ ॥ ये कार्यािकेभ्योऽर्थमेव  
गृह्णीयुः पापचेतसः॥तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् २४

टीका—बहुधा राजाके अधिकारी पराये धनके लेनेवाले और शठ कहिये वंचक  
होते हैं इसलिये राजा उनसे प्रजाकी रक्षा करै ॥ २३ ॥ जो पापबुद्धि रक्षाके अधि-  
कारी कार्यार्थियों ( मुकद्दमेवालों ) से वाणीके छल आदिको प्रकट करि लोभसे अ-  
शास्त्रीय धनको लेते हैं राजा उनका सर्वस्व छीनकै अपने देशसे निकालदे ॥ २४ ॥

राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥ प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं  
स्थानकर्मानुरूपतः ॥ २५ ॥ पणो देयोऽवर्कष्टस्य षडुत्कृष्टस्य  
वेतनम्॥षाण्मासिकस्तथाच्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः ॥ २६ ॥

टीका—राजाओंकाम करनेवाले जो स्त्री और भृत्यजनहैं उनकी उत्कृष्ट म-  
ध्यम तथा अपकृष्ट स्थानके योग्य प्रतिदिनकी जीविका करै ॥ २५ ॥ घरके ज्ञा-  
रनेवाले और पानी लानेवालेको एक पण नित्य दे पणका लक्षण आगे कहेंगे  
और महीनेमें एक द्रोण अन्नदे छठे महीने दो वस्त्र दे और उत्तम कर्म करनेवा  
लेको छ पण नित्य दे और छठे मासमे छ जोड़े वस्त्रोंकेदे और प्रतिमास छः  
द्रोण धान्य दे और इसी रीतिसे मध्यम कर्म करनेवालेको तीन पण नित्य दे  
और छठे महीने दो जोड़े वस्त्रोंके दे और प्रतिमास तीन द्रोण धान्यदे ॥ आठ  
मुठ्ठीकी एक कुंची होती है और आठ कुंचियोंका एक पुष्कल होताहै और  
चारि पुष्कलोंका एक आढक और चारि आढकोंका एक द्रोण होताहै और चारि  
द्रोणको सारी कहते हैं ॥ २६ ॥



क्रयविक्रयमध्वानं भक्तं च सपरिव्ययम् ॥ योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य व  
णिजो दापयेत्करान् ॥ २७ ॥ यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च  
कर्मणाम् ॥ तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सर्वतं करान् ॥ २८ ॥

टीका—यह वस्त्र नोन आदि वस्तु कितनेमें मोल ली है और बेचनेमें कितना मिलेगा और कितनी दूरसे लायाहै और इस वणिजके भोजनमें शाकदालि अदिके खर्चमें कितना लगाहै और वन आदिमें चोर आदिकोंसे रक्षा करनेमें कितना खर्च हुआहै और इसके नफेका योग कितनाहै इन सब बातोंको देखकर वनियोंसे करलेवै ॥ २७ ॥ जैसे राजा प्रजा पालन आदि कर्मके फलसे और जेकिसानबनिआ आदि खेतीवाणिज्य आदि कर्मोंके फलसे युक्त होताहै ऐसा सोचकै राजा देशके करोंको लेवै ॥ २८ ॥

यथाल्पालर्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः ॥ तथाल्पालपो ग्रही  
तव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २९ ॥ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञां  
पशुहिरण्ययोः ॥ धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥ ३० ॥

टीका—इसमें दृष्टांत कहते हैं जैसे जोंक बछडा और भ्रमर थोडा २ रक्त दूध तथा मधुको खाते हैं ऐसे ही राजा राज्यसे वर्षके करको थोडा २ लेवै ॥ २९ ॥ पशु और सुवर्णके लाभमेंसे राजा पचासवां भाग लेवै ऐसेही धान्योंका छठवां आठवां अथवा बारहवां भाग लेवै भूमिकी उत्कर्षता न्यूनता तथा जुताईके न्यूनके अधिक श्रमको देखकै यह कर लेनेकी न्यूनाधिकताका विकल्पहै ॥ ३० ॥

आर्ददीतार्थ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् ॥ गन्धौषधिरसानां च  
पुष्पमूलफलस्य च ॥ ३१ ॥ पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदल  
स्य च ॥ मृन्मयानां च भाण्डानां सर्वस्यैश्ममयस्य च ॥ ३२ ॥

टीका—वृक्ष १ मांस २ मधु ३ घी ४ गंध ५ औषधी ६ रस ७ पुष्प ८ मूल ९ फल १० पत्र ११ शाक १२ तृण १३ चर्म १४ वांसका पात्र १५ मट्टीका पात्र १६ पत्थरका पात्र १७ इन सबहोंका छठा भाग राजा लेवै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अयिमाणोऽप्यार्ददीतं न राजा श्रोत्रियात्करम् ॥ न च क्षुधाऽस्य  
संसीदे च्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥ ३३ ॥ यस्य राज्ञस्तु विषये श्रो-  
त्रियः सीदति क्षुधा ॥ तस्यापि तत्क्षुधा राष्ट्रमचि रेणैव सीदति ॥ ३४ ॥



( ३१६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका-धनके क्षीण होनेपरभी राजा वेदपाठी ब्राह्मणसे कर न लेवै और इसके देशमें बसता हुआ वेदपाठी भूखसे पीड़ित न होय ॥ ३३ ॥ जिस राजाका श्रोत्रिय भूखसे दुख पाताहैं उसका देशभी उसकी क्षुधासे थोड़ेही कालमें नष्ट हो जाताहै ॥ ३४ ॥

श्रुतवृत्ते विदित्वांस्यै वृत्तिं धन्यां प्रकल्पयेत् ॥ संरक्षेत्सर्वतश्चैनं  
पितां पुत्रमिवौरसम् ॥ ३५ ॥ संरक्ष्यमाणो राज्ञाय कुरुते धर्म-  
मन्वहम् ॥ तेनार्युर्वर्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च ॥ ३६ ॥

टीका-शास्त्रका पढ़ना और आचरण जानिकै इसकी उनके अनुरूप धर्मसे जी-  
विका नियत करै और जैसे पिता अपने निजपुत्रकी रक्षा करताहै ऐसे चोर आदि-  
कोंसे इसकी रक्षा करै ३५ ॥ राजा करि अच्छी भांति रक्षा किया हुआ वह श्रोत्रिय  
जिस धर्मको प्रतिदिन करताहै उससे राजाकी आयु धन तथा देशवढताहै ॥ ३६ ॥

यत्किंचिदपि वर्षस्य दाययेत्करं संज्ञितम् ॥ व्यवहारेण जीवन्तं  
राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् ॥ ३७ ॥ कारुकांश्छिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मो-  
पजीविनः ॥ एकैकं कारयेत्कर्ममासिमासि महीपतिः ॥ ३८ ॥

टीका-राजा अपने देशमें थोड़े मोलकेभी शाकपत्ते आदिके खरीदने बेचनेसे जी-  
विका करनेवाले निरुद्ध मनुष्यसे थोड़ामी कर वर्षमें दिवावै ॥ ३७ ॥ दारुक कहि  
ये सूपकार आदि शिल्पियोंसे जो कुछ ऊंचे हैं और शिल्पी कहिये लुहार आदि  
और शूद्र जो शरीरसे श्रम करिकै जीविका करते हैं जैसे बोझा ढोनेवाले उनसे राजा  
महीने महीनेमें एक एक दिन काम करवा लेवै ॥ ३८ ॥

नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ॥ उच्छिन्दन् ह्यात्म-  
नो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३९ ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्का-  
र्यं वीक्ष्य महीपतिः ॥ तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः ॥ ४० ॥

टीका-प्रजाके स्नेहसे कर तथा महसूल आदिके न लेनेसे अपने मूलको  
न उखाड़ै तथा अतिलोभसे बहुतसा कर लेकै दूसरोंका मूल न उखाड़ै ये  
दोनों बातें न करै जिस्से अपने मूलको उखाड़कै कोश कम होनेसे आपको पीडा  
देताहै तथा दूसरोंका मूल उखाड़कै उनको पीडा देताहै ॥ ३९ ॥ कार्यविशेषको  
देखकै किसी काममें तेज और किसीमें मृदु होय एक रूपको न धारण करै जिस्से  
उत्तरूप राजा सबको प्यारा होताहै ॥ ४० ॥



अमात्यसुर्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्भूतम् ॥ स्थापयेदांसने त-  
स्मिन् खिन्नैः कार्येक्षणे नृणाम् ॥ ४१ ॥ एवं सर्वे विधायेदमिदं क-  
र्तव्यमात्मनः ॥ युक्तं चैवं प्रमत्तं चैवं परिरक्षेदिमां प्रजाः ॥ ४२ ॥

टीका—आप कार्योंके देखनेमें खेदयुक्त राजा धर्मके जाननेवाले पंडित जि-  
तेंद्रिय तथा कुलीन श्रेष्ठ मंत्रीको उस कार्यदर्शनके स्थानमें नियत करै ॥ ४१ ॥  
इस भाँति कहे हुए प्रकारसे अपने सब कार्योंको करिके मनको लगाय प्रमाद  
रहित हो प्रजाओंकी रक्षा करै ॥ ४२ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्रात् द्वियन्ते दस्युभिः प्रजाः ॥ संपश्यंतः स  
भृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ ४३ ॥ क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजा  
नामेव पालनम् ॥ निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४४ ॥

टीका—मंत्री आदिकों समेत जिस राजाके देखते देशसे पुकारती हुई प्रजा  
चौर आदिकों करि लूटी जाती है वह मरा हुआ है जीवता नहीं है ॥ ४३ ॥ प्र-  
जाकी रक्षा करनाही क्षत्रीयका सबसे बड़ा धर्म है जिसे कहा हुआ है लक्षण और  
फल जिसका ऐसे कर आदिका भोगनेवाला राजा धर्मसे युक्त होता है ॥ ४४ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ॥ हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चाच्यं  
प्रविशेत्सं शुभां सभां ॥ ४५ ॥ तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य  
विसर्जयेत् ॥ विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ ४६ ॥

टीका—वह राजा रातिके पिछिले पहर उठिके मूत्रपुरीषत्याग आदि शौ-  
चको करिके एकाग्र मन हो अग्निहोत्रको करि ब्राह्मणोंको पूजि सुंदर शुभसभामें  
प्रवेश करै ॥ ४५ ॥ उस सभामे बैठा हुआ राजा दर्शनके छिये आई हुई सब प्र-  
जाको बोलने और दर्शन देने आदिसे आनंदित करिके विदा करै उनको प-  
ठवाकै मंत्रियोंके साथ संधिविग्रहादिकोंका विचार करै ॥ ४६ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ अरण्ये निःशलाके वा  
मन्त्रयेदविभावितः ॥ ४७ ॥ यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथ-  
ग्जनोः ॥ स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ॥ ४८ ॥

टीका—पर्वतके ऊपर बैठके अथवा शूने महलके ऊपर और वनमें अथवा  
एकांत स्थानमें मंत्रके भेद करनेवालोसे छुपिके कामोंके आरंभका उपाय १ पुरुष



द्रव्यसंपत्ति २ देशकाल विभाग ३ विनिपातका प्रतीकार ४ और कार्यकी सिद्धि ५ इस पंचांग मंत्रका विचार करै ॥ ४७ ॥ जिस राजाके मंत्रियोंसे भिन्न और लोग मिलिकै उसके मंत्रको नही जानतें हैं वह कोश क्षीण होनेपरभी सब पृथिवीको भोगताहै ॥ ४८ ॥

जडमूकान्धबधिरास्तिर्यग्योनान्वयोतिगान्॥स्त्रीम्लेच्छव्याधि तव्य-  
द्भान्मन्त्रैकालेऽपसारयेत् ॥ ४९ ॥ भिन्दन्त्यर्वमता मन्त्रं तिर्यग्यो-  
नास्तैथैव च ॥ स्त्रियश्चैवं विशेषेण तस्मात्तत्रादृतो भवेत् ॥ १५० ॥

टीका-बुद्धि वाणी नेत्र कान आदिसे बिगड़े हुए मनुष्योंको तथा तिर्यक् योनि तोता मैना आदिको और अति बूढ़े स्त्री म्लेच्छ रोगी और अंगहीनों को मंत्रके समय निकाल देवै ॥ ४९ ॥ पुराने पापके कारण जडपन आदिके पानेवाले ये अधर्मके कारण अपमानित होनेपर मन्त्रभेदको करि देते हैं तैसेही तोत आदि और अतिबुद्ध और स्त्री विशेषकरि चंचल बुद्धि होनेसे मन्त्र भेद कर देते हैं तिस्से उन सबोको यत्नसे निकाल देवै ॥ १५० ॥

मध्यंदिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगैतकुमः॥चिन्तयेद्धर्मकामार्था-  
न्सार्धं तैरेकं एव वा ॥ ५१ ॥ परस्परविरुद्धानां तेषां च समु-  
पार्जनम् ॥ कन्येनां संप्रदानं च कुमारानां च रक्षणम् ॥ ५२ ॥

टीका दिनके मध्यमे अथवा रात्रिके मध्यमें स्वस्थ शरीर राजा मंत्रियोंके साथ अथवा अकेला धर्म अर्थ कामके करनेका चिंतवन करै ॥ ५१ ॥ बहुधा आपसमें विरोधवाले धर्म अर्थ कामके विरोधको बचाकै उनके अर्जनका उपाय शोचै और अपने कार्यकी सिद्धि लिये पुत्रियोंके देनेका निरूपण करै और विन-यके सिखाने तथा नीतिशस्त्रकी शिक्षाके लिये कुमारोंकी रक्षाका चिंतवन करै ॥ ५२ ॥

दूतसंप्रेषणं चैवं कार्यशेषं तथैव च ॥ अन्तःपुरप्रचारं च प्राणि-  
धीनां च चेष्टितम् ॥ ५३ ॥ कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गं च  
तत्त्वतः ॥ अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलंत्य च ॥ ५४ ॥

टीका गुप्त चिट्ठी पत्री आदि लेखके लेजानेवाले दूतोंके पराये देशमें भेजनेका चिंतवन करै तथा आरंभ किये हुए कामोंके शेष पूरे होनेका चिंतवन करै स्त्रियोंका चेष्टित बहुतही विषम होताहै जैसे चोटीमें छपाये हुए शस्त्रसे रानीने विदूरथको मारा और विषसे लिये हुए विछूऐसे विरक्त रानीने काशिराजको



मारा इत्यादिक बातोंको जानकर रनवासकी स्त्रियोंका चेष्टित सखी दासी आदिकोंसे जानै और दूसरे राजाओंके यहां भेजे हुए दूतोंके चेष्टितोंको दूसरे दूतोंसे जानै ॥ ५३ ॥ प्रजाओंसे कर लेना १ भृत्योंको धन देना २ इस लोक तथा परलोकके लिये कर्म करना ३ तथा न करना ४ इस बातकी मंत्रियोंको आज्ञा देना कार्यसंदेहमें आज्ञा देना ५ प्रजाके लेन देन आदिके व्यवहारका देखना ६ व्यवहारमें जो हारै उससे शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियोंको प्रायश्चित्त करना ८ इन आठों कर्मोंका चिंतवन करना और तत्त्वसे अर्थात् सिद्धांतसे पंचवर्गका चिंतवन करै वह पंचवर्ग लिखते हैं दूसरेकी भीतरी बातका जाननेवाला निर्भय बोलनेवाला कपटव्यवहार करनेवाला ऐसा मनुष्य जीविकाके लिये आवै तौ उसको दान मानसे अपना करकै एकांतमें कहैं कि जिसका दुष्ट कर्म देखो उसी समय हमसे कहो १ संन्याससे जो भ्रष्ट है उनका दोष तौ लोकमें विदित है उनको बुद्धि तथा पवित्रतासे युक्त करिकै बहुत पैदावाले मठमें स्थापित करिकै एकांतमें पहलेकी भांति बोलै और जिस भूमिमें बहुतसा धान्य उत्पन्न होय वह भूमि उसको जीविकाके लिये देवै वह भ्रष्टसंन्यासी राजाके काम करनेवाले जो दूसरे संन्यासीहैं उनको भोजन और वस्त्र देवै २ और जीविकासे रहित खेती-करनेको बुद्धि तथा शौचसे गुप्त करिकै एकांतमें पहलेकी भांतिसे बोलै और खेती करनेकेलिये अपनी भूमि देवै ३ और जीविका रहित बनियाको पहलेकी भांति कहिकै धन तथा मानको दे अपने आधीन करिकै, वनियोंके कर्म करावै ४ जीविकासे रहित मुडिया होंय अथवा जटाधारी होय उसको गुप्तजीविका देकर एकांतमें पहलेकी भांति कहै और कपटी बहुतसे मुडिये तथा जटाधारी शिष्यों समेत तपस्या करै महीने दो महीने सबोंके आगे मुठ्ठीभर वेर आदिका भोजन करै और रातिमें कोई न जानै तब भोजन करै और शिष्य उसकी सिद्धाई को प्रकाशित करै कि गुरुजी भूत भविष्य वर्तमान तीनोंकालके जाननेवाले हैं इस्से सब लोग अपने २ अर्थको कहेंगे ५ ये पांचो क्रमसे कापटिक उदास्थित गृहपति वैदिक तापस कहाते हैं इन पांचो कर्मोंका चिंतवन करै इन्होसे दूसरे राजाका और अपने मंत्री आदिकी प्रीति तथा अप्रीतिको जानिकै उसका उपाय करै कि कौनसा राजा मेलचाहता है और कौनसा विगाड चाहताहै यह जानिकै वैसा उपाय करै ॥ ५४ ॥

मध्यमस्य प्रचारं च विजिगीषोश्च चेष्टितम् ॥ उदासीनप्रचारं च  
 शत्रोश्चैव प्रयत्नतः ॥ ५५ ॥ एताः प्रकृतयो मूलं मण्डलस्य समा



( २२० )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

सैतः ॥ अष्टौ चान्याः समारंभ्याता द्वादशैव तु ताः स्मृताः ॥ ५६ ॥

टीका—अरि विजिगीषु अर्थात् जीतनेकी इच्छा करनेवाला और मध्यम अर्थात् अरिविजिगीषु इन दोनोंकी भूमिके समीपमें रहनेवाला मिले हुए दोनों राजाओंके अनुग्रहमें और विगड़े हुए इन दोनोंके निग्रहमें समर्थ इन सबोका चेष्टित अर्थात् करनेकी इच्छाका चिंतवन करै ॥ ५५ ॥ संक्षेपसे राजमंडलके ये चारि मूल प्रकृति है तथा आठ और है उनको कहते है शत्रुकी भूमिके आगे मित्र अरिमित्र मित्र मित्र अरिमित्रमित्र जौर पीछे पार्ष्णिग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये पहले कहे हुए आठ चारोको मिलाकै बारह होते है ॥ ५६ ॥

अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डारण्याः पञ्च चापराः ॥ प्रत्येकं कथिता  
त्येताः संक्षेपेण द्विसप्ततिः ॥ ५७ ॥ अनन्तरमरिं विद्यादरिसे-  
विनमेव च ॥ अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं तयोः परम् ॥ ५८ ॥

टीका—चारि मूलप्रकृति आठ शाखाप्रकृति इन्होंमें एक एकके पांच पांच द्रव्यप्रकृतिहै उन पांचोंके ये नामहैं जैसे अमात्य कहिये मंत्री १ राष्ट्र कहिये राज्य २ दुर्ग कहिये किला ३ अर्थ कहिये धन ४ और दंड ५ ये सब मिलिके संक्षेपसे बहत्तरि ७२ प्रकृति है ॥ ५७ ॥ अपने राज्यके समीपका राजा शत्रुहै और उसका सेवन करनेवालाभी शत्रुहै और उसके आगेका राजा मित्र है और अरि तथा मित्रसे जो परे है वह उदासीन है ॥ ५८ ॥

तान्सर्वानभिसंदर्ध्यात्सामांदिभिरुपक्रमैः ॥ व्यस्तैश्चैव सम-  
स्तैश्च पौरुषेण नयेन च ॥ ५९ ॥ संधिं च विग्रहं चैव यानमा-  
सनमेव च ॥ द्वेधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत्सदा ॥ १६० ॥

टीका—उन सब राजाओंको साम भेद दान दंड इन उपायोंसे संभवके अनुसार जुदे जुदोंसे अथवा सर्वोंसे वशमें लावै अथवा पौरुष कहिये केवल दंडहीसे अथवा नीति कहिये एक सामहीसे वशमें लावै सोई कहाहै कि देशकी वृद्धिके लिये साम तथा दंडकी प्रशंसा करते है ॥ ५९ ॥ संधिकहिये मिलाप विग्रह कहिये लड़ाई यान कहिये शत्रुके ऊपर चढ़ाई करना आसन कहिये शत्रुको घेरिकै पड़े रहना द्वेधी भाव कहिये फोड़फाड़ करना संश्रय कहिये बलवानका आश्रय लेना इन छः गुणोंका सदा चिंतवन करै ॥ १६० ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ॥ कार्यं वाक्ष्य प्रयुञ्जीत



द्वैधं<sup>१२</sup> संश्रयमेव<sup>१३</sup> च ॥ ६१ ॥ संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रह-  
मेव<sup>१४</sup> च ॥ उभे<sup>१५</sup> यानां सने<sup>१६</sup> चैव<sup>१७</sup> द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६२ ॥

टीका—अपनी समृद्धि और शत्रुकी हानि आदिक कार्योंको देखके विग्रह यान आसन द्वैधीभाव और संश्रय इनमेंसे किसीके साथ संधि और किसीके साथ विग्रह इत्यादि करै ॥ ६१ ॥ राजा संधि विग्रह यान आसन तथा द्वैधीभाव और संश्रय इन छहो गुणोंको दो प्रकारके जानै ॥ ६२ ॥

समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ॥ तदा त्वायतिसंयुक्तः<sup>१८</sup> 'सं-  
धिज्ञो'<sup>१९</sup> यो द्विलक्षणः ॥ ६३ ॥ स्वयंकृतं च कार्यार्थमकाले काल  
एव वा ॥ मित्रस्य<sup>२०</sup> चैवापकृतं द्विवि<sup>२१</sup>धो विग्रहः स्मृतः ॥ ६४ ॥

टीका—तत्कालके फल लाभके लिये अथवा आगेको फलके लाभके लिये जहां दूसरे राजाके साथ अन्यराजाके ऊपर चढाई आदि कर्म किये जाते हैं वह समान-कर्मा संधि है औ जो फिर तुम यहां जाओ मैं यहां जाउँगा यह उसी कालके तथा आगेके फलकी चाहनासे कीजाती है उसको असमानकर्मा संधि कहते हैं ऐसे दो प्रकारकी संधि जाननी चाहिये ॥ ६३ ॥ शत्रुके विजयरूप प्रयोजनके लिये शत्रुका कष्ट आदि जानिकै आगे कहे हुए मार्गशीर्ष आदि कालसे दूसरे कालमें अथवा कहे हुएकी कालमें आप करि किया हुआ एक विग्रह है और दूसरे राजा करि मित्रका अपकार करनेपर मित्रकी रक्षाके लिये दूसरा विग्रह होताहै इस प्रकार दो प्रकारका विग्रह होताहै ॥ ६४ ॥

एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ॥ संहतस्य च मित्रे  
र्ण द्विविधं यानमुच्यते ॥ ६५ ॥ क्षीर्णस्य चै<sup>२२</sup> व क्रमंशो देवात्पूर्व  
कृतेन वा ॥ मित्रस्य चानुरोधेन<sup>२३</sup> द्विवि<sup>२४</sup>धं स्मृतमासनम् ॥ ६६ ॥

टीका—अपना आवश्यक काम तथा शत्रुके व्यसन आदि अकस्मात् होनेपर समर्थका अकेले चढाई करना यह एक प्रकारका यान हुआ और असमर्थका मित्र सहित चढाई करना यह दो प्रकारका यान कहा जाताहै ॥ ६५ ॥ पूर्व जन्ममें अथवा इस जन्ममें किये हुए पापोंसे जिसके हाथी घोडा कोश आदि क्षीण होगया हैं तब दूसरे पर चढाई न करना अथवा संपन्नका मित्रके अनुरोधसे उसके कार्यकी रक्षाके लिये चढाई न करना यह दो प्रकारका आसन मुनियोंने कहाहै ॥ ६६ ॥

बलस्य स्वामिनश्चैव<sup>२५</sup> स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ॥ द्विविधं कीर्तयते



द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥ ६७ ॥ अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानस्य  
शत्रुभिः ॥ सार्धेषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिये सेनापति समेत सेनाके शत्रुके उपद्रवकी शांतिके लिये एक स्थानमें रक्खे और दूसरे स्थानमें किलेके भीतर कुछ सेनासमेत राजा रहै इस भांति संधि आदि छ गुणोंके उपकार जाननेवालोंने दो प्रकारका द्वैध कहाहै ॥ ६७ ॥ शत्रुओं करि पीडा दिया शत्रुकी पीडाकी विवृत्ति रूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये अथवा उस समय पीडाके न होनेपर आगे होनेवाली शत्रुपीडाकी शंकासे यह राजा इस महाबली राजाका आश्रितहै यह व्यपदेश सर्वत्र प्रकट करनेके लिये बलवानका आश्रय लेना इस भांति संश्रय दोप्रकारका कहा गया है ॥ ६८ ॥

यदावर्गछेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ॥ तदा त्वे चाल्पिकां पीडां  
तदा संधिं समाश्रयेत् ॥ ६९ ॥ यदा प्रकृष्टा मंन्येत सर्वास्तु प्रकृ-  
तीर्भृशम् ॥ अत्युच्छ्रितं तथार्त्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ ७० ॥

टीका—जब युद्धके उपरांत निश्चय अपनी अधिकता जानै उस कालमें थोडे धन आदिके क्षयकोभी अंगीकार करिकै संधि करि लेवै ॥ ६९ ॥ जब मंत्री आदि सब प्रकृतियोंको दानसन्मान आदिसे बहुतही संतुष्ट जानै और आपकौ हाथी घोडे खजाना आदिसे पुष्ट जानै तब विग्रह कहिये युद्ध करै ॥ ७० ॥

यदा मंन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ॥ परस्य विपरीतं च  
तदा यायाद्रिपुं प्रीति ॥ ७१ ॥ यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन  
बलेन च ॥ तदासीत प्रयत्नेन शनैः सान्त्वयन्नरीन् ॥ ७२ ॥

टीका—जब अपनी अमात्य आदि सेनाको हर्षयुक्त और धन आदिसे पुष्टतत्वसे जानै और शत्रुके अमात्य आदि बलको अपनेसे विपरीत जानै तब शत्रुपर चढाई करै ॥ ७१ ॥ जब हाथी घोडा आदि वाहनोंसे और मंत्री आदि सेनासे क्षीण होय तब हौले हौले सामसे भेट आदि देनेसे शत्रुको शांत करता हुआ यत्नसे आसन करै अर्थात् चुपचाप बैठ रहै ॥ ७२ ॥

मंन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ॥ तदा द्विधा बलं कृत्वा  
साधयेत्कार्यमात्मनः ॥ ७३ ॥ यदा परबलानां तु गमनीयतमो  
भवेत् ॥ तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ ७४ ॥



टीका—जब राजा सब भांति शत्रुको बलवान और संधि न करता हुआ जानै तब कुछ सेना समेत आप किलेमें रहै और सेनाके एक भागसे शत्रुके साथ युद्ध करै ऐसे सेनाके दो भाग करिकै मित्र संग्रह आदि अपना काम सिद्ध करै ॥ ७३ ॥ जबतौ अमात्य आदि प्रकृतिके दोष आदिसे बहुत ही ग्रहण करनेयोग्य होय और सेनाके दो भाग करिकै किलेमें रहनेपरभी अपनी रक्षा न कर सकै तब शीघ्रही धर्मात्मा तथा बलवान राजाका आश्रय लेवै ॥ ७४ ॥

निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योऽर्बलस्य च ॥ उपसेवेत तं नित्यं  
सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ ७५ ॥ यदि तत्रापि संपश्येदोषं संश्रयका-  
कारितम् ॥ सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् ॥ ७६ ॥

टीका—कैसा बलवान होय सो कहते है जिनके दोषसे यह अत्यंत जानेयोग्य हुआ उन प्रकृतियोंका और जिसे शत्रुके बलसे इसको भय उत्पन्न हुआ होय उन दोनोंको जो दंड देनेको समर्थ होय उस राजाका नित्य गुरुके समान सेवन करै ॥ ७५ ॥ जिसकी गति नहीं है उसकीगति आश्रय लेना है जो उसमें भी आश्रय-का किया हुआ दोषदेखै तौ उसकालमें निस्संदेह होकै सुंदर युद्ध करै दुर्बलकाभी बलवानसे विजय देखा गयाहै और जो माराजाय तौ स्वर्गमिलै ॥ ७६ ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ॥ यथास्याभ्यधिका  
न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ ७७ ॥ आयति सर्वकार्याणां तदात्वं  
च विचारयेत् ॥ आयतीनां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ ७८ ॥

टीका—सब सामआदि उपायोंसे नीतिका जाननेवाला राजा ऐसा यत्न करै जिसमें इसके मित्र उदासीन और शत्रु बहुत न होय अधिकता होनेपर यह उनके ग्रहण करनेयोग्य होजाताहै क्योंकि धनके लोभसे मित्रभी शत्रु होसकते हैं ॥ ७७ ॥ सब थोड़े वा बहुतकार्योंके उत्तरकाल तथा गुणदोषका विचार करै और वर्तमान-कालका तौ शीघ्रही करनेके लिये विचार करै और बीते हुए सब कार्योंके गुण-दोषोंको इनमें क्या किया और क्या दोष है ऐसे यथार्थ विचार करै ॥ ७८ ॥

आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ॥ अतीते कार्यशेषज्ञः  
शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ७९ ॥ यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीन-  
शत्रवः ॥ तथा सर्वं संविद्व्यादेव सामांसिको नयः ॥ १८० ॥



( २२४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका-उत्तरकालमें कार्योके गुणदोषको जानता है वह गुणवान् कार्यका आरंभ करताहै और दोषयुक्तका परित्याग करता है और जो वर्तमानकालमें शीघ्रही निश्चय करिकै कार्यको करताहै और वीते कार्य हुए में शेषको जानता-है वह उस कार्यकी समाप्तिमें फलको पाताहै जिस्से ऐसे तीनो कालोंमें सावधान होनेसे कभी शत्रुओं करि नही दवाया जाताहै ॥ ७९ ॥ जैसे इस राजाको कहे हुए मित्र उदासीन तथा शत्रुबाधा न देवै ऐसा सब समान करै यह नीति-का संक्षेप है ॥ १८० ॥

यदा तु यानमांतिष्ठेदरिणोऽङ्गप्रति प्रभुः ॥ तदानेन विधानेन याया  
दरिपुरं शनैः ॥ ८१ ॥ मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां मही-  
पतिः ॥ फाल्गुनं वार्थं चैत्रं वा मासौ प्रति यथाबलम् ॥ ८२ ॥

टीका-जब समर्थ हो शत्रुके देशपर चढाईका आरंभ करै तब इस आगे कहे हुए प्रकारसे शत्रुके देशको शीघ्रता न करिकै जाय ॥ ८१ ॥ चतुरंगसेनाकरि युक्त राजा हाथी रथ आदिकी यात्राके विलम्बसे देरमें यात्रा करता हुआ तथा हेमन्त ऋतुके बहुतहैं धान्य जिसमें ऐसे शत्रुके देशपर चढाई किया चाहतावह अपनी यात्राके लिये सुंदर मार्गशीर्षके महीनेमें यात्रा करै और जिस राजाके घोडे बहुत होंय और शीघ्रगति होंय वह राजा वसन्तऋतुके जिसमें धान्य बहुतहै ऐसे शत्रुके देशपर चढाई करना चाहता होय वह फागनमें अथवा चैतमें अपनी सेनाके जाने योग्य कालका उल्लंघन न करिकै यात्रा करै ॥ ८२ ॥

अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्धैवं जयम् ॥ तदा यायाद्वि-  
गृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः ॥ ८३ ॥ कृत्वा विधानं मूलतु  
यात्रिकं च यथाविधि ॥ उपगृह्यास्पदं चैवं चारान्सम्यग्वि-  
धाय च ॥ ८४ ॥ संशोध्य विविधं मार्गं षड्विधं च बलं सर्वकम् ॥  
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ १८५ ॥

टीका-कहे हुए कालोंसे भिन्न कालोंमेंभी जब निश्चय अपना जय जानै तब अपनी सेनाके योग्य ग्रीष्म आदि कालमेंभी हाथी घोडे आदि बहुत सेनावाला विरोधही करिकै यात्रा करै और शत्रुका आमात्य आदि प्रकृतिमें दंड पारुष्य आदि व्यसन उत्पन्न होनेपर शत्रुके पक्षमें उसकी प्रजाके होनेपर कहे हुए कालसे और कालमेंभी चढाई करै ॥ ८३ ॥ मूल कहिये अपने किले तथा देशमें पार्ष्णिग्राह किये गये प्रधान पुरुषको अधिष्ठाता करिकै रक्षा करनेके



योग्य सेनाको एक स्थानमें स्थापित करि यात्राके उपयोगी वाहन आयुध और कवचका शास्त्रकी रीतिसे यात्राका विधान करिकै जैसे पराये देशमें गये हुए इस राजाका ठहरना होय ऐसेको लेकर शत्रुके पक्षवाले भृत्योंको अपने आधीन करिकै कपट करनेवाले दूतोंको शत्रुके देशकी वार्त्ता जाननेके लिये भेजिकै भलीभांति जांगल आनूप आठविक भेदसे तीनि प्रकारके मार्गको वृक्षगुल्म आदिके काटने और ऊंचे नीचेके बराबर करने आदिसे शोध न करि हाथी घोडा रथ पयादोंकी सेना और कर्मकर कहिये कामकरनेवालो समेत छः प्रकारकी सेनाको आहार औषध सत्कार आदिसे शोधन करिकै संग्रामकी उचित विधिसे शीघ्रही शत्रुके देशको यात्रा करै ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ॥

गतप्रत्यागते चैव स हि कर्षतरो रिपुः ॥ ८६ ॥

टीका—जो मित्र गुप्तरूपसे शत्रुका सेवन करताहै और जो भृत्य आदि पहले बिगडकर चला गया और पीछे आगया होय उन दोनोंसे सावधान रहै जिसे वह बहुतही कठिन शत्रुहै ॥ ८६ ॥

दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यांयातुं शकटेन वा ॥ वराहमकराभ्यां वा सूच्यां वा गरुडेन वा ॥ ८७ ॥ यतश्च भयमाशङ्केत्ततो विस्तारयेद्दलम् ॥ पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत् सदा स्वयम् ॥ ८८ ॥

टीका—दंडकी आकृति व्यूहकी रचना आदि है उसको दंडव्यूह कहते हैं ऐसेही शकट आदि व्यूह भी होते हैं दंड व्यूहमें सेनाके आगे सेनाका स्वामी मध्यमें राजा पीछे सेनापति बगलोंमें हाथी उनके समीप घोडे तिस पीछे पयादे ऐसे रचना करनेसे सब औरसे बराबर स्थितियुक्त दंडव्यूह होताहै उससे चहु ओर भय होनेपर चलनेयोग्य मार्गको चले और मुख तथा पीछेका भाग पतला बीचका माग भारी ऐसा वराह व्यूह होताहै इसीका जो बीचका भाग बहुत भारी होय तौ गरुड व्यूह होताहै जो दोनो बगलोंसे भय होय तौ इन दोनो व्यूहोंसे यात्रा करै वराह व्यूहका उलटा मकरव्यूह होताहै उससे आगे पीछे दोनो ओर भय होनेपर यात्रा करै ओर चींटियोंकी पंक्तिके समान आगे पीछे इकट्ठे होकै जहां जहां सेनावालोंकी स्थिति है और वीरपुरुष जिसके आगेके भागमें स्थितहैं वह सूचीमुखव्यूह उससे आगे भय होनेपर यात्रा करै ॥ ८७ ॥ जिस दिशासे शत्रुके भयकी शंका होय उसीमें अपनी सेनाको फैलावै जिसके चारो



और बराबर सेना फैली होय और बीचमें जिसके राजा स्थित है उस कमल व्यूह करि पुरसे निकलकै सदा पडाव डालै ॥ ८८ ॥

सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ॥ यतश्च भयमांशङ्केत्प्रा-  
चीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ८९ ॥ गुल्मांश्च स्थापयेदामान् कृत  
संज्ञान्समन्ततः ॥ स्थाने युद्धे च कुशलानभीरून्विकारिणः ॥ ९० ॥

टीका—हाथी घोड़े रथ पयादे रूप दश अंगका एक पति करना चाहिये उसको पत्तिक कहते हैं दशपत्तिकका एक स्वामी सेनापति कहाता है दश सेनापतिका नायक एक एक सेनानायक वा बलाध्यक्ष होता है उनदोनों सेनापति और बलाध्यक्षको सब दिशाओंमें युद्धके लिये नियुक्त करै और जब जिस दिशासे भयकी शंका होय तब उस दिशाको आगे करै ॥ ८९ ॥ विश्वासवाले पुरुष जिनके अधिष्ठाता है ऐसे गुल्मनाम सेनाके भागोंको तथा स्थित होके अथवा हटिकै युद्ध करनेके लिये किया है भेरि ढोल शंख आदिका संकेत जिन्होंने और ठहरने तथा युद्धमें प्रवीण निर्भय व्यभिचार रहित सेनापति बलाध्यक्षोंको दूर सब दिशाओंमें दूसरेका प्रवेश रोकनेके लिये और शत्रुकी चेष्टा जाननेके लिये नियत करै ॥ ९० ॥

संहतान्योर्ध्वेदलपान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ सूच्या वज्रेण चैवैतां  
न व्यूहेन व्यूह्य योर्ध्वयेत् ॥ ९१ ॥ स्यन्दनाश्वैः समे युद्धचेदनूपे  
नोद्विपैस्तथा ॥ वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मयुधैः स्थले ॥ ९२ ॥

टीका—थोड़े योद्धाओंको इकट्ठे करिकै लडावै और बहुतोंको अच्छे प्रकारसे फैलायदे पहले कही हुई सूचीसे अथवा वज्रनाम व्यूहसे तीनि प्रकारसे खड़ी है सेना जिसकी ऐसी रचना करिकै योद्धाओंको लडावै ॥ ९१ ॥ समान भूमिके भागमें रथ तथा घोड़ोंसे युद्ध करै वहां उनकी युद्धकी सामर्थ्य है और जिस देशमें जल बहुत है वहां नाव तथा हाथियोंसे युद्ध करै और वृक्ष तथा गुल्मोंसे घिरे हुए स्थानमें धनुषधारियोंसे और गढिल्ले कंटक पत्थर आदि रहित स्थलमें ढाल तलवारि भाला आदि शस्त्रोंसे युद्ध करै ॥ ९२ ॥

कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान् ॥ दीर्घालिंघूंश्चैव न  
रानग्रांतीकेषु योजयेत् ॥ ९३ ॥ प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक्  
परीक्षयेत् ॥ चेष्टांश्चैव विजानीयादर्शान् योर्ध्वयतामपि ॥ ९४ ॥



टीका—कुरुक्षेत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको तथा मत्स्य कहिये विराट देशके निवासियोंको और पांचाल कहिये कान्यकुब्ज तथा अहिछत्रमें उत्पन्न मनुष्योंको और शूरसेन कहिये माथुरोंको बहुधा भारी शरीर शूरता तथा अहंकारको योग होनेसे सेनाके आगे युद्ध करावै तेसेही और देशोंकेभी छोटी बड़ी देहवाले युद्धके अभिमानी मनुष्योंको सेनाके आगेही रक्खै ॥ ९३ ॥ सेनाकी व्यूह रचना करिकै विजयमें धर्मका लाभ औ सन्मुख मारे गयेको स्वर्गका लाभ और भागने में स्वामीके पाप तथा नरककी प्राप्ति होती है ऐसे कहिकै उनको युद्धका उत्साह करावै और वे किस अभिप्रायसे प्रसन्न होते हैं औ किससे कुपित होते हैं इस बातकी परीक्षा करै ऐसेही शत्रुओंसे युद्ध करते हुएभी योद्धाओंकी सकपट निष्कपट चेष्टाओंको जानै ॥ ९४ ॥

उपैरुध्यां रिमांसीत राँष्ट्रं चाँस्त्र्योपपीडयेत् ॥ दूषयेच्चाँस्यं संततं  
यवसांनोदकेन्धनम् ॥ ९५ ॥ भिन्ध्याच्चैव तडांगानि प्राकारपरि  
खास्तथा ॥ समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रांसयेत्तथा ॥ ९६ ॥

टीका—किलेमें होवै अथवा बाहर होय ऐसे युद्ध करते हुए राजाको घेरिकै पडा रहै और इसके देशको उजाडै और इसके घास अन्न पानी इंधनको नष्ट वस्तुओंके मिलाने आदिसे दूषित करै ॥ ९५ ॥ शत्रुके जल पीनेयोग्य तलाव आदि कोंको और किलापर कोटा आदिको तोडदे और उसकी खाइयोंको तोडने भरदेने आदिसे जल रहित करदे ऐसे शत्रुओंको शंका रहित होकै दवावै और शक्तिको ले लेवै और रात्रिमें ढक्का काहीलक आदि शब्दोंसे डरपावै ॥ ९६ ॥

उपजप्यानुपजपेद्दुष्टयेतैर्व च तत्कृतम् ॥ युक्ते च दैवे युद्धयेत  
जयप्रेप्सुरपेतभीः ॥ ९७ ॥ सांभ्रा दानेन भेदेन समस्तैरथवा  
पृथक् ॥ विजेतुं प्रयतेतारीर्न युद्धेन कदाचन ॥ ९८ ॥

टीका—भेदके योग्य राज्यके चाहनेवाले शत्रुके वंशके लोगोंको तथा क्षोभयुक्त अमात्य आदिकोंको फोडै और भेदसे अपने किये गये उनकी चेष्टाको जानै और शुभग्रहकी दशा आदिसे फलयुक्त दैवको जानिकै जयकी इच्छासे निर्भय युद्ध करै ॥ ९७ ॥ प्रीति तथा आदरसे देखने और हितके कहने आदि रूप सामसे और शत्रुकी हाथी घोडा रथ सुवर्ण आदिके देने रूपदानसे और शत्रुकी प्रजा-और राज्य चाहनेवाले उसके अनुगामियोंके फोडनेरूप भेदसे इन सब उपायोंसे सामर्थ्यके अनुसार शत्रुओंके जीतनेका यत्न करै युद्धसे कभी नहीं ॥ ९८ ॥



अनित्यो विजयो यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः॥ पराजयश्च संग्रामे  
तस्माद्युद्धं विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥ त्रयाणामप्युपायानां पूर्वोक्तानाम  
संभवे ॥ तथा युद्धयेत संपन्नो विजयेत रिपून् यथा ॥ २०० ॥

टीका—युद्ध करते हुए राजाओंकी थोड़े बल और बहुत बलकी अपेक्षाके  
बिनाही नियमसे जीति हारि हो देखी जाती है तिस्से और उपायोंके होनेपर  
युद्धको नहीं करै ॥ ९९ ॥ पहले कहे हुए तीन साम आदि उपायोंसे काम न  
होनेपर जीति हारिके संदेहमेंभी यत्नवाला ऐसे युद्ध करै जैसे शत्रुओंको जीति  
लेवे जिस्से जीतिमें अर्थका लाभ होता है और सन्मुख मरनेमें स्वर्ग मिलताहै  
और जहां निस्संदेह पराजय कहिये हारना पड़े वहां युद्धसे हठिजाना अच्छा है  
जैसे आगे कहेंगे कि आत्मातु रक्ष्य इति अर्थात् अपनी सदा रक्षा करै यह मेधा-  
तिथि और गोविंदराजने लिखाहै ॥ २०० ॥

जित्वा संपूजयेद्देवान्ब्राह्मणांश्चैवं धार्मिकान् ॥ प्रंदद्यात्परिहारांश्च  
स्थाययेद्भयानि च ॥ १ ॥ सर्वेषां तु विदित्वैषां समासेन चि-  
कीर्षितम् ॥ स्थापयेत्तत्र तद्वश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ॥ २ ॥

टीका—पराये देशको जीतिके उसमें जो देवता होय उनको तथा धर्म प्रधान  
ब्राह्मणोंको भूमि सुवर्ण आदिके दान तथा सन्मानसे पूजन करै जीते हुए द्र-  
व्यके एक भागके देने आदिहीसे यह पूजनहै सो याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ ॥ नातः  
पर तरो धर्मो नृपाणां यद्रणार्जितम् । विप्रेभ्यो दीयते द्रव्यं प्रजाभ्यश्चाऽभयं सदा ॥  
अर्थ इस्से परे राजाओंको धर्म नहीं है कि रणमें जोडा हुआ धन ब्राह्मणोंको दिया  
जाय और प्रजाको सदा अभय दिया जाय इति ॥ तथा देवता और ब्राह्मणो-  
के लिये मैने यह दिया ऐसे देशके वासियोंको परिहार दे तथा स्वामीकी  
भक्तिसे जिन्होंने हमारा अपकार कियाहै उनकी मैने क्षमा की अब निर्भय हो  
सुखसे व्यापार करौ ऐसे अभय करै ॥ १ ॥ शत्रु और उसके मंत्री आदि सबोंही  
का संक्षेपसे अभिप्राय जानकर उस देशमें बलसे मारे हुए राजाके वंशहीके पुरु-  
षको राज्यमें स्थापित करै और तुमको यह करना चाहिये यह न करना चाहिये  
यह उसके लिये तथा उसके मंत्रियोंके लिये नियम करै ॥ २ ॥

प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ॥ रत्नैश्च पूजये  
देवं प्रधानपुरुषैः सह ॥ ३ ॥ आदानमप्रियंकरं दानं च प्रिय-  
कारकम् ॥ अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशंस्यते ॥ ४ ॥



टीका—उन पराये मनुष्योंके लिये देशके धर्मसे शास्त्रसे प्राप्त आचारोंको प्रमाण करै और इस राज्यमें बैठाए हुए राजाको मंत्री आदिकै समेत रत्न आदिकों के देनेसे पूजन करै ॥ ३ ॥ यद्यपि वांछित वस्तुओंका ले लेना अप्रिय करने-वाला है और देना प्रिय करनेवाला है यह स्वभाव है तिसपरभी समय समयमें लेना देना प्रशंसाके योग्य होता है इससे उसी कालमें पूजन करै ॥ ४ ॥

सर्वं कैर्मैदमार्यत्तं विधाने दैवमानुषे ॥ तयोदैवमचिन्त्यं तु मां-  
नुषे विद्यते क्रिया ॥ ५ ॥ सह वापि<sup>१</sup> व्रजेद्युक्तः<sup>२</sup> संधिं कृत्वा  
प्रयत्नतः ॥ मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधं फलम् ॥ ६ ॥

टीका—पूर्व जन्ममें इकठे किये पुण्य पाप रूप कार्य दैवके आधीन हैं और इस जन्ममें इकठे किये हुए मनुष्यके व्यापारके आधीन हैं उन दोनोमेसे दैवका तौ चिंतवन नहीं हो सकता है मानुषमे तौ विचार होसकता है इस लिये मानुषके ही द्वारा कार्यसिद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ ५ ॥ चढाई करनेयोग्य शत्रुसे युद्ध करना चाहिये अथवा वही मित्र होजाय और उस करिके सुवर्ण दिया जाय अथवा भूमिका एक देश दिया जाय इन तीनोंको यात्राका फल जानिके उसके साथ संधि कहिये मिलाप करिके यत्नसे चलदे ॥ ६ ॥

पार्ष्णिग्राहं च संप्रेक्ष्य तथाक्रन्दं च मण्डले ॥ मित्रादथाप्यमित्रा  
द्वौ यात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न  
तथैवते ॥ यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ ८ ॥

टीका—जीतनेकी इच्छासे शत्रुपर गये हुए राजाके पीछे जो आके उसके देश आदिको दवाता है वह पार्ष्णिग्राह कहाता है वैसा करनेवाले उसका रोकने वाला जो अनंतर राजा है उसको आक्रन्द कहते हैं उन दोनोको देखकर यात्रा करनी चाहिये अथवा मित्रताको प्राप्त हुए शत्रुसे यात्राका फल ग्रहण करै उन दोनोके विना देखे ग्रहण करता हुआ राजा कदाचित् उनके किये हुए दोष करि ग्रहण किया जाय ॥ ७ ॥ सुवर्ण और भूमिके लाभसे राजा ऐसा नहीं वृद्धिको प्राप्त होता है जैसा इस समय दुर्बलभी आगेको वृद्धियुक्त स्थिर मित्रको पाके वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तृष्टप्रकृतिमेव च ॥ अनुरक्तं स्थिरारम्भं  
लघु मित्रं प्रशस्यते ॥ ९ ॥ प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दार्तार-  
मेव च ॥ कृतज्ञं धृतिमन्तं च कष्टमोदुरारिं बुधाः ॥ २१० ॥



( २३० )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका-धर्मका जाननेवाला तथा किये हुए उपकारका जाननेवाला और जिसकी प्रकृति कहिये स्वभाव संतोषयुक्त होय ऐसा और प्रीति करनेवाला और जिनके आरंभ स्थिर हैं ऐसे कामोंका करनेवाला मित्र प्रशस्त कहिये उत्तम है ॥ ९ विद्वान् कुलीन शूर चतुर दाता कियेका जाननेवाला और धीरजवाला अर्थात् सुखदुःखमें एकरूप ऐसे शत्रुको पंडित दुरुच्छेद कहिये दुःखसे उखाड़ने योग्य कहते हैं तिससे ऐसे शत्रुके साथ मिलापकरना चाहिये ॥ २१० ॥

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं कर्णवेदिता ॥ स्थौललक्ष्यं च सैत-  
तमुदासीनगुणोदयः ॥ ११ ॥ क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यं पशुवृद्धि-  
करीमपि ॥ परित्यजेन्नृपो भूमिमार्त्तमार्थमविचारयन् ॥ १२ ॥

टीका-साधुपन पुरुषविशेषका जानना शूरता दयावान होना बहुत देनेवाला होना ये उदासीनके सब गुण हैं तिससे इस प्रकारके उदासीनका आश्रय लेकर जिसके लक्षण कहि चुके हैं ऐसे शत्रुके साथभी युद्ध करना चाहिये ॥ ११ ॥ अनाम य कहिये रोग न होने आदि कल्याणकी देनेवाली और नदीमातृक होनेसे सदा सब सस्योंकी देनेवाली और बहुतसे तृण आदिके योगसे पशुओंकी बढ़ानेवाली भूमिको अपनी रक्षाके लिये राजा शीघ्रही अपनी रक्षाका और प्रकार न होनेपर त्याग करै ॥ १२ ॥

आपदर्थं धनं रक्षेद्दरान् रक्षेद्धनैरपि ॥ आत्मानं सैततं रक्षेद्दरै-  
रपि धनैरपि ॥ १३ ॥ सह सर्वाः संमुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो-  
भृशम् ॥ संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान् सृजेदुधैः ॥ १४ ॥

टीका-आपत्ति निवारण करनेके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये और धनके परित्यागसेभी स्त्रीकी रक्षा करनी चाहिये और अपनी फिर स्त्री तथा धनके त्यागसे भी रक्षा करै ॥ १३ ॥ कोपका क्षय प्रकृतिका कोप मित्रका व्यसन इत्यादिक आपत्तियोंको एकसाथ अधिकतासे उत्पन्न जानिके मोहको न प्राप्त होय किन्तु जुदे जुदे अथवा सब सामादिक उपायोंको शास्त्रका जाननेवाला काममें लावै ॥ १४ ॥

उपेतारमुपेयं च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः ॥ एतत्रयं समाश्रित्य प्र-  
यतेताऽर्थसिद्धये ॥ १५ ॥ एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्य मन्त्रि-  
भिः ॥ व्यायम्यापुत्य मध्यान्हे भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥ १६ ॥



टीका-उपेता कहिये उपाय करनेवाले आपको और उपेय कहिये प्राप्त होने योग्यको और उपाय सामादिक ये सब परिपूर्ण इन तीनोंका आश्रय लेके सामर्थ्यके अनुसार प्रयोजनसिद्धिके लिये यत्न करै ॥ १५ ॥ ऐसे पहले कहे हुए प्रकारसे मंत्रियोंके साथ सब राज्यके वृत्तांतका विचार करि पीछे शस्त्र आदिकोंके अभ्यासकी कसरत करिके मध्यान्हमें स्नान आदि तथा मध्यान्हके कृत्य करि भोजनको रनवासमें जाय ॥ १६ ॥

तत्रात्मभूतैः कालज्ञैर्रह्यैः परिचारकैः ॥ सुपरीक्षितमन्त्राद्यम-  
द्यान्मन्त्रैर्विषांपहैः ॥ १७ ॥ विषघ्नैर्रगदैश्चास्यैः सर्वद्रव्याणि यो-  
जयेत् ॥ विषघ्नानि च रत्नानि निर्यतो धारयेत्सदा ॥ १८ ॥

टीका-वहां रनवासमें अपने तुल्य भोजन करनेके समयके जाननेवाले दूसरे करि नही फोडनेयोग्य ऐसे रसोई करनेवालों करि किये हुए और अच्छी भांति चकोर आदिके देखनेसे परीक्षा किये गये अर्थात् सविष अन्नको देखके चकोरकी आंखें लाल होजाती है और विषके दूरि करनेवाले मंत्रों करि जपे हुए अन्नका भोजन करै ॥ १७ ॥ विषकी नाश करनेवाली औषधियोंसे सब भोजनके पदार्थोंको मिलावै और विषके हरनेवाले रत्नोंको यत्न करिके सदा धारण करै ॥ १८ ॥

परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः ॥ वेषाभरणसंशुद्धाः  
रूपश्रेष्ठः सुसमाहिताः ॥ १९ ॥ एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्या  
सनाशने ॥ स्नाने प्रसांधने चैव सर्वालंकारकेषु च ॥ २० ॥

टीका-गूढ चारके द्वारा परीक्षा की गई और गुप्त शस्त्रका ग्रहण तथा विषसे लिपे हुए आभरणोंके धारण करनेकी शंकासे जिनके वेष और आभरण देखि लिये गये है और जिनका मन अन्यत्र नही है ऐसी स्त्रियां चमर स्नान पान जल और धूप देना इन सब बातोंसे राजाकी सेवा करै ॥ १९ ॥ ऐसे वाहन शय्या आसन भोजन स्नान और चंदन आदि अनुलेप इन सब अलंकारकी वस्तुओंमें नानाप्रकारकी परीक्षा आदि प्रयत्न करै ॥ २० ॥

भुक्तवान् विहरेच्चैव स्त्रीभिरन्तःपुरे सह ॥ विहृत्य तु यथार्कालं  
पुनः कार्यणि चिन्तयेत् ॥ २१ ॥ अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं  
पुनर्जनम् ॥ वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च ॥ २२ ॥

टीका-भोजन करिके वहीं रनवासमें भार्याओंके साथ विहार करिके दिनके



सातमें भागतक क्रीडा करि आठमें भागमें राज्यसंबंधी कार्योंका विचार करै ॥  
॥ २१ ॥ अलंकृत अर्थात् सब वस्त्र आभूषण आदिकोंको धारण किये हुए शस्त्र  
धारण करनेवाले मनुष्योंको अर्थात् सिपाहियोंको देखै और सब वाहनोंको तथा  
शस्त्रों और आभरणोंको देखै ॥ २२ ॥

संध्यां चोपास्य शृणुयादन्तर्वेष्टमनि शस्त्रभृत् ॥ रहस्याख्यायिनां  
चैव प्रणिधीनां च चेष्टितम् ॥ २३ ॥ गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समं  
नुज्ञाप्य तं जन्म ॥ प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरं पुनः ॥ २४ ॥

टीका—उसके पीछे, संध्योपासन करिकै अंतःपुरके एकांतस्थानमें जाकै  
शस्त्रोंको लिये हुए अंकांतमें कहनेवाले दूतोंके कामोंको सुनै ॥ २३ ॥ उन म-  
नुष्योंको आज्ञा देकर दूसरी कक्षमें जाकै स्त्रियों करि युक्त भोजनके लिये फिर  
रनवासमें जावै ॥ २४ ॥

तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तर्यघोषैः प्रहर्षितः ॥ संविशेत्तु यथाकां  
लमुत्तिष्ठेच्च गतकुर्मः ॥ २५ ॥ एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवी-  
पतिः ॥ अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत् ॥ २६ ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मो नाम सप्त ० ७

टीका—वहां कुछ खायकै नगारोंके शब्दसे आनंदित हो उचित समयमें श-  
यन करै फिर श्रमरहित हो पहर भरके तडके उठै ॥ २५ ॥ रोगरहित राजा  
इसकहे हुए विधानको आप करै और जो अस्वस्थ अर्थात् रोग आदिसे ग्रस्त होय  
तौ यह सब सेवकोंसे करावै ॥ २६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितश्रीपरमसुखशर्मद्विवेदितनुजश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्वि-  
वेदिकृतायांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

### अथ अष्टमोऽध्यायः ।

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभिश्चैव  
विनीतः प्रविशेत्सभाम् ॥ १ ॥ तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्य-  
म्य दक्षिणम् ॥ विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम् ॥ २ ॥

टीका—इस प्रकारके शत्रु राजाओंसे प्रजाकी रक्षासे पाई है जीविका जिसने  
ऐसा उन्ही प्रजाओंके आपसके विवादसे उत्पन्न पीडाकी शान्तिके लिये ऋणा-



दान आदि अठारह है विषय जिसके विरोधयुक्त अर्थी प्रत्यर्थी ( मुद्दई मुद्द-  
आलह ) के वचनोंसे उत्पन्न हुए संदेहके हरनेवाले विचारको व्यवहार कहते हैं  
उन व्यवहारोंके देखनेकी इच्छा करता हुआ राजा जो आगे कहे जंयंगे उन  
लक्षणों करि लक्षित ब्राह्मणों और मंत्रियोंके और सातमें अध्यायमें कहे हुए पंचां-  
ग मंत्रोंके साथ नम्र तथा वाणी हाथ पावकी चपलता न होनेसे शांतस्वरूप  
क्योंकि राजाके उद्धत होनेसे वादी प्रतिवादियोंकी बुद्धि ठीक न रहनेसे अच्छी  
भांति न कह सकनेपर तत्त्वका निर्णय नहीं होताहै इस भांति आगे कही सभामें  
प्रवेश करै ॥ १ ॥ उस सभामें भारी कामकी अपेक्षासे बैठा हुआ और छोटे का  
ममें खड़ा हुआभी दाहिनी भुजाको उठाय अनुद्धत वेष अलंकारी हो राजा कार्योंका  
विचार करै ॥ २ ॥

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥

अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥

टीका-अठारह व्यवहारके मार्गोंमें पढ़े हुए और देश जाति कुलके व्यवहारोंसे  
जाने गये उन ऋणादान आदि कार्योंको शास्त्रसे निश्चय किये हुए दिव्य कहिये श-  
पथ आदि कारणोंसे पृथक् २ प्रतिदिन विचार करै उन्ही अठारहको गिनाते हैं ॥ ३ ॥

तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ॥ संभूय च समुत्थानं  
दत्तस्यानपकर्म च ॥ ४ ॥ वेतनस्यैव चादानं संविदं च व्यति-  
क्रमः ॥ क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वाभिपालयोः ॥ ५ ॥ सी-  
माविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ॥ स्तेयं च साहसं चैव  
स्त्रीसंग्रहणमेव च ॥ ६ ॥ स्त्रीपुंघर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव  
च ॥ पदान्यष्टादशैर्तानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ७ ॥

टीका-उनमें पहला ऋणादान अर्थात् उधार लेना १ निक्षेप कहिये धरोहड़  
२ अस्वामिविक्रय कहिये स्वामीके विना बेचिदेना ३ संभूय समुत्थान कहिये  
इकट्ठे हो बनिया आदिकोंकी क्रियाका करना ४ दत्तस्यानपकर्म कहिये दिये  
हुए धनका अपात्रकी बुद्धिसे अथवा क्रोध आदिसे ले लेना ५ नौकरका मा  
सिक न देना ६ किई हुइ व्यवस्थाको न मानना ७ लेने तथा बेचनेमें पछिता  
वा करनेसे बदल जाना ८ स्वामीका और पशुओंके पालनेवालेका झगडा ९  
ग्राम आदिकी सीमाका झगडा १० वाक्पारुष्य कहिये गाली आदिका देना ११  
दंडपारुष्य मारना आदि १२ स्तेय कहिये चुराकै धन लेना १३ साहस कहिये



बलसे धन छीन लेना १४ स्त्रीका पराये पुरुषसे संयोग १५ स्त्रीसहित पुरुषकी धर्मव्यवस्था १६ पिता आदिके धनका विभाग १७ फासोंसे खेलना अथवा दाव लगाकैं पक्षी मेंढा आदिका लडाना १८ ॥ ये अठारह व्यवहारके स्थानहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ॥

धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ८ ॥

टीका—इन ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें बहुधा विवाद करनेवाले मनुष्योंके अनादि तथा परंपरासे चले आये हुए नित्य धर्मका आश्रय ले कार्यका निर्णय करै भूयिष्ठ शब्दसे और भी विवादके स्थानहैं यह सूचित करताहैं वे प्रकीर्णक शब्दसे नारदादिकोंने कहे हैं सोई नारदने कहाहै जैसे न दृष्टं यच्च पूर्वेषु सर्वतस्तस्यात्प्रकीर्णकमिति अर्थ जो पहले कहे हुए अठारहमें नही देखे गये है वे सब प्रकीर्णक हैं ॥ ८ ॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम् ॥ तदा नियुज्याद्विद्वां  
सं ब्राह्मणं कार्यदर्शने ॥ ९ ॥ सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव  
त्रिभिवृतः ॥ सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा ॥ १० ॥

टीका—जब दूसरे कामोंकी आवश्यकतासे अथवा रोग आदिसे राजा आप कार्योंको न देखै तब उनके देखनेके लिये कार्य देखना जानने वाले ब्राह्मणको नियत करै ॥ ९ ॥ वह ब्राह्मण राजाके देखनेयोग्य कार्योंको सभाके योग्य धर्मात्मा और कार्य देखनेके जाननेवाले तीन ब्राह्मणों करि युक्त उसी सभामे जाय बैठकै अथवा खड़ा होकै फिरता हुआ नही उन ऋणादान आदि कार्योंको देखै ॥ १० ॥

यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः ॥ राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान्  
ब्राह्मणस्तां सभां विदुः ॥ ११ ॥ धर्मो विद्धस्त्वं धर्मेण सभां यत्रोप-  
तिष्ठते ॥ शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ १२ ॥

टीका—जिस स्थानमें ऋक् यजु और सामके जाननेवाले तीनभी ब्राह्मण और राजाका अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण बैठताहै उस सभाको चतुर्मुख सभा मानते हैं ॥ ११ ॥ भा प्रकाशको कहते हैं उस करिकै सहित होय उसको सभा कहते हैं यहां विद्वानोंके समूहको सभा मानते हैं देशमें विद्वानोंके समूहरूप सभामें सत्य कथनसे उत्पन्न धर्म मिथ्या कथनसे उत्पन्न अधर्म करि पीडित होताहै अ-



थात् अर्थी प्रत्यर्थियोंको मध्यमें एकके सत्य कहनेसे और दूसरेके झूठ कहनेसे वे सभासद इस धर्मके पीडा देनेवाले होनेसे कांटेके समान अधर्मको नहीं निकालते है तब वेही उस अधर्मरूपी शल्यसे विधि जाते है ॥ १२ ॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम् ॥ अंबुवन्विंबुवन्वापि  
नरो भवति किं लिखी ॥ १३ ॥ यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रा-  
चूतेन च ॥ हन्यते प्रेक्षमाणानां ह्येतास्तत्र सभासदः ॥ १४ ॥

टीका—सभाको जानकर व्यवहार देखनेके लिये उसमें न जाना चाहिये और जो पूछा जाय तौ सत्यही कहना चाहिये चुप बैठा हुआ अथवा झूठ कहता हुआ दोनों प्रकारसे शीघ्रही पापी होताहै ॥ १३ ॥ जिस सभामें सभासदोंके देखते हुए उनका अनादर करिके अर्थ प्रत्यर्थियों करि अधर्मसे धर्म नहीं दिखाई देताहै और जहां साक्षियों करि सत्य झूठसे नाश किया जाताहै और वे सभासद उसका यथार्थ निर्णय नहीं करसकते वहां वेही सभासद उस पापसे नष्ट होजातेहै ॥ १४ ॥

धर्म एव ह्येतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ॥ तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो  
मानो धर्मो ह्येतोऽवधीत् ॥ १५ ॥ वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्यै यः  
कुरुते ह्यलम् ॥ वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ १६ ॥

टीका—अतिक्रमण किया हुआ अर्थात् न माना हुआ धर्मही इष्ट अनिष्ट समेत नाश कर देताहै अर्थी प्रत्यर्थी आदि नहीं वही धर्म अनतिक्रान्त कहिये माना हुआ इष्ट अनिष्टसमेत रक्षा करताहै तिससे धर्मका अतिक्रमण न करना चाहिये अतिक्रमण किया हुआ धर्म तुम समेत हमको न मारै सभासदोंके कुमार्गमें प्रवृत्त होनेपर यह प्राङ्गिवाकका संबोधनहै अथवा नो यह निषेध अर्थमें अव्यय है तौ नो हतो धर्मो मावधीत् अर्थात् नहीं अतिक्रमण किया हुआ धर्म नहीं मारताहै यह अभिप्राय है ॥ १५ ॥ कामनाओंको जो बरसै उसको वृष कहते है वृष शब्दसे धर्मही कहा जाताहै और अलं शब्दका अर्थ वारण कहिये मना करनाहै तिससे जो धर्मका वारण करताहै उसको देवता वृषल जानते है जाति वृषल नहीं है तिससे धर्मका लोप न करै ॥ १६ ॥

एकै एव सुहृद्धर्मो निर्धनेऽप्यनुयाति यः ॥ शरीरेण संमं नैशं सं  
वैमन्यद्धि गच्छति ॥ १७ ॥ पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिण-  
मृच्छति ॥ पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १८ ॥



टीका-धर्मही एक मित्रहै जो मरनेके समयभी वांछित फल देनेके लिये साथ जाताहै और सब स्त्री पुत्र आदि शरीरहीके साथ नाशको प्राप्त होते है तिससे पुत्र आदिकोंके स्नेहकी अपेक्षासेभी धर्म न छोड़ना चाहिये ॥ १७ ॥ दुष्टव्यवहार देखनेसे अर्थात् सत्यनिर्णय न करनेसे अधर्मका चौथा भाग अधर्म करनेवाले अर्थी वा प्रत्यर्थीको प्राप्त होताहै और दूसरा चौथा भाग झूठ बोलनेवाले साक्षीको और तीसरा चौथा भाग सब सभासदोंको और शेष चौथा भाग राजाको पहुंचताहै इस भांति सब पापके भागी होतेहै ॥ १८ ॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुंच्यन्ते च सभासदः॥ एनो गच्छति कर्तारं  
निन्दां हीं यत्र निन्द्यते ॥ १९ ॥ जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्या  
ब्राह्मणैश्वर्यः ॥ धर्मप्रवक्ता नृपते न तु शूद्रः कथंचन ॥ २० ॥

टीका-जिस सभामें झूठ बोलनेसे निंदाके योग्य अर्थी वा प्रत्यर्थी अच्छे प्रकार न्यायके देखनेसे निंदा किये जाते है वहां राजा पाप रहित होताहै और सभासदोंकोभी पाप नहीं लगताहै करनेवाले अर्थी आदिकोहीको पाप प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ जिसकी केवल जाति ब्राह्मणहै कर्म नहीं है और वैश्य आदिके समान साक्षी आदिकोंसे न्याय अन्यायके करनेको समर्थ ऐसा ब्राह्मण जातिभी अथवा जिसका संदेहहै आपको ब्राह्मण कहता है वहभी कहै हुए योग्य ब्राह्मणके न होनेपर कही राजाके कार्य दर्शनमें नियुक्त होताहै और धर्मात्मा व्यवहारका जाननेवालाभी शूद्र कभी नहीं होताहै अर्थात् योग्य ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यभी कार्यका देखनेवाला होताहै शूद्र कभी नहीं होताहै ॥ २० ॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम् ॥ तस्य सीदति तद्राष्ट्रं  
पङ्के गौरिव पश्यतः ॥ २१ ॥ यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिककान्तम-  
द्रिजम् ॥ विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥ २२ ॥

टीका-जिस राजाके धर्मका निर्णय शूद्र करताहै उसके देखते हुए उसका देश कीचमें गौके समान दुखी होताहै ॥ २१ ॥ जिस देशमें शूद्र बहुतहै और नास्तिक अर्थात् जो परलोकको नहीं मानते ऐसे बहुत होय और जो ब्राह्मणोंसे शून्य होय वह सब दुर्भिक्ष तथा रोगसे पीडित हो शीघ्रही नष्ट होजाताहै ॥ २२ ॥

धर्मासनमधिष्ठाय संवीताङ्गः समाहितः ॥ प्रणम्य लोकपालेभ्यः  
कार्यदर्शनमारभेत् ॥ २३ ॥ अर्थानर्थान्बुभौ बुद्ध्वा धर्माधर्मौ च केव-



लौ ॥ वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्याणि कार्याणाम् ॥ २४ ॥

टीका-धर्म देखनेके लिये आसनपर बैठकै देहको ढके हुए एकाग्रमन हो लोक-पालोंको प्रमाण करि कार्योंको देखै ॥ २३ ॥ प्रजाकी रक्षा तथा उखाड़नेरूप वे-दसंबंधी अर्थ और अनर्थको जानकर परलोकके लिये केवल धर्म अधर्मका अनुरोध करि जिसमें विरोध न होय ऐसे कार्यार्थियोंके ( मुकद्दमेंवालोंके ) कार्योंको ( मुकद्द-मोंको ) देखै जो कोई वर्णोंके होंय तौ ब्राह्मण आदिके क्रमसे देखै ॥ २४ ॥

बाह्यैर्विभांवेष्टिर्द्वैर्भावंमन्तर्गतं नृणाम् ॥ स्वरवर्णेङ्गितोकारै-  
श्चक्षुषां चेष्टितेन च ॥ २५ ॥ आकारैरिङ्गितैर्गत्यां चेष्टयां भाषि-  
तेन च ॥ नेत्रवक्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ २६ ॥

टीका-बाहरी स्वर आदि चिन्होंसे अर्थी ( मुद्दई ) और प्रत्यर्थी ( मुद्दआलह ) के भीतरी अभिप्रायको लक्षित करै स्वरका गद्गद होना कहिये बोलनेमें गला-भरि आना और वर्ण कहिये स्वाभाविक रंगसे मुखका रंग बदल जाना अर्थात् मुखसेमें कालापन आदिका होजाना और इंगित कहिये नीचेको देखना आदि और आ-कार कहिये देहमें पसीना आना रोमोंका खडा होना आदि और चेष्टा क-हिये हाथोंका फटकारना आदि इन सब बातोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके हृदयकी सच्ची झूठी बातोंको लक्षित करै ॥ २५ ॥ पहले कहै हुए आकार आदिसे और गतिसे अर्थात् पैरोंके ठीक न रखनेसे चेष्टासे बोलनेसे और नेत्र तथा मुखके विकारसे मनकी भीतरी बात जानी जातीहै ॥ २६ ॥

बालदायादिकं रिक्थं तावद्वाजानुपालयेत् ॥ यावत्सं स्यात्समावृ-  
त्तो यावच्चान्तीतशैशवं ॥ २७ ॥ वशाऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं नि-  
ष्कुलासु च ॥ पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वार्तुरासु च ॥ २८ ॥

टीका-जिसको बालकके चाचा ताऊ आदि अन्यायसे लिया चाहते होय ऐसे अनाथ बालकके धनकी राजा तब तक रक्षा करै जबतक यह बालक छ-त्तीस वर्षके कहे हुए ब्रह्मचर्यको पूरा करिकै गुरुके कुलसे न लौटकै आवै ऐ-सेका बालकपन अवश्य दूर होजायगा और जो असमर्थ होनेसे बालकही लौट आकै उसकाभी जबतक बालकपन न निकल जाय तबतक उसके धनकी रक्षा करै बालपन सोलह वर्षतक रहताहै क्योंकि बाल आषोडशाद्र्षात् सोलह वर्ष तक बालक रहताहै यह नारदका वचनहै ॥ २७ ॥ जिसके पतिने दूसरा विवाह कर



लियाहै ऐसी स्वामी करि निर्वाहके लिये दिया हुआ बांझ स्त्रीका धन और पुत्र र-  
हितका और पतिव्रता विधवाका और रोगिणी स्त्रीका जो धनहै उसकी बालकके ध-  
नके समान रक्षा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्दरेयुः स्वबान्धवाः॥तार्च्छ्यञ्चौरद-  
ण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥२९॥ प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा  
त्र्यब्दं निर्धापयेत्॥अर्वाक्य्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् ३०

टीका-हम इस तुल्यारे धनकी और अधिकारियोंसे रक्षा रखेगे ऐसे वहानेसे  
जे बांधव जीवती हुई स्त्रीके धनको लेले उनको आगे कह हुए चोरके दंडसे  
धर्मात्मा राजा दंड देवै २९ ॥ जिसका स्वामी नहीं जाना भया उसको वही राजा  
किसका क्यों खोगया है ऐसे डोंडी पिटवाकै राजद्वारा आदिमें रखवाकै तीनि वर्ष-  
तक देखै जो तीनि वर्षके भीतर धनका स्वामी आय जाय तो वही लेवै और तीनि-  
वर्षके पीछे राजा अपने काममें लावै ॥ ३० ॥

ममेदमिति यो ब्रूयात्सोऽनुयोज्यो यथाविधि॥ संवाद्यं रूपसंख्या  
दीन् स्वामी तद्रव्यहर्हमिति ॥ ३१ ॥ अवेद्यानो नष्टस्य देशं कालं  
च तत्त्वतः ॥ वर्णं रूपं प्रमाणं च तत्समं दण्डमर्हति ॥ ३२ ॥

टीका-जो कहै कि यह मेरा धनहै उस्से कैसाहै कितनाहै और कहां खोया इस  
भांति पूछना चाहिये तिस पीछे जो वह रूप और संख्या आदिको सत्य कहै  
तौ वह धनका स्वामी धन पानेके योग्यहै ॥ ३१ ॥ नष्ट हुए द्रव्यके देश-  
कालको अर्थात् इस देशमें और इस समयमें नष्ट हुआहै और वर्ण कहिये सपेद  
आदि रंग वाकडा मुकुट आदि और प्रमाणको न जानता हुआ पुरुष उस नष्ट हुए  
द्रव्यके बराबर दंडके योग्यहै ॥ ३२ ॥

आदिदीर्घाथ षड्भागं प्रणष्टाधिगताचूर्णः ॥ दशमं द्वादशं वापि  
सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ३३ ॥ प्रणष्टाधिगतं द्रव्यं तिष्ठेद्युक्तैराधि-  
ष्ठितम्॥यास्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन धातयेत् ॥ ३४ ॥

टीका- जो खोया हुआ धन राजाने पायाहै उसमेंसे छठा दशमा अथवा बा-  
रहवां भाग रक्षा आदिके कारणसे पहले साधुओंका यह धर्म है इस बातको  
जानता हुआ राजा ग्रहण करै धनके स्वामीकी निर्गुणता तथा सगुणताकी अपेक्षा  
यह छठे भाग आदिके लेनेका विकल्पहै बाकी धनके स्वामीको देवै ॥ ३३ ॥ जो



किसीका खोया हुआ धन राजाके नौकरोंको मिलै उसको राजा पहरेमें रखवावै उसकी चोरीमें जिन चोरोंको पकडै उनको हाथीसे मरवावै ॥ ३४ ॥

ममयामिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः ॥ तस्याददीत षड्भागं  
राजा द्वादशमेवं वा ॥ ३५ ॥ अनृतं तु वदन्दण्डः स्ववेत्तस्यांशं  
ष्टमम् ॥ तस्यैवं वा निधीनस्य संख्यायाल्पीयसी कलाम् ॥ ३६ ॥

टीका—जो मनुष्य आप निधिको ( भूमिमें गडी द्रव्यको ) पाकै अथवा औरकी पाई हुईको मेरी यह निधि है यह सत्य प्रमाणसे अपने संबंधको प्रकट करै उस पुरुषकी सगुण निर्गुणकी अपेक्षा उस निधिसे आठवां भाग राजा लेवै और शेष उसको देवै ॥ ३५ ॥ जो अपना नहीं है उसको अपना कहाता हुआ पुरुष अपने धनके आठमें भागसे दंड योग्यहै अथवा उसी निधिके बहुतही छोटे भागको गनिकै जिस्से उसको दुःख न होय दंड करै ॥ ३६ ॥

विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम् ॥ अशेषतोऽप्याददी  
त सर्वस्याधिपतिं हिंसः ॥ ३७ ॥ यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं नि  
हितं क्षितौ ॥ तस्माद्विजेभ्यो दत्त्वा धर्मं को शो प्रवेशयेत् ॥ ३८ ॥

टीका—विद्वान् ब्राह्मण तौ पहले रक्खी हुई निधिको देखकर सब ले लेवै छठा भाग राजाको न देवै जिस्से वह सब धनसमूहका स्वामी है ॥ ३७ ॥ जो पुरानी भूमिमें गडी हुई विना स्वामीकी निधिको राजा पावै तौ उसमेंसे आधी ब्राह्मणको देकर आधी अपने भंडारमें जमाकरै ॥ ३८ ॥

निधीनां तु पुराणानां धातूनामेवं च क्षितौ ॥ अर्धभागक्षणाद्राजा-  
धूमेरधिपतिं हिंसः ॥ ३९ ॥ दार्तव्यं सर्ववर्णेभ्यो राजा चौरैर्हतं  
धनम् ॥ राजा तदुपयुञ्जानश्चौरस्याप्रोति किल्बिषम् ॥ ४० ॥

टीका—अपनी नहीं पुरानी भूमिमें गडी हुई निधिको और सुवर्ण आदिकी खानिको जो ब्राह्मणको छोडकै अन्य जाति पावै तौ उसके आधेका राजा स्वामी है कारण यह है कि वह रक्षा करताहै और भूमिकाभी स्वामी है ॥ ३९ ॥ लोगोंका जो धन चोर लेजाय राजा उसको चोरोंसे मगवाकै धनके स्वामीको दे देवै उस धनको आप लेनेसे राजा चोरके पापको प्राप्त होताहै ॥ ४० ॥

जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्माश्च धर्मवित् ॥ समीक्ष्य कुलधर्माश्च



स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ४१ ॥ स्वानि कर्मणि कुर्वाणा दूरे संन्तो  
 ऽपि मानवाः॥प्रियाभवन्ति लोकस्य स्वेस्वे कर्मण्यवस्थिताः ४२

टीका-जाति धर्म कहिये ब्राह्मण आदि जातिमें नियत याजन आदि धर्मोंको तथा जानपद कहिये देशमें व्यवस्थित वेदसे विरुद्ध नहीं ऐसे धर्मोंको और श्रेणी धर्म कहिये बनिया आदि क्रयविक्रय करनेवालोंके कुलमें स्थित धर्मोंको जानिकै उनसे विरुद्ध न होय ऐसे धर्मोंको राजा व्यवहारमें स्थापित करै ॥ ४१ ॥ जाति देश कुल धर्मादिक अपने कर्मोंको करते हुए और अपने २ नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें स्थित दूर रहनेपरभी निकट रहनेका स्नेह न रहनेपरभी लोकके प्यारे होते हैं ॥ ४२ ॥

नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नोप्यस्य पूरुषः ॥ न च प्रापितमन्ये  
 न ग्रसेदर्थं कथंचन ॥ ४३ ॥ यथा नयत्यसृक्पातैर्मृगस्य मृगयुः  
 पदम् ॥ नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् ॥ ४४ ॥

टीका-प्रसंगसे आये हुए इसको कहिकै फिरि प्रकृतको कहते हैं ॥ राजा अथवा राजाका नियत किया हुआ प्राङ्गिवाक आदि धनके लोभ आदिसे कार्य जो ऋण आदिका विवाद ( झगडा ) है उसको आप न उत्पन्न करै और अर्थी अथवा प्रत्यर्थी करि पहुचाये हुए कार्यकी धन आदिके लोभसे उपेक्षा ( बेपरवाही ) न करै ॥ ४३ ॥ जैसे बहेलिया शस्त्रसे मारे हुए मृगके स्थानमें रुधिरके गिरनेसे पहुँच जाता है वैसेही अनुमानसे अथवा दृष्ट प्रमाणसे राजा धर्मके तत्त्वका निश्चय करै ॥ ४४ ॥

सत्यमर्थं च संपश्येदात्मानमथ साक्षिणः ॥ देशं रूपं च कालं  
 च व्यवहारविधौ स्थितः ॥ ४५ ॥ सद्भिरार्चरितं यत्स्याद्भार्मिकैश्च  
 द्विजातिभिः ॥ तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् ॥ ४६ ॥

टीका-व्यवहारके देखनेमें प्रवृत्त राजा छलको छोडके सत्यको देखै तैसेही अर्थकीभी अर्थात् गौ सुवर्ण आदि धनके विषयमें स्थित व्यवहारको देखै आंखि मटकाकै इसने भेरी हंसी की इत्यादि छोटे अपराधोंको न सुनै और तत्त्वके निर्णयमें स्वर्ग आदिके फल पानेवाले आपको और सत्य बोलनेवाले साक्षियोंको और देश तथा कालको अर्थात् देश तथा कालमें उचितहै स्वरूप जिसका ऐसे व्यवहारके स्वरूपकी गुरुता लघुता आदि देखै ॥ ४५ ॥ विद्वान् और धर्ममें प्र-



धान कहिये मुख्य ऐसे ब्राह्मणों करि देखे हुए और उस देश कुल तथा जातिसे विरुद्ध नहीं ऐसे शास्त्रके लेकर व्यवहारका निर्णय करै ॥ ४६ ॥

अधमर्णार्थसिद्धयर्थमुत्तमर्णेन चोदितः ॥ दार्पयेद्भनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभाषितम् ॥ ४७ ॥ यैर्यैरुपायैरर्थं स्वं प्राप्तुं यादुत्तमर्णिकः ॥ तैस्तैरुपायैः संगृह्य दार्पयेदधमर्णिकम् ॥ ४८ ॥

टीका—अधमर्ण जो ऋण लेनेवाला है उसकी अर्थ सिद्धिके लिये दिये हुए धनकी सिद्धिके लिये धनके स्वामी करि सूचित किया गया राजा जो आगे कहे जायगे ऐसे लेख्य ( तमस्सुक ) आदिके प्रमाणसे निश्चय किये हुए धनको अधमर्ण कहिये ऋणलेनेवालोंसे उत्तमर्ण अर्थात् धन देनेवालेको दिलवावै ॥ ४७ ॥ कैसे दिवावै सो कहते हैं जो आगे कहे जायगे उन उपायोसे दिये हुए धनको उत्तमर्ण पावै उन उन उपायोसे वशमें करिके उस धनको दिवावै ॥ ४८ ॥

धर्मेण व्यवहारेण छलेनाचरितेन च ॥ प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च ॥ ४९ ॥ यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोऽधमर्णिकात् ॥ न स राज्ञांभियोक्तव्यः स्वयं संसाधयन्धनम् ॥ ५० ॥

टीका—उन उपायोंको कहते हैं धर्मसे व्यवहारसे छलसे आचरितसे तथा पाचमें बलसे दिये हुए धनका साधन करै ॥ ४९ ॥ जो उत्तमर्ण दिये हुए धनको अधमर्णपर आपही बल आदिसे साबित करै वह अपने धनको भली भांति साधन करता हुआ हमसे विना कहे तुमने क्यों बल आदि किया ऐसे कहकर राजाको न मना करना चाहियै ॥ ५० ॥

अर्थेऽपव्ययमानं तु कर्णेन विभाषितम् ॥ दार्पयेद्भनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तिः ॥ ५१ ॥ अपहृवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि ॥ अभियोक्ता दिशेद्देश्यं कर्णं वान्यदुद्दिशेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मैं इसका देनदार नहीं हों ऐसे धनके विषयमें छुपानेवाले अधमर्णको करण कहिये लेख्य तथा साक्षी और दिव्य ( कसम ) आदिसे साबित किये हुए धनको राजा उत्तमर्णके लिये दिवावै और छुपानेमें पुरुषशक्तिसे आगे कहे हुए दशमें भागसे न्यूनभी दंड दिवावै ॥ ५१ ॥ उत्तमर्णका धन दे इस भांति सभामें प्राड्विवाक करि कहे हुए अधमर्णके मैं इसका देनदार नहीं हों ऐसे मुकरनेपर अभियोग ( लानिश ) करनेवाला अर्थात् धन देनेके समय वर्तमान



( २४२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

साक्षिको लावै क्योंकि बहुधा स्त्री मूर्ख आदिके धनका निर्णय साक्षियोंहीसे होताहै  
इस्से प्रथम साक्षी देवै अथवा और लेख्य आदि दिसावै ॥ ५२ ॥

अदे॒श्यं यश्च॑ दि॒शति॑ नि॒दि॒श्याप॑न्हुते च॒ यः ॥ यश्चा॑र्ध॒रोत्तरा॑नर्थो  
न वि॒गीता॑न्नि॒वृद्ध॑यते ॥ ५३ ॥ अपदि॒श्याप॑दे॒श्यं च॑ पुन॒र्यस्त्व॑  
पधा॒वति॑ ॥ सं॒म्यक् प्रणि॑हितं चा॒र्थं पृ॒ष्ठः स॒न्नाभि॑नन्दति ॥ ५४ ॥  
असं॒भाष्ये॑ सा॒क्षिभि॑श्च दे॒शे संभा॑षते मि॒थः ॥ निरु॑च्यमानं प्रे॒शं च॑  
ने॒च्छेद्य॑श्चा॒पि नि॑ष्पतेत् ॥ ५५ ॥ ब्रू॒हीत्यु॑क्तं च॒ न ब्रू॑यादु॒क्तं च॑  
न विभा॑वेयेत् ॥ न॒च॑ पूर्वा॒परं विद्या॑त्तस्माद॒र्थोत्स॑ हीयते ॥ ५६ ॥

टीका—जो अदेश्य कहिये जिस देशमें ऋण लेनेके समय अधमर्णकी सदा स्थि-  
तिका संभव नहीं है उसको कहै अथवा जो देश आदिको कहिकै मैने यह नहीं  
कहाहै ऐसे मुकर जाय और जो पहले तथा पीछे अपने कहे हुए अर्थोंको विरुद्ध  
नहीं जानताहै और जो मेरे हाथसे इसने सुवर्णका एक पल लियाहै ऐसे कहकै  
फिरि कहै कि मेरे पुत्रसे लियाहै और जो भलीभांति प्रतिज्ञा किये हुए अर्थको तुमने  
रातिमें साक्षियोंके विना क्यों दिया ऐसे प्राड्विवाकके पूछनेपर समाधान न करै  
और जो बात करनेके अयोग्य निर्जन आदि देशमें साक्षियोंके साथ परस्पर बात  
करै और जो कहे हुए अर्थकी दृढताके लिये प्राड्विवाकके कहे हुए प्रश्नकी इच्छा  
न करै और निष्पतेत् कहिये यहां ठरना योग्य नहीं जो तुम्हारे औरोंका ऐसा  
व्यवहार होनेपर ऐसे कहिकै नियत स्थानसे दूसरे स्थानको चला जाय और जो  
कहौ ऐसे कहनेपर कुछ न कहै और जो कहे हुए साध्यको प्रमाणसे सिद्ध  
न करै और जो पहले साधनको और दूसरे साध्यको नहीं जानताहै असाधनको  
साधन करिकै कहताहै असाध्यही जैसे इसने शशके सींगका बना मेरा  
धनुष लियाहै इसको देना चाहिये इत्यादि बातोंको साध्यत्वसे कहै वह इस साध्य  
अर्थसे हीन होजाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

साक्षि॑णः स॒न्ति मे॒त्यु॑क्त्वा दि॒शे॒त्यु॑क्तो दि॒शेन्न॑ यः ॥ धर्म॑स्थः का  
रणै॒रेत॑ ही॒नं त॑मपि॒ निदि॑शेत् ॥ ५७ ॥ अभि॑योक्ता न चे॒द्व्या॑द्व-  
ध्यो दण्ड॑श्च॒ धर्म॑तैः ॥ न॒चे॒ त्रि॒पक्षा॑त्प्रब्रू॒याद्ध॑र्मप्रति॒ परा॑जितः ॥ ५८ ॥

टीका—मेरे साक्षी हैं ऐसे कहिकै उनको लाओ ऐसा कहनेपर जो साक्षियों-  
को नहीं लाताहै उसको धर्ममें स्थित प्राड्विवाक पहले कहे हुए इन कारणोंसे हा-



रा हुआ कहै ॥ ५७ ॥ जो अर्थी राजस्थानमें निवेदन ( लानिश ) करिकै भाषामें ( इजहारोंके समय ) न कहै तौ विषम तथा भारी मुकद्दमेकी अपेक्षासे वधके योग्यहै और हलकेमें धर्मसे दंडके योग्यहै और जो प्रत्यर्थी तीनिपक्षमें न कहै तौ धर्मसे हारताहै छलसे नहीं ॥ ५८ ॥

यो यावन्निन्दुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् ॥ तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ  
दाप्यौ तद्विगुणं दम्भम् ॥ ५९ ॥ पृष्टोऽपव्ययमानस्तु कृतावस्थो  
धनैषिणा ॥ त्र्यवरः साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥ ६० ॥

टीका—जो प्रत्यर्थी जितने धनको मुकरि जाय अथवा अर्थी जितने धनमें मिथ्या बोलै वे दोनो अधर्मी छुपाने तथा झूठ कहे हुए धनसे दुगुना दंड दिवाने योग्यहैं अधर्मज्ञौ इस वचनसे जानिकै छुपाने तथा मिथ्या कहनेके मध्ये यह दंडहै प्रमाद आदिसे छुपाने तथा झूठ नियोग ( दावा ) करनेमें सौका दशमा भाग कहै गे ॥ ५९ ॥ धनके चाहनेवाले उत्तमर्ण करि राजपुरुषोंसे बुलवाया गया और प्राङ्गिवाक करि पूछा गया जब मैं नहीं देनदार हों ऐसे छुपाय जाय तब राजाके अधिकारी ब्राह्मणके आगे तीनिसे कम न हों ऐसे साक्षियोंसे अर्थीको साबित करना चाहिये ॥ ६० ॥

यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः ॥ तादृशान्संप्रवक्ष्या  
मि यथा वाच्यमृतं च तैः ॥ ६१ ॥ गृहिणः पुत्रिणो मौला क्षत्रवि  
द्विशूद्रयोऽनयः ॥ अर्थ्युक्ताः साक्ष्यमर्हन्ति न ये केचिदनापदि ॥ ६२ ॥

टीका—उत्तमर्ण आदि धनियोंको ऋण लेने आदि व्यवहारोंमें जैसे साक्षी करने चाहिये उनको मैं कहौंगा और जैसे उनको सत्य बोलना चाहिये उस प्रकारको भी कहौंगा ॥ ६१ ॥ गृहस्थ पुत्रयुक्त उसी देशके और जातिमें क्षत्रिय वैश्य शूद्र हों ऐसे अर्थीके बतलाये हुए साक्षीके योग्य होते हैं वे निश्चय करि आदिके विनाशके भयसे और उस देशके बसनेवालेसे विरोधके कारण अन्यथा नहीं कहेंगे ऋण लेने आदिसे जो कोई साक्षी नहीं होते हैं आपत्तिमें तौ वाग्दंड पारुष्य स्त्रीसंग्रहण आदिमें तौ कहे हुए साक्षियोंसे भिन्न साक्षी होते हैं ॥ ६२ ॥

आप्तैः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः ॥ सर्वधर्मविदोऽलुब्धाः  
विपरितास्तु वर्जयेत् ॥ ६३ ॥ नार्थसंबन्धिनोऽनाप्ता न सहाया न



( २४४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

वैरिणः॥ न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यात्ता न दूषिताः ॥ ६४ ॥

टीका-सब वर्णोंमें आस कहिये यथार्थ कहनेवाले सब धर्मोंके जाननेवाले और लोभ रहित करने चाहिये और इनसे विपरीत न करै ॥ ६३ ॥ ऋण आदि अर्थके संबंधी अर्थात् अधमर्ण आदि और प्राप्त कहिये मित्र और सहायता करने वाले और वैरी और दृष्ट दोष कहिये जिनका कही झूठी गवाही देना जाना गयाहै और रोगी तथा जिनको महापातक आदि दोष लगे रहाहै ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६४ ॥

न साक्षी नृपतिः कार्यो न कारुककुशीलवौ ॥ न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न संगेभ्यो विनिर्गतः ॥ ६५ ॥ नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् ॥ न वृद्धो न शिशुर्न को नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ॥ ६६ ॥

टीका-प्रभुहै इस कारणसे पूछने योग्य न होनेसे राजा साक्षी नहीं करने योग्यहै और कारुक कहिये सूपकार आदि कुशीलव कहिये नट आदि क्योंकि वे अपने कामसे अवकाश नहीं पाते हैं और बहुधा धनके लोभसे साक्षी होते हैं और वेदका पढ़ना तथा अग्निहोत्र आदि कर्ममें लगे रहनेसे वेदपाठीको साक्षी न करै लिंगस्थ कहिये ब्रह्मचारी और संगविनिर्गत कहिये संन्यासी ये दोनों भी अपने कर्ममें व्याकुल तथा ब्रह्मके ध्यानमें लगे रहते हैं इस्से येभी साक्षी नहीं करनेयोग्यहैं श्रोत्रियके कहनेसे अग्निहोत्र आदिमें लगे हुए ब्राह्मणसे अन्य ब्राह्मणका निषेध नहीं है ॥ ६५ ॥ अध्यक्षीन कहिये जो बहुतही पराधीन होय ऐसा गर्भदास विहित कर्मके त्यागसे लोकमें निंदित है इस कारण साक्षी नहीं करना चाहिये और दस्यु कहिये कूरकर्म करनेवाला और विकर्मकृत् कहिये निषिद्ध कर्म करनेवाला क्योंकि उनसे राजाके द्वेष आदिका संभवहै और वृद्ध न करना चाहिये क्योंकि बहुधा वृद्धकी बुद्धिमें अंतर पड़जाताहै और बालक न करना चाहिये क्योंकि वह व्यवहारसे बाहरहै और एक न करना चाहिये और अंत्य कहिये चांडाल आदि और विकलेन्द्रिय कहिये जिसकी कान आदि इंद्रियां बिगड़ी होय ऐसे साक्षी न करने चाहिये ॥ ६६ ॥

नार्त्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णोपपीडितः ॥ न श्रमात्तो न कामात्तो न कुब्धो नोपितस्करः ॥ ६७ ॥ स्त्रीणां साक्ष्यास्त्रयः कुर्युर्द्विजानां



सदृशा द्विजाः॥शूद्रार्थं संतः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥६८॥

टीका—आर्त कहिये बंधुविनाश आदिसे दुखी और मद्य आदिसे मतवारा और भूत आदिके आवेशसे उन्मत्त और भूख प्यास आदिसे पीडित और श्रमार्त कहिये मार्गके चलने आदिसे थका हुआ और कामके जो वशमें होय तथा जिसको क्रोध उत्पन्न हुआ होय और चोर ये सब साक्षी न करने चाहिये ॥ ६७ ॥ स्त्रियोंके आपसके ऋण लेने आदि व्यवहारमें स्त्री साक्षिणी होती हैं और द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सदृश कहिये समान जातिके साक्षी होते हैं ऐसेही शूद्रोंके सज्जन शूद्र साक्षी होते हैं और चांडालोंके चांडाल आदि साक्षी होते हैं और सजातीय साक्षी न होनेपर और जातिकेभी होते हैं ॥ ६८ ॥

अनुभावी तु र्यः कश्चित्कुंर्यात्साक्ष्यं विवादिनाम्॥अन्तर्वैश्मन्यरं  
प्ये वा शरीरस्यापि चांत्यये ॥ ६९ ॥ स्त्रियाप्यसंभवे कार्यं बाले  
न र्थाविरेण वा॥शिष्येण बन्धुना वापि दासेन भृतकेन वा॥७०॥

टीका—घरके भीतर अथवा वन आदिमें चोरों करि किये हुए उपद्रवमें देहमें चोट लगनेपर अथवा आततायी आदिके किये हुए उपद्रवमें जो कोई मिल-जाय ब्रह्म वादियोंका साक्षी होताहै ऋणदान आदिके समान कहे हुए लक्षण करि युक्त साक्षी नहीं होते हैं ॥ ६९ ॥ घरके भीतर आदिमें कहे हुए साक्षी न होनेपर स्त्री बालक वृद्ध शिष्य मित्र सेवक और कर्म करनेवालेभी साक्षी होते हैं ॥ ७० ॥

बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदंतां मृषां ॥ जानीयादस्थिरां वा-  
चमुत्सिक्तमनसां तथा ॥ ७१ ॥ साहसेषु च सर्वेषु स्तेर्यसंग्रहणे-  
षु च ॥ वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ७२ ॥

टीका—बालक वृद्ध रोगी और उपद्रवयुक्त मनवाले मत्त उन्मत्त आदिकोंके गवाही देनेमें झूठ बोलनेवालोंकी वाणी स्थिर नहीं होती है इस्से उनका अनमानसे जानै ॥ ७१ ॥ घर जलादेने आदि साहसमें और चोरी स्त्रीसंग्रहण और वाग्दण्डपारुष्यमें साक्षियोंकी कही हुई परीक्षा न करनी चाहिये ॥ ७२ ॥

बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ॥ समेषु तु गुणोत्कृष्टान्  
गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ७३ ॥ समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव  
सिद्धयति ॥ तत्र सत्यं ब्रूवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न होयते ॥ ७४ ॥



टीका—साक्षियोंके आपसमें विरुद्ध कहनेपर जिसको बहुतसे कहैं उसको राजा निर्णय प्रमाण करै और जो बराबर होंय तौ गुणवानोका प्रमाण करै गुणवानोंमेभी जो विरोध पड़े तौ ब्राह्मणोंमें जो क्रियावान् उत्तम होंय उनको प्रमाण करै ॥ ७३ ॥ सामने देखनेसे और कानोंसे सुननेसेभी साक्षी होताहै सत्य बोलता हुआ साक्षी धर्म तथा अर्थ करि मुक्त नही होताहै ॥ ७४ ॥

साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रूवन्नार्यसंसदि ॥ अवाङ्मकं मभ्येति प्रेत्यं  
स्वर्गाच्च हीयते ॥ ७५ ॥ यत्रानिबद्धोऽपीक्षते शृणुयाद्वापि  
किंचन ॥ पृष्टस्तत्रापि तद्व्याख्यादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ७६ ॥

टीका—साधुओंकी सभामें देखे हुए और सुनेसे अन्यथा कहता हुआ साक्षी नीचा मुखहो नरकको जाताहै और परलोकमेंभी अन्य कर्मोंसे प्राप्त स्वर्गरूप फलसे हीन होजाताहै ॥ ७५ ॥ तुम इस विषयमें साक्षी हो ऐसे कहकै नही किया हुआभी जो कुछ ऋणका लेना आदि देखै अथवा वाक्पारुष्य आदिको सुनै वहां साक्षी देखे सुनेके अनुसार कहै ॥ ७६ ॥

एकोऽलुब्धस्तु साक्षी स्याद्वर्तयः शुच्योऽपि न स्त्रियः ॥ स्त्रीबुद्धे  
रस्थिरत्वाच्च दोषैः श्रान्येऽपि ये वृत्ताः ॥ ७७ ॥ स्वभावेनैव यद्व्यु-  
स्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् ॥ अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मा र्थं तदपार्थक्यम् ॥

टीका—लोभ रहित एकभी साक्षी होता है और अपनी शुद्धताईसे युक्त बहुतभी स्त्रियां बुद्धि स्थिर न होनेके कारण ऋणादान आदिपर्यालोचित व्यवहारमें साक्षिणी नही होती हैं और अपर्यालोचित चोरी तथा वाग्दंडपारुष्य आदि व्यवहारमें असंभव होनेपर स्त्रीकोभी साक्षी करना चाहिये तथा औरभी जो चोरी आदि दोषों करि युक्तहैं वेभी पर्यालोचित व्यवहारमें साक्षी नही होते हैं ॥ ७७ ॥ जो साक्षी भय आदिके विना स्वभावसे कहैं वह व्यवहारके निर्णयके लिये ग्रहण करना चाहिये और जिसको वे स्वाभाविकसे तथा अन्य किसी कारणसे कहैं वह धर्मके विषयमें निष्प्रयोजनहै उसको न ग्रहण करै ॥ ७८ ॥

सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ॥ प्राड्वैकोऽनुयुञ्जी-  
त विधिना तेन सान्त्वयन् ॥ ७९ ॥ यद्वयोरनयोर्वैत्थं कार्येऽस्मिन्  
चेष्टितं मिथः ॥ तब्रूतं सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिर्ता ॥ ८० ॥

टीका—सभामें आये हुए साक्षियोंसे अर्थी प्रत्यर्थीके सामने राजाका अधि-



कारी ब्राह्मण मीठी बातें कहता हुआ आगे कहे हुए प्रकारसे पूँछे ॥ ७९ ॥ इन दोनों अर्थों प्रत्यर्थियोंके आपसके इस काममें जो जानते हो वह सब सत्य कहो तुम इसमें साक्षी है ॥ ८० ॥

सत्यं साक्ष्ये बुर्वन्साक्षी लोकांनाप्नोति पुष्कलान् ॥ इह चांनुत्तमां  
कीर्तिं वांगेषां ब्रह्मपूजितां ॥ ८१ ॥ साक्ष्येऽनृतं वर्दन् पाशैर्बद्धयते  
वारुणैर्भृशम् ॥ विर्वशः शतमार्जातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेद्वत् ॥ ८२ ॥

टीका—साक्षी अपने काममें सत्य कहता हुआ उत्कृष्ट ब्रह्मलोक आदि लोकोको प्राप्त होता है और इस लोकमें अतिउत्कृष्ट ख्यातिको प्राप्त होता है जिसे यह सत्यरूपवाणी ब्रह्माकरि पूजित है ॥ ८१ ॥ साक्षी झूठीवाणीको कहता हुआ वरुणकी पाश अर्थात् सर्परूप रस्सियोंसे बंधा हुआ और जलोदर नाम रोगके पराधीनहों सौ जन्मतक अत्यंत पीडित रहता है तिससे साक्षीको सत्यबोलना चाहिये ॥ ८२ ॥

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ॥ तस्मात्सत्यं हि वर्तव्यं स  
र्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ८३ ॥ आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा  
तथात्मनः ॥ मावमंस्थः स्वमात्मानं नृणां साक्षिमुत्तमम् ॥ ८४ ॥

टीका—साक्षी सत्य कहनेसे पूर्वजन्ममें भी इकट्ठे किये हुए पापसे छूट जाता है और सत्य कहनेसे इसका धर्म बढता है तिससे सवर्णके विषयमें साक्षीको सत्य कहना चाहिये ॥ ८३ ॥ शुभ अशुभ कर्ममें स्थित आत्माही अपना रक्षक है तिससे मनुष्योंके मध्यमें उत्तम साक्षी आत्माको झूठ बोलनेसे मत तिरस्कार कर ॥ ८४ ॥

मन्यन्ते वैपापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ॥ तांस्तु देवाः प्रपे  
श्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ॥ ८५ ॥ द्यौर्भूमिरापो हृदयं चन्द्रार्का  
ग्नियमानिलाः ॥ रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञाः सर्वदेहिनाम् ॥ ८६ ॥

टीका—पाप करनेवाले ऐसा जानते हैं कि अधर्म करनेमें हम कोई नहीं देखता है परंतु उनको आगे कहे हुए देखते हैं और अपना अंतरात्मा पुरुष देखता है ॥ ८५ ॥ द्युलोक, पृथिवी, जल, हृदयमें स्थित जीव, चंद्रमा, सूर्य, अग्नियम, पवन, रात्रि, और दोनों संध्या और धर्म ये सब देहधारियोंके शुभ कर्मको जानते हैं ॥ ८६ ॥

देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेद्वत् द्विजान् ॥ उदङ्मुखान्प्राङ्मु-



( २४८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

खान्वा पूर्वाह्ने वै शुचिः शुचीन् ॥८७॥ ब्रूहीति ब्राह्मणं पूँच्छेत्सं  
त्यं ब्रूहीति पार्थिवम् ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ॥

टीका—प्रतिमाआदिकोंसे जो पूर्वको अथवा उत्तरको मुख किये हों आप प्राङ्गि-  
वाक शुद्ध होकै पूर्वाह्न काल अर्थात् दुपहरके पहले साक्ष्य ( गवाही ) पूँछे ॥ ८७ ॥  
ब्रूहि कहिये कहौ ऐसा शब्द कहिकै ब्राह्मणसे पूँछे और सत्य कहौ ऐसा कहिकै क्ष-  
त्रियसे पूँछे और गौ, बीज तथा सुवर्णके चुरानेमें जो पाप होताहै सो तुमको झूठ  
बोलनेमें होगा ऐसे कहिकै वैश्यसे पूँछे और जो झूठ बोलोगे तौ जिनको आगे कहेंगे  
उन सब पापों करि युक्त होंगे ऐसे कहिकै शूद्रसे पूँछे ॥ ८८ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृतां लोकां ये च स्त्रीबालघातिनः॥मित्रद्रुहः कृतघ्न  
स्य ते ते स्युर्बुधतो मृषा॥८९॥जन्मप्रभृति यत्किञ्चित्पुण्यं भ-  
द्रत्वंया कृतम्॥तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ॥९०॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेवालेको तथा स्त्री और बालकके मारनेवालेको और मित्र-  
द्रोहीको तथा कृतघ्नीको जो लोक मिलते है वे झूठवा गवाही देनेवालेको प्राप्त होते  
है ॥ ८९ ॥ हे शुभ आचारवाले जन्मसे लगाकै जो कुछ तुमने सुकृत कियाहै सो  
सब तुम्हारा झूठी गवाही देनेसे कूकुर आदिमें चला जायगा ॥ ९० ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे॥नित्यं स्थितस्ते  
ह्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः॥९१॥यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष  
ह्यदि स्थितः॥तेन चेद्वैवादस्ते मां गङ्गां मां कुरुन् गमः ॥९२॥

टीका—हे भद्र मैं जीवात्मक एकही हों यह जो तुम आपको मानते हो तौ ऐसा  
मति मानौ क्योंकि पापों और पुण्योंका देखनेवाला मुनि कहिये सर्वज्ञ परमात्मा  
सदा तुम्हारे हृदयमें स्थित है ॥ ९१ ॥ सबके संयमनसे यम और दंडधारी होनेसे  
वैवस्वत और ऋषि करनेसे देव जो यह तुम्हारे हृदयमें स्थित है उसके साथ यथार्थ  
कहनेसे जो तुम्हारा विवाद न होय जब तुम्हारे मनोगतको यह और प्रकारसे जान-  
ताहै और तुम और प्रकारसे कहतेहों तौ अंतर्यामीके साथ तुम्हारा विरोध होगा  
इस्से सत्य कहनेहीसे तुम पापरहित और कृतकृत्यहौ पाप दूर करनेके लिये गंगा  
तथा कुरुक्षेत्रको मति जाओ ॥ ९२ ॥

नग्नो मुण्डः कर्पांलेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः ॥ अन्धः शत्रुकुलं  
गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ ९३ ॥ अवाक्शिरास्तमस्यन्धे किं



लिवषी नरकं व्रजेत् ॥ यः प्रश्नं विर्तथं ब्रूयात्पृष्ठः सन् धर्मनिश्चये ९४

टीका- जो झूठ साक्ष्य देताहै वह नंगा तथा मुडिया हो खपरेमें भीख मांगनेको शत्रु कुलमें जाताहै ॥ ९३ ॥ धर्मके निश्चयके लिये पूछा गया जो पुरुष झूठ बोलताहै वह पापी अधोमुखहो बड़े अंधकारमें जो नरक है उसमें जाताहै ॥ ९४ ॥

अन्धो मर्त्यानिवांश्चाति स नरः कण्टकैः सह ॥ यो भार्षतेर्थैवे  
कल्यमप्रत्यक्षं सभां गतः ॥ ९५ ॥ यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो  
नाभिज्ञोऽङ्गते ॥ तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ ९६ ॥

टीका-सभामें गया हुआ जो पुरुष तत्व अर्थके ठीक ठीक भावको न जानि धूसी आदि सुखके लेशसे कहताहै वह अंधके समान काटेसमेत मछलीयोंको खाताहै सुखकी बुद्धिसे सौ प्रवृत्त होताहै परन्तु बड़े दुःखको पाताहै ॥ ९५ ॥ जिसके कहते हुए सर्वज्ञ अंतर्यामी क्या यह झूठ बोलताहै अथवा सत्य ऐसी शंका नहीं कहताहै किन्तु सत्यही कहताहै ऐसे शंकारहित होताहै लोकमें अति उत्तम उससे पुरुष देवता नहीं जानते है ॥ ९६ ॥

यावतो बान्धवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येऽनृतं वदन् ॥ तावतः सं-  
ख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः ॥ ९७ ॥ पञ्च पञ्चनृते हन्ति  
दश हन्ति गर्वानृते ॥ शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ ९८ ॥

टीका-जिस पशु आदिके निमित्त साक्ष्य ( गवाही ) में झूठ कहता हुआ जितने पिता आदि बांधवोंको नरकमें डालताहै गणनासे गिनाये हुए उनको हे साधो मुझसे सुनो अथवा जितने बांधवोंको मारताहै उनके मारनेके फलको पाताहै उनको सुनो दोनो पक्षोंमें झूठ बोलनेकी निंदा हुई ॥ ९७ ॥ पशुके मध्ये झूठ बोलनेमें पांच बांधवोंको नरकमें डालताहै अथवा पांच बांधवोंके मारनेके फलको पाताहै ऐसे गौओंके विषयमें दशके और अश्वके मध्ये सौके और पुरुषके विषयमें एकहजारके यह संख्याका गौरव प्रायश्चित्तके गौरवके लियेहै ॥ ९८ ॥

हन्ति जातानजातां श्रिं हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥ सर्वं भूम्यनृते हन्ति  
मां स्मं भूम्यनृतं वदीः ॥ ९९ ॥ अप्सु भूमिर्वदित्याहुः स्त्रीणां  
भोगे च मैथुने ॥ अञ्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च ॥ १०० ॥

टीका-सुवर्णके लिये झूठ बोलता हुआ पुरुष उत्पन्न हुए और न उत्पन्न हुए पुत्रपौत्र आदिको नरकमें डालताहै अथवा इनके मारनेके फलको पाताहै और



भूमिके मध्ये झूठ बोलता हुआ सब प्राणियोंके मारनेके फलको पाताहै तिससे भूमिके मध्ये झूठ मत बोले यह शिष्यकी शिक्षाका कथनहै ॥ ९९ ॥ वैदूर्य आदि मणियोंकी झूठमें भूमिके समान दोषहै यह कहतेहै तलाव तथा कुआके लेनेयोग्य जलके मध्ये और स्त्रियोंके मैथुन नाम उपभोगमें और अब्ज कहिये जलसे उत्पन्न हुए मोती आदिकोंके मध्ये और पाषाणमयी वैदूर्य आदिके मध्ये झूठमें भूमिके समान दोष कहते है ॥ १०० ॥

एतान् दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतेभाषणे ॥ यथाश्रुतं यथादृष्टं सर्वं मेवाञ्जसां वद ॥ १ ॥ गोरक्षकान्वाणिजिकांस्तथा कारुंकुशो लवान् ॥ प्रैष्यान्वाधुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् ॥ २ ॥

टीका—झूठ बोलनेमें तुम इन सब दोषोंको देखि जैसा देखा और सुना होय वै-साही तत्त्वसे कहौ ॥ १ ॥ गौओंकी रक्षासे जीनेवाले और वाणिज्यसे जीनेवाले तथा सूपकार आदि कारु कर्मसे जीनेवाले तथा नटके कामसे और नाचने गानेसे जीने-वाले और दासकर्मसे जीनेवाले और निषिद्ध जीविका करनेवाले ब्राह्मणोंसे साक्षीके प्रश्नमें शूद्रके समान पूछे ॥ २ ॥

तद्रदन् धर्मतोऽर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरैः ॥ न स्वर्गाच्चर्यते लोका द्वैवा वाचं वदन्ति ताम् ॥ ३ ॥ शूद्रविद्वत्क्षत्रविप्राणां यत्रतोक्तौ भवेद्वधः ॥ तत्र वर्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते ॥ ४ ॥

टीका—साक्ष्यको अन्यथाभी जानता हुआ मनुष्य धर्मसे दया आदि करि व्यवहा-रोंमें अन्यथा कहता हुआ स्वर्गसे नही भ्रष्ट होताहै जिस्से यह कारणविशेषसे जो झूठ कहना है उसको मनु आदि देवसंबंधिनी वाणी कहते है ॥ ३ ॥ जहां सत्य क-हनेमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रका वध होता होय वहां झूठ बोलना चाहिये क्योंकि वह झूठ सत्यसे अधिकहै ॥ ४ ॥

वाग्देवत्यैश्च चरुभिर्यजेरस्ते सरस्वतीम् ॥ अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिं पराम् ॥ ५ ॥ कूर्प्माण्डैर्वापि जुहुयाद्धृतमग्नौ यथाविधि ॥ उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यंशेनाब्देवतेन वा ॥ ६ ॥

टीका—वे झूठ बोलनेवाले साक्षी झूठसे उत्पन्न हुए पापकी उत्कृष्ट शुद्धिको क-रते हुए वाणी है देवता जिसका ऐसे चरुसे सरस्वतीका यजन करै ॥ ५ ॥ यजु-वेदके “ यदेवादेवहेडनं ” इत्यादि कूर्प्माण्ड मंत्रहैं उन मंत्रोंसे देवताके निमित्त अग्नि



में विधिपूर्वक घृतका होम करै और अपने गृहामे कहे हुए परिस्तरण आदि होमके धर्मसे वरुणहै देवता जिसके ऐसी “उदुत्तमं वरुणपाशम्” इस ऋचासे और उदक जिसकी देवता है ऐसी आपोहिष्ठा इस ऋचासे घीका अग्निमें होम करै ॥ ६ ॥

त्रिपेक्षादब्रुवन्सौक्ष्ममृणादिषु नैरोऽगदः ॥ तद्वृणं प्राप्नुयात्सर्वं  
दर्शवन्धं च सर्वतः ॥ ७ ॥ यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य  
साक्षिणः ॥ रोगोऽग्निर्ज्ञातिमरणमृणं दाप्यो दमं च संः ॥ ८ ॥

टीका—जो रोगरहित साक्षी ऋणदानादि व्यवहारोंमे तीनि पक्षोंतक जो गवाही न दे तौ उस विवादका सब धन उत्तमर्णको देवै और उस सब ऋणका दशमा भाग राजाको दंड देवै ॥ ७ ॥ जो गवाही दे चुकाहै ऐसे साक्षीके जो सात दिनके भीतर रोग आदि लगना अथवा समीपी पुत्र आदि ज्ञातिके मरणमेसे कोई होय तौ मिथ्याका दोष प्रकट होनेके कारण उत्तमर्णका ऋण और राजाका दंड उसे दिलाना चाहिये ॥ ८ ॥

असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवेदमानयोः ॥ अविन्दंस्तत्त्वतः सत्यं  
शपथेनापि लभ्येत ॥ ९ ॥ महर्षिभिश्च देवैश्च कार्यार्थं शपथाः  
कृताः ॥ वसिष्ठश्चापि शपथं शपे वै यवने नृपे ॥ ११० ॥

टीका—जिनके साक्षी नहीं हैं ऐसे व्यवहारोंमें आपसमें विवाद करनेवालोंके तत्वको छल आदिके विना नहीं प्राप्त होता हुआ प्राङ्गिवाक जो आगे कहेंगे उस शपथसे सत्यको जानै ॥ १०९ ॥ सप्तऋषियोंने और इंद्रादिक देवताओंने संदेहयुक्त कार्योंके निर्णयके लिये शपथ बनाये इसने सौ पुत्र खाय लिये ऐसे विश्वामित्र करि दोष लगाए गये वशिष्ठ मुनिने अपनी शुद्धिके लिये यवननाम राजाके पुत्र सुदामा राजाके आगे शपथ किया यहां शप धातुका करना अर्थ किया है ॥ ११० ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽर्थे नैरो बुधः ॥ वृथा हि शपथं कुं  
र्वन् प्रेत्य चेहं च नश्यति ॥ ११ ॥ कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये  
तथेन्धने ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् ॥ १२ ॥

टीका—पंडित छोटेभी काममें वृथा शपथ कहिये सौगंद न करै क्योंकि वृथा शपथ करता हुआ मनुष्य परलोकमें तथा इस लोकमें नरकके मिलने तथा अजसके मिलनेसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ जिसको बहुत स्त्री हैं वह एक स्त्रीसे ऐसे कहै कि मैं औरको नहीं चाहता हूँ तूही मेरी प्यारी है इस भांति अच्छे भोगके लाभके



( २५२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

लिये शपथ करै और विवाहोंमें जैसे मैं और व्याह न करोंगा और गौके लिये घास आदिके ले लेनेमें और अग्निमें होमके लियेई धनके लेनेमें और ब्राह्मणकी रक्षाके लिये अंगीकार किये हुये धन आदिमें वृथा शपथ करनेसे पाप नहीं होताहै ॥ १२ ॥

संत्येन शार्पयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं  
सर्वैस्तु पातकैः ॥ १३ ॥ अग्निं वाहोरयेदेनमप्सु चैनं निर्मज्ज-  
येत् ॥ पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पृशयेत्पृथक् ॥ १४ ॥

टीका-ब्राह्मणको सत्य शब्दका उच्चारण करिकै शपथ करावै और क्षत्रियको वाहन तथा आयुधोंसे अर्थात् मेरे सब वाहन तथा आयुध निष्फल होंय ऐसे शपथ करावै और गौ बीज तथा सुवर्ण निष्फल होंय ऐसे वैश्यसे और मुझको सब पापहोंय ऐसे शूद्रसे शपथ करावै ॥ १३ ॥ अग्निके समान पचास पलका आठ अंगुलके लोहेके गोलेको शूद्र आदिके दोनों हाथोंमें सात पीपलके पत्ते रखके धरावै और पितामह आदि करि कही हुई विधिसे सात पैड-तक चलावै और जोंक आदि करि रहित जलमें इसको गोता दिवावै और पुत्रोंके तथा स्त्रीका शिर जुदा जुदा इसको छुवावै ॥ १४ ॥

यमिन्द्रो न देहत्यग्निरापो नोन्मज्जयन्ति च ॥ न चाति मृच्छति क्षिप्रं  
सं ज्ञेयः शर्पथे शुचिः ॥ १५ ॥ वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्रात्रा  
यवीयसा ॥ नाग्निर्ददाह रोमां पि संत्येन जगंतःस्पृशः ॥ १६ ॥

टीका-जिसको प्रकाशमान अग्नि न जलावै और जल जिसको उपरको न उछालै और जो बड़ी पीडाको न प्राप्त होय वह शपथमें शुद्ध जानना चाहिये ॥ १५ ॥ पहले समयमें वत्सनाम ऋषिको वैमात्र छोटे भाईने यह दोष लगाया कि तू ब्राह्मण नहीं है शूद्रका पुत्र है इसके शपथके लिये अग्निमें घसे हुए उस ऋषिके रोमकोभी अग्निने सत्यके कारणसे नहीं जलाया ॥ १६ ॥

यस्मिन्यस्मिन्विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् ॥ तत्तत्कार्यं निर्व-  
त्तैत कृतं चाप्यकृतं भवेत् ॥ १७ ॥ लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कौमा-  
त्क्रोधात्तथैव च ॥ अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं विवर्तयमुच्यते ॥ १८ ॥

टीका-जिस जिस व्यवहारमें साक्षियोंने झूठ कहाहै यह निश्चय होजाय नहीं पूर हुए उस उस कामको प्राङ्गिवाक लौटाय देवै जो दंडकी समाप्ति तकभी



पहुँचि गया होय उसकीभी फिरि परीक्षा करै ॥ १७ ॥ लोभसे और मोह कहिये विपरीत ज्ञानसे और भयसे, स्नेहसे, कामसे, क्रोधसे, अज्ञानसे और बालभाव कहिये असावधानीसे झूठी गवाही दीजाती है ॥ १८ ॥

एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥ तस्य दण्डविशेषास्तु  
प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ १९ ॥ लोभात्सहस्रं दण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु  
साहसम् ॥ भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ १२० ॥

टीका—इन लोभ आदिकोंमेंसे किसी कारणके होनेपर जो साक्षी झूठी गवाही देताहै उसके दंड विशेषोंको क्रमसे कहोंगा ॥ १९ ॥ लोभसे झूठी गवाही देनेपर जिसको आगे कहेंगे ऐसे हजार पण दंड देना चाहिये मोहसे प्रथम साहस जो आगे कहा जायगा और भयसे मध्यम साहस जो आगे कहे जायेंगे और मैत्रसे चौगुना प्रथम साहस जानिये ॥ १२० ॥

कामादशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ॥ अज्ञानाद्द्वौ शीते पूर्णं  
बालिष्याच्छतमेव तु ॥ २१ ॥ एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डां  
न्मनीषिभिः ॥ धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च ॥ २२ ॥

टीका—स्त्रीसंभोगरूप कामसे झूठी गवाही देते हुए को दशगुणा प्रथम साहस दंड देना चाहिये और क्रोधसे वक्ष्यमाण तिगुना मध्यम साहस और अज्ञानसे दोसौ पण और बालिष्य कहिये असावधानीसे एकसौही पण दंडदेना चाहिये ॥ २१ ॥ सत्यरूप धर्मके न लोप होनेके लिये और असत्यरूप अधर्मके निवारणके लिये झूठी गवाही देनेमें पहले मुनीश्वरोंके कहे हुए दंडोंको मनु आदि कहते हैं ॥ २२ ॥

कौटसाक्ष्यं तु कुर्वोणान्स्त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः ॥ प्रवासयेद्दण्डयि  
त्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् ॥ २३ ॥ दशं स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वा  
यंभुवोऽब्रवीत् ॥ त्रिषु वर्णेषु यांनि स्युरक्षतो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ २४ ॥

टीका—झूठी गवाही देनेमें प्रवृत्त क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको धर्मात्मा राजा पहले कहे हुये दंडको देकर अपने देशसे निकाल देवै और ब्राह्मणको तौ धन दंडके विनाही अपने देशसे निकाल देवै ॥ २३ ॥ हिरण्यगर्भ मनुने दंडके दशस्थान कहे है जो क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंमें होते हैं और ब्राह्मण तौ बड़े अपराध (कसूर) के होनेपर अक्षत शरीर देशसे निकाला जाताहै ॥ २४ ॥



( २५४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ॥ चक्षुर्नासा च कर्णौ च  
धनं देहस्तथैव च ॥ २५ ॥ अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वं  
तः ॥ सारापराधौ चालोक्य दण्डं दण्डयेषु पातयेत् ॥ २६ ॥

टीका-लिंग १ उदर २ जीभ ३ हाथ ४ पांव ५ पांचमा आंख ६ नाक ७ कान ८ धन ९ और देह १० ये दशदंडके स्थान कहे हैं इनमेंसे जिस जिस अंगसे अपराध होय तौ अपराधकी लघुता गुरुता देखके उस उस अंगका ताडन आदि करना चाहिये थोड़े अपराधमें धन दंड और महापातक आदिमें छेदन देह दंड कहिये मारना कहा है ॥ २५ ॥ वारंवार इच्छासे अपराध करनेको देखि ग्राम और वन आदि अपराधके स्थान हैं और दिनराति आदि अपराधके काल हैं इनको भलीभांति देखि सार कहिये अपराध करनेवालेका धन शरीर आदिकी सामर्थ्यको और थोड़े अथवा बहुत अपराधको देखि दंडके योग्य पुरुषोंको दंड देवै ॥ २६ ॥

अधर्मदण्डनं लोके यशोग्रं कीर्तिनाशनम् ॥ अस्वर्ग्यं च परत्रा  
पि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ २७ ॥ अदण्डयान्दण्डयन्नाजा दण्ड्या  
श्च वाप्यदण्डयन् ॥ अयशो महदामोति नरकं चैव गच्छति ॥ २८ ॥

टीका-जीवते हुये ख्यातिको यश कहते हैं और मरे हुएकी ख्यातिको कीर्ति कहते हैं तिससे दोष आदिके जाने विना दंड देनेसे इस लोकमें यशका नाश होता है और परलोकमें मरे हुएकी कीर्तिका नाश होता है अर्थात् और धर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग का रोकनेवाला है इससे उसका त्याग करै ॥ २७ ॥ जो दंड के योग्य नहीं हैं उनको धनलोभ आदिसे दंड देता हुआ और दंड देनेके योग्य हैं उनको अनुरोध आदिसे नहीं दंड देता हुआ राजा बड़े आयशको पाता है तथा नरकमें भी जाता है ॥ २८ ॥

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्विगदण्डं तदनन्तरम् ॥ तृतीयं धनदण्डं  
तु वधदण्डमतः परम् ॥ २९ ॥ वधेनापि यदा त्वेतांनिर्ग्रहीतुं  
न शक्नुयात् ॥ तदैषु सर्वमप्येतत्प्रयुजीत चतुष्टयम् ॥ ३० ॥

टीका-तुमने अच्छा नहीं किया फिर ऐसा न करना ऐसे वाणीसे धमकाना वाग्दंड है सो प्रथम अपराधमें गुणवान्को करना चाहिये तिस परभी जो शांत न होय तौ धिक्कार रूप दंड करै अर्थात् तेरे जन्मको धिक्कार है ऐसे कहै तिसपरभी



न मानै तौ तीसरा धनदंड ( जुमाना ) करै तिसपरभी निषिद्ध कर्म करै तौ व-  
धदंड अर्थात् ताडना तथा अंगका काटना आदि करै मारै नही ॥ २९ ॥ जब  
अंगच्छेद आदि उलटे दंडसे जो दंडयोग्यको वशमें न करसकै तब इसमें वा-  
ग्दंड आदि चारौ करै ॥ १३० ॥

लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि ॥ ताम्ररूप्यसुवर्णा-  
नां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३१ ॥ जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं  
दृश्यते रजः ॥ प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ ३२ ॥

टीका—तांबे रूपे और सुवर्ण आदिकी जो पण आदि संज्ञा मोललेने बेचने आदि  
लोकके व्यवहारके लिये पृथिवीमें प्रसिद्ध है उनको दण्ड आदिके लिये मैं संपूर्णतासे  
कहताहौं ॥ ३१ ॥ श्रोत्रमें होकर आये हुए सूर्यके किरणोंमें जो सूक्ष्म रज दीख-  
ताहै उस रजके परिमाणोमे पहलेको त्रसरेणु कहते है ॥ ३२ ॥

त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः ॥ तां राजसर्षपस्ति-  
स्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः ॥ ३३ ॥ सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियं त्वे  
ककृष्णलम् ॥ पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश ॥ ३४ ॥

टीका—आठ त्रसरेणुकी एक लिखा होतीहै उन तीनि लिखाओंका एक राजसर्षप  
होताहै उन तीनि राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप जानना चाहिये ॥ ३३ ॥ उन छ  
गौर सर्षपोंका मध्यम अर्थात् न बहुत मोठा न छोटा एक जव होताहै तीनिजवोंकी  
एक घोंघची अर्थात् रत्ती होती है और उन पांच रत्तियोंका एक मासा होताहै उन  
सोलह मासोंका एक सुवर्ण होताहै ॥ ३४ ॥

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दर्श ॥ द्वे कृष्णले समधृते वि-  
ज्ञेयो रौप्यमाषकः ॥ ३५ ॥ ते षोडश स्याद्धरणं पुराणश्चैव रा-  
जतम् ॥ कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः ॥ ३६ ॥

टीका—चारि सुवर्णका एक पल होताहै और दशपलका एक धरण होताहै और  
दो घोंघची बराबर करिके कांटेमें धरी जाय तौ उनका एक रूप्यमाषकजानना चा-  
हिये ॥ ३५ ॥ उन सोलह रूप्यमाषकोंका एक रौप्यधरण और पुराण राजत कहिये  
रजत संबंधी होताहै और तांबेके कर्ष भरको कार्षापण तथा पण जानना चाहिये और



( २५६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

कार्षिक शास्त्रके पलका चौथाई भाग जानना चाहिये इसीसे कोशवाले चारि कर्षको पल कहते हैं ॥ ३६ ॥

धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः ॥ चतुःसौवर्णिको निष्कः  
विज्ञेयस्तु प्रमाणतः ॥ ३७ ॥ पणानां द्वैशते सार्धे प्रथमः साह  
सः स्मृतः ॥ मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रं त्वेवं चोत्तमः ॥ ३८ ॥

टीका-दशरौप्य धरणका एक रौप्यशतमान होताहै और चारि सुवर्णका एक निष्क परिमाणसे जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ पचास अधिक दोसौ अर्थात् ढाईसौ पणका मन्वादिकोंने प्रथम साहस कहाहै और पांचसौ पणका मध्यम साहस जानना चाहिये और हजार पणका उत्तम साहसजानना चाहिये ॥ ३८ ॥

ऋणे देये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति ॥ अपह्वं तद्विगुणं तन्म  
नोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ वसिष्ठविहितां वृद्धिं सृजेद्वित्तविवर्धि-  
नीम् ॥ अंशोतिभागं गृह्णीयान्मासाद्रार्धुषिकः शते ॥ १४० ॥

टीका-मुझे उत्तमर्णका धन देनाहै ऐसे सभामें अधमर्णके कहनेपरसैकरा पीछे पांच दंड देने योग्यहै और जो सभामेंभी ऐसे कहै कि मैं इसका कुछ नही देनदार हौ ऐसे मुकर जाय तौ सैकरे पीछे दशपण दंड देने चाहिये यह मनुस्मृतिमें दंडका प्रकारहै ॥ ३९ ॥ वसिष्ठ कही हुई वृद्धि ( व्याज ) धनकी बढ़ानेवाली है उसको वृद्धिसे जीविका करनेवाला लावै उसीको दिखाते है सौ देनेपर उसका अस्सीमा भाग ले अर्थात् सौ पणपर सवापण प्रतिमहीने वृद्धि लेवै ॥ १४० ॥

द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ द्विकं शतं हि गृह्णी  
नो न भवत्यर्थकिंलिषी ॥ ४१ ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पञ्चकं च  
शतं समम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ४२ ॥

टीका-साधुओंका यह धर्म है ऐसा मानता हुआ दिये हुए सौपणोंपर दो पण प्र-  
त्येक महीनेमें लेवै जिस्से सैकरेपर दो लेता हुआ वृद्धिके धन लेनेमें दोषी नही होताहै ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच सैकरेपर महीने में वृद्धि लेवै इससे अधिक न लेवै ( शंका ) जो कहौ कि अस्सीमा भाग थोडाहै और सैकरेपर दो बहुतहैं तौ ब्राह्मणके यह थोडे बहुतका विकल्पकेसे होय इसपर मेधातिथि और गोविंदराजनाम दोनो टीकाकारोंने लिखाहै कि जो पहली वृद्धिसे निर्वाह न होय तौ सैकरेपर दो लेने चाहिये परंतु हम यह कहते है कि बंधक ( गि-



रवी ) सहितमें अस्सीमा भाग और विना बंधकमें सैकरे पर दो लेने चाहिये सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै ॥ अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासिमासि संबंधके ॥ वर्णक्रमच्छतं द्वित्रिचतुःपंचकमन्यथा ॥ अर्थ ॥ बंधक सहितमें महीने अस्सीमा भाग वृद्धि होती है और अन्यथा कहिये बंधक रहितमें वर्णोंके क्रमसे दो तीनि चारि पांच वृद्धि होती है इति ॥ ४२ ॥

न त्वेवांधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् ॥ नचौ  
धेः कालसंरोधान्निसर्गोऽस्ति न विक्रयः ॥ ४३ ॥  
न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुजानो वृद्धिमुत्सृजेत् ॥ मूल्ये-  
न तोषयेच्च नमाधिस्ते नोऽन्यथा भवेत् ॥ ४४ ॥

टीका—भूमि गौ दास आदि बंधक भोगके लिये देनेपर धनके देनमें पहले कही हुई वृद्धिको उत्तमर्ण नहीं पाताहै बहुत कालतक रहनेको कालसंरोध कहते है भोग्य आधिके बहुत कालतक रहनेसे मूल धनके दुगुने होजानेपरभी दूसरेको देना अथवा वेचना नहीं हो सकताहै मेधातिथि और गोविंदराज कहते है कि आधिके बहुत कालतक रहनेपरभी निसर्ग कहिये दूसरेके यहां धरना नहीं होसकताहै यहां तौ गहने धरी हुई भूमि आदिके दूसरेके यहां धरनेके समाचारसे सब शिष्टाचारसे विरोध होताहै ॥ ४३ ॥ कपडा गहना आदि रक्षा करने योग्य आधि नहीं भोगने योग्य है जो भोग करै तौ उसकी वृद्धिको छोडदे पहले मोलसे इसको संतुष्ट करै अथवा भोगनेसे जो आधि असार होजाय अर्थात् किसी कामकी न रहै तौ अच्छी दशाका मूल्य देकर स्वामीको संतुष्ट करै जो ऐसा न करे तो बंधकका चोर होय ॥ ४४ ॥

आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः ॥ अवहार्यौ भवेतां  
तौ दीर्घकालमवस्थितौ ॥ ४५ ॥ संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्य-  
न्ति कदाचन ॥ धेनुरुद्रो वहन्नश्चो यश्च दम्यः प्रयुज्यते ॥ ४६ ॥

टीका—आधि कहिये बंधक अर्थात् जो वस्तु गहने धरीजाय और उपनिधि कहिये जो भोगनेके लिये प्रीतिसे दीहुई वस्तु ये दोनो निधि उपनिधि बहुत कालतक रहनेपरभी समय उलांघनेके योग्य नहीं है अर्थात् जब उनका स्वामी मागै तभी देने योग्यहै ॥ ४५ ॥ दुही जाता हुई कहिये दूध देनेवाली गौ और सवारी देता हुआ ऊंट तथा घोडा और काढनेके लिये दिया हुआ बैल आदि ये प्रीतिसे और करि भोग किये गये स्वामीके कभी नष्ट नहीं होतेहै ॥ ४६ ॥



( २५८ )

मनुस्मृतौ

यत्किञ्चिद्दर्शं वर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी ॥ भुज्यमानं परैस्तू-  
ष्णीं न सं तल्लब्धुर्महति ॥ ४७ ॥ अजडंश्चेदपौगण्डो विषये चास्य  
भुज्यते ॥ भग्नं तर्द्धवहारेण भोक्तां तद्व्यमहति ॥ ४८ ॥

टीका—जों कोई धन प्रीति आदिके विना दश वर्षतक दूसरों करि भोगा जाय और स्वामी देखै और कभी यह न कहै कि मतभोगो तौ स्वामी पाने योग्यनही होताहै उसका उसमे स्वामीपन दूर होजाताहै ॥ ४७ ॥ जिसकी बुद्धि विकल होय अर्थात् यथावस्थित न होय उसको जड कहते है और सोलह वर्षसे जिसकी अवस्था अधिक न होय उसको अपौगंड कहते है जो धनका स्वामी जड तथा पौगंड न हो-य और उसके सामने उसका धन भोगा जाय तौ स्वामीका व्यवहारसे नष्ट होजाताहै भोगनेवालेहीका वह धन होजाताहै ॥ ४८ ॥

आधिः सीमा बालधनं निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं श्रोत्रियस्वं  
च न भोगेन प्रणश्यति ॥ ४९ ॥ यः स्वाभिनाऽननुज्ञातमाधिं भुङ्क्ते  
ऽविचक्षणः ॥ तेनाध्वृद्धिर्भोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः ॥ ५० ॥

टीका—आधि कहियें गहने धरी हुई वस्तु और सीमा कहिये ग्राम आदिकी मर्यादा बालकका धन निक्षेप कहिये बासनमें रक्खा हुआ विना गिनाया बंद किया हुआ धन अर्थात् धरोहड उपनिधि और स्त्री कहिये दासी और राजा तथा वेदपाठीका धन ये कहे हुए दशवर्षके भोगसे स्वामीके नष्ट नहीं होते है और इनमें भोगनेवालेका स्वत्व नहीं होताहै ॥ ४९ ॥ जो मूर्ख वृद्धि ( व्याज ) से दिये हुई वस्तुको स्वामीकी आज्ञाविना छुपाकै भोगताहै तौ उस को उस भोगकी शुद्धिके लिये आधी वृद्धि छोड़देनी चाहिये और बलसे भोगनेमें तौ संपूर्ण वृद्धिकाही त्याग कहाहै ॥ ५० ॥

कुंसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यं नात्येति सकृदाहता ॥ धान्ये सदे लवे वाह्ये  
नातिर्क्रामति पञ्चताम् ॥ ५१ ॥ कृतानुसारादधिका व्यति-  
रिक्ता न सिद्ध्यति ॥ कुंसीदपथर्मादुस्तं पञ्चकं शतमहति ॥ ५२ ॥

टीका—व्याजपर धनके देनेको कुंसीद कहते है उसपर जो एकवार व्याज ले लिया जाय जो वह दूनेसे अधिक नहीं होताहै मूलसे दूनाही होताहै और व्याज दियें हुए धान्यमें और सद कहिये वृक्षके फलमें और लव कहिये ऊन आदि रोमोंमें और जोतने योग्य बैल आदिमें मूल धन धान आदि समेत पंच गुनेसे अ-



धिक नहीं होता है ॥ ५१ ॥ वर्णोंके क्रमसे शास्त्रके अनुसार की हुई दो तीनीकी वृद्धिसे भिन्न विना की हुई अधिक नहीं होती है किंतु की हुईभी वृद्धि वर्णोंके क्रमसे दो तीनी सैकरेपर मासमासमें लेनी चाहिये विना कीहुई वृद्धिमेंभी दूसरा विशेष कहते हैं कि कुत्सितसे जो मार्ग चले उसको कुसीदपथ कहते हैं यह उत्तमर्णजो शूद्रके मध्ये कहे हुए सैकरेपर पांच द्विजातिसेभी लेवै तौ यही कुत्सित पंथा है अर्थात् पहले कहे हुए धर्मसंबंधी वृद्धि करनेवालेसे अपकृष्ट है यह मनुआदि कहते हैं यह विना की हुई वृद्धि उद्धारके विषयमें मागनेसे उपरांत जाननी चाहिये क्योंकि कात्यायनका वचन है कि प्रीतिसे दिया हुआ जबतक न मागा जाय जबतक नहीं बढ़ता है और जो मागनेपर न दिया जाय तौ सैकरेपर पांच बढें ॥ ५२ ॥

नाति सांवत्सरी वृद्धि न चाट्टिष्टा पुनर्हरेत् ॥ चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः  
कारिता कायिका च यः ॥ ५३ ॥ ऋणं दातुमर्शको यः कर्तुमिच्छे  
त्पुनः क्रियाम् ॥ स दत्वा निर्जिता वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् ॥ ५४ ॥

टीका—एकमहीना वा दो महीना अथवा तीनी महीना वीतनेपर हमारे व्याजका हिसाब करके एकवारही देना इस नियमसे जो उत्तमर्ण एक वर्षतक व्याज लेवै, और वर्षके वीतनेपर नियम की वृद्धिको न लेवै, और शास्त्रसे नहीं देखी गई तथा कही हुई धर्मसंबंधिनी दो तथा तीनिपण सैकरेसे अधिक न लेवै, अधर्मता दिखानेके लिये यह निषेध है और शास्त्रमें नहीं कही हुई चक्रवृद्धि आदि चारिको न लेवै, उन चारोंका स्वरूप कहते हैं बृहस्पतिः । कायिकाकायसंयुक्ता मासग्राह्याचकालिका ॥ वृद्धेवृद्धिश्चक्रवृद्धिः कारिता ऋणिनाकृता ॥ अर्थ ॥ कायकरि युक्त होय उसको कायिका कहते हैं और जो महीने २ पर लीजाय उसको कालिका कहते हैं और वृद्धिपर जो वृद्धि ( व्याजपर व्याज ) होती है उसको चक्रवृद्धि कहते हैं उनमें चक्रवृद्धि स्वरूपहीसे निंदित है कालवृद्धि तौ दुगुनेसे अधिक लेनेसे होती है और कायिका बहुत जोतने तथा दुहनेसे होती है और कारिता वह होती है जो उत्तमर्णके दवावसे आपत्तिकालमें ऋणी करि कीजाय ये चारों वृद्धियां शास्त्रमें नहीं हैं इनको न लेवै ॥ ५३ ॥ जो ऋणी धनदेनेकी असामर्थ्यसे फिर लेख्य ( तमस्सुक ) आदि क्रिया करनेकी इच्छा करै वह निर्जित कहिये उक्त मार्ग करि सच्चाईसे अपने आधीन कीहुई वृद्धिको देकर करण जो लेख्य ( तमस्सुक ) है उसको फिर लिखदेवै ॥ ५४ ॥

अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यं परिवर्तयेत् ॥ यार्वतो संभवेद्वृद्धिस्ता



वर्ती दांतुर्महति ॥ ५५ ॥ चक्रवृद्धिं समोरूढो देशकालव्यव-  
स्थितः ॥ अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका—जो दैवगतिसे वृद्धि और हिरण्यकोभी न दे सकै तौ उसको मिला-  
यकै उसीको फिर लिखे जाते हुए कागजपर वृद्धि और हिरण्य आदि अर्थात्  
मूल और व्याजको चढाय देवै उस समय जितना चक्रवृद्धिका धन होगा  
वह सब देना पड़ेगा ॥ ५५ ॥ चक्र शब्दसे यहां चक्रवाले छकड़े आदिके  
भाडा रूप वृद्धि अभिमत है चक्रवृद्धिका आश्रय लेनेवाला उत्तमर्ण देश तथा  
कालकी व्यवस्थायुक्त होता है जैसे जो काशीतक नोन आदि छकड़ेसे लेजां-  
उगा तौ मुझको इतना धन देनेयोग्य होगा यह मूल्यरूप देशकी व्यवस्था  
हुई और जो महीनेभर तक ले जाउगा तौ मुझे इतना देना होगा यह कालकी  
व्यवस्था हुई ऐसे अंगीकार किये हुए देश तथा कालके नियमको दैवयोगसे  
नही पूरा करता हुआ अर्थात् शकट आदिसे नही ले जाता हुआ लाभरूप  
संपूर्ण फलको नही प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः ॥ स्थापयन्ति तु यं वृद्धिं  
सा तत्राधिगमं प्रति ॥ ५७ ॥ यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह  
मानवः ॥ अदर्शयन्स तं तस्य प्रयच्छेत्स्वर्धनादणम् ॥ ५८ ॥

टीका—स्थलके मार्ग तथा जलके मार्गके जानेमें चतुर इतने देशतक तथा  
इतने कालतक लेजानेपर इतना लेना योग्य है इस भांति देश तथा कालके  
लाभरूप धनके जाननेवाले बनिया आदि वैसे विषयमें जिस वृद्धिको व्यवस्था-  
पित करैं वही वहां व्यवस्था है और वही वहां वृद्धिके धनकी प्राप्तिमें प्रमाण है  
॥ ५७ ॥ जो मनुष्य जिसके दर्शनका प्रतिभू ( जामिन ) होय अर्थात् धन  
देनेके समय में इस ऋणीको दिखा दूंगा ( हाजिर करदेउंगा ) और वह उस  
कालमें उत्तमर्णको न दिखावै तौ अपने धनमेंसे उस धनके देनेका यत्न करै ॥ ५८ ॥

प्रातिभावं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दण्डशुल्कावशे  
षं च नैपुत्रो दातुंमहति ॥ ५९ ॥ दर्शनप्रातिभावे तु विधिः स्या  
त्पूर्वचोदितः ॥ दानप्रतिभुविप्रेतं दार्यादानपि दापयेत् ॥ ६० ॥

टीका—प्रतिभूनसे अर्थात् जमानतसे जो धन देनेयोग्य है उसको प्रातिभाव्य  
कहते हैं औ वृथा दान जो हंसीके निमित्त पंडा आदिके अर्थ देनेकी योग्य-



तासे पिताने अंगीकार किया और आक्षिप्त कहिये जुआके निमित्त तथा सौरिक कहिये मद्यके निमित्त और दंडके निमित्त औ शुल्क कहिये महसूल तिसका बाकी धन जो पिताको देना है उसको पिताके मरनेपर पुत्र देनेयोग्य नहीं है ॥ ५९ ॥ प्रातिभाव्य जमानतके धनको पुत्र नहीं देनेयोग्य है वह दर्शन प्रतिभू अर्थात् हाजिर जामिनी करनेवाले पिताके देनेयोग्य जानना चाहिये और देनेकी जमानत करनेवाले पिताके मरनेपर पुत्र आदिकोंसे भी ऋण दिवावै ॥ ६० ॥

अदांतरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम् ॥ पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते प-  
रिप्सेत्केन हेतुना ॥ ६१ ॥ निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलं  
धनः ॥ स्वर्धनादेवं तद्व्याप्तिरादिष्टं इति स्थितिः ॥ १६२ ॥

टीका—दान प्रतिभू अर्थात् देनेवाले जामिनसे दूसरा दर्शनप्रतिभू अथवा विश्वासप्रतिभूके मरनेपर पीछे धन देनेवाला उत्तमर्ण अपना धन कैसे पावै क्योंकि प्रतिभू मरगयाहै तौ यह दर्शनप्रतिभू अथवा प्रत्ययप्रतिभू जो अधमर्ण करि निरादिष्ट अर्थात् निसृष्ट धन होय और प्रतिभूके पास उसके देनेयोग्य धन होय तौ वह अथवा उसका पुत्र उत्तमर्णको ऋण देवै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मत्तोन्मत्तार्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा ॥ असंबद्धकृतश्चैवं व्य-  
वहारो न सिद्ध्यति ॥ ६३ ॥ सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्या  
त्प्रतिष्ठिता ॥ बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्वयावहारिकारात् ॥ ६४ ॥

टीका—मद्य आदिसे मतवारे और रोग आदिसे उन्मत्त और बालक तथा वृद्ध करि तथा भाईकी आज्ञाविना किये हुए ऋणका व्यवहार सिद्ध नहीं होताहै ॥ ६३ ॥ यह मुझको करनाहै इत्यादिक भाषालेख्य आदिसे स्थिर की गई भी होय परन्तु जो शास्त्रके धर्मसे और परंपरासे चले आये हुए व्यवहारसे बाहर कही जाय तौ वह सत्य नहीं होतीहै उसको न मानना चाहिये ॥ ६४ ॥

योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम् ॥ यत्र वाप्युपधिं पश्येत्  
त्सर्वं त्रिनिवर्तयेत् ॥ ६५ ॥ ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थं कृ-  
तो व्यर्थः ॥ दातव्यं बान्धवैर्स्तत्स्योत्प्रविर्भक्तैरपि स्वतः ॥ ६६ ॥

टीका—योग कहिये छलसे किये हुए बंधक कहिये गिरबी और दान तथा प्रतिग्रह किये जाय परन्तु सत्यतासे नहीं और अन्यत्र कहिये धरोहड आदिमें जहां



( २६२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

छल जाना जाय अर्थात् वास्तवमें धरोहड न रक्खी होय वह सब लौटि जाता है ॥ ६५ ॥ पहलेसे बटे हुए अथवा विना बंटे हुए भाई तथा कुटुंबके पालनेके लिये जो धन लेकर ऋणी मरजाय तौ उस ऋणको बंटे हुए और विना बंटे हुए सब अपने धनसे देवै ॥ ६६ ॥

कुटुम्बार्थेऽर्घ्यधीनोपि व्यवहारं यमाचरेत् ॥ स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यांयान्नं विचालयेत् ॥ ६७ ॥ बलार्द्धं बलार्द्धं बलार्द्धं चापि लेखितम् ॥ सर्वान्बलकृतान् नर्थान् कृतान् मनुरब्रवीत् ॥ ६८ ॥

टीका—स्वामी उसी देशमें होय अथवा दूसरे देशमें होय उसके कुटुंबके खरचके लिये जो सेवकभी ऋण करै तौ स्वामी उसको वैसाही अंगीकार करै ॥ ६७ ॥ बलसे दिया हुआ और बलसे भोगी गई भूमि आदि और बलसे लिखाया गया चक्रवृत्ति आदिका पत्र आदि इन सब बलसे किये हुए व्यवहारोंको मनुने लौटाने योग्य कहाहै ॥ ६८ ॥

त्रयः परार्थे क्लिश्यन्ति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम् ॥ चत्वारस्तूपची-  
यन्ते विप्रं आढ्यो वणिङ् नृपः ॥ ६९ ॥ अनादेयं नाददीतं परिक्षीणोऽ-  
पि पार्थिवः ॥ न चादेयं समृद्धोऽपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत् ॥ ७० ॥

टीका—साक्षी प्रतिभू और कुल ये तीनो धर्मार्थ व्यवहारोंमें पराये लिये क्लेश पाते हैं तिससे इनसे साक्ष्य ( गवाही ) प्रातिभाव्य ( जमानत ) और व्यवहारका देखना नहीं करना चाहिये और ब्राह्मण उत्तमर्ण बनियां और राजा ये चारि पराये लिये दानके फलका उत्पन्न करना ऋणके द्रव्यका देना विक्रय और व्यवहारका देखना इन बातोंको करते हुए धनकी वृद्धिको प्राप्त होते हैं तिससे ब्राह्मण देनेवा-  
लेको और धनाढ्य अधमर्णको और बनिया बेचनेवालेको और राजा व्यवहार करनेवालेको बलसे न प्रवृत्त करै ॥ ६९ ॥ राजा क्षीण धन होनेपरभी नहीं लेनेयोग्य धनको न लेवै और धनवान् होनेपरभी लेनेयोग्य थोडाभी न छोडै ॥ ७० ॥

अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात् ॥ दौर्बल्यं ख्याप्यते  
राज्ञः संप्रेत्येह च नश्यति ॥ ७१ ॥ स्वादानाद्गणसंसर्गात्त्वबलानां  
च रक्षणात् ॥ बलं संजायते राज्ञः संप्रेत्येह च वर्धते ॥ ७२ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्यके लेनेसे और शास्त्रमें कहे हुए लेनेयोग्यके न लेनेसे पुरवासी राजाका असामर्थ्य स्थापित करते हैं तिससे मरिक्के अधर्मसे नरक आ-



दिके भोगसे और इस लोकमें अपयशसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ न्याय्य कहिये उचित धनके लेनेसे और वर्णोंके सजाती शास्त्रोक्त विवाह आदिके संबंधसे अथवा वर्णोंका संसर्ग कहिये वर्णसंकर तिससे रक्षा करनेसे और दुर्बल प्रजाओंकी बलवानसे रक्षा करनेसे राजाका सामर्थ्य उत्पन्न होताहै तिससे वह इस लोक तथा परलोकमें वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७२ ॥

तस्माद्यमइव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये ॥ वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ ७३ ॥ यस्त्वधर्मेण कार्याणि मोहात्कुर्यान्नराधिपः ॥ अचिरात्तं दुरात्मानं वंशे कुर्वन्ति शत्रवः ॥ ७४ ॥

टीका—तिससे यमके समान राजा क्रोधको वशमें करि जितेन्द्रिय हो अपने भी प्रिय अप्रियको छोडि यमकी चेष्टासे सर्वत्र समानरूप वर्ते ॥ ७३ ॥ जो राजा लोभ आदिके व्यामोहसे अधर्मसे व्यवहारदर्शन आदि कार्योंको करताहै उस दुष्टचित्तको प्रजा तथा पुरवासियोंकी अप्रीतिसे शीघ्रही शत्रु दंड देते हैं ॥ ७४ ॥

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान् धर्मेण पश्यति ॥ प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः ॥ ७५ ॥ यः साधयन्तं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे ॥ स राजा तच्चतुर्भागं दार्ष्यस्तस्य च तद्धनम् ॥ ७६ ॥

टीका—जो राजा रागद्वेषको छोडकर धर्मसे कार्योंका देखताहै उस राजाको प्रजा ऐसे सेवन करती है जैसे समुद्रको नदियां अर्थात् नदियां जैसे समुद्रसे नहीं लौटती है उसीके साथ एकताको प्राप्त होती है प्रजाभी ऐसेही राजाकी अनुगामिनी होती है ॥ ७५ ॥ जो अधर्मण मै राजाका प्याराहै इस गर्वसे अपनी इच्छासे धन सावित करनेवाले उत्तमर्णका राजासे निवेदन ( लानिश ) करताहै उसपर राजा ऋणका चौथाई भाग दंडकरै और उसका धन देवावै ॥ ७६ ॥

कर्मणापि समं कुर्याद्धनिकायाधर्मणिकः ॥ समोऽवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छ्रेयैः ॥ ७७ ॥ अनेन विधिना राजा मिथो विवेदतां नृणाम् ॥ साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्याणि समतां नयेत् ॥ ७८ ॥

टीका—समान जाति अथवा हीन जाति अधर्मण कहिये ऋणी धनके न होनेपर अपनी जातिके अनुरूप कर्म करनेसेभी बराबर करै अर्थात् उत्तमर्ण अधर्मणपरसे निवृत्त हो धनीके समान आपको करै और जो ऋणी ऊंचा जातिका होय तौ उससे कर्म न करावै किंतु वह हौले हौले प्राप्तिके अनुसार उस धनको देवै ॥ ७७ ॥ इस कहे



( २६४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

हुए प्रकारसे आपसमें विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीके साक्षी आदिसे निर्णय किये हुए कार्योंको विरोध दूर करिके बराबरि करे ॥ ७८ ॥

कुलंजे वृत्तसंपन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि ॥ महापक्षे धनिन्यायै नि-  
क्षेपं निक्षिपेदुधः ॥ ७९ ॥ यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य  
मानवः ॥ स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथाग्रहः ॥ १८० ॥

टीका—उत्तम कुलमें उत्पन्न होय और सदाचारवान् होय धर्मका ज्ञाता तथा सत्य बोलनेवाला होय और बहुत पुत्र आदि कुटुंबवाला होय और सरल प्रकृतिका होय ऐसे मनुष्यके समीप व्यभिचार न होनेसे धरोहड रक्खै ॥ ७९ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारसे मूडा हुआ अथवा विना मूडा हुआ साक्षियोंके होनेपर अथवा विना साक्षियोंके जिस सुवर्ण आदि धनके जिसके हाथमें रक्खै वह धन उस रखनेवालेको वैसाही लेना चाहिये जिस्से जिस भांति देनाहै उसी भांति लेना उचित है मुदे हुएभी सुवर्ण आदिकी मुद्राको आपही खोलि रखनेवाला जब कहै कि मेरा यह तौलकर दे तब यह दंड आदिके लिये है ॥ १८० ॥

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेपुर्न प्रयच्छति ॥ स याच्यः प्राड्विवा  
केन तन्निक्षेपुरसन्निधौ ॥ ८१ ॥ साक्ष्यभावे प्राणिधिभिर्वयोरूपस  
मन्वितैः ॥ अपवेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्यै तत्त्वतः ॥ ८२ ॥

टीका—रक्खा हुआ मेरा सुवर्ण आदि द्रव्य दे ऐसे रखनेवाले करि कहा गया जो पुरुष उसको जब न दै तब रखनेवालेके सूचित करनेपर प्राड्विवाकको उस रखनेवालेके आगे मागना चाहिये ॥ ८१ ॥ पहली धरोहडमें साक्षी न होनेपर सभाके योग्य अवस्थामें बाल नहीं और स्वरूपवान् और राजा का उपद्रव आदि कहनेवाले ऐसे अपने चार पुरुषोंसे सुवर्ण आदि द्रव्यको रख वाकै उन्हीं राजपुरुषोंको उस धरोहडवालेसे चार पुरुषों करि रक्खी हुई धरोहड प्राड्विवाकको मागनी चाहिये ॥ ८२ ॥

स यदि प्रतिपद्येत यथा न्यस्तं यथा कृतम् ॥ न तत्र विद्यते किं  
चिद्वत्परैरभिगुज्यते ॥ ८३ ॥ तेषां न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथा  
विधिः ॥ उभौ निगृह्य दार्प्यः स्यादिति धर्मस्य धारणा ॥ १८४ ॥

टीका—वह धरोहड लेनेवाला मुदी हुई अथवा खुली हुई जैसी रक्खीयी कड़े, मुकुट आदिके आकारसे बनी हुईको वैसेही मानले कि सच्ची है लीजिये



तौ पहले रखनेवाले जिसने प्राड्विवाकसे आवेदन ( लानिस ) किया है उसका कुछ नहीं है यह जानना चाहिये ॥ ८३ ॥ उन चार पुरुषों का रक्खा हुआ सुवर्ण जैसा रक्खा था वैसा न दे तौ दोनो धरोहडै अर्थात् पहले सूचित करनेवाले की और चार पुरुषों करि रक्खी हुई उसको दवाकै दिवानी चाहिये इस प्रकार की धर्म की धारणा कहिये निश्चय है ॥ ८४ ॥

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे ॥ नश्यतो विनिपाते ता  
वनिपाते त्वं नाशिनौ ॥ ८५ ॥ स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्य-  
नन्तरे ॥ न स राज्ञा नि योक्तव्यो न निक्षेपुश्च बन्धुभिः ॥ ८६ ॥

टीका—जो रक्खा जाय वह निक्षेप कहा जाता है और मुहर लगा हुआ विना गिना अथवा वासनमें रक्खा हुआ जो रक्खा जाय उसको उपनिधि कहते हैं इनका ब्राह्मण और संन्यासी की भांति उपदेशमें भेद है, वे दोनो निक्षेप और उपनिधि रखनेवाले और जिसके समीप रक्खी है उसके जीवते हुए तदनंतर कहिये उसके पुत्र आदिको और उसके अनंतर उसके धनके अधिकारीको निक्षेप धारनेवाला कभी न देवै जिसे उसके पुत्र आदिको पिताके दिये विना नाश होनेपर वे निक्षेप और उपनिधि नष्ट होते हैं फिर पुत्रादिकोंके अविनाशमें और देनेमें कदाचित् अविनाशी होजाय तिससे अनर्थके संदेहसे न देने चाहिये ॥ ८५ ॥ मरे हुए रखनेवालेके धनको जिसके समीप रक्खा है वह रक्खे हुए धनको उसके धनके अधिकारी पुत्र आदिको विना मागे आपही जो देता है वह राजा करि और उसके पुत्र आदिको करि ऐसे कहनेयोग्य नहीं है कि तेरे पास और भी रक्खा है ॥ ८६ ॥

अच्छलेनैव चांन्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम् ॥ विचार्य तस्य वा वृत्तं  
साम्रैव परिसंधयेत् ॥ ८७ ॥ निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधि स्यात्परि  
संधने ॥ समुद्रे नाभ्युयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत् ॥ ८८ ॥

टीका—उसके समीप और धन होनेकी शंका रूप वाणीके कहे विनाही प्रीति पूर्वक निश्चय करै और शीघ्र शपथ आदिके देनेसे न निश्चय करै उस निक्षेपधारीके शील आदिको देखि यह धर्मात्मा है ऐसा जानिके साम नाम उपायसे निश्चय करै ॥ ८७ ॥ नहीं मानी हुई सब धरोहडोंके सावित करनेमें यह पहले कही हुई विधि होती है और मुदी आदिमें निक्षेपका धारण करनेवाला जो दूसरीवार बंद करनेसे उससे कुछ न लेवै तौ उसमेंभी उसको कुछ दूषण नहीं लगता है ॥ ८८ ॥

चौरैर्हृतं जलेनोद्धमग्निना दग्धमेव वा ॥ न दद्याद्यदि तस्मा-



( २६६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

तस्मै न संहरति किञ्चन ॥८९॥ निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तार-  
मेवं च ॥ सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैवं वैदिकैः ॥ १९० ॥

टीका—चोरों करि चुराय गये जल करि वहाकै दूसरे देशमें पहुंचाया गये अग्नि करि जलाया गये निक्षेप आदिको निक्षेप धारण करनेवाला न देवै जो आप उसमेंसे कुछ न लेवै ॥ ८९ ॥ धरोहडके छुपानेवालेको और विना रक्खे मागने वालेको राजा साम आदि सब उपायोंसे तथा वेदमें कहे हुए सौगंदोंसे निश्चय करै ॥ १९० ॥

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥ तावुंभौ चौरवच्छौ  
स्यौ दाप्यौ वा तत्समं दमम् ॥ ९१ ॥ निक्षेपस्यापहर्तारं तत्समं  
दापयेदमम् ॥ तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः ॥ ९२ ॥

टीका—जो रक्खी हुई धरोहडको न देवै और विना रक्खै मागै वे दोनो सोना मोती आदिकी बड़ी धरोहडमें चोरके समान दंड देनेयोग्य है ॥ ९१ ॥ धरोहडके छुपानेवालेको तथा विना रक्खै मागनेवालेको रक्खे हुये धनके बराबर दंड करै ( शंका ) जो कहौ कि पहले श्लोकमेंभी यही कहाहै तौ पुनरुक्ति हुई सो नहीं है क्योंकि बडे अपराधके होनेपर ब्राह्मणको छोडि दूसरी जातिको चोरके समान दंड दे इसप्रकार पहले श्लोकसे शरीरका दंड प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये यह कहाहै और दापयेत् कहिये दिवावै इससे धन दंडका नियम होनेसे इससे पहले श्लोककी व्यर्थता नहीं हुई इसको प्रथम अपराधविषयक होनेसे पहले कहे हुऐके अभ्याससे चोरके लिये कहे हुए उत्तम साहस आदि धन दंडका बोधक होनेसे मोहर आदि चिन्ह करकै रक्खे हुए धनको उपनिधि कहते है उसके हरनेवालेको राजा कहे हुए दंडको देवै ॥ ९२ ॥

उपदाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः ॥ संसहायः संहन्तव्यः प्र  
काशं विविधैर्वधैः ॥ ९३ ॥ निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलं  
सन्निधौ ॥ तावानेवं स विज्ञेयो विबुवन्दण्डमर्हति ॥ ९४ ॥

टीका—राजा तेरे ऊपर क्रोधित है उससे मैं तुझे बचाऊंगा तु मुझे धन दे ऐ से झूठ कहिकै जो पराये धनको लेताहै वह छलसे धन लेनेवाले सहायकों समे त बहुतसे मनुष्योंके सामने हाथ पाव तथा शिर काटने आदि नाना प्रकारके वधके उपायोंसे राजा करि मारनेयोग्य है ॥ ९३ ॥ जो सुवर्ण आदि जितना जिस करकै निक्षेप किया गया उस परिमाण आदिमे अंतर पडनेसे साक्षियोंके वचनसे



उतनाही जानना चाहिये अंतर करता हुआभी कहेगे अनुसार दंड देने योग्य है ॥९४॥  
 मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा ॥ मिथ एव प्रदातव्यो  
 यथा दायस्तथा ग्रहः ॥ ९५ ॥ निक्षिप्तस्य धनस्यैवं प्रीत्योपनि  
 हितस्य च ॥ राजा विनिर्णयं कुर्यादक्षिण्वन्यासधारिणम् ॥ ९६ ॥

टीका—एकांतमें जिसने धरोहड दी और एकांतहीमें लेनेवालेने ली वह धरोहड  
 एकांतहीमें फिर देनेयोग्य है लौटा कर देनेमें साक्षियोंकी अपेक्षा नहीं है जिस्से जिस  
 भांति देना है उसी भांति लौटना है धरोहड लेनेवालेके लिये यह नियमकी विधि है  
 ॥ ९५ ॥ मुदे हुए अथवा खुले हुए उपनिधिरूप धरोहडके धनको तथा कुछ थोड़े  
 काल भोगनेके लिये दिये हुएको इस कहे हुए प्रकारसे रखे हुए धनके धारण क-  
 रनेवाले पुरुषको पीडा विना दिये राजा निर्णय करे ॥ ९६ ॥

विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः ॥ न तं नयेत्  
 साक्ष्यं तु स्तेनमस्तेनमानिनम् ॥ ९७ ॥ अवहार्यो भवेच्चैव सान्वयः  
 षट्शतं दर्मम् ॥ निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चैरकिलिषम् ॥ ९८ ॥

टीका—जो वस्तुका स्वामी नहीं है और स्वामीकी आज्ञा विना पराये द्र-  
 व्यको बेचता है वास्तवमें वह चोर है और आपको चोर नहीं मानता है उसको  
 साक्षी न करे और न कही उसका प्रमाण माने ॥ ९७ ॥ यह पराये द्रव्यका  
 बेचनेवाला जो स्वामीका भाई आदि संबंधी होय तौ छसौ पण दंड देनेयोग्य  
 है और जो स्वामीका संबंधी न होय और स्वामीके संबंधी पुत्र आदिसे धन  
 दान विक्रय आदि होय तौ वह चोरके पापको प्राप्त होता है और चोरके समान दंड  
 करने योग्य है ॥ ९८ ॥

अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा ॥ अकृतः सं तु वि  
 ज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः ॥ ९९ ॥ संभोगो दृश्यते यत्र न दृश्ये  
 तागमः कंचित् ॥ आगमः कारणं तत्र न संभोगो दृश्यते इति स्थितिः २००

टीका—स्वामीके विना जो दिया गया और जो बेचा गया अथवा  
 लिया गया उसको विना कियाही जानिये व्यवहारमें जैसी मर्यादा है  
 नहीं किया गया होत है ॥ ९९ ॥ जिस वस्तु में संभोग न दृश्ये  
 लेने आदिका लेख नहीं है वहां पहले संभोग भोगना तौ है  
 शास्त्रकी मर्यादा है ॥ २०० ॥ पुरुषके अंगे लेखही प्रमाण



विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्वृत्तीयात्कुलसन्निधौ॥ क्रयेण सविशुद्धं हि  
न्यायतो लभते धनम् ॥ १ ॥ अथ मूलमनाहार्यं प्रकाशक्रयशो  
धितः ॥ अदण्ड्यो मुच्यते राज्ञा नास्तिको लभते धनम् ॥ २ ॥

टीका—जो द्रव्यविक्रयकाहिये बेचनेसे व्यवहारियोंके समूहके आगे मोल देकर  
जिसे लेताहै वह न्यायसे शुद्धद्रव्यको पाताहै ॥ १ ॥ जो मूलस्वामी बेचनेसे अ-  
थवा परदेशमें जाने आदिसे व्यवहार न कर सके और प्रकाशित क्रयसे यह निश्चय  
है तौ दण्डके योग्य नहीं है मोल लेनेवाला राजा करि छोड़ा जाताहै और नष्ट धनका  
स्वामी विना स्वामीके बेचे हुए द्रव्यको मोल लेनेवालेके हाथसे पाताहै इस विषयमें  
मोल लेनेवालेको आधा मोल देकर स्वामीको अपना धन लेना चाहिये यहां व्यव-  
हारसे दोनोंका आधा धन मारा जाताहै ॥ २ ॥

नान्यदन्येन संसृष्टरूपं विक्रयमर्हति ॥ न चासारिं न च न्यूनं न-  
दूरेण तिरोहितम् ॥ ३ ॥ अन्यां चेद्दर्शयित्वान्या वोढुः कन्या  
प्रदीयते ॥ उभे ते एकंशुल्केन बहेदित्यब्रवीन्मनुः ॥ ४ ॥

टीका—केसरी आदि द्रव्योंमें कुसूम आदि मिलकै न बेचना चाहिये और असा-  
रको सार कहिकै न बेचै और तराजु आदिमें कमती न तौलै और पीठी पीछें न  
बेचै और प्रीतिसे रक्खै हुये द्रव्यको न बेचै विना स्वामीके विक्रयके समान होनेसे  
विना स्वामीके बेचनेहीका दण्ड होताहै ॥ ३ ॥ मोलसे देनेयोग्य कन्याको  
मोलके समय निर्दोष सुंदर दिखाकै जो वरको दोष सहित कुरूपा दीजाय तौ दो-  
नो कन्याओंको वर उस एकही मोलसे व्याहि लेवै यह मनुने कहाहै मोलका  
द्रव्य लेकर कन्याका दान करना बेचनाही है इससे इसको द्रव्यके बेचने मोल लेनेके  
साथ कहाहै ॥ ४ ॥

उन्मत्ताया न कुंष्टिन्या न च यां स्पृष्टमैथुना ॥ पूर्वं दोषानभि-  
ख्याप्य श्रृण्वा दण्डमर्हति ॥ ५ ॥ ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म  
परिहापयेत् ॥ तस्य कर्मरूपेण देयांश्शंसहं कर्तृभिः ॥ ६ ॥

टीका—उन्मत्ताके श्रोत्रिणीके और मैथुन संसर्गवालीके उन्माद आदि दोषोंको  
ब्राह्मण आदि विवशोंसे पहले वरको सूचन करके देनेवाला दण्डयोग्य नहीं  
होताहै और विना कहे दण्डयोग्य होताहै ॥ ५ ॥ अब संप्रभू समुत्थानको कहतेहै  
यज्ञमें वरण किया हुआ ऋत्विक् जो थोड़ासा कर्म करिकै रोग आदिसे कर्मको



छोड़दे तौ उसको और ऋत्विजोंसे विचार करिके उसके कियेके अनुसार दक्षिणाका अंश ( हिस्सा ) देना चाहिये ॥ ६ ॥

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्म परिहापयन् ॥ कृत्स्नमेवं लेभेतांशं  
न्येनैवं च कारयेत् ॥ ७ ॥ यस्मिन्कर्मणि यस्तु स्युरुक्ताः प्र-  
त्यङ्गदक्षिणाः ॥ स एव तां अददीत भजेरन्सर्व एव वा ॥ ८ ॥

टीका—माध्यंदिनि यज्ञ आदिमें दक्षिणाके समय दक्षिणाओंके देनेपर रोग आ-  
दिसे कर्मको छोड़ता हुआ नट खटीसे नहीं तौ वह संपूर्ण दक्षिणाके भागको पावे  
और बाकी कर्मको औरसे करवावे ॥ ७ ॥ जिस आधान आदि कर्ममें अंग अंग  
प्रति जिसके संबंधसे सुनी हुई जो दक्षिणा होती है वही उनको ले अथवा केवल  
उसी उसी भागको सब बांटके ले लेवे ॥ ८ ॥

रथं हरेत् वाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् ॥ 'होता वापि' 'हरेद-  
ध्वमुद्राता चाप्यनः क्रये ॥ ९ ॥ सर्वेषामर्थिनो मुख्यास्तदधेनाधि-  
नोऽपरे ॥ तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः ॥ २१० ॥

टीका—यहां सिद्धांत कहते हैं किन्ही शाखावालोंके आधानमें अध्वर्युको रथ  
देना चाहिये यह कहा है और ब्रह्माको वेगवान् घोड़ा और होताकोभी घोड़ा और  
उद्राताके लिये सोमके मोलमें सोमका ले चलनेवाला छकड़ा इस व्यवस्थाकी  
सामर्थ्यसे जो दक्षिणा जिसके संबंधसे सुनी जाती है वही उसको ग्रहण करे  
॥ ९ ॥ दक्षिणाका विभाग कहते हैं ॥ उसको सौसे दीक्षायुक्त करता है यह  
सुना जाता है वहां सब सोलह ऋत्विजोंके मध्यमें जे चारि ऋत्विज अर्थात्  
होता अध्वर्यु ब्रह्मा और उद्राता ये सब दक्षिणाके आधे भागके पानेवाले हैं और-  
अरतालीस गौके पानेवाले होते हैं इसीसे कात्यायनने बारहबारह आर्घ्योंको कहिये  
पहलोके लिये इस भांति प्रत्येकको बारह गोदान कहे हैं यद्यपि सौके आधे  
पचास होते हैं तिसपरभी यहां न्यून आधा लेनेसे ये आधे वाले कहे जाते हैं और  
समीपतासे मैत्रावरुण प्रतिस्तोता ब्राह्मणाच्छीसी प्रस्तोता ये मुख्य ऋत्विक्की  
पाई हुई दक्षिणाका आधा लेनेसे अर्द्धी अर्थात् आधे भागके पानेवाले कहे जाते  
हैं और तीसरे अछावाक नेष्टा आग्नीध्र प्रतिहर्ता ये मुख्य ऋत्विक्की दक्षिणाका  
तीसरा भाग पाते हैं और चौथाईवाले उन्नेता पोता सुब्रह्मण्य ये मुख्य ऋ-  
त्विक्की पाई हुई दक्षिणाका चौथा भाग पाते हैं यह तौ छः छः दूसरोंसे और  
चार चार तीसरोंसे और तीनि तीनि चौथोंसे सूत्रमें लिखते हुए कात्यायनने  
स्फुट किया है ॥ २१० ॥



संभूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः ॥ अनेन विधियोगेन कं  
तव्यांशप्रकल्पना ॥ ११ ॥ धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते  
धनम् ॥ पश्चाच्च न तथा तत्स्यन्नि देयं तस्य तद्भवेत् ॥ १२ ॥

टीका-मिल करि घरके बनाने आदि अपने कर्मोंको लोकमें स्थपति ( राज )  
सूत्रकार ( बढई ) आदि मनुष्योंसे करवानेवालोंका इस यज्ञ दक्षिणा वि-  
धानके आश्रयसे विशेष ज्ञान ( कारागरी ) और व्यापार कहिये कामकी अपे-  
क्षासे भागकी कल्पना करनी चाहिये ॥ ११ ॥ अब दत्तानपकर्म कहि दियेका  
निषेधकरदेना कहते हैं ॥ जिसने यज्ञ आदि कर्मके लिये किसी मागनेवालेको  
धन दिया अथवा देनेकी प्रतिज्ञा की होय पीछे वह इस धनको यज्ञके लिये  
न लगावै तब यह दिया हुआभी धन ले लेना चाहिये और प्रतिज्ञा किया हुआ न  
देना चाहिये ॥ १२ ॥

यदि संसाधयेत्तु देर्पाच्छोभेन वा पुनः ॥ राज्ञां दाय्यः सुवर्णं  
स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥ दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथा  
वदनपक्रिया अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वेतनस्यानंपक्रियाम् ॥ १४ ॥

टीका-जो उस दिये हुये धनको लेनेवाला लोभसे अथवा अहंकारसे न देवै और  
प्रतिज्ञा किये हुएको बलसे ले तौ उस चोरोके पापकी शुद्धिके लिये राजाको सुवर्ण  
प्रमाण दंड देनेयोग्य होताहै ॥ १३ ॥ धर्मसे रहित यह दिये हुएका न देना तत्वसे  
कहा इसके उपरांत भृतिका अर्थात् नौकरीका न देना आदि कहेंगा ॥ १४ ॥

भृतोऽनातो न कुर्याद्यो देर्पात्कर्म यथोदितम् ॥ स दण्ड्यः कृष्ण  
लान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम् ॥ १५ ॥ आर्त्तस्तु कुर्यात्स्वस्थः सन्य  
थाभाषितमादितः ॥ स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभैव वेतनम् ॥ १६ ॥

टीका-नौकरीपर रक्खा हुआ जो मनुष्य रोगके विना अहंकारसे कहे हुए  
कामको न करै तौ उसपर कर्मके अनुरूप आठ रत्ती सोना दंडकरना चाहिये  
और नौकरीका धनभी न देना चाहिये ॥ १५ ॥ जब रोग आदिकी पीडासे  
काम न करै आराम होकै पहले कहेके समान काम देवै तौ वह बहुत दिनोंकाभी  
वेतन ( तनखाह ) पावे ॥ १६ ॥

यथोक्तमार्तः सुस्थो वा यस्तत्कर्म न कारयेत् ॥ न तस्य वेतनं दे



यमर्लोपनस्यापि कर्मणः ॥ १७ ॥ एष धर्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादान  
कर्मणः ॥ अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धर्मं सम्यग्भेदिनाम् ॥ १८ ॥

टीका—जो काम जैसा कहा गया उसको पीडित होनेपर दूसरेसे न करावै  
अथवा स्वस्थ रहनेपर आप न करै और न करावै तौ उसको उस किये हुए  
कामके शेषकाभी वेतन ( तनखाह ) न देना चाहिये ॥ १७ ॥ वेतनादान कर्मकी  
यह सब व्यवस्था कही इसके उपरांत संविद्व्यतिक्रम करनेवालोंके दंड आदिकी  
व्यवस्था कहोंगा ॥ १८ ॥

यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम् ॥ विसंवदेन्नरो लोभात्तं  
राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥ १९ ॥ निर्गृह्य दापयेच्चैनं सम्यग्व्यभिचारि-  
णम् ॥ चतुःसुवर्णान् षण्णिष्काञ्छतमानं च राजतम् ॥ २० ॥

टीका—ग्राम और देश शब्दोंसे उनके वसनेवाले लक्षित होते हैं संघ कहिये  
वनियों आदिका समूह हम इस कर्मको करेंगे और इसको न करेंगे इस प्रकारके  
संकेत ( इशारा ) को सत्य आदिकी सौगंदसे निश्चित करिकै उसको जो मनुष्य  
लोभ आदिसे उल्लंघन करै उसको राजा देशसे निकाल देवै ॥ १९ ॥ इस सं-  
विद्व्यतिक्रम काटि अर्थात् प्रतिज्ञा उल्लंघन करनेवालेको रोककर उसपर चारि-  
सुवर्ण छः निष्क प्रत्येक चारिसुवर्ण प्रमाण और चांदीके सौ मान और तीनसौ  
बीस रत्ती परिणाम ये तीनों प्रकारके दंड है इनमेंसे विषय कहिये कार्यके  
भारीपन और हलके पनकी अपेक्षासे सब इकट्ठे अथवा एक एक दंड राजा करै ॥ २० ॥

एतद्दण्डविधिं कुर्याद्ब्राह्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ग्रामजातिसमूहेषु स  
म्यग्व्यभिचारिणाम् ॥ २१ ॥ क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्व्यस्येद्दानु  
शयो भवेत् ॥ सोऽन्तर्दशाहं तद्द्वयं दद्याच्चैवां ददीत च ॥ २२ ॥

टीका—ग्राम कहिये ब्राह्मण आदिके जाति समूहमें संविद्व्यतिक्रम करनेवालों-  
पर इस धर्मप्रधान विधिको दंडकी राजा करै ॥ २१ ॥ नाश न होनेवाली स्थिर  
मोलकी भूमि वा तांबेके पट्टा आदिको मोल लेकर अथवा बेचकर लें, कमें जि-  
सको पछतावा होय कि मैंने अच्छा नहीं तोल लिया वह उस मोल लियेको दश-  
दिनके भीतर लौटादे अथवा बेचे हुएको लौटा लेवै ॥ २२ ॥

परेण तु दशाहस्य न दद्याद्ब्राह्मि दापयेत् ॥ आददानो ददच्चैव



( २७२ )

मनुस्मृति

[ अध्यायः

राज्ञीं दण्डं चः शतानि षट् ॥ २३ ॥ यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय  
प्रयच्छति ॥ तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवति पणान् ॥ २४ ॥

टीका—दश दिनके उपरांत मोल ली हुई भूमि आदिको न छोड़ै और बेची  
हुईको मोल लेनेवालेसे बल करि न दिलवावै वेंचे हुएको बलसे लेता हुआ  
और मोल लियेको छोड़ता हुआ राजा करि सौ पण दंड करने योग्य है ॥ २३ ॥  
नोन्मत्तया इत्यादि जो पहिले कहा है दंडविशेषके लिये यहां कहते हैं उन्माद  
आदि दोषोंको न कहकर दोषयुक्त कन्याको जो वरके लिये देता है उसपर राजा  
आप आदरसे छ्यानवे पण दंड करे पछतावेके प्रसंगसे यह कन्याके मध्ये कहा ॥ २४ ॥

अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्वेषेण मानवः ॥ सं शतं प्राप्नुयाद्दण्डं  
तस्या दोषमदर्शयन् ॥ २५ ॥ पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्र-  
तिष्ठिताः ॥ नाकन्यासु कचिन्नृणां लुप्तधर्मक्रिया हि ताः ॥ २६ ॥

टीका—यह कन्या नहीं है क्षतयोनि है ऐसे जो मनुष्य द्वेषसे कहे वह उसके  
दोषको न प्रकटकर सकै तौ सौपण प्रमाण राजके दंडको प्राप्त होय ॥ २५ ॥ “अर्य-  
मणं देवं कन्या अग्रिमयक्षत” इत्यादिमनुष्योंकी विवाहके मंत्रकन्या शब्दके श्रवणसे  
कन्याओंमें व्यवस्थित हैं अकन्याके विषयमें भिन्नार्थ होनेसे शास्त्रमें कही  
नहीं धर्मविवाहकी सिद्धिके लिये व्यवस्थित है इसीसे कहते हैं कि विवाहके  
मंत्रोंसे सत्कारकी गई भी वे क्षतयोनिस्त्रीयां धर्मविवाह आदि की क्रिया जिनकी  
दूर हुई है ऐसी होती हैं इसका अर्थ यह है कि यह धर्मविवाह नहीं है यह  
क्षतयोनिका विवाहके मंत्रोंसे होम आदिका निषेध करनेवाला नहीं है “या गर्भिणी  
संस्क्रियते” और “वोढः कन्यासमुद्भवम्” यह आगे मनुजीनेही क्षतयोनिकाभी  
विवाह संस्कार कहा है और देवलने तौ गांधर्वविवाहोंमें कहा है कि “पुनर्वैवाहिको  
विधिः” अर्थात् यह पुनर्विवाहकी विधि है तथा “कर्त्तव्यश्च त्रिभिर्वर्णैस्समयेनाग्निसाक्षिकः”  
इति ॥ अर्थ ॥ तीनविर्णोंको समय पाकै अग्निसाक्षी देकर करना चाहिये  
गांधर्व विवाहोंमें होम मंत्र आदिकी विधि कही है और गांधर्व तौ उपगमन  
पूर्वकभी होता है उसका क्षत्रियोंमें धर्मपन मनुने कहा है इस कारण सामान्य  
विशेषके न्यायसे यह इतर विषय कहे क्षतयोनिके विवाहको अधर्म कहिये  
धर्मसे बाहर कहा ॥ २६ ॥

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥ तेषां निष्ठा तु विज्ञेया



विर्द्धद्भिः संसमे पदे ॥ २७ ॥ यस्मिन्यस्मिन्कृते कार्ये यस्येहानु-  
नुर्ज्ञयोभवेत् ॥ तमनेन विधानेन धर्म्ये पंथि निवेशयेत् ॥ २८ ॥

टीका-विवाहके मंत्र निश्चय भार्यात्व कहिये स्त्रीपनके कारणहैं क्योंकि शास्त्रके अनुसार प्रयोग किये गये उन मंत्रोंसे भार्यात्व सिद्ध होताहै उन मंत्रोंसे “सखा सप्तपदीभव” इस मंत्रसे कन्याको सातमें पांवके रखनेपर भार्यात्वकी सिद्धिकी शास्त्रकें जाननेवालोंको समाप्ति जाननी चाहिये और सातमा पांव रखनेके पहले भार्यात्वकी सिद्धि नहीं है पश्चात्ताप होनेपर छोड़दैं पीछे नहीं ॥ २७ ॥ केवल खरीदने बेचनेहीमें नहीं किंतु अन्यत्र भी संविद्वेतनादि कामोंमें जिसको पश्चात्ताप होय वह इस दशदिनकी विधिसे राजा धर्मयुक्त मार्गमें चलावै ॥ २८ ॥

पशुषु स्वामिनां चैवं पालानां च व्यतिक्रमे ॥ विवादं संप्रवक्ष्यामि  
यथावद्धर्मतत्त्वतः ॥ २९ ॥ दिवां वर्त्तव्यतां पाले रात्रौ स्वामिनि  
तद्गृहे ॥ योगक्षेमेऽन्यथा चेतुं पालो वर्त्तव्यतामियात् ॥ २३० ॥

टीका-गौ आदि पशुओंमें स्वामीका और चरानेवालेके व्यतिक्रम होनेपर विवाद कहिये झगडेको धर्मके तत्त्वसे यथार्थ कहैंगा ॥ २९ ॥ दिनमें पशु पालनेवालेको सौपे हुए पशुओंसे जो खेती आदिमें जो कुछ उपद्रव होजाय तौ पालनेवालेकी बुराई है और रातिमें चरवाहेकें लौटाय देनेसे स्वामीके घरमें बंधे हुए पशुओंमेंसे जो कोई निकल कर कुछ उपद्रव करै तौ स्वामीका दोष है और जो दिनराति चरानेवालेके पास रहते होय तौ उसीकी बुराई होगी ॥ २३० ॥

गोपैः क्षीरभृतो यस्तु स दुह्यां दर्शतो वराम् ॥ गोस्वाम्यनुमते भृत्यः  
सां स्यात्पांलेऽभृतो भृतिः ॥ ३१ ॥ नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं  
विषमे भृतम् ॥ हीनं पुरुषकारेण प्रदद्यात्पांल एव तु ॥ ३२ ॥

टीका-जो गोपाल कहिये अहीर केवल दूधपर नौकर होय भोजन आदिसे कुछ काम नहीं वह स्वामीकी आज्ञासे दश गौ ओंमेंसे श्रेष्ठ एक गौको अपनी नौकरीके मध्ये दुहि लेंवै यह भोजन आदि रहित गौ पालनेवालेकी नौकरी हुई अर्थात् एक गौका दूध देनेसे दस गौओंको पालें ॥ ३१ ॥ नष्ट कहिये दृष्टिसे बाहर हुएको और कीड़ों करि नाश किये हुएको और कुत्तों करि खाए हुएको और गढिल्ले आदिमें गिरिकर मरे हुएको जो पालने वालेका कोई मनुष्य न होय तौ मरे और भागे हुए गौ आदि पशुको पालनेवालाही स्वामीको देवै ॥ ३२ ॥



विधुष्य तु हतं चौरैर्न पालो दातुर्महति॥यदि देशे च काले च  
स्वामिनः स्वस्य शंसति ॥ ३३ ॥ कर्णौ चर्म च वालांश्च बस्ति  
स्नायुं च रोचनाम्॥पशुषु स्वामिनां दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् ३४

टीका—जो थोड़ीही दूर लेजानेके पीछेही पालनेवाला अपने प्रभूके स्वामीसे कहि देवैतौ ढोल आदिसे शब्द करिकै चोरों करि हरे गये पशुको पालनेवाला स्वामीको न देवै विधुष्य कहिये 'ढोल आदि वजायकै इसके कहनेसे चोरोंकी बहुतायत और प्रबलताजानी जाती है ॥ ३३ ॥ पशुओंके आपसे मरनेपर पालने वाला कान चाम पुंछ वाल नाभिके नीचेका भाग नसैं और रोचना स्वामीयोंको देवैं और भी मुख्य चिन्ह सींग खुर आदि दिखावै ॥ ३४ ॥

अंजाविके तु संरुद्धे वृकैः पाले त्वनायति॥यां प्रसंद्वा वृको हन्या  
त्पाले तत्किंलिषं भवेत् ॥ ३५ ॥ तांसां चेद्वरुद्धानां चरन्तीनां  
मिथो वने॥ यामुत्पुत्य वृको हन्यान् पालस्तत्र किं लिषी ॥ ३६ ॥

टीका—भेडबकरियोंको भेडियोंके घेरनेपर पालनेवाले न आवै तौ जिस एक भेड अथवा बकरीको वनमें भेडिया मारै वह पालनेवालेका दोष होता है ॥-३५ ॥ पालनेवाले करि रोकी हुई और वनमें इकट्ठी होकै चरती हुई भेड बकरियोंमेंसे जो कोई भेडिया कही उछल कर गुप्त हो जिस किसी भेड वा बकरीको मारै वहां पालकको दोष नहीं होताहै ॥ ३६ ॥

धनुः शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः ॥ शम्यापातास्त्रयो  
वार्षि त्रिगुणो नगरस्य तु ॥ ३७ ॥ तत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः  
पशवो यदि ॥ न तत्र प्रणयेदण्डं नृपतिः पशुरक्षिणाम् ॥ ३८ ॥

टीका—चारि हाथका एक धनुष्य होताहै शम्या लाठीको कहते हैं उसका पात गिरना ग्रामके समीप सब दिशा ओमें चार सौ हाथ अथवा तीनि लाठीकी नापतक पशुओंके चरनेके लिये अन्न बोने आदिसे रोकवेका त्याग करनेयोग्यहै और फिरि नगरके समीप यह तिगुणा करना चाहिये ॥ ३७ ॥ उस त्यागके स्थानमें जो कोई आवृत्ति अर्थात् खाई आदिसे घेरिकै धान्यको बोवै और उसको जो पशु खाजाय तौ वहां राजा पशुपालोंको दंड न देवै ॥ ३८ ॥

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुद्गो न विलोकयेत् ॥ छिद्रं च वारयेत्सर्वं



श्वसूकरमुखानुगम् ॥ ३९ ॥ पथि क्षेत्रे परिवृते ग्रामान्तीयेऽथवा  
पुनः ॥ स पाँलः शतदण्डाहो विपाँलांश्चरयेत्पशून् ॥ २४० ॥

टीका—उस परिहारके स्थानमें खेतके चारो ओर कांटे आदिकोंसे ऐसी ऊंची  
वृत्ति बनावै कि जिसको बाह्यसे ऊँट न देखिसकै और उसमें जो कुत्ता वा-  
शूकरके मुखके जानेके योग्य छिद्र होय उन सबोंको बंद कर देवै ॥ ३९ ॥ मार्ग-  
के समीप अथवा ग्रामके समीप अथवा कंटक आदिसे घेरे हुए परिहार (बचा-  
वमें) स्थित खेतको पालसमेत पशुपाल करि नही रोके हुए द्वार आदिसे कैसे  
हू धसिकै खाय तौ सौपण दंड देना चाहिये पशुके दंडका असंभवहै तितसे पाल-  
हीको दंड देना चाहिये और पालके विनाही खानेको प्रवृत्त पशुओंको खेत  
रखानेवाला हांकि देवै ॥ २४० ॥

क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः संपादं पर्णमर्हति ॥ सर्वत्र तु संधो देयः क्षेत्रि  
कस्येति धारणा ॥ ४१ ॥ अनिर्दशां गां सूतां वृषान्देवर्षशून्स्त  
था ॥ सपाँलान्वा विपाँलान्वा न दण्ड्यान्मनुरब्रवीत् ॥ ४२ ॥

टीका—मार्ग और ग्रामके खेतोंसे अन्य खेतोंको खाता हुआ पशु सवापण  
दंडके योग्यहै यहां भी पालनेवालाही दंड देना योग्यहै सब खेतोंमें पशुके खाये  
हुएका फल क्षेत्रके स्वामीके लिये पाल अथवा पशुका स्वामी अपराधके अनु-  
सार देवै यह निश्चय है ॥ ४१ ॥ दशदिनके भीतरकी व्याई हुई गौ तथा चक्र शूल  
से अंकित छोडा हुआ बैल और देवता संबंधी पशु चाहै पालसहित होय चाहै  
पाल रहित होय खेतखाते होय तौ मनुने उनको अदंड्य कहाहै छोडे हुए बैलोंको  
गौओंके गर्भके लिये गोकुलमें पाल रखते हैं इसलिये पालका संबंधहै ॥ ४२ ॥

क्षेत्रियस्यार्त्यये दण्डो भौगादृशगुणो भवेत् ॥ ततोऽर्धदण्डो भू-  
त्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु ॥ ४३ ॥ एतद्विधानमतिष्ठेद्दार्मिकः  
पृथिवीपतिः ॥ स्वामिनां च पशूनां च पालानां च व्यतिक्रमे ॥ ४४ ॥

टीका—खेत जोतनेवालेका निज बैल जो खेतखाय जाय अथवा वीनेके समय  
न बोया जाय इन अपराधोंके होनेपर जिस राजाके भागकी हानि उस्से होय  
उस्से दशगुणा दंड उसपर होना चाहिये और जो खेतवालेके विना जाने  
उसके नौकरोंसे उक्त अपराध होजाय तौ खेतवालेही पर दश गुनेका आधा दंड  
होना चाहिये ॥ ४३ ॥ स्वामीके और पालोंके रक्षाके अपराधसे पशुओंके खेत खाने-



रूप व्यतिक्रम होनेपर धर्म प्रधान राजा यह पहले कहा हुआ काम करे ॥ ४४ ॥

सीमां प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः॥ ज्येष्ठे मासि नयेत्सीमां  
सुप्रकांशेषु सेतुषु ॥ ४५ ॥ सीमां वृक्षांश्च कुर्वीत न्यग्रोधाश्च तथ  
किंशुकान् ॥ शालमलीन्सालतालान्श्च क्षीरिणश्चैव पार्दपान् ॥ ४६ ॥

टीका—दो ग्रामोंकी सीमाके मध्ये झगडा उत्पन्न होनेपर ज्येष्ठके महीनेमें सूर्यके तापसे तृणोंके सूखि जानेसे सीमाके चिन्होंके प्रकट होनेपर राजा सीमाका निश्चय करे ॥ ४५ ॥ बड पीपल ढाक सेमल शाल ताल और दूधवाले वृक्ष कों बहुतकालतक रहनेके कारण सीमाके चिन्हके लिये लगावे ॥ ४६ ॥

गुल्मान्वेषूंश्च विविधान्छमीवृल्लीस्थलानि च ॥ शूरान्कुब्जकंगु-  
ल्मान्श्च तथा सीमां न नश्यति ॥ ४७ ॥ तडागान्युदपानानि वाप्यः  
प्रस्रवणानि च ॥ सीमासंधिषु कार्याणि देवतायतनानि च ॥ ४८ ॥

टीका—गुल्मोंको जिनमे शाखा नही निकलती हैं और वासोंको और बहुत कांटे तथा थोडे कांटे आदिके भेदसे नानाप्रकारके सीमा वृक्षोंको और लताओं को लगावे और स्थल कहिये ऊंचेबनाये हुए भूमिके भागोंको और शरपतोंको और छोटे गुल्मोंको सीमाके चिन्ह करै ऐसा करनेपर सीमा नष्ट नही होती है ॥ ४७ ॥ तलाव कुवा बावडी जलनिकलनेके मार्ग देवताओंके मंदिर शिवालय आदिको दो ग्रामोंकी संधिके स्थानमें बनवावे सीमाके निर्णयके लिये लोकमें प्रसिद्ध करिकै बनवाये हुए इन तलाव आदिकोंमें जलपीनेवालेभी सुननेकी परंपरासे बहुतकालतक साक्षी रहते हैं ॥ ४८ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमांलिङ्गानि कारयेत् ॥ सीमाज्ञाने वृणां  
वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ॥ ४९ ॥ अश्मनोऽस्थीनि गोवा-  
लांस्तुषान्भस्म कपालिकाः ॥ करीषमिष्टकाङ्गाराश्चैकरा वा-  
लुकास्तथा ॥ ५० ॥ यानि चैवंप्रकाराणि कालाद्रूर्मिर्न भक्ष  
येत् ॥ तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् ॥ ५१ ॥

टीका—इस लोकमें सीमा निर्णयके मध्ये सदा मनुष्योंको भ्रमसे सीमाका ज्ञान होताहै इस बातको देखि कहे हुएसे भिन्न गूढ जिनको आगे कहेंगे ऐसे सीमाके चिन्होंको करावे ॥ ४९ ॥ पत्थर हड्डी गौके बाल धानकी भूसि कपाल करस ईंट



अंगारे ठीकरियां बालू तथा औरभी इसी प्रकारकी वस्तु काला अंजन विनौ ला आदि जिनको बहुत दिनोंमेंभी भूमि अपने रूपमें नमिला लेवै उनको ग्रामकी सीधियोंमें सीमाके मध्यमें डालकर घडोमें भरकै सीमाओंके अंतमें रखि देवै इस बृहस्पतिके वचनसे बड़े पत्थरोंको छोड़कै घडोमें भरकै गुप्त भूमिमें गाडि देवै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

एतैलिङ्गैर्न येत्सीमां राजा विवदमानयोः ॥

पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च ॥ ५२ ॥

टीका—झगडा करनेवाले ग्रामोंकी सीमाका पहले कहे हुए इन चिन्होंसे राजा निर्णय करै और बसनेवालोंकी सीमाका अविच्छिन्न कहिये बराबर चले आये भोग ( कब्जे ) से निर्णय होताहै तीनि पुरुष आदिके भोगसे नहीं क्योंकि तस्याधिः सीमा यह पर्युदासहै और दो ग्रामोंके बीचमें स्थित नदी आदिके प्रवाहसे इसपार उसपारके ग्रामोंकी सीमाका निश्चय करै ॥ ५२ ॥

यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने ॥ साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः ॥ ५३ ॥ ग्रामीयककुलानां च समक्षं सीमि साक्षिणः ॥ प्रष्टव्याः सीमल्लिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः ॥ ५४ ॥

टीका—जो गुप्त और प्रकट चिन्होंके देखनेसेभी निर्णय न होय अर्थात् किसीने छुपे हुए कोयले भूसी आदिके ये घडे लेकर दूसरे स्थानमें गाडि दिये हैं और यह बड़ सीमाका वृक्ष नहीं है वह नष्ट हो गया इत्यादि संदेह जो होय तौ साक्षियोंसे सीमा विवादका निर्णय होवै ॥ ५३ ॥ ग्रामके मनुष्योंके समूहमेंसे दोनों ग्रामके नियत किये हुए मनुष्यों और वादी प्रतिवादियोंके सामने सीमाके मध्ये सीमाके चिन्होंमें संदेह होनेपर साक्षियोंसे चिन्ह पूछने चाहिये ॥ ५४ ॥

तेष्टृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीमि निश्चयम् ॥ निर्वधीयात्तथा सीमां सर्वास्तांश्चैव नामतः ॥ ५५ ॥ शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वी स्रग्विणो रक्तवाससः ॥ सुकृतैः शांपिताः स्वैः स्वैर्नयेयुस्ते ॥ समञ्जसम् ५६

टीका—पूछे गये वे सब साक्षी सीमाके मध्ये जिस भांति निर्णय करैं उसी प्रकारसे न भूलनेके लिये सीमाको पत्रमें लिखै और उन सब साक्षियोंके नाम लिखै ॥ ५५ ॥ लाल फूलोंकी मालाको धारण किये हुए और लालही वस्त्रोंको पहिरे हुए और माथेपर मट्टी ककरोंको रखकै जो हमारा सुकृतहै वह निष्फल होय ऐसे अपने सुकृतों करि शाप दिये गये वे शक्तिके अनुसार सीमाका निर्णय करै ॥ ५६ ॥



( २७८ )

मनुस्मृतौ

यथोक्तेन नयन्तस्ते पूर्यन्ते सत्यसाक्षिणः ॥ विपरीतं नयन्तस्तु  
दांप्याः स्युर्द्विशतं दमम् ॥ ५७ ॥ साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः  
सामन्तवासिनः ॥ सीमाविनिर्णयं कुर्युः प्रयत्ना राजसन्निधौ ॥ ५८ ॥

टीका—सत्यहै प्रधान जिनके ऐसे वे साक्षी शास्त्रमें कहे हुए विधानसे निर्णय करते हुए पापरहित होते हैं और झूठसे निश्चय करते हुए प्रत्येक सौ पण दंड देनेयोग्य होते हैं ॥ ५७ ॥ दोग्रामोंकी सीमाके विवादमें साक्षी न होनेपर चारो औरोंके निकट बसनेवाले चारि औरके चारि ग्राम साक्षियोंके धर्मसे राजाके आगे सीमाका निर्णय करें ॥ ५८ ॥

सामन्तानामभावे तु मौलानां सीमां साक्षिणाम् ॥ इमानप्यनुर्यु-  
ज्जीत पुरुषान्वर्नगोचरान् ॥ ५९ ॥ व्याधाच्छाकुनिकान्गोपान्कै-  
र्वर्तान्मूलखानकान् ॥ व्यालग्रहानुच्छवृत्तिनन्यांश्च वर्नचारिणः ॥ ६० ॥

टीका—साक्षि धर्मसे राजाके सामने और पासके चारि ग्रामोंके बसने वाले विश्वासयुक्त और ग्राम बसनेके लगकै पुरखोंके क्रमसे उसग्रामके रहने वाले ऐसे सीमाके साक्षियोंके न होनेपर जो आगे कहे जायगे ऐसे निकट वर्तमान बनके फिरनेवाले मनुष्योंसे पूछे ॥ ५९ ॥ बहेलियोंसे अहीरोंसे धीवरोंसे कंजरोसे सांप पकडनेवालोंसे शिलोछ वृत्तिवालोंसे तथा औरभी फल फूल ईधनके लिये बनके व्यवहारियोंसे पूछे ये तौ अपने प्रयोजनके लिये उस ग्रामसे सदा बनको जाने हुए उस ग्रामकी सीमाके जाननेवाले होते हैं ॥ ६० ॥

ते पृष्ठास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् ॥ तत्तथा स्थोपयेद्वा  
जा धर्मेण ग्रामयोर्द्वयोः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य  
गृहस्य च ॥ सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमासेतुविनिर्णयः ॥ ६२ ॥

टीका—पूछे गये वे व्याध आदि सीमारूप ग्रामकी संधियोंमें जिस प्रकारसे चिन्ह कहै उसी प्रकारसे राजा दोनो ग्रामोंकी सीमाको स्थापित करै ॥ ६१ ॥ एक ग्राममेंभी खेत कुआ तलाव बाग और घरोंकी सीमाके झगडेमें और पासके ग्रामोंके बसनेवाले साक्षियोंके प्रमाणसेही मर्यादाके चिन्होंका निश्चय जानना चाहिये व्याध आदिकोंके प्रमाणसे नहीं ॥ ६२ ॥

सामन्ताश्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् ॥ सर्वे पृथक्पृथग्द-



ण्डं च राज्ञा मध्यमसाहसम् ॥ ६३ ॥ गृहं तडागमौरामं क्षेत्रं वा भी-  
षया हरन् ॥ शतानि पञ्च दण्डयः स्यादज्ञानाद्विशतो दमः ॥ ६४ ॥

टीका-सीमाके चिन्होंके लिये झगडनेवाले मनुष्योंके और पास देशके वसनेवाले जो झूठ कहें तौ वे सब प्रत्येक राजा करि मध्यम साहसका दण्ड देनेयोग्य है ऐसे ही जो और पासके नहीं है उनकों पहले कहा हुआ दोसौ पण दण्ड देना चाहिये ॥ ६३ ॥ घर तलाव बाग खेत इनमेंसे किसीको मारना बांधना आदि भय दिखा दवा करि ले लेवै तौ पांचसौ दंड करनेयोग्य होय और जो अपनेके भ्रमसे ले लेतौ उसपर दोसौ दंड किया जाय ॥ ६४ ॥

सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैर्व धर्मवित् ॥ प्रदिशेद्भूमिमेतेषामुप-  
कारादि ति स्थितिः ॥ ६५ ॥ एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमावि-  
निर्णये ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् ॥ ६६ ॥

टीका-चिन्ह तथा साक्षी आदिके न होनेसे सीमाका प्रमाण न हो सकनेपर धर्मज्ञ राजा पक्षपात रहित हो दो ग्रामोंके बीचमें स्थित झगडेकी भूमिको जिन ग्रामके वसनेवालोंका अधिक उपकार होता होय उसके विना निर्वाह न होता होय उन्हीके देवै यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ६५ ॥ यह सीमाके निश्चयका धर्म संपूर्ण कहा इसके उपरांत वाक्पारुष्य कहौंगा दंडपारुष्यसे पहले वाक्पारुष्य होती है इससे पहले कही ॥ ६६ ॥

शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ॥ वैश्योऽप्यर्धशतं द्वे वा  
शूद्रस्तु वर्धमर्हति ॥ ६७ ॥ पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्डयः क्षत्रियस्या-  
भिशांसने ॥ वैश्ये स्यादर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥ ६८ ॥

टीका-यह चोर है ऐसे ब्राह्मणके आक्षेपरूप वचन कहिकै क्षत्रिय सौपण दंडके योग्य होताहै ऐसे डेढ सौ अथवा दोसौ कार्यका हलकापन तथा भारीपनकी अपेक्षा-से वैश्य शूद्रभी ऐसेही ब्राह्मणकी बुराई करनेसे ताडनादि रूप वधके योग्य होताहै ॥ ६७ ॥ ब्राह्मण जो पहले कहा हुआ आक्षेप क्षत्रियका करै तौ पचास पण दंडके योग्यहै और वैश्य तथा शूद्रका जो कहा हुआ आक्षेप करै तो ब्राह्मण पच्चीस और बारह पण क्रमसे दंड करने योग्य होय ॥ ६८ ॥

समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे ॥ वांदिष्ववचनीयेषु तदेव



द्विगुणं भवेत् ॥ ६९ ॥ एकजातिर्द्विजातीस्तु वाचा दारुणया क्षिपे-  
न् ॥ जिह्वायाः प्रांमुयाच्छेदं जघन्यप्रभवो हिंसः ॥ २७० ॥

टीका—द्विजातियोंकी बराबरकी जातिमें कहे हुए आक्षेपके होनेपर बारह पण दंडहै और नहीं कहनेयोग्य बुरे वचनोंमें तथा भाई बहिनि आदिकी गाली देनेमें वही पहले कहे हुए सौपणका दूना अर्थात् दोसौ पण दंड होताहै ॥ ६९ ॥ शूद्र द्विजातियोंको पातक लगानेवाली वाणीसे गाली देकर जीभ काटनेके योग्य होताहै जिस्से पाद नाम निकृष्ट अंगसे उत्पन्नहै ॥ २७० ॥

नामजातिग्रहं त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः ॥ निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कु-  
कुर्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः ॥ ७१ ॥ धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य  
कुर्वतः ॥ तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ॥ ७२ ॥

टीका—अभिद्रोह आक्रोशका कहते हैं ब्राह्मण आदिकोंका जैसे अरे यज्ञदत्त तू ब्राह्मणोंमें नीचहै इत्यादिक आक्रोशसे नाम तथा जातिके ग्रहण करनेवा-  
लेके मुखमें अग्निसे तपी हुआ दशअंगुलकी लोहेकी कील डालनेयोग्य है ॥ ७१ ॥ कैसे हू धर्मके लेशको जानकै तुमको यह धर्म करना चाहिये ऐसे अहंकारसे ब्राह्मणको उपदेश करने वाले शूद्रके मुखमें और कानोंमें जलता हुआ तेल राजा डलवावै ॥ ७२ ॥

श्रुतं देशं च जातिं च कर्म शरीरमेव च ॥ वितथेन ब्रुवन्दर्पादा-  
प्यैः स्याद्विशतं दर्भम् ॥ ७३ ॥ काणं वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापित-  
थाविधम् ॥ तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणावरम् ॥ ७४ ॥

टीका—दंडकी लघुतासे यह समान जानि विषय कहै शूद्र करि किये हुए द्वि-  
जातिके आक्षेप विषयक नहीं है ॥ तुमने यह नहीं सुनाहै तुम इस देशमें नहीं  
उत्पन्न हुए हो तुम्हारी यह जाति नहीं है और तुम्हारे शरीरका संस्कार यज्ञो-  
पवीत आदिकर्म नहीं किया गयाहै ऐसे अहंकारसे मिथ्या कहता हुआ दोसौ  
पण दंड देनेयोग्य होताहै ॥ ७३ ॥ कानेको पंगेओ तथा औरभी ऐसे हाथ आदि  
अंग हीनको सत्यबी काने आदि शब्दसे कहता हुआ बहुतही थोडा अर्थात् एक का-  
र्षापण दंडके योग्य होताहै ॥ ७४ ॥

मातरं पितरं जायां भ्रातरं तनयं गुरुम् ॥ आक्षारयच्छतं दारप्यैः



पन्थानं चाददद्गुरोः ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां तु दण्डः कार्यो  
विज्ञानता ॥ ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेवं मध्यमः ॥ ७६ ॥

टीका—माता पिता स्त्री भाई पुत्र गुरु इनको पातक आदि लगानेवाले और गुरुको न मार्ग देनेवालेपर सौ पण दंड करना चाहिये ॥ ७५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रियों करि आपसमें जा जातिसे पतित होनेयोग्य पातक लगानेपर दंड शास्त्रके जाननेवाले राजा करि दंड करनेयोग्य है दंडहीको विशेष करि कहते है क्षत्रियको पातक लगानेवाले ब्राह्मणपर प्रथम साहस और ब्राह्मणको पातक लगानेवाले क्षत्रियपर मध्यम साहस दंड करना चाहिये ॥ ७६ ॥

विदूशूद्रयोरेवमेवं स्वजातिं प्रति तत्त्वतः ॥ छेदवर्जं प्रणयनं दण्ड  
स्येति विनिश्चयः ॥ ७७ ॥ एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य  
तत्त्वतः ॥ अत उर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् ॥ ७८ ॥

टीका—वैश्य तथा शूद्रोंकी जातिमें आपसमें जातिसे पतित होनेके योग्य पातक लगानेपर ब्राह्मण क्षत्रियके समान शूद्रको पातक लगानेवाले वैश्यपर प्रथम साहस और वैश्यको पातक लगानेवाले शूद्रपर मध्यम साहस ऐसे जीभ काटनेके विना तथा योग्य दंड करना चाहिये वह शास्त्रका निश्चय है ॥ ७७ ॥ यह पीछे कही हुई वाक्पारुष्यके दंडकी विधि यथावत् कहिये ठीक ठीक कही अब इसके उपरांत ताडन आदि दंड पारुष्यके निर्णयको कहोंगा ॥ ७८ ॥

येन केनचिद्द्वेन हिंस्याच्चेच्छेष्टमन्त्यजः ॥ छेत्तव्यं तत्तदेवांस्य  
तन्मनोरनुशासनम् ॥ ७९ ॥ पाणिमुर्धम्य दण्डं वा पाणिच्छेद-  
नमर्हति ॥ पादेन प्रहरन्कोपात्पादं च्छेदनमर्हति ॥ २८० ॥

टीका—अंत्यज शूद्र जिस किसी हाथ पांव आदि अंगसे साक्षात् अथवा छु-  
पिकै द्विजातिपर प्रहार करै वही इसका अंग काटना चाहिये यह मनुका उपदेश है मनुका ग्रहण आदरके लिये है ॥ ७९ ॥ मारनेके लिये हाथको अथवा दंडको उठाके हाथ काटनेको प्राप्त होताहै और कुपित हो लातसे मारता हुआ पांवके काट-  
नेरूप दंडको प्राप्त होताहै ॥ २८० ॥

सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः ॥ कर्त्या कृताङ्गो निर्वा-  
स्यः स्फिचं वास्यावकर्तयेत् ॥ ८१ ॥ अवनिष्ठीवतो दर्पाद्वावो-  
ष्ठौ छेदयेत्तृपः ॥ अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्षयतो गुदम् ॥ ८२ ॥



टीका-ब्राह्मणके आसनपर बैठा हुआ शूद्र कटिमें तपाये हुए लोहसे चिन्ह करिके देशसे निकालने योग्य है अथवा जैसे यह मरै नहीं ऐसे इसके स्फिच अर्थात् कटिके मांसपिंडको कटवाय देवै ॥ ८१ ॥ गर्वसे कफको थूक करि ब्राह्मणका अपमान करनेवाले शूद्रके राजा दोनो ओठ कटवाय देवै और मूत्र डालनेसे अपमान करनेवालेका लिंग कटवाय देवै और पादनेसे अपमान करनेवालेकी गुदाको कटवाय देवै ॥ ८२ ॥

केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेद्विचारयन् ॥ पाँदयोर्दाढिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च ॥ ८३ ॥ त्वग्भेदकः शतं दण्डयो लोहितस्य च दर्शकः ॥ मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः ॥ ८४ ॥

टीका-अहंकारसे ब्राह्मणके बाल पकड़नेवाले शूद्रके इसको पीडाहोगी अथवा न होगी इसका विचार न करता हुआ राजा दोनो हाथोंको कटवाय देवै और मारनेके लिये पाँव डाढी गरदन और अंडकोशोंके पकड़नेवालेके दोनोही हाथोंको कटवाय देवै ॥ ८३ ॥ जो समान जातिकी त्वचा मात्रका भेदन करै तो सो पण दंड करनेयोग्य है और रक्त निकालनेवालाभी सौपण दंडके योग्य है और मांसका भेदन करनेवाला छः निष्क दंड करनेयोग्य है और हाडका भेदन करनेवाला तो देशसे निकालने योग्य है ॥ ८४ ॥

वनस्पतीनां सर्वेषामुपभोगं यथायथा ॥ तथातथा दमः कांर्यो हिंसायामिति धारणा ॥ ८५ ॥ मनुष्याणां पशूनां च दुःखाय प्रहृते सति ॥ यथायथा महदुःखं दण्डं कुर्यात्तथातथा ॥ ८६ ॥

टीका-वृक्ष आदि सब उद्भिदोंका उपभोग जिस जिस प्रकारसे फल पुष्प पत्र आदिसे उत्तम मध्यम अधम रूपसे होता है वैसेही हिंसामेंभी उत्तम साहस आदि दंड करना चाहिये यह निश्चय है ॥ ८५ ॥ मनुष्योंके तथा पशुओंके पीडा उत्पन्न करानेके लिये जो प्रहार करनेपर जैसी जैसी पीडाकी अधिकता होय वैसा वैसा दंड अधिक करै ऐसे मर्मस्थान आदिमें त्वचाका भेद आदि करनेपर त्वचाका भेदन करनेवाला सौपण दंड करने योग्य है दुःख विशेषकी अपेक्षासे इस हुए दंडसे अधिकभी दंड करने योग्य है ॥ ८६ ॥

अङ्गावपीडनायां च व्रणशोणितयोस्तथा ॥ समुत्थानव्ययं द्रौप्यः सर्वदण्डमथापि वा ॥ ८७ ॥ द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽ



ज्ञानतोऽपि वाँ॥सं तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राँज्ञो दँद्याऽच्च तत्समम्॥८८॥

टीका—हाथ पांव आदि अंगोंकी और व्रण ( घाव ) शोणित कहिये रुधिर की पीडा होनेपर समुत्थान व्यय कहिये जितने समय करि पहली दशाका प्राप्तिरूप समुत्थान होय अर्थात् अच्छा होके पहलासा हो जा कालमें पथ्य औषध आदिसे जितना खरच होय वह उससे दिवाना चाहिये जो उस खरचको पीडाका उत्पन्न करानेवाला न देना चाहै तौ जो उसपर उत्थान व्ययहै और दंडहै उसीको दंडभावसे राजा दिवावै ॥ ८७ ॥ जिनका विशेष दंड नहीं कहाहै ऐसी कडे और तांवेके कडाह आदि वस्तुओंमें जो जिसकी जानकर अथवा विना जाने बिगाड़ै उसका दूसरी वस्तु आदिसे संतोष करावै और नाश किये हुए द्रव्यकी बराबर राजाको दंड देवै ॥ ८८ ॥

चर्मचार्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्टमयेषु च ॥ मूल्यात्पञ्चगुणो दण्डः  
पुष्पमूलफलेषु च ॥ ८९ ॥ यानस्य चैवं यातुश्च यानस्वामिन  
एव च ॥ दंशातिर्वर्तनान्याहुः शेषे दण्डो विधीयते ॥ २९० ॥

टीका—चमड़ेकी वर्त्तन आदिमें और चर्म काठ मट्टी आदिके बने हुए अन्यके बासनोंके नाश करनेपर उनके मोलसे पांच गुणा दंड राजाको देना चाहिये और स्वामीकाभी संतोष करानेही योग्यहै ॥ ८९ ॥ रथ आदि यान कहिये सवारीका और उसके चलानेवाले सारथीका तथा उसके स्वामीका जिसका वह यानहै उनके नाथ कटिजाना आदि दश कारण दंडको उलंघन करि वर्त्तमानहैं अर्थात् इन निमित्तोंके होनेपर प्राणियोंके मारनेमें और द्रव्यके नाश होनेमें स्वामी आदिकोंको दंड नहीं होताहै यह मनु आदि कहते हैं और इनसे भिन्न कारणोंमें दंड होताहै ॥ २९० ॥

छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक्प्रतिमुखागते ॥ अक्षभङ्गे च यानस्य  
चक्रभङ्गे तथैव च ॥ ९१ ॥ छेदने चैवं यन्त्राणां योऽक्ररश्म्यो  
स्तथैव च ॥ अक्रन्दे चाप्यपैहीति न दण्डं मनुर्व्रवीत् ॥ २९२ ॥

टीका—बैलोकी नाथके कटि जानेपर जुआके टूट जानेपर अथवा भूमिके ऊची नीचि होनेसे तिरछा जानेपर और यानकी धूरिके टूटनेपर तथा पहियाके टूटनेपर और चमड़ेके बंधानोंके टूटि जानेपर और जोतोंके तथा पगहियोंके टूट जानेपर और सारथी आदि करि किये हुए हटिजाओ हटिजाओ ऐसे ऊचा



शब्दके होनेपर जो यानसे प्राणीकी हिंसा तथा द्रव्य आदिका नाश होजाय तो सारथी आदिको दंड नहीं है यह मनुजी कहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

यत्रापवर्तते युग्मं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु॥ तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो  
हिंसायां द्विशतं दर्मम् ॥ ९३ ॥ प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्ड्यः  
हति ॥ युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दण्ड्याः शतंशतम् ॥ ९४ ॥

टीका—जहां सारथीके कुशल न होनेसे रथ इधर उधर मार्गको छोड़िके चले और उससे हिंसा होनेपर विना सिखे हुए सारथी रखनेके कारण स्वामीपर दोसौ पण दंड करना चाहिये ॥ ९३ ॥ जो सारथी कुशल होय तों सारथीही कहे हुए दोसौ पण दंडके योग्यहै स्वामी नहीं और सारथी जो कुशल न होय तो उसमें सारथीके स्वामीके सिवाय औरभी यानमें बैठे हुए मनुष्य अकुशल सारथीके यानमें चढ़नेके कारण प्रत्येक सौसौ पण दंडके योग्यहैं ॥ ९४ ॥

सं चेत्तु पथि संरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा ॥ प्रमापयेत्प्राणभृतरुतं  
त्र दण्डोऽविचारितः ॥ ९५ ॥ मनुष्यमारणे क्षिप्तं चौरवर्तिकलिष  
षं भवेत् ॥ प्राणभृत्सु महत्स्वर्धं गोर्गजोऽहयादिषु ॥ ९६ ॥

टीका—जो वह सारथी सामनेसे आती हुए बहुत सी गौओं करि अथवा दूसरे रथ करि रोका हुआ अपने रथके चलनेकी असावधानीसे पीछेको न हटा सके और सकड़े मार्गमें अपने रथके घोड़ोंको हांकता हुआ चले और जो घोड़ोंसे अथवा रथसे अथवा रथके अंग पहिया आदिकोंसे प्राणियोंको मारे तो वहांभी विचारा हुआ दंड करना चाहिये ॥ ९५ ॥ सारथीकी असावधानीके कारण रथ आदि यानसे मनुष्यको मर जानेपर शीघ्रही चोरका दंड उत्तम साहस होताहै और गौ गज जादि बड़े प्राणियोंके मारनेपर उत्तम साहसका आधा पांचसौ पण दंड होता है ॥ ९६ ॥

क्षुद्रकाणां पशूनां तु हिंसायां द्विशतो दर्मः॥ पञ्चांशत्तु भवेद्दण्डः  
शुभेषु मृगपक्षिषु ॥ ९७ ॥ गर्दभाजाविकानां तु दण्डः स्यात्प-  
ञ्चमाधिकः ॥ माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वसूकरनिपातने ॥ ९८ ॥

टीका—जिनकी जाति विशेष कही है उनसे अन्य वनमें विचरनेवाले छोटे पशुओंके मारनेमें और किशोर आदि पक्षियोंके मारनेमें दोसौ पण दंड होताहै और रुरु पृषत आदि शुभ मृगोंके तथा और शुक हंस सारस आदि पक्षियोंके मारने-



पर पांच सौ पण दंड होता है ॥ ९७ ॥ गधा बकरा और भेड़के मारनेमें पांच रूपेके माष प्रमाण दंड होता है यहां सोनेके मासेका ग्रहण नहीं है क्योंकि आगे आगे लघु कहिये हलके दंडका कथन है और कुत्ता तथा सुअरके मारनेमें फिर एक रूपेका मासा दंड होता है ॥ ९८ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च प्रेष्यो भ्राता च सोदरः ॥ प्राप्तापराधास्तौड्याः  
स्यै रज्ज्वा वेणुदलेन वा ॥ ९९ ॥ पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे  
कथंचन ॥ अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् ॥ ३०० ॥

टीका—स्त्री पुत्र दास शिष्य और सगाभाई इनमें जो कोई अपराध करे तौ रस्सीसे अथवा बहुत छोटी हलकी बांसकी लकड़ीसे ताडन करनेयोग्य होते हैं ॥ ९९ ॥ रस्सी आदिसेभी देहके पृष्ठभागमें अर्थात् पीठमें ताडना करने योग्य है शिरमें कभी नहीं कहे हुए प्रकारसे अन्यथा करनेमें वाग्दंड धनदंड ( जुर्माना ) रूप चौरदंडको प्राप्त होय ॥ ३०० ॥

एषोखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः ॥ स्तेनस्यातैः प्रव-  
क्ष्यामि विधिं दण्डविनिर्णये ॥ १ ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां  
निग्रहे नृपैः ॥ स्तेनानां निग्रहार्दस्य यज्ञो रोगं च वर्धते ॥ २ ॥

टीका—यह दंड पारुष्यका निर्णय संपूर्णतासे कहा इसके उपरांत चौर दंडके निर्णयका विधान कहोंगा ॥ १ ॥ चोरोंके दंड देनेमें राजा बड़ा भारी यत्न करे जिसे चोरोंको दंड देनेसे राजाकी ख्याति होती है और उपद्रवरहित होनेसे देशभी बढता है ॥ २ ॥

अभयस्य हि यो दाता स पूज्यः सततं नृपः ॥ संत्रं हि वर्धते  
तस्य सदैवाभयदक्षिणम् ॥ ३ ॥ सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति  
रक्षतः ॥ अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य हरक्षतः ॥ ४ ॥

टीका—चोरोंके दंड देनेसे जो राजा साधुओंको अभय देता है वही सबोंका पूज्य और प्रशंसायोग्य होता है और उसका गवायन आदि सत्र कहिये यज्ञ विशेष जिसकी चोरोंका दंड देना रूप अभयही दक्षिणा है वह सदा बढाता है और निश्चित समय और नियत है दक्षिणा जिसकी ऐसा होता है यह तौ अभय दक्षिणा युक्त सब कालमें होता है ॥ ३ ॥ प्रजाओंकी रक्षा करनेवाले राजाका बनिया आदिसे तथा श्रोत्रिय आदिसे धर्मका छठा भाग होता है और नहीं रक्षा करनेवाले



(२८६)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

को अधर्ममेंसे छठा भाग होताहै तिस्से राजा यज्ञ करिकै चोरोंके दंड देनेसे सबोंकी रक्षा करै ॥ ४ ॥

यदधीते यद्यजते यददाति यदर्चति ॥ तस्य षड्भागभाग्यां  
सम्यग्भवति रक्षणात् ॥ ५ ॥ रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वर्ध्याश्च  
घातयन् ॥ यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः ॥ ६ ॥

टीका—जो कोई जप यज्ञ दान देवताका पूजन आदि करता है उसके छठे भागको राजा भलीभांति पालन करनेसे प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ राजा शास्त्रके अनुसार दंड देनेरूप धर्मसे पालन करता हुआ और चोर आदिकोंको दंड देता हुआ प्रतिदिन लक्ष गौ हैं दक्षिणा जिसकी ऐसे यज्ञसे यजन करताहै अर्थात् उनसे उत्पन्न पुण्यको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः ॥ प्रतिभागं च दण्डं  
च सै संघो नरकं व्रजेत् ॥ ७ ॥ अरक्षितारं राजानं बलिषड्-  
भागहारिणम् ॥ तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् ॥ ८ ॥

टीका—रक्षा न करता हुआ जो राजा बलि कहिये धान्य आदिका छठा भाग आदि और कर कहिये ग्राम तथा पुरके वासियोंसे प्रतिमहीने भादों और घूस आदि महीनोंके नियमसे लेनेयोग्य अथवा शुल्क कहिये जलके मार्गसे अथवा स्थलके मार्गसे वाणिज्य करनेवालोंसे नियत चौकी आदि स्थानोंमें हव्यके अनुसार लेनेयोग्य जो दान (महसूल) के नामसे प्रसिद्धहै और प्रतिभाग कहिये फल फूल शाक और तृण आदि भेंट जो प्रतिदिन लेनेयोग्यहै और दंड कहिये और व्यवहार आदिमें दंड लेताहै वह मरिकै शीघ्रही नरकको जाताहै ॥ ७ ॥ जो राजा रक्षा नहीं करताहै और बलिरूप धान्य आदिके छठे भागको लेताहै उसको सब लोगोंके समस्त पापोंके लेनेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ८ ॥

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुम्पकम् ॥ अरक्षितारमत्तारं नृपं  
विद्यादधोगतिम् ॥ ९ ॥ अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृहीयात्प्रय-  
त्नतः ॥ निरोधनेन बन्धेन विविधेन बंधेन च ॥ ३१० ॥

टीका—शास्त्रकी मर्यादाके न माननेवालेको और परलोकको न मानकर अनुचित दंड आदिसे धन लेकर बड़े हुएको औ रक्षा न करनेवालेको और कर तथा बलि आदिके खानेवाले राजाको नरकगामी जानै ॥ ९ ॥ अधर्मी चोर आ-



दिको अपराधकी अपेक्षासे तीन उपायों करि यत्नसे दंड देवै उनको कहते हैं जेह-  
लखानेमें डाल देनेसे और वेरी आदिके बंधनोंसे और ताडना तथा हाथ पांव आ-  
दिके काटने आदि नानाप्रकारके मारनेसे ॥ ३१० ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ॥ द्विजांतय ईवेज्याभिः  
पूर्यन्ते संततं नृपाः ॥ ११ ॥ क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां का-  
रिणां वृणाम् ॥ बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः ॥ १२ ॥

टीका-पापियोंके दंड देनेसे और साधुओंकी रक्षा करनेसे महायज्ञ आदिकोंसे  
ब्राह्मणोंके समान सबकाल राजा पवित्र होते हैं तिससे अधर्मियोंको दंड दे और सा-  
धुओंपर अनुग्रह करै ॥ ११ ॥ कार्यवाले अर्थात् प्रत्यर्थियोंके आक्षेपसे कहे हुए वच-  
नोंको और बालक वृद्ध तथा रोगियोंके आक्षेपको आगे जो कहा जायगा ऐसे अपने  
उपकारकी इच्छा करनेवाला प्रभु सह लेवै ॥ १२ ॥

यः क्षिप्तो मर्षयत्यात्तेस्तेनै स्वर्गे महीयते ॥ यस्त्वैश्वर्यान्नि  
क्षमते नरकं तेन गच्छति ॥ १३ ॥ राजा स्तेनेन गन्तव्यो मु-  
क्तकेशेन धावता ॥ आर्चक्षणेन तस्तेयमेवंकर्मोस्मै शाधि  
माभू ॥ १४ ॥ स्कन्धेनादायै मुसलं लंगुडं वापि खादिरम् ॥  
शक्तिं चोभयतस्तीक्ष्णामायंसं दण्डमेव वा ॥ १५ ॥

टीका-दुःखितों करि आक्षेप किया गया जो सह लेताहै वह उससे स्वर्गलोकमें  
पूजाको प्राप्त होताहै और जो दर्पसे नही सहताहै वह उससे नरकमें जाताहै ॥ १३ ॥  
यद्यपि “सुवर्णस्तेयकृद्विप्र” इत्यादिसे प्रायश्चित्त प्रकरणमें कहेंगे तिसपरभी सुवर्णके  
चुरानेवाले प्रति इसको राजदंडरूपता, दिखानेके लिये दंड प्रकरणमें पढा ब्राह्मणके  
सुवर्णके चुरानेवाले और बाल खोले हुए वेगसे जाते हुए मैने ब्राह्मणका सुवर्ण चु-  
राया है ऐसे चोरीको कहते हुए पुरुषको खैरका मूसल नाम आयुध अथवा दोनो  
औरसे पैना दंड अथवा लोहेकी शक्तिको कंधेपर रखकै राजाके समीप जाना चाहिये  
तिस पीछे ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला मैं हौं तिससे इस मूसल आदिसे मुझे मारो  
ऐसे राजासे कहना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते ॥

अंशासित्वा तु तं राजा स्तेनं स्याप्रोति किं लिखम् ॥ १६ ॥

टीका-एकवार मूसल आदि मारनेसे प्राण जाते रहै अथवा मरेके समान हुए



(२८८)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

जीवतेको छोटि देनेसे वह चोर उस पापसे छुटि जाताहै और जो राजा करुणा आ-  
दिसे उस चोरको न मारै तौ चोरके पापको होताहै ॥ १६ ॥

अन्नदे भूणहा मूर्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च यौ  
ज्यश्च स्तेनो राजनि किल्बिम् ॥ १७ ॥ राजनिधूतदण्डास्तु कृत्वा  
पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा १८

टीका—जो ब्रह्महत्या करनेवालेके अन्न खानेवालेमें उसका पाप आयजाताहै और  
ऋण जो गर्भहै उसकी हत्या करनेवालेका अन्न जो खाताहै उसको पाप होताहै यह  
यहां कहा गया परंतु ब्रह्महत्यारेका पाप नष्ट नहीं होताहै और व्यभिचार करनेवाली  
स्त्रीके जार पतिको क्षमा करनेवाले पतिको पाप लगताहै और शिष्य संध्या तथा अ-  
ग्निहोत्रादि न करनेसे उत्पन्न पापको सहनेवाले गुरुमें स्थापित करताहै और विधिको  
उल्लंघन करनेवाला यजमान क्षमा करनेवाले याजकमें अपने पापको डारताहै और  
चोर उपेक्षा करनेवाला राजाको अपना पाप देताहै तिसे राजाको चोर दंड देने-  
योग्यहै ॥ १७ ॥ सुवर्णकी चोरी आदिक पापोंको करिके पीछे राजाओं करि दंड  
दिये गये मनुष्य रोकनेवाले पापके न होनेसे पहले किये हुए पुण्यके द्वारा सुकृती  
मनुष्योंके समान स्वर्गको जाते है ऐसे प्रायश्चित्तके समान दंडकोभी पापोंसे शुद्ध क-  
रनेका कारण कहाहै ॥ १८ ॥

यस्तु रज्जुं घटं कूपार्द्धरे द्विधा च यः प्रपाम् ॥ स दण्डं प्राप्तुं यान्मांषं  
तं च तस्मिन्समाहरेत् ॥ १९ ॥ धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽ-  
भ्यधिकं वधः ॥ शेषेऽप्येकादशगुणं द्राप्यस्तस्य च तद्धनम् ३२०

टीका—कुआके समीप पानी भरनेके लिये रक्खे हुए रस्सी और घडेमेंसे जो  
रस्सी अथवा घडेको चुरावै और जो पानी पिलानेके घरको फोडै उसपर सुवर्णका  
एक मासा दंड होना चाहिये और वह उस रस्सी आदिको कुएपर रक्खे ॥ १९ ॥  
दोसो फलका एक द्रोण होताहै और बीस द्रोणका एक कुंभ होताहै ऐसे दश कुंभोंसे  
अधिक धान्य चुरानेवालेका वध कहाहै वह तौ स्वामिकी गुणवत्ताकी अपेक्षासे ता-  
डन अंगोंका काटना और मारना रूप जानना चाहिये और शेषमें फिरि एक कुंभ-  
से लगाकै दश कुंभतकके चुरानेमें चुराए हुए ग्यारह गुणा दंड दिवाना चाहिये  
और चुराया हुआ धान्य स्वामीको दिवावै ॥ ३२० ॥

तथा धैरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः ॥ सुवर्णरजतादीनामु-



तमानां च वाससाम् ॥ २१ ॥ पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेद-  
नमिष्यते ॥ शेषे त्वेकादशगुणं मूल्यादण्डं प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

टीका-जैसे धान्यमें वध कहाहै वैसेही तुलासे प्रमाण करनेयोग्य सुवर्ण रजत आ-  
दिकोंके और उत्कृष्ट कहिये बढिके रेशमी कपडे आदिकोंके सौपलसे अधिक चुरा-  
नेमें वध करनाही चाहिये ॥ २१ ॥ पहले कहे हुए पचाससे सौ तक चुरानेपर मनु  
आदिकोंने हाथ काटना कहाहै और शेषमें एक पलसे लगाकै पचास पल तक चुरा-  
नेमें चुराये हुए धनसे ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ २२ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ॥ मूल्यानां चैव रत्नानां  
हरणे वधमर्हति ॥ २३ ॥ महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य  
च ॥ कालमासाद्य कार्यं च दण्डं राजा प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

टीका-बडे कुलमें उत्पन्न मनुष्योंके और विशेष करि स्त्रियोंके और हीरा वैदूर्य  
आदि श्रेष्ठ मणियोंके चुरानेमें वधके योग्य होताहै ॥ २३ ॥ हाथी घोडा गौ  
भैंस आदि बडे पशुओंके तथा खड्ग आदि शस्त्रोंके और कल्याण घृत आदि  
औषधीके चुरानेवालेको दुर्भिक्ष आदि रूप समय और प्रयोजनको भले बुरे  
काममें लगा हुआ समझि राजा ताडन अंगच्छेदन और वधरूप दंड करे ॥ २४ ॥

गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छुरिकायाश्च भेदेने ॥

पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्योऽर्धपादिकः ॥ २५ ॥

टीका-ब्राह्मणकी गौओंके चुरानेमें और लादनेके लिये बांझ गौके नाथनेमें और  
भेड बकरी आदि पशुओंके चुरानेमें हालही आधा पांव कटि देना चाहिये ॥ २५ ॥

सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च ॥ दध्नः क्षीरस्य त-  
क्रस्य पानीयस्य तृणस्य च ॥ २६ ॥ वेणुवैदलभाण्डानां लव-  
णानां तैथैव च ॥ मृन्मयानां च हरणे मृदो भस्मन एव च ॥ २७ ॥  
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च ॥ मांसस्य मधुन-  
श्चैव यच्चान्यत्पशुसंभवम् ॥ २८ ॥ अन्येषां चैवमादीनां मद्याना-  
मोदनस्य च ॥ पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद्विगुणो दमः ॥ २९ ॥

टीका-सूत कपास और किण्व कहिये सुराबीज गोवर गुड दही दूध मठा



( २९० )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

पानी तृण ॥ और वेणु वैदल कहिये पतले वांसोंके टुकड़ोंसे बने हुए जल भरनेके पात्र आदिकोंका और सब प्रकारके नोन और मिट्टीके बने हुए बासनोके चुरानेमें मिट्टीके तथा भस्मके चुरानेमें ॥ मछलीयों और पक्षियोंके तैल तथा घीके मांसके मधु ( शहत ) के और जो कुछ मृगचर्म गंडके सींग आदिके ऐसेही औरभी असारसी मनसिल आदिके और बारह प्रकारके मद्योंका और भातको छोड़कर पुआ लड्डू आदि पकवानोंको चुरानेमें चुराई हुई वस्तुके मोलसे दूना दंड करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च ॥

अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्चकृष्णलः ॥ ३३० ॥

टीका—फूलोंके और खेतमें लगे हुए हरे धान्योंके और गुल्मलता तथा वृक्षोंके और शुद्ध न किये हुए अन्य धान्योंके जो एक समर्थ पुरुषका भार रहै उनके चुरानेमें देशकाल आदिकी अपेक्षासे सुवर्णकी अथवा रूपेकी पांच रत्ती प्रमाण दंड होताहै ॥ ३३० ॥

परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च ॥ निरन्वये शतं दण्डः  
सान्वयेऽर्धशतं दमः ॥ ३१ ॥ स्यात्साहसं त्वन्वयवत्प्रसभं कर्म  
यत्कृतम् ॥ निरन्वयं भवेत्स्तेयं हत्वापह्नूयते च यत् ॥ ३२ ॥

टीका—साफ किये हुए धान्योंके और शाक मूल तथा फल आदिके चुराने पर अन्वय द्रव्यके स्वामीके संबंधको कहते हैं जिसमें एक गाममें बसने आदिका कुछभी संबंध नहीं है वहां सौ पण दंड करना चाहिये और जहां संबंध है वहां पचासपल दंड करना चाहिये खलिहानमें पड़े हुए धान्योंके चुरानेमें यह दंडहै वहाँ साफ किये जाते हैं और घरमें स्थित धान्योंके चुरानेमें पहले कहा हुआ ग्यारह गुणा दंड देना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो धान्यका ले लेना आदि कर्म द्रव्यके स्वामीके सामने बलसे हरलिया जाता है वह साहस होताहै सह बलको कहते हैं उससे जो होय उसको साहस कहते हैं इससे इसमें चोरीका दंड न करना चाहिये इस लिये इसका चोरीके प्रकरणमें पाठहै और जो स्वामीके पीठि पीछे लिया जाताहै वह चोरी होती है और जो लेकर छपाया जाताहै वहभी चोरीहीहै ॥ ३२ ॥

यस्त्वेतान्युपकृतानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः ॥ तन्माद्यं दण्डयेद्वा-  
जां यश्चाग्निं चोरयेद्देहात् ॥ ३३ ॥ येनयेन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु



विचेष्टते ॥ तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३४ ॥

टीका—जो मनुष्य संस्कार की हुई इन सूत आदि द्रव्योंको उपभोगके लिये चुरावै और जो तीनो अग्नियोंको अग्निके घरसे चुरावै उसपर राजा प्रथम साहसका दंड करै और अग्निके स्वामीको अग्निके आधानकी हानि दिवावै ॥ ३३ ॥ जिस जिस हाथपांव आदि अंगसे संधि फोडने आदि जिस प्रकारसे चोर मनुष्यों में विरुद्ध धन लेने आदिकी चेष्टा करै उसी अंगका राजा उस प्रसंगके दूरी करनेके लिये कटवावै ॥ ३४ ॥

पिताचार्यः संहन्माता भार्या पुत्रः पुरोहितः ॥ नौदण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ ३५ ॥ कर्षापणं भवेदण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ॥ तत्र राजा भवेदण्ड्यः संहस्रमिति धारणा ॥ ३६ ॥

टीका—पिता आचार्य मित्र भाई माता स्त्री पुत्र और पुरोहित इनमेंसे कोई अपने धर्ममें न स्थित रहै वह क्या राजाके दंड देनेयोग्य नहीं है अर्थात् दंड देनेही योग्यहै ॥ ३५ ॥ जिस अपराधमें राजासे व्यतिरिक्त सामान्य जन एक कर्षापण दंडके योग्य होय उस अपराधमें राजा हजारपण दंडके योग्य होताहै यह निश्चय है अपने दंडको राजा जलमें डाले देवै अथवा ब्राह्मणोंको दे देवै दंडके वरुण स्वामी हैं यह आगे कहाहै ॥ ३६ ॥

अष्टौपाद्यं तु शूद्रस्य स्ते ये भवति किल्बिषम् ॥ षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णवापि शतं भवेत् ॥ द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सं ॥ ३८ ॥

टीका—जिस चोरीमें जो दंड कहाहै वह दंड चोरी गुणदोष जाननेवाले शूद्रपर आठ गुणा करनेयोग्यहै और चोरीके गुणदोष जाननेवाले वैश्यपर सोलह गुणा ऐसेही क्षत्रियपर बत्तीस गुणा और गुणदोष जाननेवाले ब्राह्मणपर चौसठि गुणा अथवा सो गुणा अथवा एकसौ अठ्ठाईस गुणा गुणकी अधिकताकी अपेक्षा यह ब्राह्मण हीपर होना चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वर्भ्यर्थं तथैव च ॥ तृणं च गोभ्यो ग्रासार्थं मस्त्यं मनुर्ब्रवीत् ॥ ३९ ॥ योऽदत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् ॥ याजनाध्यापनेनापियथां स्तेनैस्तथैव सं ॥ ३४० ॥



टीका-लता और वनस्पतियोंके फूलोंको अपनेको समान ग्रहण करै और विना रक्षा किये हुए वानस्पत्य आदिकोंके मूल फलको और होमकी अग्निके लिये काष्ठको और गौके खानेके लिये तृणके लेनेको मनु चोरी नहीं कहते हैं तिससे इसमें दंड नहीं है और न अधर्म है ॥ ३९ ॥ अदत्तादायी जो चोर है तिसके हाथसे जो ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रतिग्रहसे पराये धनको जागिकै लेनेकी इच्छा करै वह चोरकी तुल्य जानना चाहिये इसीसे चोरके समान दंड देने योग्य है ॥ ३४० ॥

द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके ॥ आददंनः परंक्षेत्रा  
न्नं दण्डं दातुमर्हति ॥ ४१ ॥ असंधितानां संधाता संधितानां च  
मोक्षकः ॥ दासांश्चरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चोरैकिल्विषम् ॥ ४२ ॥

टीका-मार्गका खरच जिसका चुकि गया है ऐसा बटोही ब्राह्मण दो ईखो और दो मूलियोंको पराये खेतसे लेता हुआ दंड देनेके योग्य नहीं होता है ॥ ४१ ॥ नहीं बंधे हुए पराये घोडा आदिकोंका बांधनेवाला और अश्वशाला आदिमें बंधे हुएओंका खोलनेवाला और दास रथ घोडा इनका चुरानेवाला चोरके दंडको पावे वह दंड तौ भारी हलके अपराधके अनुसार मारण अंगच्छेदन और धनका ले लेना आदि जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

अनेन विधिना राजा कुर्वाणः स्तेननिग्रहम् ॥ यशोऽस्मिन्प्राप्नुया-  
ल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ४३ ॥ ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेत्सुर्यशश्चा-  
क्षयमव्ययम् ॥ नोपेक्षते क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ४४ ॥

टीका-इस कही हुई विधिसे चोरोंका प्रबंध करता हुआ राजा इसलोकमें बड़ी ख्याति और परलोकमें उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ सबके अधि-पति होनेरूप पदके प्राप्त होनेकी और अविनाशी तथा अक्षय यशके प्राप्त होनेकी इच्छा करता हुआ राजा बलसे घरके जलानेवाले और धनके लेनेवाले मनुष्य-की क्षणमात्रभी उपेक्षा न करै तत्काल दंड देवे ॥ ४४ ॥

वाग्दुष्टात्तस्काराच्चैव दण्डेनैव च हिंसितः ॥ साहसस्य नरः कर्ता  
विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ४५ ॥ साहसे वर्तमानं तु योमर्षयति  
पार्थिवः ॥ स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ४६ ॥



टीका—वाक्पारुष्य करनेवालेसे चोरसे तथा दंडपारुष्य करनेवाले मनुष्यसे साहस करनेवाला मनुष्य अतिशय करि पाप करनेवाला जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो राजा साहस कर्त्तें हुए मनुष्यको सहताहै अर्थात् क्षमा करताहै वह पाप करने-वालोंकी उपेक्षा करनेसे अधर्मकी वृद्धिसे नाशको प्राप्त होताहै और देशका अपकार करनेसे मनुष्योंके द्वेषको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥

न मित्रं कारणाद्राजां विपुलाद्वा धनं गमात् ॥ संमुत्सृजेत्साह-  
सिकान्सर्वभूतं भयावहान् ॥ ४७ ॥ शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं ध-  
र्मोयंत्रोपरुध्यते ॥ द्विजातीनां च वर्णानां विपुले कालका-  
रिते ॥ ४८ ॥ आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे ॥  
स्त्रीविप्रोभ्युपपत्तौ च निघ्नन्धर्मैर्न दुष्यति ॥ ४९ ॥

टीका—मित्रके कहनेसे अथवा बहुतसे धनकी प्राप्तिसे सब जीवोंके दुखदेनेवाले साहसी मनुष्योंको राजा न छोड़े ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण आदि तीन वर्णोंको उसकालमें खड्ग आदि शस्त्र धारण करने चाहिये जिस समय वर्ण और आश्रमी साहस करने-वालोंसे धर्म न करने पावें तथा तीनो वर्णवालोंको राजारहित देशमें पराई सेना आने आदि कालमें उत्पन्न हुए स्त्री संगर आदिके प्राप्त होनेपर और अपनी रक्षाके लिये और दक्षिणा धन गौ आदिके हरनेके कारण संग्राममें और स्त्री तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त और गति न होनेके कारण धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारता हुआ दोषभागी नहीं होताहै दूसरेके मारनेमें भी यहां साहसका दंड नहीं करनेयोग्यहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ॥

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३५० ॥

टीका—गुरु बालक वृद्ध और बहुश्रुत ब्राह्मण इनमेंसे जो विद्यावृत्त आदिसे उत्कृष्टभी कोई मारनेके लिये आता होय और भागने आदिसेभी अपना बचाव न होस-कता होय तौ विना विचारके मारै ॥ ३५० ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा  
मन्युस्तं मन्युमृच्छति ॥ ५१ ॥ परदाराभिमर्शेषु प्रवृत्तान्म-  
हीपतिः ॥ उद्वेजनकरैर्दण्डैश्छिन्नयित्वा प्रवासयेत् ॥ ५२ ॥

टीका—मनुष्योंके सामने अथवा एकान्तमें मारनेके लिये उद्यत आततायीके



( २९४ )

मनुस्मृती

मारनेमें मारनेवालेको कुछ अधर्म दंड तथा प्रायश्चित्त नाम दोष नहीं लगता है कारण यह है कि मारनेवालेमें स्थित मन्यु अर्थात् क्रोधके अभिमानकी देवता हन्यमानमें स्थित हो क्रोधके लौटाय देती है और साहसमें अपराधके गौरवकी अपेक्षासे मारण अंगच्छेदन और धनग्रहण आदि दंड करने चाहिये ॥ ५१ ॥ अब स्त्रीसंग्रहण कहते हैं ॥ पराई स्त्रियोंके भोगमें प्रवृत्त मनुष्योंके समूहको नाक ओठ काटने आदि दंडोंसे चिन्हयुक्त करिकै राजा अपने देशसे निकाल देवै ॥ ५२ ॥

तत्संमुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसंकरः ॥ येन मूलहरोऽधर्मः  
सर्वनाशाय कल्पते ॥ ५३ ॥ परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां यो  
जयन् रहः ॥ पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् ॥ ५४ ॥

टीका-पराईस्त्रियोंमें गमन करनेसे उत्पन्न हुआ वर्णसंकर होता है जिस वर्णसंकर करि शुद्ध पत्नीयुक्त यजमान न होने कारण अग्निमें डाली हुई आहुति अच्छी भांति सूर्यको प्राप्त होती है इसका अभाव होनेपर वृद्धिनाम जगत्के मूलका नाश करनेवाला अधर्म जगत्के नाशके लिये होता है ॥ ५३ ॥ तिसको पहले परस्त्रीगमन आदिका दोष लगि चुका है वह पुरुष किसीकी स्त्रीसे एकांतमें बात करै तो प्रथम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ५४ ॥

यस्त्वेनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् ॥ न दोषं प्राप्नुयात्किं  
श्चिन्नं हि तस्य व्यतिक्रमः ॥ ५५ ॥ परस्त्रियं यो भिवदेत्तीर्थेऽरं  
प्ये वनेऽपि वा ॥ नदीनां वापि संभेदे संग्रहणमाप्नुयात् ॥ ५६ ॥

टीका-जिसको पहले परस्त्री आदिका दोष नहीं लगा है वह जो किसी कारण मनुष्योंके आगेभी बात करै तो वह दंड्यत्व आदि अर्थात् दंड देने योग्य दोषोंको न प्राप्त होय जिसे उसका कुछ अपराध नहीं है ॥ ५५ ॥ तीर्थ अरण्य वन आदिके कहनेसे शून्यस्थान जानना चाहिये । जो पुरुष पानी भरनेके घाटमें और अरण्य कहिये ग्रामसे बाहर लता गुल्मोंसे भरे हुए सूने देशमें और वन कहिये बहुत वृक्षोंसे भरे हुए स्थानमें और नदियोंके संगममें निदोषभी होनेपर किसी कारणसेभी बात करै वह हजार पण रूपसंग्रहण दंड जो आगे कहेंगे उसको पावै ॥ ५६ ॥

उपचारक्रिया कौलिः रूपेशो भूषणवाससाम् ॥ सहस्रदासनं चैव  
सर्वसंग्रहणं स्मृतम् ॥ ५७ ॥ स्त्रियं रूपेशेददेशे यः स्पृष्टो वा  
भर्षयेत्तया ॥ परस्परस्यानुमते सर्वसंग्रहणं स्मृतम् ॥ ५८ ॥



टीका—उपचारक्रिया कहिये माला सुगंध तथा चंदन आदि अनुलेपनका भेजना और केलि कहिये हंसना आलिंगन करना आदि और अलंकार भूषण आदिकोंका स्पर्श करना और खट्वापर बैठना इन सबोंको मनु आदिने संग्रहण कहाहै ॥ ५७ ॥ जो छूनेको अनुचित स्तन जघन आदि स्थानोंमें स्त्रीको छुवै अथवा उस स्त्रीकरकै वृषण आदि स्थानमें छुआ गया सहि लेवै तो आपसमें अंगीकाररूप सब मनु आदिकोने संग्रहण कहाहै ॥ ५८ ॥

अब्राह्मणः संग्रहणे प्राणान्तं दण्डमर्हति ॥ चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्षयतमाः सदा ॥ ५९ ॥ भिक्षुका वन्दिनश्चैव दीक्षिताः का-  
रवस्तथा ॥ संभाषणं सह स्त्रीभिः कुयुरप्रतिवारिताः ॥ ६० ॥

टीका—दंडकी अधिकतासे यहां अब्राह्मण कहनेसे शूद्र जानना चाहिये नहीं इच्छा करती हुई ब्राह्मणीमें उत्तम संग्रहण करनेसे शूद्र वधदंडको प्राप्त होताहै और चारो ब्राह्मण आदि वर्णोंके धन पुत्र आदिकोंमेंसे अधिकतासे स्त्री सदा रक्षा करनेयोग्य है उससे उस प्रसंगके दूर होनेके लिये उत्कृष्ट संग्रहणसे भी सब वर्णों करि स्त्रिया रक्षा करनेयोग्य है ॥ ५९ ॥ भिक्षासे जीनेवाले स्तुति पढनेवाले यज्ञकी दीक्षावाले और सूपकार कहिये रसोई करनेवाले आदि तथा भिक्षा आदि अपने कामके लिये गृहस्थोंकी स्त्रियोंके साथ विना रोक ठोकके संभाषण करै इस भांति इनको संग्रहण दोष नहीं होताहै ॥ ६० ॥

न संभाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् ॥ निषिद्धो भाषमा-  
णस्तु सुवर्णं दण्डमर्हति ॥ ६१ ॥ नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मो-  
पजीविषु ॥ सज्जयन्ति हि ते नारीर्निगूढांश्चारयन्ति च ॥ ६२ ॥

टीका—स्वामी करि मने किया हुआ स्त्रियोंके साथ बात न करै और जो मने किया हुआ बात करै तो राजा करि सोलह सुवर्णके दंड योग्य होताहै ॥ ६१ ॥ प-  
राई स्त्रीसे बात न करै यह बोलनेका निषेध नट और गवैया आदिकी स्त्रियोंमें नहीं है क्योंकि भार्या और पुत्र अपना तनु है यह कहाहै अर्थात् भार्याही आत्माहै इससे वे जीविका करते हैं धन लाभके लिये उसके जारसे कुछ नहीं कहते हैं उनमें और नट आदिकोंसे व्यतिरिक्तोंमें जो स्त्रियां हैं उनमेंभी यह निषेधकी विधि नहीं है जिस्से चारण आत्मोपजीवीभी हैं वे परपुरुषोंको लायकै उनसे अपनी भार्याओंका आलिंगन कराते हैं और आप आये हुए परपुरुषोंको छिपकर अपना न जानना प्र-  
कट करते हुए व्यवहार कराते हैं ॥ ६२ ॥



(२९६)

मनुस्मृति

किञ्चिदेवं तु दाप्यः स्यात्संभाषां ताभिराचरन् ॥ प्रैष्यासु चैकं  
भक्तासु रंहः प्रव्रजितासु च ॥ ६३ ॥ योऽकामां दूषयेत्कर्ण्यां स  
सद्यो वर्धमर्हति ॥ सकामां दूषयस्तुल्यो न वैधं प्रोमुयान्नरः ॥ ६४ ॥

टीका—शून्यस्थानमें चारण और आत्मोपजीविकी स्त्रियोंसे बात चीत करता हुआ पुरुष राजा करि थोडासा दंडका लेश दिवानेयोग्य है क्योंकि वेभी पर-  
दारहै तथा रुकी हुई दासियोंसे और बौद्ध आदिकी ब्रह्मचारिणियोंसे संभाषण करता हुआ कुछ दंडमात्र देनेयोग्य होताहै ॥ ६३ ॥ जो विना इच्छाकर-  
नेवाली कन्याको जबर्दस्तीसे संग करिकै दूषित करताहै वह ब्राह्मणसे अन्य होयतो लिंगछेदनादिसे वध करने योग्यहै और इच्छावाली कन्यासे संग करे तो वधकरने योग्य नहीं ॥ ६४ ॥

कर्ण्यां भजन्तीमुत्कृष्टं न किञ्चिदपि दापयेत् ॥ जघन्यं सेवमानां  
तु संयतां वासयेद्द्वहे ॥ ६५ ॥ उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वैधर्म-  
र्हति ॥ शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पितां यदि ॥ ६६ ॥

टीका—संभोगके लिये उत्कृष्ट जातिके पुरुषका सेवन करती हुई कन्याको थोडाभी दंड न देवै और हीन जातिके पुरुषका सेवन करनेवालीको जबतक उसका काम निवृत्त न होय तबतक बांधिकर रखवै ॥ ६५ ॥ हीन जाति उत्कृष्ट जातिकी इच्छा करनेवाली अथवा इच्छा न करनेवाली कन्यासे गमन करता हुआ जातिकी अपेक्षासे अंगका काटने और मारनेरूप दंडके योग्यहै और इच्छा करती हुई समान जातिकी कन्या से गमन करता हुआ जो पिता राजी होय तौ मोलके अनुरूप धन देवै दंडके योग्य नहीं है और यह कन्या उसीको व्याहनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अभिषेह्य तु यः कर्ण्यां कुर्यादपेण मानवः ॥ तस्याशु कर्त्ये अङ्गु-  
ल्यौ दण्डं चार्हति षट् शतम् ॥ ६७ ॥ सकामां दूषयस्तुल्यो नाङ्गु-  
लिच्छेदमाप्नुयात् ॥ द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसंगविनिवृत्तये ॥ ६८ ॥

टीका—जो मनुष्य समान जातिकी कन्याको दर्पसे गमनको छोडि बलसे अंगुली डालने मात्रसे नाश करै उसकी दो अंगुली शीघ्रही काटनी चाहिये और छः सौ पण दंड होना चाहिये ॥ ६७ ॥ समान जातिका पुरुष इच्छा करनेवाली कन्याको



अंगुलीके प्रक्षेप मात्रसे नाश करता हुआ अंगुली च्छेदको नहीं प्राप्त होता है किंतु अतिप्रसक्तिके निवारण करनेके लिये दोसो पण दंड करने योग्य है ॥ ६८ ॥

कन्यैव कन्यां यां कुर्यात्तस्याः स्याद्विशंतो दमः ॥ शुल्लं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाभिर्यादृशं ॥ ६९ ॥ यां तु कन्यां प्रकुर्यात्स्त्री सा संधो मौण्ड्यमर्हति ॥ अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरे णोद्वहनं तथा ३७०

टीका—जो कन्याही दूसरी कन्याको अंगुलीके प्रक्षेपसे नाश करै उसपर दोसो पण दंड होना योग्य है और कन्या दुगुना मोल उसके पिताको देवै और दशशिफा प्रहारोंको प्राप्त होय ॥ ६९ ॥ जो स्त्री अंगुली प्रक्षेपसे कन्याका नाश करै उसको उसी समय शिर मुड़ा अंगुली काटि गधेपर चढा सडकमें निकालै ॥ ३७० ॥

भर्तारं लब्धयेद्यां तु स्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता ॥ तांश्चभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ ७१ ॥ पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ॥ अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ ७२ ॥

टीका—जो स्त्री बडे धनवाले पिता आदि बंधुओंके घमंडसे अथवा सुंदरता आदि गुणोंके गर्वसे पतिको दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेसे उल्लंघन करै उसको राजा बहुतसे मनुष्योंके आगे कुत्तोसे चुथवावै ॥ ७१ ॥ पीछे कहे हुए पाप करनेवाले जार पुरुषको तपा करि लाल कियी हुई लोहेकी सज्जापर जलावै और उस सज्जापर और काष्ठ ऊपरसे डालै जबतक वह पापी न जलजाय ॥ ७२ ॥

संवत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः ॥ व्रात्यया सह संवासे चाडाल्या तावदेव तु ॥ ७३ ॥ शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्ण-मावसन् ॥ अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते ॥ ७४ ॥

टीका—परस्त्री गमनसे दूषित जिस पुरुषको दंड नहीं दिया गया उसको एक वर्ष पीछे फिर उसीका दोष लगनेपर पहले दंडसे दूना दंड करना चाहिये तथा व्रात्यकी जायाके गमन करनेमें जो दंड कल्पना किया गया है वही चांडालीके गमनमें होना चाहिये अंत्यजकी स्त्रीसे गमन करनेवालेपर एकहजार पण दंड कहा है संवत्सरके वीतिजानेपर जो उसी व्रात्यकी जायासे और उसी चांडालीसे फिरी गमन करै तौ दूना दंड करना चाहिये ॥ ७३ ॥ भर्ता आदिके भयसे रक्षित अथवा अरक्षित द्विजातिकी स्त्रीसे जो शूद्र गमन करै तौ नहीं रक्षा कियी हुईसे गमन करता हुआ लिंग



( २९८ )

मनुस्मृति

रहित करने योग्य है और रक्षितासे तौ गमन करता हुआ शरीर तथा धनसेहीन करने योग्य है ॥ ७४ ॥

वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्सर्वत्सरनिरोधतः ॥ सहस्रं क्षत्रियो दण्ड्यो  
मौण्ड्यं मूत्रेण चर्हति ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणीं यद्यगुप्तां तु गच्छेतां वै-  
श्यं पार्थिवौ ॥ वैश्यं पञ्चशतं कुर्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम् ॥ ७६ ॥

टीका-वैश्यको गुप्ता ब्राह्मणीमें गमन करनेपर एक वर्षतक बंधनमें रखकर पीछे सर्वस्व ग्रहणरूप दंड करना चाहिये अर्थात् उसका सब धन आदि छीनले और क्षत्रियामें गमन करनेपर तौ वैश्यस्य क्षत्रियायां यह आगे कहेंगे और क्षत्रियको गुप्ता-ब्राह्मणीके साथ गमन करनेसे हजार पण दंड देना चाहिये और गधेके मूत्रसे इसका मुंडन कराना चाहिये ॥ ७५ ॥ जो अरक्षिता ब्राह्मणीसे वैश्य तथा क्षत्रिय गमन करै तौ वैश्यपर पाचसौ दंड करै और क्षत्रियपर हजार करै वैश्यपर यह पांचसौ का दंड शूद्राके भ्रम आदिसे निर्गुण जाति मात्रसे जीविका करनेवाली ब्राह्मणीके मध्ये जानना चाहिये और उससे अन्यब्राह्मणीके गमनमें तौ वैश्यकोभी हजारही दंड कहा है ॥ ७६ ॥

उभाविपि तु तावेवं ब्राह्मण्या गुप्तया सह ॥ विपुतौ शूद्रवदण्ड्यौ  
दग्धव्यौ वा कंटाग्रिना ॥ ७७ ॥ सहस्रं ब्राह्मणो दण्ड्यो गुप्तां विप्रां  
बलाद्भ्रजन् ॥ शीतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादिच्छन्त्या सहस्रगंतः ७८

टीका-वे दोनोभी क्षत्रिय वैश्य अरक्षिता ब्राह्मणीके साथ मैथुन करनेसे शूद्रके समान सर्वस्व दंड करनेयोग्य है अथवा चटाईमें लपेट कर जलानेयोग्य है उनमें वैश्यको तौ लालकुशोंकी चटाईमें और क्षत्रियको शरपतेके पत्तामें लपेटकर जलावे यह वसिष्ठका कहा हुआ विशेष ग्रहण करना चाहिये पहले हजार क्षत्रियपर दंड करना चाहिये और वैश्यपर सर्वस्व दंड करना चाहिये यह कहा है तिससे यह प्राणान्तिक दंड गुणवत् ब्राह्मणीके गमन करनेमें जानना चाहिये ॥ ७७ ॥ रक्षिता ब्राह्मणीमें बलसे गमन करनेवाले ब्राह्मणपर हजार पण दंड होवे और इच्छा करनेवालीसे एकवार मैथुन करनेमें पाचसौ दंड करनेयोग्य होता है ॥ ७८ ॥

मौण्ड्यं प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते ॥ इतरेषां तु  
वर्णानां दण्डः प्राणान्तिको भवेत् ॥ ७९ ॥ न जातु ब्राह्मणं हन्या-  
त्सर्वपापेष्वपि स्थितम् ॥ रात्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् ॥



टीका—ब्राह्मणका वध दंडके स्थानमें शिरका मुडवा देना दंडहै यह शास्त्रने कहाहै और क्षत्रिय आदिकोका तौ कहे हुए मारनेसे दंड होताहै ॥ ७९ ॥ सब पाप करनेवालेभी ब्राह्मणको कभी न मारै अपितु सर्वस्व समेत अक्षत शरीरको देशसे निकाल देवै ॥ ३८० ॥

न ब्राह्मणवधाद्भूयानर्धमो विद्यते भुवि॥तस्मादस्य वैधं राजा मैन  
सापि न चिन्तयेत्॥८१॥वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो  
व्रजेत्॥यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तांबुभौ<sup>१३</sup> दण्डमर्हतः ॥ ८२ ॥

टीका—ब्राह्मणके वधसे और बडा अधर्म पृथिवीमें नही है तिससे राजा सब पाप करनेवाले ब्राह्मणके वधको मनसे भी न विचारै ॥ ८१ ॥ जो रक्षिता क्षत्रियामें वैश्य गमन करै और क्षत्रिय जो रक्षिता वैश्यामें गमन करै तौ उन दोनोंको अरक्षिता ब्राह्मणीमें गमन करनेसे जो दंड कहे हैं जैसे वैश्यपर पांचसौ करै और क्षत्रियपर हजार ये दोनौही दंड वैश्य तथा क्षत्रियको होते हैं यह तौ वैश्यका रक्षित क्षत्रियाके गमनमें पांचसौ दंड लघु होनेसे गुणवान वैश्य और निर्गुण जाति मात्रसे जीविका करनेवाली क्षत्रियाका शूद्राके भ्रम आदिसे गमन विषयक जानना चाहिये और क्षत्रियको रक्षित वैश्यामें ज्ञानसे हजार दंड योग्यहीहै ॥ ८२ ॥

सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते<sup>१</sup> व्रजन् ॥ शूद्रायां क्षत्रियं  
विशोः साहस्रो वै<sup>१२</sup> भवे<sup>१३</sup> दमः ॥ ८३ ॥ क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये  
पञ्चशतं दमः॥मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु<sup>१४</sup> क्षत्रियो दण्डमेव वा॥८४॥

टीका—रक्षित क्षत्रिय वैश्यामें गमन करता हुआ ब्राह्मण सहस्र दंड देनेयोग्य है और रक्षिता शूद्रामें गमन करनेसे क्षत्रिय वैश्य सहस्रही दंडके योग्य होते हैं ॥ ८३ ॥ अरक्षिता क्षत्रियाके गमनमें वैश्यपर पांचसौ दंड होताहै और क्षत्रियको अरक्षिता क्षत्रियाके गमन करनेमें गधेके मूत्रसे मुंडन और पांचसौ रुपये दंड होना चाहिये ॥ ८४ ॥

अगुप्ते क्षत्रियावैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्॥शतानि पञ्च दण्डयः  
स्यात्सहस्रं त्वेन्त्यजस्त्रियम् ॥८५॥ यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्य  
स्त्रीगो न दुष्टवाक्॥न साहसिकदण्डघ्नो स राजा शकलोकभाक्८६

टीका—अरक्षिता क्षत्रिया वैश्या अथवा शूद्रामें गमन करता हुआ ब्राह्मण पांचसौ दंडके योग्य होताहै और अंत्यज कहिये चांडाल उसकी स्त्रीसे गमन करता



हुआ हजार दंडके योग्य होताहै ॥ ८५ ॥ जिस राजाके राज्य भरमें चोर तथा पराई स्त्रीसे गमन करनेवाला और कडुई बात कहनेवाला और घरों का जलाना आदि साहस करनेवाला तथा दंडपारुष्य करनेवाला नहीं है वह राजा स्वर्गपुरको जाताहै ॥ ८६ ॥

एतेषां निर्ग्रहो राज्ञः पञ्चानां विषये स्वके ॥ साम्राज्यकृतसंजात्येषु लोके चैव यशस्करः ॥ ८७ ॥ ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यं च त्वित्यजेद्यदि ॥ शतं कर्मण्यदुष्टं च तयोर्दण्डः शतं शतम् ॥ ८८ ॥

टीका—अपने देशमें इन स्तेन आदि पांचका दंड देनेवाला और समान जातिके राजाओंमें राजाका साम्राज्य करनेवाला इस लोकमें यश करनेवाला होताहै ॥ ८७ ॥ जो यजमान कर्म करनेमें समर्थ और अतिपातक आदि दोषोंसे रहित यजन करानेवालेको अथवा ऋत्विज जो दुष्ट नहीं ऐसे यजमानको छोड़ै तो उन दोनोपर सौ सौ दंड करना चाहिये यह दंडके प्रसंगसे कहा ॥ ८८ ॥

न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति ॥ त्यजन्नपतितानेतां न राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट् ॥ ८९ ॥ आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवेदतां मिथः ॥ न विब्रूयान्नृपो धर्मं चिकीर्षन्हितमात्मनः ॥ ९० ॥

टीका—माता पिता स्त्री और पुत्र ये सेवा तथा पोषण आदि न करनेसे त्यागने योग्य नहीं हैं तिस्से पातक आदि दोषोंसे विना इनको त्यागता हुआ एक एकके त्यागमें राजा करि छसौ पण दंड करनेयोग्य होताहै ॥ ८९ ॥ द्विजातियोंके गृहस्थ आश्रमोंके कार्यमें यह शास्त्रार्थ है यह शास्त्रार्थ नहीं है ऐसे आपसके विवादोंका अपना हित करनेकी इच्छा करनेवाला राजा यह शास्त्रार्थ है ऐसे सहसा विशेष कर न कहै ॥ ९० ॥

यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैः सह पार्थिवः ॥ सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ ९१ ॥ प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विशतिद्विजे ॥ अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम् ॥ ९२ ॥

टीका—जो जैसी पूजाके योग्यहै उसका वैसेही पूजन करि और ब्राह्मणोंके साथ पहले प्रीतिसे कोप रहित करिकै तिस पीछे इनका जो निज धर्म है उसको चितावै ॥ ९१ ॥ सदा घरमें रहनेवाला प्रातिवेश्य कहाताहै और अंतरसे वसनेवाला अनुवेश्य जिस उत्सवमें वीस अन्य ब्राह्मणभोजन कराये जाय उसमें भो-



जनके योग्य प्रातिवेश्य अनुवेश्य ब्राह्मणोंको न भोजन करता हुआ ब्राह्मण एक रूपेका मासा दंड करने योग्य है ॥ ९२ ॥

श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुं भूतिर्कृत्येष्वभोजयन् ॥ तदन्नं द्विगुणं दाप्यो हिरण्यं चैवं माषकम् ॥ ९३ ॥ अन्धो जडः पीठसर्पी सप्तत्या स्तुर्थं विरश्च यः ॥ श्रोत्रियेषूपकुर्वश्च नै दाप्याः केनचित्करम् ॥ ९४ ॥

टीका-विद्या और आचारयुक्त तथा नाना प्रकारके गुणों करि युक्तको विवाह आदि विभवके कार्योंमें प्रतिवेश्य अनुवेश्योंको नही भोजन कराते हुएको उस अन्नके न भोजन करनेवालेके लिये दूना दंड दिवाना चाहिये और एक सुवर्णका मासा राजाको दंड देवै ॥ ९३ ॥ अंधा बहिरा पंगा सत्तरिवर्षकी अवस्थाका और श्रोत्रिय और धनधान्यसे उपकार करनेवाला ये किसी करिकै और जिसका कोशक्षीण होगयाहै ऐसे राजा करकै अपना लेनेयोग्य भी कर लेनेयोग्य नहीं है ॥ ९४ ॥

श्रोत्रियं व्याधितातौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् ॥ महौकुलीनमार्थं च राजा संपूजयेत्सदा ॥ ९५ ॥ शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्ने जैकः शनैः ॥ न च वासांसि वासोभिर्निहरेन्न च वासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका-विद्या तथा आचारयुक्त ब्राह्मणको रोगीको पुत्रवियोग आदिसे दुखीको बालकको वृद्धको दरिद्रीको बड़े कुलमें उत्पन्नको और उत्तम चरित्रवालोंको राजा दान मान और हितके करनेसे सदा पूजन करै ॥ ९५ ॥ सेमल आदि वृक्षके चिकने पट्टेपर धोबी हौले हौले कपड़े धोवै और पराये वस्त्रोंमें औरके वस्त्र न मिलावै तथा औरके वस्त्र औरके पहिरनेको न देवै जो ऐसा करै तौ यह दंडयोग्य होय ॥ ९६ ॥

तर्तुवायो दशपलं दद्यादेकपलाधिकम् ॥ अतोऽन्यथा वर्तमानो दाप्यो द्वादशकं दमम् ॥ ९७ ॥ शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्य-विचक्षणाः ॥ कुर्युरर्थं यथापण्यं ततो विंशं नृपो हरेत् ॥ ९८ ॥

टीका-कोली कपडा बुननेके लिये दसपल सूत लेकर माडी आदि लगनेके कारण ग्यारह पल कपडा देवै और जो इस्से कम दे तौ राजाको बारह पण दंड दे और स्वामीको राजी करै ॥ ९७ ॥ स्थल तथा जलके मार्गसे व्यवहार करने वालोंसे राजाके लेनेयोग्य मार्गको शुल्क कहते हैं उनके नियत करनेमें चतुर और



सब बेचनेयोग्य वस्तुओंके सार असारके जाननेवाले वे बेचनेकी वस्तुओंमें जितना धन जिसका मोल अनुरूपण करें उस नफेके धनसे बीसवां भाग राजा लेवे ॥९८॥

राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च ॥ तानिनिर्हरतो लो  
भात्सर्वहारं हरेन्नृपः ॥ ९९ ॥ शुल्कस्थानं परिहरन्नकाले क्रयविक्र  
यी ॥ मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योऽष्टगुणमत्ययम् ॥ १०० ॥

टीका—राजाके संबंधसे जो बेचनेकी वस्तु प्रसिद्ध हैं जैसे राजाके कामके उसी देशमें उत्पन्न हुए हाथी घोडा आदि तथा जो मने की हुई वस्तु हैं जैसे दुर्भिक्षमें अन्न दूसरे देशमें न लेजाना उनको लोभसे दूसरे देशमें लेजानेवाले बनि-याका राजा सर्वस्व ले लेवे ॥ ९९ ॥ शुल्क (महसूल) बेचनेके लिये जो मार्ग छोड़कर चलता है अथवा अकाल कहिये रात्रि आदिमें लेता बेचता है और शुल्क घटानेके लिये बेचनेकी वस्तुकी गिनाती कम बताता है वह राजाके देने योग्य छुपाये हुएका आठगुण दंड देवे ॥ १०० ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ॥ विचार्य सर्वप-  
र्यानां कारयेत्क्रयविक्रयौ ॥ १ ॥ पञ्चरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽ  
थवा गते ॥ कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घ्यं संस्थापनं नृपः ॥ २ ॥

टीका—कितनी दूरसे आया है और दूसरे देशकी वस्तुका आगम कितनी दूरि पहुचाया जाता है और अपने देशमें उत्पन्न हुई वस्तुका निकलना किस समय तक रहा कितना मोल मिलता है और इसमें नफा कितना है और कर्म करनेवाले नौकर आदिकोंके भोजन वस्त्र आदिमें कितना खरच हुआ इस भांति विचार करिके जैसे मोल लेनेवालो और बेचनेवालेको पीडा न होय ऐसे सब वस्तुओंका क्रय विक्रय करावे ॥ १ ॥ विकनेकी वस्तुओंका आना जाना नियत नहीं है इससे अस्थिर मोलकी वस्तुओंकी पांचरात्रि बीतनेपर और स्थिर मोलकी वस्तुओंकी पक्ष बीतनेपर अर्धोति जाननेवाले वनियोंके सामने राजा आत पुरुषोंके साथ व्यवस्था करे ॥ २ ॥

तुल्यमानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ षट्सु षट्सु च मां  
सेषु पुनरेवं परीक्षयेत् ॥ ३ ॥ पणं यानं तरे दाप्यं पौरुषोऽर्धपणं  
तरे ॥ पादं पशुं च यो पित्रि पादार्धं रिक्तकः पुमान् ॥ ४ ॥

टीका—तुल्यमान कहिये सुवर्ण आदिके परिमाणके लिये जो किया जाता है



और प्रतिमान प्रस्थ द्रोण आदि अपना निरूपित जैसे होय छः छः महीने वीतनेपर सभ्य पुरुषोंके साथ फिर उसकी परिक्षा करै ॥ ३ ॥ भांडपूर्वाणि यानानि यह आगे कहेंगे तिस्से खाली छकडा आदि यानपर एक पण लेना चाहिये और पुरुषके ले चलने योग्य भारपर आधापण और गौ आदि पशुपर चौथाई पण और भार रहित मनुष्यपर पणका आठवा भाग उतराई लेनी चाहिये ॥ ४ ॥

भाण्डपूर्णानि यानानि तार्य दार्यानि सारतः ॥ रिक्तभाण्डानि यान्तिञ्चित्पुंमांसश्चापरिच्छदाः ॥ ५ ॥ दीर्घाध्वनि यथादेशं यथा कालं तरो भवेत् ॥ नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ६ ॥

टीका-वेचनेयोग्य द्रव्यसे भरे हुए छकडे आदिपर द्रव्यके उत्कर्षकी अपेक्षासे उतराई देनी चाहिये और खाली गोनि कंडोल आदिपर कुछ थोडा उतराई देनी चाहिये और दरिद्रियोंसे आधेसेभी कम दिवानी चाहिये ॥ ५ ॥ पहले नदीके वारपार उतरनेके लिये कहाहै अव नदीके मार्गसे जानेयोग्य दूरिके मार्गमें प्रबल वेग तथा स्थिर जलयुक्त नदी आदि देश और ग्रीष्म वर्षा आदि कालकी अपेक्षासे उतराईका मोल कल्पना करने योग्य यह नदीके किनारोमें जाननाचाहिये समुद्रमें तौ जहाजका चलना पवनके आधीन होनेसे अपनी आधीनता न होनेपर अधिक उतराईके द्रव्यका सूचित करनेवालाहै इसमें नदीकी भांति योजन आदि नही है इससे वहां उचितही उतराई लेनी चाहिये ॥ ६ ॥

गर्भिणी तु द्विमांसादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः ॥ ब्राह्मणा लिङ्गिन-  
श्चैवं न दार्यास्तारिकं तरे ॥ ७ ॥ यत्रावि किञ्चिद्दाशानां विंशी-  
र्येतापराधतः ॥ तद्दाशैरेवं दार्तव्यं समांगम्य स्वतोऽज्ञतः ॥ ८ ॥

टीका-दो महीनोके उपरंतकी गर्भिणी स्त्री तथा संन्यासी मुनि वानप्रस्थ ब्राह्मण और ब्रह्मचारि ये पार उतरनेमें उनराईका मूल्य न देवै ॥ ७ ॥ नावमें चढने वालोंकी नौकाकेवटोंके दोषसे हानि होजाय तौ गया हुवा धन नाववालेही मिलकर हिस्सेसे देवै ॥ ८ ॥

एष नौयारिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः ॥ दाशापराधतस्तोये  
दैविके नास्ति निर्ग्रहः ॥ ९ ॥ वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषि-  
मेव च ॥ पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥



( ३०४ )

मनुस्मृती

टीका-मल्लाहोंके दोषसे जो पानीमें नष्ट होजाय उसको मल्लाह देवै यह पहले मनुका कहा हुआ दंड देवी उपद्रवमें नहीं है यह विधान करनेके लिये नौकाओंसे जानेवालोंका यह व्यवहार कहा देवसे उत्पन्न हुई आंधी आदिसे नावके टूटने करि धन आदिका नाश होनेपर मल्लाहोंको दंड नहीं है ॥ ९ ॥ वैश्यसे वाणिज्य व्याजकी जीविका खेती पशुओंका पालना ये कर्म करावै और शूद्रोंसे राजा द्विजातियोंकी दास्य कहिये सेवा करावै ॥ ४१० ॥

क्षत्रियं चैवं वैश्यं च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितौ ॥ विभृयादार्तशंस्येन स्वां-  
नि कर्माणि करिष्यन् ॥ ११ ॥ दास्यं तु कारयँल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृ-  
तान्द्रिजान् ॥ अनिच्छतः प्राभवत्यार्द्राज्ञा दण्डेयः शतानि षट् १२

टीका-ब्राह्मण पीडित क्षत्रिय वैश्योंसे करुणा करिकै अपनी रक्षा तथा खेती आदि कामोंको करवावै और भोजन वस्त्र आदिसे उनका पोषण करै और जो ध-  
नाढ्य ब्राह्मण आये हुए उन दोनोंकों न रक्खे तौ राजा करि दंड करनेयोग्यहै यह प्रकरणकी सामर्थ्यसे जानाजाताहै ॥ ११ ॥ जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत किये हुए द्विजा-  
तियोंसे उनकी इच्छाके बिना प्रभुता करि लोभसे पांय धोना आदि दासोंका काम कराताहै उसपर छसौ पण दंड करना चाहिये ॥ १२ ॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ॥ दास्यैवैवाहिं सृष्टोऽसौ<sup>१०</sup>  
ब्राह्मणस्य स्वयंभुवा ॥ १३ ॥ न स्वांमिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्या  
द्रिमुच्यते ॥ निसर्गजं हि तत्तस्यं कस्तस्मात्तर्दपोहति ॥ १४ ॥

टीका-भोजन आदिसे पाले हुए अथवा न पाले हुए शूद्रसे दासका काम करावै  
जिसे यह ब्राह्मणके दासभावहीके लिये प्रजापति करि बनाया गयाहै ॥ १३ ॥  
स्वामी करि त्याग किया गयाभी शूद्र दासभावसे नहीं छूटता है जिसे दास्य शूद्र-  
का सहज कहिये साथ उत्पन्नहै कौन इस शूद्रत्व जातिके दास्यको दूर कर सकताहै  
अर्थात् कोई नहीं जो ऐसा न होय तौ जो आगे कही जायगी ऐसी दास्य करनेकी  
गणनाही व्यर्थ होजाय ॥ १४ ॥

ध्वजाहृतो भर्तृदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ ॥ पैत्रिको दण्डदासश्च स  
सैते दास्योनयः ॥ १५ ॥ भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवार्धनाः ॥ स्मृ-  
ताः ॥ यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ १६ ॥



टीका—संग्राममें स्वामीसे जीता भोजनके लोभसे आया हुआ भक्त दास तथा अपनी दासीसे उत्पन्न और मोलसे लिया हुआ और दूसरे करि दिया हुआ तथा पिता आदिके क्रमसे जो चला आताहै और दण्ड आदिके धनकी शुद्धिके लिये जिसने दासपन अंगीकार कियाहै ये सात संग्राममें स्वामीसे जीते आदि दासपनके करनेवाले है ॥ १५ ॥ भार्या पुत्र तथा दास ये तीनि मनु आदिकों करि अधन कहे गयेहैं कारण यह है कि जिस धनको वे चोरते है वह धन जिसके वे भार्या आदि है उसका होताहै यह तौ भार्या आदिकी पराधीनता दिखानेके लिये है क्योंकि आगे अध्यग्रि आदि छ प्रकार स्त्रीधन कहा जायगा ॥ १६ ॥

विस्त्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत् ॥ नहि तस्यास्ति किं  
श्चित्सर्वं भर्तृहार्यधनो हि संः ॥ १७ ॥ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्मा-  
णि कारयेत् ॥ तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदं जगत् ॥ १८

टीका—निस्संदेह ब्राह्मण शूद्रसे धन ग्रहण करै जिस्से उसका कुछभी स्वत्व ( हक ) नहीं है कारण यह है कि इसका धन स्वामीके लेने योग्यहै ऐसे आपत्तिमें ब्राह्मण बलसेभी इसका धन लेता हुआ राजा करि दंड देनेयोग्य नहीं है इस लिये यह कहा जाताहै ॥ १७ ॥ वैश्यको खेती आदि और शूद्रको द्विजातिकी सेवा आदि कर्म राजा यत्नसे करावै कारण यह है कि वे अपनी जातिके कर्मसे च्युत हो अशास्त्रीय जोड़े हुए धनके मद आदिसे जगत्को व्याकुल न करदेवै ॥ १८ ॥

अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ॥ आयव्ययौ च नियता  
वाकरान्कोशमेव च ॥ १९ ॥ एवं सर्वानिमान् राजा व्यवहारान्समा-  
पयन् ॥ व्यपोह्य किल्बिषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ४२० ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

टीका—राजा प्रारंभ किये हुए कार्योंकी सिद्धिको प्रतिदिन उनके अधिकारियोंके द्वारा देखै ऐसेही हाथी घोड़ोंको कि आज क्या आया और क्या गया और सोना चांदिके उत्पत्तिस्थानोंको और कोशागार ( खजाने ) को देखै व्यवहारके देखनेमें असमर्थभी राजा अपने धर्मोंको न छोड़े यह दिखानेके लिये कहेका फिरि कथनहै ॥ १९ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे इन सब ऋणादान आदि व्यवहारोंको तत्त्वसे निर्णय करि पूरा करता हुआ राजा सब पापोंको छोड़कर स्वर्ग आदिकी प्राप्तिरूप उत्कृष्ट गतिको प्राप्त होताहै ॥ ४२० ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतावष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥



## अथ नवमोऽध्यायः ॥

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैवं धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः ॥ संयोगे विप्रयोगे च  
धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ १ ॥ अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः  
स्वेदिवानि शम् ॥ विषयेषु च सर्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वंशे २

टीका-नत्वा पित्रोः पदद्वंद्वध्यात्वाशंकरमव्ययम् ॥ नवमाध्यायविवृतिः केशवेन म-  
योच्यते ॥ १ ॥ धर्मके लिये हित और आपसमें कभी चलनेवाला नहीं ऐसे मार्गमें  
स्थित और संयुक्त अथवा वियुक्त और परंपरासे चले आनेके कारणसे नित्य ऐसे  
पुरुष तथा पत्नीके धर्मोंको कहौंगा स्त्रीपुरुषके आपसके धर्ममें व्यतिक्रम होनेपर  
दोमेंसे एक करि सूचित किये गये राजाको दंडसेभी अपने धर्मकी व्यवस्था स्थापन  
करनी चाहिये इससे व्यवहारमें इसका कथन है ॥ १ ॥ अपने भर्ता आदि-  
कों करि स्त्रियां सदा वशमें रखने योग्य है निषिद्ध नहीं ऐसे रूप रस आदि विष-  
योमें प्रसंग करती हुई अपने वश करने योग्य है ॥ २ ॥

पितां रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥ रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न  
स्त्रीं स्वतन्त्र्यमर्हति ॥ ३ ॥ कालेऽदातां पितां वाच्यो वाच्य-  
श्चानुपयन्पतिः ॥ मृते भर्तरि पुत्रैस्तु वाच्यो मातुररक्षिता ॥ ४ ॥

टीका-विवाहसे पहले स्त्रीकी पिता रक्षा करता है पीछे पीछे तरुण अवस्था  
में भर्ता रक्षा करता है उसके अभावमें पुत्र तिस्से स्त्री किसी अवस्थामें स्वतंत्र  
न होय और जिसके पतिपुत्र नहीं है उसकी पिता आदिभी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥  
प्रदानके कालमें नहीं देता हुआ पिता निंदा योग्य होता है ऋतुके पहले प्रदान  
काल गौतमने कहा है और पति ऋतु कालमें पत्नीसे नहीं गमन कर्ता हुआ  
निंदायोग्य होता है और पतिके मरनेपर माताकी न रक्षा करनेवाला पुत्र निंदायो-  
ग्य होता है ॥ ४ ॥

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥ द्वयोर्हि कुलं  
योः शोर्कर्मवहेयुररक्षिताः ॥ ५ ॥ इमं हि सर्ववर्णानां पश्यन्तो ध-  
र्ममुत्तमम् ॥ यतन्ते रक्षितुं भार्या भर्तारो दुर्बला अपि ॥ ६ ॥

टीका-दुःशीलताके करनेवाले थोड़ेभी कुसंगसे स्त्री विशेष करि रक्षा करने  
योग्य हैं और बहुतका तौ क्या कहना है, और उनकी उपेक्षा करनेसे पिता  
भर्ताके दोनो कुलोंको संताप कराती है ॥ ५ ॥ सब ब्राह्मण आदि वर्णोंके



भार्या रक्षण धर्मको आगेके श्लोकमें कही हुई रीतिसे सब धर्मोंसे उत्तम जानते हुए अंधे पंगे आदिभी भार्याकी रक्षा करनेका यत्न करें ॥ ६ ॥

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥ स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जा-  
यां रक्षन् हि रक्षति ॥ ७ ॥ पतिभार्या संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जा-  
यते ॥ जायां यास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥ ८ ॥

टीका—जिस्से यत्नपूर्वक भार्याकी रक्षा करनेमें असंकीर्ण विशेष करि शुद्ध संततिके उत्पन्न करनेसे आपनी संततिको तथा शिष्टसमाचारको और पिता पितामह आदिके वंशको और आपको विशुद्ध संतति है कारण जिसका ऐसे और्ध्वदेहिक कर्मोंके लाभसे अपने धर्मकी भी रक्षा करता है तिस्से स्त्रियोंकी रक्षा करनेका यत्न करै ॥ ७ ॥ पति शुक्ररूपसे भार्यामें प्रवेश करिकै गर्भभावको प्राप्त हो उस भार्यामें पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है । तथा च श्रुतिः “ आत्मावै पुत्रनामासि ” इति ॥ जायाका वही जायात्व है जिस्से इसमें पति फिर उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथाविधम् ॥ तस्मात्प्रजाविशु-  
द्धयर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ ९ ॥ न कश्चिद्योषितः शूक्तः प्रसह्य  
परिरक्षितुम् ॥ एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥ १० ॥

टीका—शास्त्रसे विहित होय अथवा निषिद्ध होय जैसे पतिका स्त्री सेवन करती है वैसा शास्त्रोक्त पुरुषका सेवन करनेसे उत्कृष्ट और निकृष्ट पुरुषके सेवनसे निकृष्ट पुत्रको उत्पन्न करती है तिस्से संततिकी शुद्धिके लिये पत्नीकी यत्नसे रक्षाकरै ॥ ९ ॥ कोई बलसे रोकने आदिसेभी स्त्रीकी रक्षा करनेको नहीं समर्थ है वहांभी व्यभिचार होता है किंतु इन कहे हुए रक्षा करनेके उपायोंके योगसे वे रक्षा करनेको समर्थ हैं ॥ १० ॥

अर्थस्य संग्रहे चै न व्यये चैव नियोजयेत् ॥ शौचे धर्मेऽन्नपत्तयां  
च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥ ११ ॥ अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैरातंका  
रिभिः ॥ आत्मानमात्मना यास्तु रक्षयुस्ताः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

टीका—धनके संग्रहण करने तथा खरच करनेमें द्रव्य तथा शरीरके शुद्ध करनेमें और पतिकी सेवामें और अन्नके सिद्ध करने अर्थात् रसोईके बनानेमें और घरकी सामग्री शय्या आसन कुंड कढाह आदिके देखनेमें इसको लगावै ॥ ११ ॥ आस तथा आज्ञाकारी पुरुषों करि घरमें रोकी हुईभी रक्षित नहीं होती है जो दु-



इशीलतासे अपनी रक्षा नहीं करती है और जो धर्मज्ञतासे आप अपनी रक्षा करती है वेही सुरक्षित होती हैं इसीसे धर्म अधर्मका फल स्वर्ग नरककी प्राप्तिके उपदेशसे उनका संयम करना योग्य है ॥ १२ ॥

पांनं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽर्दनम् ॥ स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च  
नारीसंदूषणानि षट् ॥ १३ ॥ नैतां रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि  
संस्थितिः ॥ सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येवं भुञ्जते ॥ १४ ॥

टीका—मद्य पीना असत्पुरुषोंका संसर्ग पतिसे वियोग भ्रमण करना कुसमयमें सोना पराये घरमें रहना ये छः स्त्रीके व्यभिचार दोषके उत्पन्न करनेवाले हैं तिससे ये इनसे रक्षा करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ ये सुंदर रूपका विचार नहीं करती है और न इनका यौवन आदि अवस्थामें आदर होता है किंतु सुरूप होय अथवा कुरूप होय पुरुष है यही मानिके उसको भोगती है ॥ १४ ॥

पौश्वल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः ॥ रक्षिता यत्नतोऽपी  
ह भर्तृष्वेतां विकुर्वते ॥ १५ ॥ एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजाप-  
तिर्निसर्गजम् ॥ परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १६ ॥

टीका—पुरुषके दर्शनसे संभोग आदिकी इच्छा होनेके कारण और चित्तकी स्थिरता न होनेसे और स्वभावसे स्नेह रहित होनेके कारण यत्नसेभी रक्षा की गई ये व्यभिचारके आश्रयसे भर्ताओंमें विकार युक्त होजाती है ॥ १५ ॥ ऐसे दो श्लोकोमें कहे हुए इनके स्वभावको हिरण्यगर्भकी सृष्टिके समय उत्पन्न जानि पुरुष इनकी रक्षाके लिये उत्कृष्ट यत्न करे ॥ १६ ॥

शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनर्जवम् ॥ द्रोहभावं कुंचर्यां च स्त्री  
भ्यो मनु रकल्पयत् ॥ १७ ॥ नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः ॥ १८ ॥

टीका—शय्या आसन अलंकार करनेका स्वभाव काम क्रोध कुटिलता पराई हिंसा कुत्सित आचार ये सब मनुने सृष्टिकी आदिमें स्त्रियोंके लिये बनाये तिससे यत्नसे ये रक्षा करने योग्य हैं ॥ १७ ॥ स्त्रियोंकी जातकर्म आदि क्रिया मंत्रोंसे न होती है यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे मंत्र सहित संस्कार न होने कारण इनके अंतःकरण पापरहित नहीं होते हैं इन्द्रियां प्रमाण हैं और धर्ममें प्रमाण ऐसी श्रुति स्मृति रहित होनेसे धर्मज्ञ नहीं होती हैं और अमंत्र कहिये पापके दूरिकरनेवाले



मंत्रोंकरि रहित होनेके कारण पाप होनेपर भी उसके दूर करनेको नही समर्थ होती हैं झूठके समान स्त्रियां अशुभहैं यह शास्त्रकी मर्यादा है तिससे यत्नसे रक्षा करने योग्यहैं यह तात्पर्य है ॥ १८ ॥

तथा च श्रुतयो बह्व्यो निगीता निगमेष्वपि ॥ स्वालक्षण्यं परीक्षार्थं  
तासां शृणुत निष्कृतीः ॥ १९ ॥ तन्मे मातां प्रलुर्लुभे विचरन्त्यप  
तिव्रता ॥ तन्मे रेतः पितां वृत्तामि<sup>२</sup> त्स्यैतन्निर्देशनम् ॥ २० ॥

टीका—व्यभिचारशील होना यह स्त्रियोंका स्वभावहै यह कहा उसमें श्रुतिके प्रमाण लिखते हैं ॥ बहुतसे श्रुतियोंके वाक्य जैसे “ नचैतद्विद्मो ब्राह्मणाः सोऽब्राह्मणावा ॥ ” इत्यादिक निगमोमें स्त्रियोंकी स्वालक्षण्य कहिये व्यभिचार शीलताके जाननेके लिये पढी हैं उनमेंसे जो निष्कृतिरूप अर्थात् व्यभिचारके प्रायश्चित्तभूतहैं उन श्रुतियोंको सुनिये ॥ १९ ॥ कोई पुत्र अपनी माताके मानसिक व्यभिचारको जानिकै कहताहै कि मन वाणी काय और कर्मसे पतिसे भिन्न पुरुष की इच्छा नही करती है वह पतिव्रताहै उससे अन्य अपतिव्रता होती है मेरी माता अपतिव्रता हो पराये घरोंमें जाती हुई जो परपुरुषपर लोभयुक्त हुई उस परपुरुषके संकल्पसे दुष्ट माताको रजोरूप वीर्यको मेरा पिता शोधन करो इस प्रकृत स्त्रीकी व्यभिचार शीलताके मध्ये इतिकरणहै अंत जिनका ऐसे मंत्रके तीनिपाद सूचकहैं यह मंत्र चातुर्मास्य आदिमें काम देताहै ॥ २० ॥

ध्यायित्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा ॥ तस्यैष व्यभिचार  
स्य निह्वंशः सम्यगुच्यते ॥ २१ ॥ यादृग्गुणेन भर्ता स्त्री संयुज्ये  
त यथाविधि ॥ तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणैव निमग्रा ॥ २२ ॥

टीका—यह मंत्र मानसी व्यभिचारका प्रायश्चित्तरूपहै सो दिखाते हैं ॥ जो स्त्री पति जिसको नही चाहता ऐसे दूसरे पुरुषके साथ गमन करनेको मनसोंभी नही चाहती है उसके चित्तके चलायमान होनेका यह प्रायश्चित्तका मुख्य मंत्रहै भलीभांतिसे शोधनेवाले मनु आदिनें कहाहै माता शब्दका श्रवणहै तिससे यह पुत्र-हीका मुख्य प्रायश्चित्तरूप मंत्रहै माताका नही ॥ २१ ॥ स्त्री विवाह आदिकी विधिसे जैसे भले बुरे पतिसे संयुक्त होती है उसके गुण उस भर्ताके समान होजाते हैं जैसे समुद्रमें मिलकर मीठे जलकी नदी खारी जलकी होजातीहै ॥ २२ ॥

अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ॥ शारङ्गो मन्दर्पालेन ज



(३१०)

मनुस्मृतौ

गार्माभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥ एतांश्चान्यांश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्र  
सूतयः ॥ उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैःस्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥२४॥

टीका—इस उत्कर्षमें दृष्टांत देते हैं ॥ जैसे निकृष्टयोनि अक्षमाला नाम वसिष्ठ  
के साथ व्याही गई और चटकानाम मंदपालनाम ऋषिको व्याही गई ये दोनों  
पूज्यताको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ ये तथा औरभी निकृष्टसे उत्पन्न सत्यवती आदि  
स्त्रिया अपने २ पतिके गुणोंसे उत्कृष्टताको प्राप्त हुई ॥ २४ ॥

एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा ॥ प्रेत्येह च सुखोद  
कान्प्रजार्धमन्निबोधत ॥२५॥ प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृह  
दीप्तयः ॥ स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥२६॥

टीका—यह सदा शुभस्त्रीपुरुषोंके विषयक लोकाचार कहा अब इस लोक  
तथा परलोकमें आगेको सुखके कारण ऐसे क्या क्षेत्रिका संतान है अथवा बीजी-  
का इत्यादि प्रजाके धर्मोंको सुनिये ॥ २५ ॥ यद्यपि इनकी रक्षाके लिये दोष कहे  
हैं तिसपरभी उपाय होसकनेके कारण दोषका अभावहै ये स्त्रियां बड़े उपकाररूप  
गर्भके उत्पन्न करनेके लिये बहुतसे कल्याणके पात्रहैं तिससे वस्त्र अलंकार आदिके  
देनेसे बड़े मानके योग्य और अपने घरकी शोभा करनेवाली हैं स्त्री और श्री  
घरोंमें तुल्यरूपहैं इनमें कुछ विशेष नहीं हैं जैसे श्रीके बिना घर शोभित नहीं  
होताहै ऐसेही स्त्रीके बिनाभी शोभा नहीं पाताहै ॥ २६ ॥

उत्पादनमपत्यस्य तातस्य परिपालनम् ॥ प्रत्येहं लोकयात्रा  
याः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥२७॥ अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा  
रतिरुत्तमा ॥ दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ॥२८॥

टीका—संतानका उत्पन्न करना और उत्पन्न हुएका पालना और प्रतिदिन  
अतिथि मित्र आदिका भोजन आदि लोकमें व्यवहारकी प्रत्यक्ष भार्याही कारण  
है ॥ २७ ॥ संततिका उत्पन्न करना कहभी चुके परन्तु पूजाकी योग्यता सूचित  
करनेके लिये फिर कहाहै अग्निहोत्र आदि धर्मके कार्य सेवा और उत्कृष्ट प्रीति  
तथा संतानके उत्पन्न करने आदिसे पितरोंका और अपना स्वर्गका निवास ये  
सब कार्य स्त्रीके आधीनहै ॥ २८ ॥

पतिं या न अभिचरति मनोवाग्देहसंयता ॥ सा भर्तृलोकांनमोति  
सद्भिः सांघ्वीति चोच्यते ॥२९॥ व्यभिचारार्तुं भर्तुः स्त्री लोकेप्राप्नो



तिं निन्द्यताम्॥सृगालं योनिं चाप्नोति पापं रोगैश्च पीड्यते ॥ ३० ॥

टीका—जो स्त्री मन वाणी तथा देहके संयम हो मन वाणी तथा देहसे व्यभिचारको नहीं प्राप्त होती है वह पतिके साथ अर्जन किये हुये स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होती है और इस लोकमें सज्जनों करि साध्वी कही जाती है ॥ २९ ॥ दूसरे पुरुषके योगसे लोकमें निंदाको और दूसरे जन्ममें स्यारीकी योनिको पाती है और क्षयरोग आदिसे पीडित होती है स्त्री धर्म कहभी चुके परन्तु ये दो श्लोक उत्तम संतानके निमित्त है इस कारण बहुत प्रयोजनके जानि फिर पढ़े ॥ ३० ॥

पुत्रं प्रेत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः ॥ विश्वं जन्यमिमं  
पुण्यमुपन्यासं निबोधत ॥ ३१ ॥ भर्तुः पुत्रं विजानन्ति श्रुतिर्द्वै-  
धं तु भर्तारि ॥ आहुरुत्पादकं केचिदपरे क्षेत्रिणं विदुः ॥ ३२ ॥

टीका—पुत्रके मध्ये शिष्ट मनु आदिकोंने और पहले उत्पन्न हुए महर्षियोंने यह कहा है अब सर्व जनोंका हितकारी आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ३१ ॥ भर्ताका पुत्र होता है यह मुनि मानते हैं भर्तामें दो प्रकारकी श्रुति है कोई विना व्याहेभी उत्पन्न करनेवाले भर्ताको उस पुत्रसे पुत्रवाला कहते हैं और अन्य तो नहीं भी उत्पन्न करनेवाले व्याहनेवाले भर्ताको दूसरे करि उत्पन्न किये हुए पुत्र करि पुत्रि कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् ॥ क्षेत्रबीजसमायो-  
गात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥ विशिष्टं कुत्रचिद्वीजं स्त्रीयोनिस्त्वे-  
वं कुत्रचित् ॥ उभयं तु संमं यत्र सां प्रसूतिः प्रशंस्यते ॥ ३४ ॥

टीका—धान आदिके उत्पत्तिके स्थानको क्षेत्र कहते हैं उसके तुल्य स्त्री मुनियों करि कही गई है और पुरुष धान आदिके बीजके तुल्य कहा गया है यद्यपि रेत बीज है परन्तु उसका आधार होनेसे पुरुष बीज कहा जाता है क्षेत्र और बीजके योगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है इस भांति दोनोको विशिष्ट कारण होनेसे यह कहना योग्य है ॥ ३३ ॥ क्या जिसका क्षेत्र है उसका अपत्य है अथवा जिसका बीज है इसपर कहते हैं ॥ कहीं बीज प्रधान है जे अनियुक्तमें उत्पन्न हुआ है इस न्यायसे बीजि चंद्रमाके बुध उत्पन्न हुआ तैसेही व्यास ऋष्यशृंग आदि बीजवालोहीके पुत्र हुए कहीं क्षेत्रकी मुख्यता है जैसे “यस्तत्पुत्रः प्रमीतस्य” यह कहा है इसीसे विचित्रवीर्यके क्षेत्र क्षत्रियमें ब्राह्मण करि उत्पन्न किये गयेभी धृतराष्ट्र



आदिक क्षेत्रिय क्षेत्रवालेहीके पुत्र हुए और जहां बीज और योनि दोनोंकी समताहै वहां व्याहनेवालाही उत्पन्न करनेवालाहै उसकी अच्छी संतति होतीहै ॥ ३४ ॥

बीजस्य चैवं योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते ॥ सर्वभूतप्रसूतिर्हि  
बीजलक्षणलक्षिता ॥ ३५ ॥ यादृशं तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादि  
ते ॥ तादृगोर्हति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः ॥ ३६ ॥

टीका—वहाँ बीजकी प्राधान्यकी अपेक्षासे कहते हैं ॥ बीज और क्षेत्रमें बीजप्रधान कहा जाताहै तिससे संपूर्ण पंचभूतोंसे बने हुए ओकी उत्पत्ती बीजमें स्थित वर्ण रूपके चिन्होंहीसे उपलक्षित दिखाई देती है ॥ ३५ ॥ जिस जातिका धान आदि बीज ग्रीष्म आदि कालमें जोतने आदि करि संस्कार किये हुए खेतमें बीया जाताहै उसकी जातिहीका वह बीज अपने वर्ण आदिकों करि उपलक्षित उस खेतमें उत्पन्न होताहै ॥ ३६ ॥

इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती यो निरुच्यते ॥ न च योनिं गुणा  
न्काश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु ॥ ३७ ॥ भूमावप्येककेदारे कालोप्ता  
नि कृषीवलैः ॥ नानारूपाणि जायन्ते बीजानीह स्वभावतः ॥ ३८ ॥

टीका—इस भाँति अन्वयके प्रकार बीजकी प्राधान्यता दिखाकै अब व्यतिरेक मुखसे दिखानेको कहते हैं ॥ निश्चय यही भूमि भूतोंसे बने हुए वृक्ष गुल्मलता आदिकी नित्य योनि कहिये क्षेत्ररूप कारण सब लोगों करि कही जाती है और भूमिनाम योनिके किन्ही मट्टीरूप आदि स्वरूप धर्मोंको बीज अपने विकार अंकुर शाखा आदिकी अवस्थाओंमें नहीं भजताहै तिससे योनिके गुणोंके न वर्त्तमान होनेसे क्षेत्रकी प्रधानता नहीं ॥ ३७ ॥ भूमिमें एकही क्यारिमे किसानोकरि समयमें बोये गये धान मूंग आदि बीजके स्यावसे नानारूप उत्पन्न होते हैं और भूमिके एक होनेसे एकरूप नहीं होते हैं ॥ ३८ ॥

ब्रीहयः शालयो मुद्रास्तिला माषास्तथा यवाः ॥ यथा बीजं प्ररोहं  
न्ति लंशुनानीक्ष्वस्तथा ॥ ३९ ॥ अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नो-  
पपद्यते ॥ उप्यते यद्वि यद्वि जं तत्तदेव प्ररोहति ॥ ४० ॥

टीका—ब्रीहि कहिये साठी धान और शालि कहिये कलम धान आदि और मूंग तिल उडद तथा जव बीजके स्वभावको नहीं छोडकर नाना रूप उत्पन्न होते हैं ॥ ३९ ॥



धान बोयेसे मुंग आदि उत्पन्न होय यह संभव नहीं होताहै ॥ जिस्से जो जो बीज बोया जाताहै सोई उगताहै ऐसे बीजके गुणोके अनुवर्तन कहिये साथ रहनेसे और क्षेत्रके धर्म न रहनेसे धान आदिमें और मनुष्योमेंभी बीजकी मुख्यताहै ॥ ४० ॥

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ॥ आयुष्कामेन वर्तव्यं  
न जातुं पर्योषिति ॥ ४१ ॥ अत्र गार्था वायुगीताः कीर्तयन्ति  
पुराविदः ॥ यथा बीजं न वर्तव्यं पुंसां परंपरिग्रहे ॥ ४२ ॥

टीका—अब क्षेत्रकी प्राधान्यता कहते हैं ॥ वह बीज स्वाभाविक बुद्धिवाले और पिता आदि करि सिखाये और वेद तथा उसके अंगोंके मानने वाले आयुकी इच्छा करनेवालेको पराई स्त्रीमें कभी न बोना चाहिये ॥ ४१ ॥ बीते हुए कालके जानने-वाले इस आर्यमें वायुकी कही हुई गाथा अर्थात् छंद विशेष करि युक्त वाक्योंको कहते हैं जैसे परपुरुष करि परस्त्रीमें बीज न बोना चाहिये यह ॥ ४२ ॥

नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्धयतः ॥ तथा नश्यति वै  
क्षिप्रं बीजं परंपरिग्रहे ॥ ४३ ॥ पृथोरपीमां पृथिवीं भार्या पूर्वविदो  
विदुः ॥ स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् ॥ ४४ ॥

टीका—जैसे और करि वेधे हुए करसायल मृगके उसी छेदमें वेधने वाले दूसरेका फेंका हुआ बाण निष्फल होताहै पहले मारनेवाले करि मारे जानेके कारण उसीको मृगका लाभ होजाताहै ऐसे परस्त्रीमें बोया गया बीज शीघ्रही निष्फल होताहै क्योंकि गर्भ ग्रहणके पीछे क्षेत्रीको अपत्य मिलताहै ॥ ४३ ॥ इस पृथिवीको पहले पृथुराजा करि ग्रहण करनेसे अनेक राजोंका संबंध होनेपरभी पृथुकी भार्या पहले भूतकालके जाननेवाले जानते हैं और स्थाणु जो टूट आदि है उन कोदकर जो खेत करताहै उसीका वह क्षेत्र कहते हैं ऐसेही मृग आदिमें जिसने पहले शर आदि चलायाहै उसीका वह मृग कहते हैं ऐसे पहले परिग्रह करनेवालेकी स्वामिता होनेसे व्याहनेवालेहीकी संतान होती है उत्पन्न करनेवालेकी नहीं ॥ ४४ ॥

एतावानेव पुरुषो यज्यात्मा प्रजेति हं ॥ विप्राः प्राहुस्तथा चैतं  
द्यौर्भर्ता सां स्मृताङ्गना ॥ ४५ ॥ न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्या  
विमुच्यते ॥ एवं धर्मं विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्मितम् ॥ ४६ ॥



टीका-पुरुष एकही नहीं होता है किंतु भार्या अपना देह और अपत्य कहिये संतान इन सर्वोपमेत पुरुष होता है यह वेदके जानने वाले ब्राह्मण कहते हैं जो भर्ता है वही भार्या कही गई है उसमें उत्पन्न किया हुआ अपत्य भर्ताहीका होता है ॥ ४५ ॥ निष्कय वचना और विसर्ग दान दोनों बातोंसे स्त्री भर्ताके भार्यापनसे नहीं छूटती है ऐसे पहले प्रजापतिके कहे हुए नित्य धर्मको हम मानते हैं इस भाँति मोल आदिसेभी पराई स्त्रीको अपने आधीन करिके उसका उत्पन्न किया हुआ पुत्र आदि संतान क्षेत्रवालेहीका होता है बीजवालेका नहीं ॥ ४६ ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते॥ सकृदाह ददानीति त्री  
प्येतांनि सतां सकृत् ॥ ४७ ॥ यथा गोऽश्वोऽद्विदासीषु महिष्यजा  
विकासु च॥ नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि ॥ ४८ ॥

टीका-पिता आदिके धनमें भाईयोंका धर्मसे किया हुआ विभाग एकही बार होता है फिर अन्यथा नहीं किया जाता है तैसेही पिता आदि करि कन्या एकही-बार किसीको दी गई फिर दूसरेको नहीं दी जाती है ऐसेही और करि पहले और को दी हुई होनेपर पीछे पिता आदि करि प्राप्त हुई भी उसमें उत्पन्न किया हुआ पुत्र बीजवालेका नहीं होता है इस लिये यह कहा है तैसेही कन्यासे भिन्नभी आदि द्रव्यमें एकहीबार देता हों यह कहता है न कि दूसरेको देताहों यह ये तीन बातें सज्जनोंकी एकवार होती ॥ ४७ ॥ जैसे पराई गौ घोड़ी ऊँटिनी दासी भैंसि बकरी भेड़ इनमें अपने बैल आदिको छोड़ बछड़े आदिका उत्पन्न करनेवाला उसको नहीं पाता है तैसेही पराई स्त्रियोंमें उत्पन्न करनेवाला संतानको नहीं पाता है ॥ ४८ ॥

येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः ॥ ते वै सूर्यस्य जातस्य  
न लभन्ते फलं क्वचित् ॥ ४९ ॥ यदन्यगोषु वृषभो वर्त्सानां जनं  
येच्छतम् ॥ गोमिनामेवं ते वर्त्सा मोघं स्कन्दितमर्षभम् ॥ ५० ॥

टीका-जे क्षेत्रके स्वामी नहीं है ऐसे बीजके स्वामी पराये क्षेत्रमें बीज बोते हैं वे उसमें उत्पन्न हुए धान्य आदिके फलको किसी देशमें नहीं पाते हैं यह दृष्टांत है ॥ ४९ ॥ जो औरकी गौओंमें बैल सौभी बछड़े उत्पन्न करे तौ वे सब बछड़े स्त्री जो गौ है उसके स्वामीके होते हैं न कि बैलके स्वामीके और बैलका जो वीर्य सीचता है वह बैलके स्वामीका निष्फलही होता है जैसे गोऽश्वोष्ट्रे इस श्लोकसे



उत्पन्न करनेवाला प्रजाका पानेवाला नहीं होता है इसमें यह दृष्टांत कहा है ॥ ५० ॥

तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परिक्षेत्रप्रवापिणः ॥ कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बी  
जी लभते फलम् ॥ ५१ ॥ फलं त्वनभिः संधाय क्षेत्रिणां बीजि  
नां तथा ॥ प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्यो निर्गरीयसी ॥ ५२ ॥

टीका—जैसे गौ आदिके गर्भोंमें वैसेही स्त्रीकी संतानमें स्वामीपनसे रहित होते हुए पराई भार्यामें जो बीज बोते हैं वे क्षेत्रके स्वामियोंहीका संतानरूप प्रयोजन करते हैं और बीजका सीचने वाला संतानरूप फलको नहीं पाता है ॥ ५१ ॥ जो इसमें जो संतान उत्पन्न होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा इस भांति जहां नियम नहीं किया गया है वहां निस्संदेह कही हुई रीतिसे खेतवालेका संतान है बीजसे क्षेत्र बलवान् है ॥ ५२ ॥

क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते ॥ तस्येह भार्गवो दृष्टौ  
बीजी क्षेत्रिकं एव च ॥ ५३ ॥ ओर्धवाताहतं बीजं यस्य क्षेत्रे  
प्रेरोहति ॥ क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजं न वर्ता लभते फलम् ॥ ५४ ॥

टीका—जो इसमें संतान होगा वह हमारा तुम्हारा दोनोंका होगा ऐसे कह कर वह क्षेत्र स्वामी करि बीज बोनेके लिये जो बीजवालेको दिया जाता है उस संतानके लोकमें बीजवाला और खेतवाला दोनों स्वामी पानेवाले देखे गये हैं ॥ ५३ ॥ जलके वेग तथा पवन करि दूसरेके खेतसे लाया गया बीज जिसके खेतमें उत्पन्न होता है वह बीज उस खेतके स्वामीहीका होता है जिसने बीज बोया है वह उसके फलको नहीं पाता है ऐसे अपनी भार्याके भ्रमसे पराई भार्याके गमनमें मेरा यह पुत्र होगा ऐसा जाननेपर क्षेत्रवालेहीका पुत्र है यह देखाया गया है ॥ ५४ ॥

एष धर्मो गवांश्चस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च ॥ विहंगमहिषीणां च  
विज्ञेयः प्रसवं प्रति ॥ ५५ ॥ एतद्धः सौरफलगुत्वं बीजयोन्योः प्र  
कीर्तितम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि योषितां धर्ममार्पदि ॥ ५६ ॥

टीका—गौ घोड़ी दासी ऊंटनी बकरी और भेड़ इनकी संततिमेंभी यही व्यवस्था जाननी चाहिये जो क्षेत्रका स्वामीकीही गौ आदिकी संततिकी स्वामी है बैल आदिका स्वामीकी स्वामी नहीं और नियम करनेपर तौ दोनों संततिके स्वामी होते-



है ॥ ५५ ॥ यह बीज तथा योनिकी प्रधानता और अप्रधानता तुमसे कही इस पीछे स्त्रियोंके संतान न होनेमें जो करना चाहिये सो कहोंगा ॥ ५६ ॥

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ॥ र्यवीयसस्तु यां भा  
र्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठो र्यवीयसो भार्या र्यवी  
या न्वार्ग्रजस्त्रियम् ॥ पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यर्नापदि ॥ ५८ ॥

टीका—जेठे भाईकी स्त्री छोटे भाईकी गुरु पत्नी होती है और छोटे भाईकी स्त्री बड़े भाईकी पुत्रवधू मुनियोंने कही है ॥ ५७ ॥ जेठा और छोटा दोनों भाई आपसमें वह उसकी और वह उसकी भार्यामें गमन करिके संतानका अभाव न होनेपर नियुक्त भी पतित होते हैं ॥ ५८ ॥

देवराट्ठा सपिण्डाट्ठा स्त्रिया सम्यङ्गियुक्तया ॥ प्रजेप्सिताधिगन्त-  
व्या संतानस्य परिक्षये ॥ ५९ ॥ विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो  
वाग्यतो निशि ॥ एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥ ६० ॥

टीका—संतानके न होनेमें पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दी गई स्त्री देवर अथवा अन्य सपिण्डसे अच्छे प्रकारसे जो आगे कहा जायगा ऐसे घृताक्त आदि नियमवाले पुरुषके गमनसे वांछित प्रजा उत्पन्न करावै वांछित कहनेसे कार्यके अयोग्य पुत्र उत्पन्न होनेसे फिरि गमन पाया जाता है ॥ ५९ ॥ विधवामें इस कहनेसे जाना गया कि संतान उत्पन्न करनेयोग्य पतिके न होनेपर यह है इससे पतिके जीवते हुएभी अयोग्य पति आदि गुरुओं करि आज्ञा दिया हुआ धीसे सब शरीरसे लेप करि मौन हो रात्रिमें एक पुत्र उत्पन्न करै दूसरा नहीं ॥ ६० ॥

द्वितीयमेके प्रजनं मन्यन्ते स्त्रीषु तद्विदः ॥ अनिवृत्तं नियोगार्थं प-  
श्यन्तो धर्मतस्तयोः ॥ ६१ ॥ विधवायां नियोगार्थं निर्वृते तु  
यथाविधि ॥ गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तयैतां परस्परम् ॥ ६२ ॥

टीका—नियोगसे पुत्र उत्पन्न करनेकी विधिके जाननेवाले अन्य आचार्य अपुत्र समानहै यह शिष्टोंके कहनेसे प्राप्त नियोगके प्रयोजनको मानते हुए स्त्रियोंमें दूसरे पुत्रका उत्पन्न करना धर्मसे मानते हैं ॥ ६१ ॥ विधवा आदिमें नियोगका प्रयोजन गर्भाधान शास्त्रकी रीतिसे संपन्न होनेपर जेठा भाई और छोटे भाईकी स्त्री आपसमें गुरुके समान और पुत्रवधूके समान व्यवहार करै ॥ ६२ ॥



नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्तेयातां तु कर्मतः ॥ तार्तुभौपति<sup>१</sup>तौ  
 स्यातां स्नुषागुरुतल्पगौ ॥ ६३ ॥ नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्त  
 व्या द्विजातिभिः ॥ अन्यस्मिन्हि नियुजाना धर्मं हन्युः सनातनम् ६४

टीका—आपसकी भार्याओंमें नियुक्त जेठे और छोटे भाई दोनो घृत आदि  
 के विधानको छोड़ि जो अपनी इच्छासे वतैं तौ स्नुषागामी और गुरुदारगामी  
 दोनो पतित होजाय ॥ ६३ ॥ इस भांति नियोग कहिके दूषण देनेको कहते है  
 ब्राह्मण आदिकों करि विधवा स्त्री भर्तासे अन्यदेवर आदिमें नही नियोग करने  
 योग्यहै जिस्से स्त्रीको अन्यमें नियोग कराते हुए वे स्त्रियोंका अनादि सिद्ध  
 एक पतिभावके धर्मको नाश करते हैं ॥ ६४ ॥

नोद्गाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ॥ न विवाहविधावु  
 त्तं विधवावेदनं पुनः ॥ ६५ ॥ अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो  
 विगर्हितः ॥ मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशंसति ॥ ६६ ॥

टीका—“ अयमणुदेवं ” इत्यादिक विवाहके मंत्रोंमें किसी शास्त्रमें नियोग नही  
 कहाहै और न कहीं विवाहके विधान करनेवाले शास्त्रोंमें दूसरे पुरुषके साथ  
 विवाह कहाहै ॥ ६५ ॥ जिस्से यह पशु संबंधी मनुष्योंकाभी व्यवहार विद्वानों  
 करि निंदितहै जो यह अधर्मी वेननामराजाके राज्यके समय करनेयोग्य  
 कहा गया इसी वेनसे लगाकर प्रवृत्त यह नियोग आदि मानहै इसलिये  
 निंदा किया जाताहै ॥ ६६ ॥

सं महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा ॥ वर्णानां संकरं चक्रे  
 कामोपहतचेतनः ॥ ६७ ॥ ततः प्रभृति यो मोहोत्प्रमीतपतिकां  
 स्त्रियम् ॥ नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति सांधवः ॥ ६८ ॥

टीका—वह वेन पहले समयमें संपूर्ण पृथ्वीका पालन करता भया इसीसे  
 राजर्षियोंमें श्रेष्ठहै धर्मात्मापनसे नही, कामसे उपहत कहिये नष्टहै बुद्धि जिसकी  
 ऐसे वेनने भाईकी भार्यामें गमन करनारूप वर्णसंकर चलाया ॥ ६७ ॥ वेनके  
 समयसे लगाकै जो जिसका पति मरिगयाहै ऐसी स्त्रीमें शास्त्रका अर्थ न जान  
 संतानके लिये देवर आदिमें नियुक्त करताहै सज्जन उसकी निश्चय करि निंदा  
 करते है यह तौ अपना कहा हुआ नियोगका निषेध कलियुगके लिये है ॥ ६८ ॥



यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः ॥ तामनेन विधा-  
नेन निजो विन्देत देवरः ॥ ६९ ॥ यथाविध्यधिगम्येनां शुक्लवस्त्रां  
शुचिब्रताम् ॥ मिथो भजेतामसवात्सकृत्सकृद्वतावृत्तौ ॥ ७० ॥

टीका—नियोगके प्रकरणसे कन्यागत विशेष कहते हैं ॥ जिस कन्याका वाणीसे दान करनेपर भर्ता मरिजाय उसको इस आगे कहे हुए विधानसे भर्ताका सगा भाईव्याहि लेवै ॥ ६९ ॥ वह देवर विवाहकी विधिसे इसको अंगीकार करि श्वेत वस्त्रोंको धारण करनेवाली और काय तथा मनकी शुद्धतासे शोभायमान उस स्त्रीमें गर्भधारण होने तक एकांतमें ऋतुऋतुमें एकवार गमन करै ऐसे कन्याके नियोग प्रकारसे और विवाहके न ग्रहण करनेसे गमनके उपदेशसे जिसके लिये वाग्दत्ता उसी वह संतति होती है ॥ ७० ॥

न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः ॥ दत्त्वा पुनः प्रयच्छ-  
न्निर्हं प्राप्नोति पुरुषानृतम् ॥ ७१ ॥ विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां  
विगर्हिताम् ॥ व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम् ॥ ७२ ॥

टीका—किसीके लिये वाणीसे कन्याको देकर उसके मरनेपर दानके गुणदोषका जाननेवाला पुरुष उसको दूसरेके लिये दान न करै जिसे एकके लिये देकर दूसरेको देता हुआ पुरुषानृत दोषको प्राप्त होता है सप्तपदी करणके अर्थात् सात्मा बरोके न होनेसे भार्यापनके सिद्ध न होनेके कारणसे फिर दानकी शंका होनेपर यह वचन कहा है ॥ ७१ ॥ अद्विरेवद्विजाश्याणां इत्यादि विधिसे ग्रहण करिकैभी वैधव्य आदि युक्त रोगिणी और जिसकी योनिके क्षत होनेका दोष लगा है और जो अधिक तथा हीन अंगोंको छपाकै व्याही गई ऐसी और भावरें पडनेसे पहले जानी गई कन्याको त्याग करै उसके त्यागनेमें दोष नहीं है इस लिये यह कहा है त्यागके लिये नहीं ॥ ७२ ॥

यस्तु दोषवतीं कन्यामनारुयायोपपादयेत् ॥ तस्य तद्वितीथं कु-  
र्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः ॥ ७३ ॥ विधाय वृत्तिं भार्यायां प्रवसेत्का-  
र्यवान्नरः ॥ अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४ ॥

टीका—जो दोषयुक्त कन्याके दोषोंके विना कहे दान करता है उस दुरात्मा कन्या देनेवालेके दानको लौटा देनेसे व्यर्थ करै यहभी त्यागमें दोष न होनेके



लिये कहा है ॥ ७३ ॥ काम पडनेपर मनुष्य पत्नीके अन्न वस्त्रका प्रबंध करि दूसरे देशको जाय क्योंकि भोजनादिक न होनेसे पीडित शीलवालीभी स्त्री दूसरे पुरुषके मेलको प्राप्त होजायगी ॥ ७४ ॥

विधाय प्रोषिते वृत्ति जीवेन्निर्यममास्थिता ॥ प्रोषिते त्वविधायै  
व जीवेच्छैलपैरगर्हितैः ॥ ७५ ॥ प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽ  
ष्टौनरःसमाः ॥ विद्यार्थं षट् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वर्त्सरान् ७६

टीका-भोजन वस्त्र आदि देकर पतिके परदेश जानेपर देहका अलंकार करने तथा पराये घरमें जानेसे रहित हो जीवै और भोजन वस्त्र न देकर जानेपर सूतके कातने आदि अनिदित कामोंसे जीविका करै ॥ ७५ ॥ गुरुकी आज्ञाके करने आदि धर्मकार्यके लिये परदेशमें गया पति पत्नीको आठवर्षतक राह देखनेयोग्य है तिसके उपरांत पतिके समीप जाय सोई वसिष्ठने कहा है कि परदेशी की स्त्री आठ वर्षतक स्थित रहै उपरांत पतिके पास जाय और विद्याके लिये परदेशमें गया हुआ पति छवर्ष तक राह देखनेयोग्य है और अपनी विद्या आदिसे यशके लिये परदेशमें गया हुआभी छवर्ष और दूसरी भार्यासँ भोग आदि करनेके लिये गया हुआ तीनवर्ष तक राह देखने योग्य है ॥ ७६ ॥

सर्वत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्ती योषितं पतिः ॥ ऊर्ध्वं संवत्सरं त्वेनां  
दायं हृत्वा न संवसेत् ॥ ७७ ॥ अतिक्रामेत्प्रमत्तं यां मत्तं रोगात्तमे  
व वा ॥ सा त्रीन् मासान् परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा ॥ ७८ ॥

टीका-पतिसे द्वेष करती हुई स्त्रीको एकवर्ष तक देखै तिसके उपरांतभी द्वेष माननेवालीको अपने दिये हुए अलंकार आदि धनको लेकर उससे गमन न करै भोजन वस्त्र तौ देना होगा ॥ ७७ ॥ जो स्त्री जुआ आदि प्रमाद वालेको अथवा मद उत्पन्न करनेवाली वस्तुके पीने आदिसे मतवारेको अथवा सेवा आदि न करनेसे जो तिरस्कार करै उसके अलंकार शय्या आदि लेकर तीन महीने तक गमन नकरै ॥ ७८ ॥

उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापैरोगिणम् ॥ न त्यागोऽस्ति द्विषं  
न्त्याश्च न च दायोपवर्तनम् ॥ ७९ ॥ मद्यपासाधुवृत्ता च प्रतिकू  
ला च यां भवेत् ॥ व्याधिता वांधिवेत्त्या हिंसाऽर्थं ग्री च सर्वदा ८०



( ३२० )

धनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका-उन्मत्त कहिये बात आदि दोषके क्षोभसे जो प्रकृतिमें नहीं स्थितकी और पतितकी और ग्यारहें अध्यायमें जो कहा जायगा ऐसे नपुंसककी और बीजरहितकी और कोढ़ आदि पापरोग करि युक्त पतिकी सेवा न करनेवाली स्त्रीका त्याग नहीं है और उसका धन लेना चाहिये ॥ ७९ ॥ निषिद्ध मद्यपान करनेवाली और निषिद्ध आचारवाली और पतिसे प्रतिकूल चलनेवाली और कुष्ठ आदि रोग करि युक्त और भृत्य आदिकी ताड़ना करनेवाली और सदा बहुत स्वर्च करनेवाली जो स्त्री होय तौ उसके रहनेपरभी दूसरा विवाह करना चाहिये ॥ ८० ॥

वन्ध्याष्टमेऽधि वेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ॥ एकदशे स्त्रीजननी  
सद्यस्त्वप्रियंवादिनी ॥ ८१ ॥ या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव  
शीलतः ॥ सांनुज्ञायाधिवेत्तन्या नैवमान्या चैव कर्हिचित् ॥ ८२ ॥

टीका-पहले ऋतुधर्मसे लगकै जिसके आठ वर्षतक संतति न होय तौ आठमें वर्ष दूसरा विवाह करना चाहिये और जिसके संतान मरजाते होंय उसके रहित देशमें वर्ष और स्त्रीसंततिवालीके ग्यारहें वर्ष और अग्रिय बोलनेवालीके तौ शीघ्रही अन्य विवाह करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगिणी होनेपरभी पतिके अनुकूल होय और शीलवाली होय उसकी आज्ञा लेकर दूसरा विवाह करना चाहिये कबी यह अपमान करनेयोग्य नहीं है ॥ ८२ ॥

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेदुषिता गृहात् ॥ सा सद्यः सन्निरो  
द्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ ॥ ८३ ॥ प्रतिषिद्धापि चैवा तु मद्यं  
मभ्युदयेष्वपि ॥ प्रेक्षासमाजं गच्छेद्वा सा दण्ड्या कृष्णलानि षट् ८४

टीका-जो स्त्री दूसरा विवाह करनेपर कुपित हो घरसे निकलै वह उसी दिन रस्सी आदिसे बांधिकर राखनेयोग्य है और कोप दूर होने तक पिता आदिके समीप छोड़नेयोग्य है ॥ ८३ ॥ जो क्षत्रिय आदिकी स्त्री भर्ता आदिके मने करनेपरभी विवाह आदि उत्सवोंमेंभी निषिद्ध मद्यको पीवै अथवा नाच आदिमें स्थित जनोंके समूहमें जाय वह छ रती सुवर्ण व्यवहारके प्रकरणसे राजा दंड करने योग्य है ॥ ८४ ॥

यदि स्वाश्चापरोश्चैव विन्देरन्योषितो द्विजाः ॥ तासां वर्णक्रमेण  
स्याज्यैष्ठ्यं पूजा च वैश्वं च ॥ ८५ ॥ भर्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मका  
र्यं च नैत्यकम् ॥ स्वां चैव कुर्यात्सर्वेषां नैवजातिः कथंचन ॥ ८६ ॥



टीका—जो द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपनी जातिकी तथा दूसरी जातिकी स्त्रियोंको व्याहै तौ उनका द्विजातिके क्रमसे वाणीका सत्कार और दायविभागकी उत्कर्षताके लिये वस्त्र अलंकार आदिके देनेसे जेठेपनकी पूजा और घरभी प्रधान होय अर्थात् सवातें ब्राह्मणीकी अधिक होंय उससे कम क्षत्रियाकी उससे कम वैश्याकी यही क्रम सब वर्णोंमें जानिये ॥ ८५ ॥ भर्ताके देहकी परिचर्या कहिये टहल और अन्न देना आदि धर्मका काम तथा भिक्षाका देना अभ्यागतोंको परोसना और होमकी द्रव्योंका देना आदि प्रतिदिनका कर्म द्विजातियोंके सजातिहीकी स्त्री करै दूसरी जातिकी कभी न करै ॥ ८६ ॥

यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्या स्थितयान्यया॥यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव संः॥८७॥ उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सट्टशाय च ॥ अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥ ८८ ॥

टीका—जो अपनी जातिकी स्त्रीके निकट होनेपर देहकी सेवा आदि कर्मोंको अन्य जातिकी स्त्रीसे मूर्खताके कारण कराताहै वह जैसे ब्राह्मणीमें शुद्रसे उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल होता है वैसेही पूर्व ऋषियों करि देखा गयाहै ॥ ८७ ॥ कुल तथा आचार आदिसे उत्कृष्ट और सुंदर रूपयुक्त और समान जातिके वरको विवाह समयके अयोग्यभी आठवर्षकी कन्या व्याहि देवे इस प्रकारसे धर्म नहीं हीन होताहै इस कालसे पहलेभी कन्याको ब्राह्मण विवाहकी विधिसे देवै ॥ ८८ ॥

काममामरणात्तिष्ठेद्देहं कन्यतुमंत्यपि॥नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८९॥ त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यतुमती सती ॥ ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सट्टशं पतिम् ॥ ९० ॥

टीका—उत्पन्नहै ऋतुधर्म जिसके ऐसी कन्या मरणपर्यंत पिताके घरमें रहै सो अच्छा परंतु विद्या और गुणों करि रहितको पिता आदि कभी न देवै ॥ ८९ ॥ पिता आदि करि गुणवान् वरको नहीं दी गई कन्या ऋतुमती होनेपर तीनि वर्ष राह देखे फिरि तीनि वर्षके उपरांत अधिक गुणयुक्त वर न मिलनेपर समान जाति गुणवाले वरको आप वरै ॥ ९० ॥

अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्॥ नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति ॥९१॥ अलंकारं नाददीतं पित्र्यं कन्या स्वयंवरा॥मातृक्रं भ्रातृदत्तं वा स्तेना स्याद्यदि तं हरेत् ॥९२॥



टीका-पिता आदि करि नही दी गई कुमारी जो कहे हुए विवाहके कालमें भर्ताको आपही वरै तो वह कुछभी पापको नही प्राप्त होती है और न उसका पति पापको प्राप्त होताहै ॥ ९१ ॥ आप पतिको वरनेवाली कन्या वरके अंगीकार करनेके पहले पिता माता तथा भाईके दिये हुए अलंकार उन्हीको दे दे और जो न दे तौ चोर होय ॥ ९२ ॥

पित्रे न दद्याच्छुलकं तु कन्यामृतमतीं हरन् ॥ सं हिं स्वाभ्या  
दतिक्रामेदतूनां प्रतिरोधनात् ॥ ९३ ॥ त्रिंशद्वर्षे वेदेत्कन्यां हृद्यां  
द्वादशवार्षिकोम् ॥ त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षी वा धर्मे सीदति संत्वरः ॥ ९४ ॥

टीका-ऋतुमती कन्याका व्याहनेवाला पिताको कन्याका मूल्य न देवै कारण यह है कि पिता ऋतुका कार्य संततिके रोकनेसे कन्याको स्वामीपनसे हीन होजाताहै ॥ ९३ ॥ तीस वर्षका पुरुष बारह वर्षकी मनोहर कन्याके साथ व्याह करै अथवा चौविस वर्षका आठ वर्षकी को व्याहै और शीघ्रता करनेवाला गृहस्थ धर्ममें दुख पाताहै यह योग्यकाल दिखानेके लिये कहा है कुछ नियमके लिये नही ॥ ९४ ॥

देवदत्तां पतिभार्यां विन्दते नैच्छ्यात्मनः ॥ तां सार्धं विभृयां  
त्रितयं देवानां प्रियमाचरन् ॥ ९५ ॥ प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थं च मानवाः ॥ तस्मात्सार्धारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥ ९६ ॥

टीका-“ भगोऽर्यमासवितापुरंधिर्महांत्वादुर्गहपत्यायदेवा ” इत्यादि मंत्रके सूचित करनेसे जो देवताओ करि दीई भार्या है उसको पति प्राप्त होताहै अपनी इच्छासे नही उस पतिव्रताको देवताओंका प्रिय करता हुआ द्वेषयुक्त हौनेपरभी भोजन वस्त्र आदिसे सदा पालन करने योग्यहै ॥ ९५ ॥ जिस्से गर्भग्रहण करनेके लिये स्त्री उत्पन्न की गई है और गर्भ आधान करनेके लिये मनुष्य तिस्से गर्भ उत्पन्न करनेके समान इन दोनोंका अग्रिका आधान आदिभी धर्मपत्नीके साथ साधारण कहाहै “ क्षौमेवसानावग्रीनादधीयातां ” इत्यादि वेदमें विहितहै तिस्से “ भार्या विभृयात् ” पहले कहे हुएका शेषहै ॥ ९६ ॥

कन्यायां दत्तशुल्कायां प्रियेत यदि शुल्लकदः ॥ देवराय प्रदातव्या  
यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ ९७ ॥ आददति न शूद्रोऽपि शुल्लकं दुहितरं



ददत् ॥ शुल्कं हि गृण्णकुंरुते छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ ९८ ॥

टीका—कन्याका शुल्क तौ दे दिया होय परन्तु विवाह न हुआ होय उस समय शुल्क देनेवाला वर मरजाय तौ पिता आदि करि यह कन्या देवरको देने योग्य है जौ वह स्त्री अंगीकार करै तौ ॥ ९७ ॥ शास्त्रका न जाननेवाला शूद्रभी कन्याको देता हुआ शुल्कको न लेवै फिरि शास्त्र पढे हुए द्विजातिका तौ क्या कहना है जिस्से शुल्कको लेता हुआ मनुष्य गुप्त कन्याका विक्रय करता है ॥ ९८ ॥

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः ॥ यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते ॥ ९९ ॥ नानुशुश्रुम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु ॥ शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च छत्रं दुहितृविक्रयम् ॥ १०० ॥

टीका—इसको पहले शिष्ट लोगोंने कभी नहीं किया न और वर्तमान कालके करते हैं जो और की कन्याको अंगीकार करिके फिरि औरको देवें यह जिसका शुल्क ले लिया है उस कन्याके मध्ये कहा है ॥ ९९ ॥ पहले कल्पोंमेंभी यह हुआ यह हमने कभी नहीं सुना है कि जो शुल्कनाम मोलसे किसी सज्जनने गुप्त कन्याका विक्रय किया होय ॥ १०० ॥

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः ॥ एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः ॥ १ ॥ तथा नित्यं यतेर्यातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ ॥ यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्तावितरेतरम् ॥ २ ॥

टीका—भार्या और पतिके मरनेतक धर्म अर्थ और काममें परस्पर व्यभिचार न होय यह संक्षेपसे स्त्री पुरुषका उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये ॥ १ ॥ जिन्होंने विवाह किया है ऐसे स्त्रीपुरुष सदा ऐसा यत्न करै जैसे धर्म अर्थ और काममें परस्पर वियुक्त होनेपरभी व्यभिचार युक्त न होय ॥ २ ॥

एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः ॥ आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायभागं निर्बोधत ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः संमम् ॥ भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशस्ते हि जीर्वतोः ॥ ४ ॥

टीका—भार्या और पतिका परस्पर अनुराग युक्त यह धर्म तुमसे कहा और संतानके न होनेमें संततिकी प्राप्ति कही अब दाय जो पिता आदिका धन है उसके विभा



गकी व्यवस्था सुनिये ॥ ३ ॥ भाई मिलिकै पिताके मरनेके उपरांत पिताके धनको और माताके मरनेको पीछे माताके धनको बराबर करके बांटे लें और माता पिताके जीवते हुए उनके धनके स्वामी नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पितृयं धनमशेषतः ॥ शेषास्तं पुंजीवे-  
युर्यथैव पितरं तथैव ॥ ५ ॥ ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भव-  
ति मानवः ॥ पितृणामनृणश्चैवं सं तस्मात्सर्वमर्हति ॥ ६ ॥

टीका—जो ज्येष्ठ धर्मात्मा होय तौ पिताके संपूर्ण धनको वही लेवै और छोटे उससे पिताके समान भोजन वस्त्र पावै और ऐसे सब साथही रहै ॥ ५ ॥ उत्पन्न हो नेहीसे संस्कार रहित भी जेठे पुत्रसे मनुष्य पुत्रवान् होताहै और पितरोंके ऋणसे छूटि जाताहै इससे ज्येष्ठही सब धनके योग्यहै यह पहलेका शेषहै ॥ ६ ॥

यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानन्त्यमश्नुते ॥ स एव धर्मजः पुत्रः कौ-  
मजानितरान्विदुः ॥ ७ ॥ पितेव पालयेत्पुत्राज्येष्ठो भ्रातृन्यवी-  
यसः ॥ पुत्रवच्चापि वत्तैरज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः ॥ ८ ॥

टीका—जिसके उत्पन्न होनेपर ऋणका शोधन और जिसके उत्पन्न होनेसे अमृतत्वको प्राप्त होताहै वही पिताका धर्मके कारणसे उत्पन्न पुत्र होताहै और औरोंको तौ काममात्रके कारणसे उत्पन्न मुनीश्वर जानते हैं तिससे वही सब धनको ग्रहण करै ॥ ७ ॥ विभाग न होनेमें जेठा भाई छोटे भाइयोंको भोजन वस्त्र आदिसे पिताके समान पालन करै और छोटे भाई पुत्रोंके समान जेठे भाईमें धर्मसे वत्तै ॥ ८ ॥

ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः ॥ ज्येष्ठः पूज्यतमो लो-  
के ज्येष्ठः सद्भिर्गर्हितः ॥ ९ ॥ योज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मतेव सं-  
पितेव सं ॥ अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्सं संपूज्यस्तु बंधुवत् ॥ १० ॥

टीका—जिसका विभाग नहीं हुआहै ऐसा जेठा जो धर्मात्मा होय तौ छोटे भी उसके अनुगामी होनेसे धार्मिक होनेके कारण जेठा कुलको बढाताहै और जो अधर्मी होय तौ छोटेकोभी उसके अनुगामी होनेके कारणसे जेठा कुलका नाश कर देताहै लोकमें गुणवान् ज्येष्ठ अतिपूज्यहै ॥ ९ ॥ जो जेठा छोटे भाइ-योंमें पिताके समानवर्त्ताहै वह पिताके समान और माताके समान अनिच्छ होता



है और जो ऐसे नहीं वर्तता है वह मामा आदि बंधुओंके समान पूजने योग्य है ॥ ११० ॥

एवं सहै वैसेयुर्वो पृथग्वां धर्मकौम्यया ॥ पृथग्विवर्धते धर्मस्तस्मा  
द्धर्म्या पृथक्क्रिया ॥ ११ ॥ ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्व-  
रम् ॥ ततोऽर्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयसः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे बिना बँटे हुए भाई एकसाथ रहें अथवा धर्मकी कामनासे जुड़े जुड़े पंचयज्ञ करनेसे उनका धर्म बढ़ता है तिससे तिससे विभाग ( वांट ) करना धर्महीके लिये है ॥ ११ ॥ साझेके साधारण धनसे बीसवां भाग निकाल कर जेठको देवें और घरकी सब वस्तुओंमें जो उत्तम होय वहभी जेठको देवें और मध्यम कहिये मझलेको चालीसवां भाग दे और छोटेको अस्सीमा भाग देकर सब बराबर वांटि लेवें ॥ १२ ॥

ज्येष्ठश्चैवं कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् ॥ येऽन्ये ज्येष्ठकनिष्ठा  
भ्यां तेषां स्यान्मध्यमं धनम् ॥ १३ ॥ सर्वेषां धनजातानामार्द्धदीता  
ध्यमग्रजः ॥ यच्च सातिशयं किञ्चिदशतं श्रापुयाद्भरम् ॥ १४ ॥

टीका—जेठा तथा छोटा पहले श्लोकमें कहे हुए । २० । ४० । ८० । भागोंको लेवें और जेठे तथा छोटेसे भिन्न जो मध्यम हैं उनके बीचकी छुटाई बडाईकी अपेक्षाको नहीं करिके सब मझलोंमें प्रत्येकको कहाहुवा चालीसवां भाग देना चाहिये मझलोंमें छुटाई बडाईकी अपेक्षासे विभागकी विषमता दूर करनेके लिये यह कहा है ॥ १३ ॥ धनके सब प्रकारोंमें जो श्रेष्ठ धन होय उसको ज्येष्ठ लेवें और दश गौ आदि पशुओंमेंसे श्रेष्ठ एकज्येष्ठ लेवें यह वहाँके लिये है जहाँ जेठा गुणवान होय और अन्य सब निर्गुणी होय ॥ १४ ॥

उद्धारो न दशस्वस्ति संपन्नानां स्वकर्मसु ॥ यत्किञ्चिदेवं देयं तु  
ज्यायंसे मानववर्धनम् ॥ १५ ॥ एवं समुद्धृतोद्दारे समानं शान्प्रक-  
ल्पयेत् ॥ उद्धारोऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना ॥ ११६ ॥

टीका—सब समान गुण होनेमें कहते हैं दशमेंसे श्रेष्ठको ज्येष्ठ पावै यह जो उद्धार कहा है सो यह पढ़ने आदि कर्म करनेवाले भाईयोंमें जेठका नहीं है तिस-परभी यत्किञ्चित् पूजा बढ़ानेवाला द्रव्य जेठको देना चाहिये ऐसे बराबर गुणवा-लोंमें उद्धारका निषेध देखा गया है इस कारण पहलेमें गुणोंकी अधिकताकी



( ३२६ )

मनुस्मृती

[ अध्यायः

अपेक्षासे उद्धारकी विषमता जाननी चाहिये ॥ १५ ॥ ऐसे कहे हुए प्रकारसे जिसमेंसे वीसमा भाग निकाल लिया गयाहै ऐसे धनमेंसे सब भाइयोंके बराबर भाग करै वीसमा भाग आदिमें तौ फिरि नही निकाली हुई भागकी कल्पना आगे कही हुई होती है ॥ १६ ॥

एकाधिकं हरेज्येष्ठः पुत्रोऽप्यर्थं ततोऽनुजः ॥ अंशमंशं यवीयां  
स ईति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १७ ॥ स्वेभ्योऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्र-  
दद्युर्भ्रातरः पृथक् ॥ स्वार्त्स्वादंशाच्चतुर्भागं पतितोः स्युरदित्संवः १८

टीका—एक अधिक अंश अर्थात् दो भागोंको जेठा पुत्र ग्रहण करै और अधिक अर्द्ध अर्थात् डेढ भाग जेठेसे छोटा ग्रहण करै और छोटे फिरि एक एक भाग ग्रहण करै यह धर्म व्यवस्थितहै यह ज्येष्ठ और उससे छोटीकी गुणवान् होनेकी अपेक्षासे और छोटोंके निर्गुण होनेमें जानना चाहिये कारण यहहै कि जेठेका और उससे छोटोंका अधिका देखा जाताहै ॥ १७ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारो भाई अपनी जातिकी अपेक्षा “ स्वेभ्यश्चतुरोऽज्ञानहरेयुः ” विप्र इत्यादिसे आगे कहे हुए भागोंमेंसे अपने अपने भागसे चौथा भाग जुदा जुदा भाग कन्याओं के लिये और विना व्याही बहिनीको जो जिसकी सगी बहिनी होय उसीको संस्कारके लिये देवै इस भांति सब देवै जो सगी न होय तौ दूसरी मातासे उत्पन्न ऊंचे नीचों करि संस्कार करनेही योग्यहैं जो बहिनोंके संस्कारके लिये चौथा भाग देना न चाहै तौ पतित होंय ॥ १८ ॥

अजाविकं सैकशफं न जातु विषमं भजेत् ॥ अजाविकं तु विषमं  
ज्येष्ठस्यैवं विधीयते ॥ १९ ॥ यवीयां ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेदिति ॥ समस्तत्र विभागः स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ १२० ॥

टीका—घोडा आदि एक शफ कहिये एक खुरके कहे जाते हैं एक शफ समेत बकरी भेड आदिके वांटनेके समय बराबर करकै वांटै और जिसका विभाग न हो सकता होय उसको न वांटै वह तौ जेठेहीका होताहै उसकी बराबर दूसरी वस्तु देनेसे बराबरी करिकै अथवा बेचकै उसके मोलको न वांटै ॥ १९ ॥ छोटा जो जेठे भाईकी स्त्रीमें नियोगसे पुत्र उत्पन्न करै तौ उस चाचाके साथ उस क्षेत्रजका बराबरी विभाग होताहै पिताके समान उद्धार समेत नही होताहै यह भागकी व्यवस्था नियत है जो नियोगसे नही उत्पन्नहै उसका अनंशित्व कहिये



भाग न पाना आगे कहेंगे यद्यपि "समेत्यभ्रातरस्तमम्" यह कहा है तिसपरभी इसी सूचनसे जिसका पिता मरिगयांहे ऐसे पौत्रकाभी पितामह कहिये दादेके धनमें पिताके समान विभागहै यह पाया जाताहै ॥ १२० ॥

उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपैष्यते॥पितां प्रधानं प्रजने तस्मा  
धर्मेण तं भजेत् ॥ २१ ॥ पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च  
पूर्वजः ॥ कथं तत्र विभागः स्यादिति चेत्संशयो भवेत्॥२२॥

टीका—जेठे भाईका क्षेत्रज पुत्रभी पिताके समान उद्धार समेत भाग पानेके योग्यहै इस शंकाको दूर करि पहिले कहे हुएहीको दृढ करते है अप्रधान क्षेत्रज पुत्र प्रधान क्षेत्रवाले पिताका धर्मसे उद्धार समेत विभागके लेनेसे संबंधयुक्त नहीं होताहै क्षेत्रीभी पिताके क्षेत्रके द्वारा पुत्रके उत्पन्न करनेमें प्रधान होताहै तिससे पहले कहे हुएही धर्मसे विभागकी व्यवस्थारूप चाचाके साथ उस क्षेत्रजका विभाग करै यह पहलेहीके शेषहै ॥ २१ ॥ जो पहले व्याही हुईमें छोटा पुत्र उत्पन्न होय और पीछे व्याही हुईमे जेठा होय तौ वहां कैसा विभाग होय यह जो संदेह होय तौ क्या माताके विवाहके क्रमसे पुत्रका जेठापन अथवा अपने जन्मके क्रमसे तब ॥ २२ ॥

एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः ॥ ततोऽपरे ज्येष्ठवृषांस्तदू-  
र्नानां स्वमातृतः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायांहरेद्वृषभ-  
षोडशाः ॥ ततः स्वमातृतः शेषां भजेरन्नि'ति धारणा ॥ २४ ॥

टीका—पहलीमें उत्पन्न हुआ छोटाभी एक बैल उद्धार लेवै तिस पीछे उस श्रेष्ठ बैलसे और जे अश्रेष्ठ बैल होय वे उस जेठीसे उत्पन्न पुत्रसे माताके कारण कम ऐसे छोटोंको प्रत्येक एक एक बैल होते हैं माताके विवाहके क्रमसे जेठापन होताहै ॥ २३ ॥ पहले व्याही हुई स्त्रीमें जो जो उत्पन्न हुआ वह जन्मसेभी भाइयोंसे जेठा वह सोलह बैलसमेत पंद्रह गौ ओंको लेवै तिस पीछे जो और बहुतसी माताओंसे उत्पन्न वे पुत्र अपनी माताके व्याहके जेठेपनकी अपेक्षा बाँकी गोंओंको बाँटि लेवै यह निश्चयहै ॥ २४ ॥

सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः॥न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति  
जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते ॥२५॥ जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्या  
स्वापि स्मृतम् ॥यमयोश्चैवं गंभेषु जन्मतो ज्येष्ठता स्मृता ॥२६॥



( ३२८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका-समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंको जातिमें स्थित विशेष न होनेपर माताके क्रमसे जेठापन ऋषियों करि नही कहा जाताहै किंतु जन्महीके क्रमसे इसीसे छोटीसेभी उत्पन्न पहले कहा हुआही वीसमे भाग द्वांश आदिकों ग्रहण करै ऐसे माताके जेठे पनके विहित तथा निषिद्ध होनेसे सोलहके लेने और न लेनेकाभी विकल्प हुआ वह तौ भाईयोंके गुणवान् तथा निर्गुण होनेके कारण लघुतासे व्यवस्थित हुआ ॥ २५ ॥ स्वब्रह्मण्यनाम मंत्र ज्योतिष्टोममें इंद्रके बुलानेके लिये पढ़ा जाताहै वह प्रथम पुत्र करि पिताका उद्देश करिकै आवाहन किया जाता है अमुकका पिता यज्ञ करताहै ऐसा ऋषियोंने कहाहै और गर्भमें एकही साथ जिनका निषेक हुआ है ऐसे यम कहिये जोड़ियोंकी जन्मके क्रमसे ज्येष्ठता कही गई है ॥ २६ ॥

अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम् ॥ यदपत्यं भवेद-  
स्यां तन्मम स्यात्स्वर्धाकरम् ॥ २७ ॥ अनेन न विधानेन पुत्रार्चके  
ऽथ पुत्रिकाः ॥ विवृद्धार्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः ॥ २८ ॥

टीका-जिसके पुत्र नही है वह जो इसमें अपत्य उत्पन्न होय सो मेरा श्राद्ध आदि और्ध्वदेहिक कर्मोंका करनेवाला होय ऐसे कन्यादानके समयमें जमाइ के साथ नियमरूप विधानसे कन्याको पुत्रिका करै ॥ २७ ॥ पुत्र उत्पन्न करने की विधिके जाननेवाले दक्ष प्रजापति अपना वंश बढ़ानेके लिये इस कहे हुए विधानसे सब बेटियोंको पहले आप पुत्रिका करते भये ॥ २८ ॥

दं दौ स दंश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ सोमाय राज्ञे सत्कृत्य  
प्रीतात्मा सप्तविंशतिम् ॥ २९ ॥ यथैवात्मा तथो पुत्रः पुत्रेण दु-  
हिता समा ॥ तस्यामात्मानि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥ १३० ॥

टीका-होनेवाले पुत्रिकापुत्रके लाभसे प्रसन्न दक्षप्रजापतिने अलंकार आदसे सत्कार करिकै दशपुत्रिका धर्मको दी तेरह कश्यपको सत्ताईस द्विजोंके तथा औषधियोंके राजा चंद्रमाको दीं ॥ २९ ॥ आत्माका स्थानी पुत्रहै और उसीके अंगोसे उत्पन्न होनेके कारण पुत्रके समान कन्याहै इसीसे पिताके आत्मस्वरूप उस कन्याके विद्यमान होनेपर पुत्ररहित मरे हुए पिताका धन पुत्रिकासे भिन्न दूसरा कैसे लेंवै ॥ १३० ॥

मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः ॥ दौ हित्र एव च हरे १३१



दपुत्रस्याखिलं धनम् ॥ ३१ ॥ दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य  
पितुर्हरेत् ॥ स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च ॥ ३२ ॥

टीका—माताका जो धन है वह उसके मरनेपर कुमारीका भागहै उसमे पुत्रोंका भाग नहीं है कुमारी कहनेसे विना व्याही जाननी चाहिये और पुत्ररहित मरे हुए नानाका धन दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही सब लेवै ॥ ३१ ॥ दौहित्र अर्थात् पुत्रिकापुत्र ही अन्यपुत्ररहित पिताका संपूर्ण धन लेवै और वही पिता और नानाके लिये दो पिण्ड देवै ॥ ३२ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोकैर्न विशेषोऽस्ति धर्मतः ॥ तयोर्हि मातापितरौ  
संभूतौ तस्य देहतः ॥ ३३ ॥ पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रो  
ऽनुजायते॥समस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः ३४

टीका—पुत्र तथा दौहित्रमें लोकमें तथा धर्मके काममें कुछ विशेष नहीं है कारण यहहै कि दोनोंके माता पिता उसके देहसे उत्पन्नहैं यह पहलेहीका अनुवादहै ॥ ३३ ॥ पुत्रिका करनेपर जो करनेवालेके पीछे पुत्र उत्पन्न होय तौ उनके विभाग कालमें समान विभाग होय पुत्रिकाको उद्धार न देना चाहिये जिसे जेठी होनेपरभी उसका जेठापन उद्धारके समयमे नहीं आदर करनेयोग्यहै ॥ ३४ ॥

अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन ॥ धनं तत्पुत्रिकाभर्ता  
हरेत्तैर्वाविचारयन् ॥ ३५ ॥ अकृता वा कृता वापि यं विन्देत्सह  
शात्सुतम् ॥ प्रौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम् ॥ ३६ ॥

टीका—पुत्ररहित पुत्रिकाके कैसे हू मरनेपर उसके धनको उसका पतिही विना विचारके ग्रहण करै पुत्रिकाकी पुत्रकी समतासे पुत्र तथा पत्नीरहित मृतपुत्र पिताके धन ग्रहणकी प्रसक्ति होनेपर उसके निवारणके लिये यह वचन है ॥ ३५ ॥ पुत्रिका की हुई अथवा न की हुई समान जातिके पतिसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै उस दौहित्रकरि पौत्रका काम करनेसे मातामहपौत्री है और वह इसको पिण्ड देवै और उसके धनको लेवै ॥ ३६ ॥

पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्रुते ॥ अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्र  
धस्याप्रोति विष्टपम् ॥ ३७ ॥ पुत्राप्रो नरकाद्यस्माच्चर्यते पितरं  
सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ ३८ ॥



( ३३० )

मनुस्मृती

[ अध्यायः

टीका-उत्पन्न हुए पुत्रसे स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होताहै और पौत्रसे बहुत काल तक उन्हीमें रहताहै तिस पीछे पुत्रके पौत्रसे आदित्यलोकको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ जिसे पुंनाम नरकसे सुत पिताकी रक्षा करताहै उस रक्षा करनेसे आपही ब्रह्माने पुत्र यह कहाहै ॥ ३८ ॥

पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते॥दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रै न सं  
तारयति पौत्रवत् ॥३९॥ मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्वपेत्पुत्रिका  
सुतः ॥द्वितीयं तु पितुंस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ १४० ॥

टीका-पौत्र तथा दौहित्र इन दोनोंमें लोकमें कुछ विशेष नहीं है जिसे दौहित्रभी नानाको परलोकमें पौत्रके समान विस्तार करताहै ॥ ३९ ॥ पुत्रिकापुत्र पहले मा-ताको पिंड दे और दूसरा माताके पिता कहिये नानाको और तीसरा माताके पिता-मह अर्थात् परनानाको देवै ॥ १४० ॥

उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दन्त्रिमः॥स हरेतैर्व तद्विक्थं सं  
प्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥४१॥गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दन्त्रिमः क्वचि  
त् ॥ गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददंतः स्वर्धा ॥ ४२ ॥

टीका-जिसका दत्तक अर्थात् गोदलिया हुआ पुत्र सब गुणोंसे संपन्न होय और दूसरे गोत्रसेभी आया होय वह औरस कहिये निजपुत्रके होनेपरभी पि-ताके धनका भाग पावै ॥ ४१ ॥ दत्तक अपने पिताके गोत्र तथा धनको कभी नहीं पाताहै पिंड तौ गोत्र तथा रिक्थ हिस्सेका अनुगामी होताहै जिसके गोत्र और रिक्थको भजताहै कहिये प्राप्त होताहै उसीको वह पिंड देताहै तिससे पुत्र देनेवाले जनकके उस पुत्रकारि करनेयोग्य स्वधा कहिये पिंड श्राद्ध आदि नि-वृत्त होजाते है ॥ ४२ ॥

अनियुक्तासुतश्चैवं पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् ॥ उंभौ तौ नोर्हौ तो भौ  
गं जारजातककामजौ॥४३॥नियुक्तायामपि पुमान्नौर्या जातोऽवि  
धानतः ॥ नैर्वाहः पैतृकं रिक्थं पतितोत्पादितो हि सः ॥ ४४ ॥

टीका-जो गुरु आदिके नियोग विना उत्पन्नहै और जो सपुत्रामें नियोगसेभी देवर आदि करि कामसे उत्पन्न किया गयाहै वे दोनों क्रमसे जारसे कामकी इच्छा-से उत्पन्नहै धनके भागयोग्य नहीं है ॥ ४३ ॥ नियुक्ताभी स्त्रीमें घृतलेप आदि नि-



योगकी विधिके विना उत्पन्न हुआ पुत्र क्षेत्रवाले पिताका धन पानेयोग्य नहीं है जिससे यह पतित करि उत्पन्न किया गया है जे नियुक्त विधिके विना पुत्र उत्पन्न करते हैं वे पतित होते हैं ॥ ४४ ॥

हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः ॥ क्षेत्रिकस्य तु तद्द्वौ जं धर्मतः प्रसवश्च सः ॥ ४५ ॥ धनं यो विभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च ॥ सोऽपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् ॥ ४६ ॥

टीका—नियुक्तामें उत्पन्न हुआ क्षेत्रज पुत्र औरसके समान लेवै जिसे उसका कारणभूतबीज क्षेत्रके स्वामीका है और संतानभी धर्मसे उसीके लिये है ॥ ४५ ॥ जो मरे हुए भाईके जो रक्षा करनेमें असमर्थ पकरि दिये हुए स्थावरजंगम धनकी रक्षा करै और उसकाभी पोषण करै वह नियोग धर्मसे उसमें भाईका पुत्र उत्पन्न करै उस अपत्यको वह धनदे देवै ॥ ४६ ॥

यां नियुक्तान्यतः पुत्रं देवैराद्वाप्यर्वाभुयात् ॥ तं कामजमरिकंथी यं वृथोत्पन्नं प्रचक्षते ॥ ४७ ॥ एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु ॥ बह्वीषु चैकजातानां नानास्त्रीषु निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—गुरु आदि करि आज्ञा दी गई जो स्त्री देवरसे अथवा अन्यसे कहिये असंपिंडसे पुत्रको उत्पन्न करै वह पुत्र जो कामज होय तौ उस वृथा उत्पन्न हुये को भाग न पानेवाला मनु आदि कहते हैं ॥ ४७ ॥ समान जातिकी स्त्रियोंमें एक पतिसे उत्पन्न पुत्रोंकी यह विभागविधि जाननी चाहिये अब नाना जातिकी बहुतसी स्त्रियोंमें उत्पन्न पुत्रोंका विभाग सुनिये ॥ ४८ ॥

ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः ॥ तांसां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयं विधिः स्मृतः ॥ ४९ ॥ कीनांशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेष्टम च ॥ विप्रस्यौद्धारिकं देयमेकांशं प्रधानतः ॥ ५० ॥

टीका—ब्राह्मणके क्रमसे जो ब्राह्मणी आदि चारि स्त्रियां हों तौ उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर यह आगे कही हुई विभागकी विधि मनु आदिकोंने कही है ॥ ४९ ॥ खेत करनेवाला बैल और घोडा आदि सवारी अंगुठी आदि गहना और घर प्रधान जितने भाग है उनमेंसे एक प्रधानभूत अंश ब्राह्मणीपुत्रके उद्धारके लिये देना चाहिये और बाकी आगे कही हुई रीतिसे बांटे लेने चाहिये ॥ ५० ॥



( ३३२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

त्र्यंशं दायद्वारेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रियासुतः॥वैश्याजः सांघमेवांश-  
मंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥५१॥ सर्वे वा रिक्थजातं तद्वंशं परि-  
कल्प्य च॥ धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्मवित् ॥५२॥

टीका—ब्राह्मणीका पुत्र धनमेंसे तीन भाग लेवै दो क्षत्रियाका पुत्र डेढ वै-  
श्याका और एक अंश शूद्राका पुत्र ऐसे जहां ब्राह्मणी और क्षत्रियाको पुत्र  
दोही है तहां पांच भाग किये हुए धनमेंसे तीन भाग ब्राह्मणीपुत्रके और दो क्ष-  
त्रियापुत्रके इसी रीतिसे ब्राह्मणी और वैश्या पुत्र आदिमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें  
यही कल्पना करनी चाहिये ॥ ५१ ॥ अथवा सब धनका प्रकार जिसमेंसे उद्धार  
नहीं निकलाहै उसके दशभाग करिके विभागके धर्मका जाननेवाला धर्मसे विरुद्ध  
नहीं ऐसा विभाग आगे कही हुई विधिसे करै ॥ ५२ ॥

चतुरोऽशान् हरेद्विप्रश्चान्शान्क्षत्रियासुतः॥वैश्यापुत्रो हरेद्व्यंश-  
मंशं शूद्रासुतो हरेत् ॥ ५३ ॥ यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रोऽप्यस-  
त्पुत्रोऽपि वा भवेत्॥नौधिकं दशमाद्व्याच्छूद्रापुत्राय धर्मतः ५४

टीका—चारि भाग ब्राह्मण लेवै तीन भाग क्षत्रियाका पुत्र और दो वैश्याका  
पुत्र और एक शूद्रासे उत्पन्न ऐसे ब्राह्मणी और क्षत्रियाके पुत्र होनेपर धनके  
सात भाग करिके उनमेंसे चारि भाग ब्राह्मणके तीन क्षत्रियापुत्रके ऐसेही ब्रा-  
ह्मणी वैश्यापुत्र आदिकोंमें और दो तथा बहुत पुत्रोंमें कल्पना करनी चाहिये  
॥ ५३ ॥ जो ब्राह्मणके द्विजाती की सब स्त्रियोंमें पुत्र हों अथवा न होय  
तिसपरभी शूद्रापुत्रके लिये अनंतर जो अधिकारी होय वह दशभागसे अधिक  
धर्मसे न देवै ॥ ५४ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रापुत्रो न रिक्थभाक् ॥ यदेवास्य पिता  
दद्यात्तदेवास्य धनं भवेत्॥५५॥समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा  
द्विजन्मनाम्॥उद्धारं ज्यायसे दत्त्वा भजेरन्नितरे समम् ॥ ५६ ॥

टीका—शूद्राका पुत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके धनका पानेवाला नहीं होताहै किंतु  
जो धन इसको पिता देवै वही उसका होताहै ॥ ५५ ॥ द्विजातियोंके समान जाति  
की स्त्रियोंमें जे पुत्र उत्पन्नहै वे सब जेठेको उद्धार देकर बाकीके बराबर विभाग क-  
रिके जेठेके साथ और सब वाटि लेवै ॥ ५६ ॥



शूद्रस्य तु सर्वैर्णैव नान्यां भार्या विधीयते॥तस्यां जाताः संमांशाः  
स्युर्यदि पुत्रं शतं भवेत् ॥ ५७ ॥ पुत्रान् द्वादशं यानां ह नृणां  
स्वायम्भुवो मनुः॥तेषां षड् बन्धुदायादाः षड् दार्यादबान्धवाः ५८

टीका—शूद्रके समानजातीही स्त्री कही गई हैं ऊची नीची नहीं उससे उत्पन्न हुए  
जो सौभी पुत्र होय तौ उनका बराबरही भाग होय किसीको उद्धार न देना  
चाहिये ॥ ५७ ॥ जिन द्वादश पुत्रोंको स्वायंभूमनुने कहा है उनमेंसे पहिले छ-  
बांधव और गोत्रदायादभी हैं तिससे बांधव होनेके कारण सपिंड तथा समानो-  
दकोंका पिंड तथा जलदान आदि करते हैं और समीपी न हानेसे गोत्रका भाग  
लेते हैं और पिछले ६ गोत्र तथा धनके लेनेवाले नहीं होते हैं और बांधव तौ  
होते हैं तिससे बंधु कार्य जलदान आदि करते हैं ॥ ५८ ॥

औरसः क्षेत्रजश्चैवं दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च  
दार्यादा बान्धवाश्च षट् ॥ ५९ ॥ कानीनश्च सहोदश्च क्रीतः पौन  
र्भवस्तथा ॥ स्वयं दत्तश्च शूद्रश्च षड् दार्यादबान्धवाः ॥ १६० ॥

टीका—औरस १ क्षेत्रज २ दत्तक ३ कृत्रिम ४ गूढोत्पन्न ५ और अपविद्ध  
६ ये भागपानेवाले और बांधव होते हैं ॥ ५९ ॥ ॥ कानीन १ सहोद २ क्रीत  
३ पौनर्भव ४ स्वयंदत्त ५ और शूद्र ६ ये छः गोत्र तथा धनके पानेवाले  
नहीं होते हैं और बांधव तौ होते हैं ॥ १६० ॥ ॥

यादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतंरञ्जलम् ॥ तादृशं फलमाप्नोति  
कुपुत्रैः संतंरंस्तमः ॥ ६१ ॥ यद्येकं रिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ  
सुतौ ॥ यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्वृत्तीत नेतरेः ॥ ६२ ॥

टीका—औरसके साथ क्षेत्रज आदि पढे हैं इससे तुल्यताकी शंका होनेपर  
उसके दूर करनेके लिये कहते हैं ॥ फूस आदि तृणोसे बनी हुई बुरी उडप  
आदि एक भांतिकी नावसे जलको उतरता हुआ जिस भांतिके फलको पाताहै  
वैसेही क्षेत्रज आदि कुपुत्रोंसे परलोकमें कठिनतासे पार होने योग्य दुःखको  
पाताहै इससे यह दिखाया गया कि मुख्य औरस पुत्रके समान क्षेत्रज आदि  
पुत्रोंकी संपूर्ण कार्य करनेमें योग्यता नहीं होती हैं ॥ ६१ ॥ पुत्ररहित करि  
पराये क्षेत्रमें नियोगसे उत्पन्न किया हुआ पुत्र “उभयोरप्यसौरिक्थीपिंडदाताचध-  
र्मतः” अर्थात् यह दोनोका धर्मसे भाग लेनेवाला और पिंड देनेवाला है इस



( ३३४ )

मनुस्मृतौ

याज्ञवल्क्यके वचनके मध्ये जब क्षेत्रिक पिताके क्षेत्रजके पीछे और पुत्र होय तब वे औरस और क्षेत्रज यद्यपि एक पिताके रिक्थके योग्य होय तिसपरभी जो जिसके पिताको धन होय उसीको वह लेवै क्षेत्रज क्षेत्रवाले पिताका नहीं पावै ॥ ६२ ॥

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः ॥ शेषाणामानृशंस्यार्थं  
प्रदद्यात् पुंजीवनम् ॥ ६३ ॥ षष्ठं तु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैतृका-  
र्द्धनात् ॥ औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पञ्चममेवं वां ॥ ६४ ॥

टीका—पहले रोग आदिसे और सपुत्रके न होनेमें क्षेत्रज आदि पुत्रोंके कर लेनेपर पीछे औषध आदिसे रोग निवृत्त होनेसे जो औरस उत्पन्न होय तिसपर यह कहते हैं कि औरसही एक पुत्र पिताके धनका स्वामी है और क्षेत्रजको छोड़िके जो बाकी रहे उनको भोजन वस्त्र देवै ॥ ६३ ॥ पिताके धनका विभाग करता हुआ औरस पुत्र क्षेत्रजको उसका छठा अथवा पांचमा भाग देवै निर्गुण सगुणकी अपेक्षासे यह छ पांचका विकल्पहै ॥ ६४ ॥

औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ ॥ दशांपरे तु क्रमशो  
गोत्ररिक्थांशभागिनः ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पा-  
दयेद्धि यम् ॥ तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम् ॥ ६६ ॥

टीका—औरस तथा क्षेत्रज पुत्र कहे हुए प्रकारसे पिताका धन लेनेवाले होते हैं और फिरि दत्तक आदि दश पुत्र गोत्र भागी होते हैं “ और पूर्वाभावेपरः ” इस क्रमसे धनकेभी भाग पानेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ कन्याकी अवस्थामें जिसके विवाह संस्कार हुआ है ऐसी अपनी स्त्रीमें जिसको आप उत्पन्न करै उस पुत्रको औरस मुख्य जानै सजातीया स्त्रीमें आप उत्पन्न किया हुआ पुत्र औरस जानना चाहिये ॥ ६६ ॥

यस्तर्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वां ॥ स्वर्धमेण नियु-  
क्तायां सं पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः ॥ ६७ ॥ माता पिता वां दद्यातां यम-  
द्भिः पुत्रमापदि ॥ सैदृशं प्रीतिसंयुक्तं सं ज्ञेयो दैत्रिमः स्मृतः ॥ ६८ ॥

टीका—जो मरे हुएकी अथवा नपुंसककी अथवा संतति रोकनेवाले रोग करि युक्तकी भार्यामें घृत लगाने आदि नियोगके धर्मसे गुरू करि नियुक्तमें उत्पन्न हुए पुत्रको मनु आदि क्षेत्रज कहते हैं ॥ ६७ ॥ माता तथा पिता आपसकी



संमतिसे लेनेवालेकी समान जातिको जिस पुत्रको उसीकी पुत्र न होनेरूप आपत्तिमें भय आदिके बिना प्रसन्नतासे जल ले संकल्प करिके देवै वह दत्तम पुत्र जानना चाहिये ॥ ६८ ॥

सदृशं तु प्रकुर्याद्यं गुणदोषविचक्षणम् ॥ पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं सं वि-<sup>१२</sup>  
ज्ञेयश्च कृत्रिमः ॥ ६९ ॥ उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य  
सः ॥ स गृहे गूढं उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः ॥ ७० ॥

टीका-माता पिता पिताके परलोकके करने न करनेके गुण दोषके जाननेवाले और माता पिताकी सेवा आदि पुत्रके गुणों करि युक्त जिस समान जातिके पुत्रको पुत्र करते हैं उसको कृत्रिम पुत्र जानिये ॥ ६९ ॥ जिसके घरमें स्थित भार्यासे जो पुत्र उत्पन्न होय वह सजातिकाहै यह ज्ञान होनेपरभी किस पुरुषके यह पुरुषसे यह उत्पन्नहै यह न जानना जाय तौ वह घरमें गुप्त उत्पन्न हुआ उसका पुत्र होताहै जिसकी भार्यामें उत्पन्न होय ॥ ७० ॥

मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा ॥ यं पुत्रं परिगृह्णीयाद-  
पविद्धः सं उच्यते ॥ ७१ ॥ पितृवेदमनि कन्या तु यं पुत्रं जन-  
येद्गृहः ॥ तं कानीनं वेदेनाग्रा वोढुः कन्यासमुद्भवम् ॥ ७२ ॥

टीका-माता पिता करि त्यागकिया गया होय अथवा उनमेंसे एकके मरने पर अथवा अन्य करि त्याग किये हुए पुत्रको जो अंगीकार करता है उसका वह अपविद्धनाम पुत्र कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ पिताके घर कन्या जिस पुत्रको छुपा हुआ उत्पन्न करै उस कन्याके व्याहनेवालेके पुत्रको नामसे कानीन कहै ॥ ७२ ॥

यो गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताज्ञातापि वा संती ॥ वोढुः सं गर्भो भू-  
वति सहोढ इति चोच्यते ॥ ७३ ॥ क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रो-  
र्यमन्तिकात् ॥ स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा ॥ ७४ ॥

टीका-जो गर्भिणी ज्ञातगर्भा अथवा अज्ञातगर्भा व्याही जाय उसमें उत्पन्न हुआ वह गर्भ व्याहनेवालेका पुत्र होताहै और सहोढ कहा जाताहै ॥ ७३ ॥ जो पुत्रके लिये माता पिताके समीपसे जिसको मोल लेवै वह क्रीतक उसका पुत्र होनाहै मोल लेनेवालेके गुणोंके समान होय अथवा हीन होय वहां जातिसे समानता असमानता नहींहै " सजातीयेष्वयंग्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः " अर्थात् समान जातिके



( ३३६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

पुत्रोंमें मैंने यह विधि कही है यह याज्ञवल्क्यने सबही पुत्रोंको सजातिय कहा है  
तिस्से मानवशास्त्रमें भी क्रीतके सिवाय सब पुत्र सजातिय जानने चाहिये ॥ ७४ ॥

यां पत्न्या वा पुरित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ॥ उत्पादयेत्पुन  
भूत्वां सं पौनर्भव उच्यते ॥ ७५ ॥ सां चेदक्षतयोनिः स्याद्भूतप्रत्या  
गतापि वा ॥ पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ ७६ ॥

टीका-भर्ता करि छोड़ी गई अथवा जिसका भर्ता मरिगया ऐसी जो स्त्री दूसरेकी  
फिरि भार्या होकर जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह उत्पन्न करनेवालेका पौनर्भव  
पुत्र होताहै ॥ ७५ ॥ जो अक्षत योनि वह स्त्री दूसरेका आश्रय ले तौ उस पौनर्भव  
भर्ताके साथ फिरि विवाहनाम संस्कारके योग्यहै अथवा कौमार पतिको छोड़ि  
औरका आश्रय लेकर फिर उसीके पास लौट कर आवै तौ उस कुमार भर्ताके साथ  
फिरि विवाह नाम संस्कारके योग्य है ॥ ७६ ॥

मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात् ॥ आत्मानं स्पर्श-  
येद्यस्मै स्वयं दत्तस्तु सं स्मृतः ॥ ७७ ॥ यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां का-  
मादुत्पादयेत्सुतम् ॥ स पारयन्नेवं शिवस्तस्मात्पारवशः स्मृतः ॥ ७८ ॥

टीका-जिसके माता पिता मरि गये होय वह अथवा छोड़नेके योग्य कारणके  
विना द्वेष आदिसे उन करि छोड़ा गया जिसको अपना आत्मा देताहै वह उसका  
स्वयंदत्तनाम पुत्र मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७७ ॥ “ विनास्वेषविधिः स्मृतः ” अर्थात्  
विवाहिताओंमें यह विधि कही है इस याज्ञवल्क्यके वचनसे व्याहीही हुई शूद्रांमें  
ब्राह्मण कामसे जिस पुत्रको उत्पन्न करै वह जीवते हुएही मरेके समानहै यद्यपि यह  
पिताके उपकार लिये श्राद्ध आदि करताहै तिसपरभी संपूर्णका उपकारक न होनेके  
कारण मरेके तुल्य कहाहै ॥ ७८ ॥

दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत् ॥ सोऽनुज्ञातो हरे  
दंशमि<sup>३</sup>ति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ७९ ॥ क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकां  
दश यथोदितान् ॥ पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः ८०

टीका-ध्वजाहतादिक कहे है लक्षण जिसके ऐसी दासीमें अथवा दासकी  
दासीमें जो शूद्रका पुत्र होताहै वह पिताकी आज्ञासे व्याही हुईके पुत्रोंकी बराबर  
भाग पानेवाला होताहै अर्थात् तुल्यभाग पाताहै यह शास्त्रकी व्यवस्थाहै ॥ ७९ ॥



इन क्षेत्रज आदि उक्त ग्यारह पुत्रोंको पुत्रके उत्पन्न करनेकी विधिका और औरस पुत्र करि करनेयोग्य श्राद्ध आदिका लोप न होय इस लिये मुनियोंने पुत्रके प्रतिनिधि कहिये स्थानी कहते हैं ॥ १८० ॥

यं एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः ॥ यस्य ते बीजतो जांतास्तस्य ते नेतरस्य तु ॥ ८१ ॥ भ्रातृणामेकजातानामेक-  
श्चेत्पुत्रवान् भवेत् ॥ सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो ये क्षेत्रज आदि अन्यके बीजसे उत्पन्न पुत्र औरसपुत्रके प्रसंगसे कहे व जिसके बीजसे उत्पन्नहै उसीके पुत्र होते हैं क्षेत्रवालेके नहीं औरसपुत्रके होनेपर तथा पुत्रिकाके होनेपर वे न करने चाहिये इसलिये यह कहाहै ॥ ८१ ॥ एक माता पितासे उत्पन्न बहुतसे भाइयोंमें जो एक पुत्रवाला होय और अन्य पुत्ररहित होय तौ उस एक पुत्रसे सब भाइयोंको मनु पुत्रसहित कहते हैं तिस पीछे तौ उसके होनेपर और पुत्रप्रतिनिधि न करने चाहिये वही पिंडका देनेवाला और भाग लेनेवाला होताहै इससे यह कहा गया ॥ ८२ ॥

सर्वासामेकपत्नीनामेकां चेत्पुत्रिणी भवेत् ॥ सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीमनुः ॥ ८३ ॥ श्रेयसः श्रेयसोऽलम् पेपीयान् रिक्थमर्हति ॥ बहवश्चेत्तु संहशाः सर्वे रिक्थस्य भागिनः ॥ ८४ ॥

टीका—एकहै पति जिनका ऐसी सब स्त्रियोंमें जो एक पुत्रवती होय तौ उस एक पुत्रसे मनुने उन सबोंको पुत्रयुक्त कहाहै तिससे सौतिके पुत्र होनेपर स्त्रीको और दत्तक आदि पुत्र न करने चाहिये इस लिये यह कहाहै ॥ ८३ ॥ औरस आदि पुत्रोंमें पहला पहला श्रेष्ठहै और वही भाग पानेवालाहै “सचान्यान्विभृयात्” इस विष्णूके वचनसे औरस आदि पुत्रोंमें पहले पहलेके न होनेमें अगिला अगिला रिक्थके योग्यहै पहलेके होनेमें दूसरेका पाल वही करै ऐसे पुत्रत्व सिद्ध होनेपर शूद्रापुत्रका बाहर पुत्रोंमें पाठ क्षेत्रज आदिकोंके होनेपर धनकी अयोग्यता दिखानेके लिये होनेसे सार्थक है अन्यथातौ क्षत्रिया वैश्या पुत्रके समान और सत्व होनेसे क्षेत्रज आदिकोंके होनेपर भी धनको पावै और जो समानरूप बहुतसे पौनर्भव आदि पुत्र होय तौ सबही वांछि करि धनको लेवै ॥ ८४ ॥

न भ्रातरो न पितरः पुत्रा रिक्थहराः पितुः ॥ पितां हरेदपुत्रस्य



रिक्थं भ्रातर एव च ॥ ८५ ॥ त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः  
प्रवर्तते ॥ चतुर्थः संप्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ८६ ॥

टीका—न सगे भाई न पिता किंतु औरसके न होनेमें क्षेत्रज आदि गौण पुत्र पिताका धन लेनेवाले होते हैं यह इस्से कहा जाता है औरसका तौ 'एकएवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः' अर्थात् एकही औरसपुत्र पिताके धनका स्वामी है इसीसे सिद्ध है और जिसके मुख्य गौण दोनो प्रकारके पुत्र नहीं हैं ओर पत्नी तथा दुहिताभी नहीं हैं उसके धनको पिता पावै और उनकी माताके भी न होनेपर भाई पावें यह आगे विस्तार से कहेंगे ॥ ८५ ॥ अब क्षेत्रज आदिकोंका भी पुत्ररहित पितामह आदिके धनमेभी अधिकार दिखानेको कहते हैं ॥ पिता आदि तीनिका जलदान करना चाहिये और उन्ही तीनिके लिये पिंड देना चाहिये और चौथा पिंडोदकका देनेवाला है पाचमेंका यहां संबंध नहीं है तिससे पुत्ररहित पितामह आदिके धनमे गौण पुत्रोंका अधिकार योग्य है और सपुत्र पैत्रोंका तौ 'पुत्रेण ले'कान् जयति' इसीसे पितामहके धनमे भागी होनाकहा है ॥ ८६ ॥

अनन्तरः संपिण्डार्थस्तस्य तस्यै धनं भवेत् ॥ अत ऊर्ध्वं सकुं-  
ल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा ॥ ८७ ॥ सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मण  
रिक्थभागिनः ॥ त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्मो न हीयते ८८

टीका—सपिण्डोंके मध्यमें जो बहुत समीपी सपिण्डस्त्री अथवा पुरुष होय उसका मरे हुये मनुष्यका धन होता है इसके उपरान्त सपिण्डकी संतान न होनेपर समानोदक आचार्य तथा शिष्य ये क्रमसे धनको लेवें ॥ ८७ ॥ इन सबोंके न होनेमें तीनो वेदोंके पढनेवाले बाहरी भीतरी शौच करि युक्त जितेंद्रिय ब्राह्मण धनके लेनेवाले होते हैं और वेही पिंड देनेवाले होते हैं ऐसा होनेपर मरे हुय धनीके श्राद्ध आदि धर्मकी हानि नहीं होती है ॥ ८८ ॥

अहार्यं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः ॥ इतरेषां तु वर्णा-  
नां सर्वाभावे हरेन्नृपः ॥ ८९ ॥ संस्थितस्यानपत्यस्य संगोत्रात्पुत्र-  
माहरेत् ॥ तत्र यद्रिक्थं जातं स्यात्तस्मिन्प्रतिपादयेत् ॥ ९० ॥

टीका—ब्राह्मणका धन राजाको कभी न लेना चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है कि उक्त लक्षण ब्राह्मणके न होनेपर ब्राह्मण मात्रको देना चाहिये और क्षत्रिय



आदिकोंका धन कहे हुए धन लेनेवालोंके न होनेपर राजा लेवै ॥ ८९ ॥ पुत्र रहित मरे हुएकी स्त्री पुंरुषके गुरुओंसे आज्ञा ले नियोगधर्मसे पुत्रको उत्पन्न करै विस मरे हुएका जो धन होय वह उस पुत्रको देवै ॥ ९० ॥

द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने ॥ तयो र्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्तत्सं गृहीत ने तरः ॥ ९१ ॥ जनन्यां संस्थितायां तु संम सर्वे सहोदराः ॥ भजेरन्मार्तृकं रिक्थं भागिन्यश्च सनाभयः ॥ ९२ ॥

टीका—दोसे उत्पन्न जो पुत्र स्त्रीके समीप स्थित धनमें विवाद करै तौ जो जिसके पिताका धन होय वह उसका पावै और पितासे उत्पन्न दूसरेके पिताका न पावै ॥ ९१ ॥ माताके मरनेपर सगे भाई तथा विना व्याही हुई बहिनै माताके धनको बराबरि बांटि लेवै और व्याही हुई तौ धनके अनुरूप सन्मान पाती हैं ॥ ९२ ॥

योस्तांसां स्युर्दुहितैरस्तांसां पितृणां यथार्हतः ॥ मातामह्या धनार्त्तिकं श्रित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९३ ॥ अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ॥ भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥ ९४ ॥

टीका—उन बेटियोंकी जो विना व्याही बेटियां हैं उनके लिये भी नानीके धनसे जैसे उनका सत्कार होय वैसे प्रीतिसे कुछ देना चाहिये ॥ ९३ ॥ विवाहके समय अग्रिके समीप जो पिता आदि करि दिया गया होय उसको अध्यग्न कहते हैं और जो पिताके घरसे पतिके घर लेजानेके सम मिलै उसको अध्यावाहनिक कहते हैं और जो प्रीतिनिमित्तक कर्ममें भर्ता आदि करि दिया गया होय तथा भाई और पिताने जो और समयमें दिया होय इस भांति छः प्रकारका स्त्रीधन कहा गया है ॥ ९४ ॥

अन्वाधेयं च यद्वत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् ॥ पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मदैवार्षगान्धर्वप्राजापत्येषु यद्रसु ॥ अप्रजायामतीतायां भर्तुरेव तदिष्यते ॥ ९६ ॥

टीका—विवाहके उपरान्त पतिके कुलसे अथवा पिताके कुलसे जो स्त्रीको मिला और जो पतिने प्रसन्न होकै दिया वह और जो अध्यग्न आदि पहले श्लोकमें कहा है वह भर्ताके जीवते मरी हुई स्त्रीका सब धन उसके पुत्रोंका होता है ॥ ९५ ॥ जिनके लक्षण कह चुके हैं ऐसे ब्राह्मण आदि पांच विवाहोंमें



जो स्त्री संबंधी धन है वह पुत्ररहित उस स्त्रीके मरनेपर भर्ताहीका मनु आदिने कहा है ॥ ९६ ॥

यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वामुरादिषु ॥ अप्रजायामतीता  
यां मातापित्रोस्तदिष्यते ॥ ९७ ॥ स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं  
कथंचन ॥ ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत् ॥ ९८ ॥

टीका—जो उक्त लक्षण आसुर राक्षस और पेशाच विवाहोमे छ प्रकारका भी जो स्त्रीका धन है वह उस पुत्र रहितके मरनेपर माता पिताका होता है ॥ ९७ ॥ ब्राह्मणकी नाना जातिकी स्त्रियोंमें जो क्षत्रिया आदि स्त्री पुत्रपति रहित मरजाय तौ उसका पिताका दिया हुआ धन सजाति विजाति सौतिके कन्या पुत्रोंके होनेपर भी ब्राह्मणी सौतिकी कन्या लेवै उसके न होनेमें उसके पुत्रका वह धन होता है ॥ ९८ ॥

न निहोरं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात् ॥ स्वकादपि च वित्ता  
द्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया ॥ ९९ ॥ पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो  
धृतो भवेत् ॥ न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते ॥ २०० ॥

टीका—भाई आदि बहुत साधारण कुटुंबके धनसे भार्या आदि स्त्रियोंको रत्न अलंकार आदिके लिये धनका संग्रह न करना चाहिये और पतिकी आज्ञा विना पतिके धनसे भी न करना चाहिये तिससे यह स्त्रीधन नहीं है ॥ ९९ ॥ पतिके जीवते हुए जो अलंकार पतिकी सम्मतिसे स्त्रियों करि धारण किया जाय उसके मरनेपर विभागके समय पुत्र आदि उसको न बाँटे बाँट करनेसे पापी होते हैं २००

अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा ॥ उन्मत्तजडमूकाश्च ये  
च केचिन्निरिन्द्रियाः ॥ १ ॥ सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या-  
मनीषिणा ॥ आसाच्छादनमत्यन्तं पतितो ह्यददद्भवेत् ॥ २ ॥

टीका—नपुंसक पतित जन्मांध बहिरा उन्मत्त जड गूंगा और जे कुणि पंगा आदि जिनकी इंद्रियां बिगड़ी हैं वे पिता आदिके धनके पानेवाले नहीं होते हैं केवल अन्न वस्त्रके भागी होते हैं ॥ १ ॥ शास्त्रका ज्ञाता धन लेनेवाला सब इन नपुंसक आदिकोंके लिये जीवनेतक अपनी शक्तिसे भोजन वस्त्र देवै जो न दे तौ पापी होय ॥ २ ॥

यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन ॥ तेषामुत्पन्नतंतूना-



मंपत्यं दायमर्हति ॥ ३ ॥ यत्किञ्चित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोऽधि-  
गच्छति ॥ भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः ॥ ४ ॥

टीका—जो कैसे हू इनकी विवाहकी इच्छा होय तौ क्हीबके क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न होनेपर उन उत्पन्न हुए अपत्यांका अपत्य धनका भागी होताहै ॥ ३ ॥ पिताके मरनेपर भाइयोंके साथ नही वंटा हुआ जेठा अपने पौरुषसे जो कुछ धन पावै उस धनमेंसे विद्याका अभ्यास करनेवाले छोटे भाइयोंका भाग होता है औरोंका नही ॥ ४ ॥

अविद्यानां तु सर्वेषामीहांतश्चैद्धनं भवेत् ॥ संमस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा ॥ ५ ॥ विद्याधनं तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनं भवेत् ॥ मैत्र्यमौद्राहिकं चैव माधुपर्किकमेव च ॥ ६ ॥

टीका—विद्याहीन सब भाइयोंके खेती वणिज आदि व्यापारसे जो धन उत्पन्न होय अपने जोड़े हुये धनमें उसमें पिताके धनको छोड़िके बराबर वांट होय उद्धार न निकाला जाय यह निश्चयहै ॥ ५ ॥ विद्या मैत्री और विवाह से जोड़ा हुआ और माधुपर्किक कहिये मधुपर्क देनेके समय पूज्यतासे जो मिला होय वह उसीका होता है ॥ ६ ॥

भ्रातृणां यस्तु नेहर्त धनं शक्तः स्वकर्मणा ॥ सं निर्भाज्यः स्वका-  
दंशात्किञ्चिद्वत्त्वोपजीवनम् ॥ ७ ॥ अनुपन्ननिर्पतृद्रव्यं श्रमेण य-  
दुपार्जितम् ॥ स्वयमीहितलब्धं तन्नाकामो दातुमर्हति ॥ ८ ॥

टीका—राजाके साथ जाने आदि कर्मसे धनके संचय करनेमें समर्थ जो भाइ-  
योंके साधारण धनको नही चाहताहै वह अपने भागमेंसे कुछ थोड़ासा देकर भाइयों करि जुदा करने योग्यहै इससे उसके पुत्र कालांतरमें उस धनमें विवाद नही करि सकते हैं ॥ ७ ॥ पिताके धनको खर्च न करिके जो खेति आदि क्लेशसे संचय करै तौ उस अपनी चेष्टासे प्राप्त धन इच्छाके विना भाइयोंको नही देने योग्यहै ॥ ८ ॥

पैतृकं तु पिता द्रव्यमनंवाप्तं यदाप्नुयात् ॥ न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्धम-  
कामः स्वयमर्जितम् ॥ ९ ॥ विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन्पुनर्य-  
दि ॥ संमस्तत्र विभागः स्याज्ज्येष्ठ्यं तत्र न विद्यते ॥ २१० ॥

टीका—पिता करि असमर्थ होनेके कारण उपेक्षा करनेसे नही प्राप्त हुए पि-



ताके धनको जो पुत्र अपनी सामर्थ्यसे ले तौ उस अपने संचित धनका इच्छाके विना पुत्रोंसाथ न विभाग करै ॥ ९ ॥ पहले उद्धार समेत अथवा विना उद्धारके वटे हुए भाई धनको इकट्ठा करि साथ रहके जीविका करते हुए जो फिरि बाँट करै तौ वहां बराबर बाट करना चाहिये जेठको उद्धार न देना चाहिये ॥ २१० ॥

येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वां ह्येतांशप्रदानतः ॥ त्रियेतान्येतरो वां  
पि तस्य भागो न लुप्यते ॥ ११ ॥ सोदर्या विभजेरस्तं समेत्य स  
हिताः समम् ॥ भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सर्वाभयः ॥ १२ ॥

टीका—जिन भाइयोंमें कोई विभागके समय संन्यास आदि करि अपने भागसे हीन होजाय अथवा मरजाय तौ उसका भाग लुप्त नहीं होताहै ॥ ११ ॥ सगे भाई मिलि करि और सगी बहिने इकट्ठे रहते होंय तौ उस भागको बराबरि करि बाँटि लेवें सगों और सौतेलोंमें जो मिलाये हुए धनके कारण योगक्षेमको बाँटि लेवें न सबसगे न सौतेले यह तो पुत्र पत्नी और माता पिताके न होनेमें जानना चाहिये ॥ १२ ॥

यो ज्येष्ठो विनिर्कुर्वीत लोभाद्भातृतृन्यवीयसः ॥ सोऽज्येष्ठः स्यादं  
भागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः ॥ १३ ॥ सर्व एव विकर्मस्था नार्हन्ति  
भ्रातरो धनम् ॥ नर्चादत्त्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १४ ॥

टीका—जो जेठा भाई लोभसे छोटे भाइयोंको धोखा दे वह जेठे भाईकी पूजासे रहित और उद्धार सहित भागसे रहित हो राजाके दंडयोग्य होय ॥ १३ ॥ नहीं पतितभी जे भाई जुवांतथा वेश्याकी सेवा आदि कुकर्मोंमें लगे हुए वे धन पानेके योग्य नहीं हैं और छोटोंके विना दिये जेठा साधारण धनसे अपने लिये मुख्य धन न करै ॥ १४ ॥

भ्रातृणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह ॥ न पुत्रभागं विषमं पि  
तां दद्यात्कथंचन ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं विभागज्जातस्तु पित्र्यमेवं हरे-  
द्धनम् ॥ संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत सतैः सह ॥ २१६ ॥

टीका—पिताके साथ स्थित विना वटे हुए भाइयोंका जो साथ धनसंचय करनेके लिये उत्थान होय तौ बाटनेके समय किसी पुत्रको पिता अधिक न देवै ॥ १५ ॥ जब जीवते हुए पिता करि पुत्रोंका इच्छासे विभाग किया गया होय



तब विभागके उपरान्त उत्पन्न हुआ पुत्र पिताके मरनेपर पिताहीके धनको लेवै और जिन्होंने बटे हुए पिताके साथ फिर धनको मिलाया होय उनके साथ वह पिताके मरनेपर विभाग करै ॥ १६ ॥

अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ॥ मातर्यपि च वृत्तायां  
पितुर्माता हरेद्धनम् ॥ १७ ॥ ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथा  
विधि ॥ पश्चाद्दृश्येत यत्किञ्चित्सर्वं समतां नयेत् ॥ १८ ॥

टीका—अपत्य रहित पुत्रका धन माता ग्रहण करै और माताके मरनेपर पत्नी पिताके भाई और उनके पुत्रोंके होनेपर पिताकी माता अर्थात् दादी धनको लेवै ॥ १७ ॥ पिता आदि करि लिये हुए सब ऋणमें तथा धनमें शास्त्रके अनुसार विभाग होनेपर जो कुछ पिताका ऋण धन विभागके समय विना जाना निकले वह सब बराबर करके बांटना चाहिये शोधन करनेयोग्य न लेना चाहिये और न जेठको उद्धार देना चाहिये ॥ १८ ॥

वस्त्रं पत्रमलंकारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः ॥ योगक्षेमं प्रचारं च न  
विभाज्यं प्रचक्षते ॥ १९ ॥ अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणां च  
क्रियाविधिः ॥ क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्म निबोधत ॥ २२० ॥

टीका—वस्त्र बाहन और आभरण साक्षके समयमें जो जिस करि भोगा गया वह उसीका है बांटने योग्य नहीं है यह तौ अतिन्यून तथा अधिकमूल्यविषयक नहीं है और जो बहु मूल्य आभरण आदि है वह तौ बांटनेही योग्य है और कृतान्न कहिये भात सक्तु आदि सो नहीं बांटने योग्य है उदक कहिये कुवा आदिमें स्थित जल सबों करि भोगने योग्य है बांटने योग्य नहीं है और स्त्रिया कहिये दासी आदि जिनका बराबर भाग नहीं होता है वे नहीं बांटने योग्य है किंतु बराबर काम करवाने योग्य है और योगक्षेम कहिये मंत्री पुरोहित आदि और प्रचार कहिये गौ आदिके प्रचारका मार्ग इन सबको मनु आदि अविभाज्य कहिये नहीं बांटने योग्य है कहते हैं ॥ १९ ॥ यह क्षेत्रज आदि पुत्रोंका दायभाग अर्थात् क्रमसे विभाग करनेका प्रकार तुमसे कहा अब द्यूत कहिये जुवाकी व्यवस्था सुनिये ॥ २२० ॥

द्यूतं समाह्वयं चैवं राजा राष्ट्रान्निवारयेत् ॥ राज्यान्तकरणावेतौ  
द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥ २१ ॥ प्रकाशमेतत्तत्सक्यं यदेवं न स-  
माह्वयो ॥ तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत् ॥ २२ ॥



टीका जिनके लक्षण आगे कहेंगे ऐसे द्यूत और समाह्वय कहिये प्राणिद्यूत इनको राजा अपने देशसे दूर करे जिसे ये दोनो दोष राजाके राज्यके विनाश करनेवाले हैं ॥ २१ ॥ ये दोनो द्यूत और समाह्वय प्रत्यक्ष चोरी हैं तिससे इनके निवारणमें राजा नित्य यत्न करता रहै ॥ २२ ॥

अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते ॥ प्राणिभिः क्रियते यस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ २३ ॥ द्यूतं समाह्वयं चैवं यः कुर्यात्कारयेत वा ॥ तान्सर्वान्वातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः ॥ २४ ॥

टीका-फांसा और शलाका आदि प्राण रहित वस्तुओंसे जो किया जाताहै उसको लोकमें द्यूत कहते हैं और जो प्राणी कहिये मेंढा मुरगा आदिसे दाव लगाकै किया जाताहै उसको समाह्वय जानिये लोकमें प्रसिद्ध इन दोनोंके लक्षणोंका कहना त्यागके लिये है ॥ २३ ॥ द्यूत और समाह्वयको जो करे और जो अधिष्ठाता होकै करावै उन दोनोंके अपराधकी अपेक्षासे राजा हाथ काटना आदि वध करे और यज्ञोपवीत आदि ब्राह्मणोंके चिन्ह धारण करनेवाले शूद्रोंका मारे ॥ २४ ॥

किंतवान्कुशीलवान्कूरान्पार्षण्डस्थांश्च मानवान् ॥ विकर्मस्थान्शौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत्पुरात् ॥ २५ ॥ एते राष्ट्रे वर्तमानाराज्ञः प्रच्छन्नतस्काराः ॥ विकर्मक्रियया नित्यं बांधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥ २६ ॥

टीका-द्यूत आदिके सेवन करनेवालोंको नाचनेवालोंको गानेवालोंको और वेदसे द्वेष करनेवालोंको और श्रुतिस्मृतिसे बाहरि व्रतधारण करनेवालोंको और आपत्तिके विना पराये कर्मसे जीविका करनेवालोंको और मद्यबनानेवालोंको राजा शीघ्रही अपने देशसे निकाल देवै ॥ २५ ॥ ये कितव आदि छुपे हुए चोर राजाके देशमें वसते हुए नित्य छलनेकी क्रियासे सज्जनोंको पीडा देते हैं ॥ २६ ॥

द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत् ॥ तस्माद्द्यूतं न सेवेत हीनस्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥ २७ ॥ प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा तन्निषेवेत योनैः ॥ तस्य दर्पणविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा ॥ २८ ॥

टीका-अभी यह नहीं किंतु पहले कल्पमेंभी यह द्यूत अतिशय करि बैर करानेवाला देखा गयाहै इससे बुद्धिमान हंसीके लियेभी उसका सेवन न करे ॥ २७ ॥ जो मनुष्य उस द्यूतका गुप्त अथवा प्रगट सेवन करता है उसको जैसी राजाकी इच्छा होय वैसा दंड होय ॥ २८ ॥



क्षत्रविद्शूद्रयोनिस्तु दण्डं दातुमर्शकुवन् ॥ आनृण्यं कर्मणा ग-  
च्छेद्विप्रो दद्याच्छनैःशनैः॥२९॥स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां  
च रोगिणाम्॥शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् ॥ २३० ॥

टीका—अब हारे हुएओंके धन न होनेपर यह कहते हैं ॥ क्षत्रिय वैश्य और शूद्रजातिमें उत्पन्न पुरुषके धन न होनेसे धन देनेको न समर्थ होय तौ उससे उसके योग्य कर्म करवाकै धनका सोधन करै और ब्राह्मण तौ जैसा मिलता जाय वैसा क्रमसे देता जाय कर्म करवानेयोग्य नहीं है ॥ २९ ॥ स्त्री बालक वृद्ध उन्मत्त दरिद्री और रोगियोंको शिफा वांसका खंड और रस्सी आदि करि बांधने आदिसे राजा दंड करै ॥ २३० ॥

ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युः कार्याणि कार्याणाम् ॥ धनोष्मणा प-  
च्यमानास्तांनिःस्वान्कारयेन्नृपः ॥ ३१ ॥ कूटशासनकर्तृश्च प्रकृती-  
नां च दूषकान् ॥ स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्वेष्टसेविनस्तथा ॥ ३२ ॥

टीका—जे व्यवहार आदिके देखने अर्थात् निर्णय करनेमें राजा करि नियत किये हुए उत्कोच धन कहिये घूसि लेनेसे तथा तेजीसे बिगड कर अर्थी आदिके कामको बिगाडै राजा उनका धन आदि सर्वस्व छीन लेवै ॥ ३१ ॥ छलसे राजाकी आज्ञा ( हुक्म ) लिखनेवालोंको और स्त्री बालक तथा ब्राह्मणके मारनेवालोंको और शत्रुकी सेवा करनेवालोंको राजा मार डालै ॥ ३२ ॥

तीरितं चानुशिष्टं च यत्र कचैन यद्भवेत् ॥ कृतं तद्धर्मतो विद्यां  
नै तद्धूयो निर्वर्तयेत् ॥ ३३ ॥ अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्युः का-  
र्यमन्यथा ॥ तत्स्वयं नृपतिः कुर्यात्तान्सहस्रं च दण्डयेत् ॥ ३४ ॥

टीका—जहां ऋणदान आदि व्यवहारमें जिस कार्यका शास्त्रकी व्यवस्थासे निर्णय होगया होय और कहे हुए दंडतक जो पहुंचि गया होय उस किये हुएको अंगीकार करै फिरि न लौटावै यह विनाकारण कि हुएकी व्यवस्थाहै इस्से कारणसे किये हुएको तौ लौटावै ॥ ३३ ॥ राजाके मंत्री अथवा प्राड्विवाक व्यवहारके देखनेमें नियत किये हुए जो भली भांति निर्णय न करै जो राजा आप करै और उनपर हजार पण दंड करै यह तौ घूसिका धन न लेनेमें कहाहै उसको तौ पहले कह चुके हैं ॥ ३४ ॥



( ३४६ )

मनुस्मृति

[ अध्यायः

ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ एते सर्वे पृथक् ज्ञेया  
महापातकिनो नराः ॥ ३५ ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकु-  
र्वताम् ॥ शरीरं धनसंयुक्तं दण्डं धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—ब्रह्महा कहिये ब्राह्मणका मारनेवाला मद्यका पीनेवाला अर्थात् पैष्टिका पीनेवाला द्विजाति और पैष्टी माध्वी तथा ग्नेडीका पीनेवाला ब्राह्मण और ब्राह्मणका सुवर्ण चुरानेवाला तस्कर और गुरुकी स्त्रीसे गमन करनेवाला ये सब प्रत्येक महापातकी जाननेयोग्यहैं ॥ ३५ ॥ प्रायश्चित्त करनेवाले इन चारों महा पातकियोंको शरीरसंबंधी और धनके ले लेनेसे धनसंबंधी अपराधके अनुसार धर्मयुक्त आगे कहे हुए दंडको करै ॥ ३६ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः ॥ स्तेये च श्वर्पदं कां  
र्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥ ३७ ॥ असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपा  
ठ्याविवाहिनः ॥ चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ३८ ॥

टीका—“नांक्याराज्ञाललाटेस्युः” अर्थात् राजा करि ललाटमें नअंकन करने योग्यहै यह आगे कहाहै इससे ललाटही अंकनका स्थान जाना जाताहै वहा गुरुपत्नीसे गमन करनेवालेके ललाटमें तपे हुए लोहसे जीवने तक रहनेवाले भगकी आ-कृति गुरुकी पत्नीसे गमनका चिन्ह करै ऐसेही मदिरापान करनेपर पीनेवालेके लंबा सुराध्वजके आकार चिन्ह करै और सोना चुरानेपर चुरानेवालेके माथेमे कुत्तेके पैरका और ब्राह्मणकी हत्या करनेवालेके कबंध पुरुषका अर्थात् विना शिरके पुरुषका चिन्ह करना चाहिये ॥ ३७ ॥ इनको अन्न आदि न भोजन करावै और न इनको यजन करावै और न इनको पढावै और इनके साथ कन्यादान आदि संबंध न करना चाहिये ये तौ निर्द्धन होनेसे याचन आदि दीनतायुक्त और सब श्रौत आदि कर्मोंसे रहित पृथिवीमें भ्रमण करै ॥ ३८ ॥

ज्ञातिसंबन्धिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः ॥ निर्दया निर्नम-  
स्कारास्तन्मनोरनुशासनम् ॥ ३९ ॥ प्रायश्चित्तंतु कुर्वाणाः सर्ववर्णा  
यथोदितम् ॥ नांक्याराज्ञां ललाटेस्युर्दाप्यास्तूतमसांसम् ॥ ४० ॥

टीका—ज्ञातिके मनुष्यों करि तथा मामा आदि संबंधियों करि ये अंक किये हुए पुरुष छोडनेयोग्यहैं इनके ऊपर दया न करनी चाहिये और न ये नम-



स्कार करनेयोग्यहैं यह मनुकी आज्ञाहै ॥ ३९ ॥ शास्त्रमें कहे हुए प्रायश्चित्तके करनेवाले ब्राह्मण आदि तीनो वर्ण ललाटमें नही अंक करनेयोग्य हैं किंतु उत्तम साहस दंड करने योग्यहैं ॥ २४० ॥

आगःसुं ब्राह्मणस्यैव कार्यो मध्यमसाहसः॥विवांस्यो वा भवेद्राष्ट्रा-  
त्सद्रव्यः सपरिच्छेदः ॥ ४१ ॥ इतरे कृतवन्तस्तु पापान्येतान्य-  
कामतः ॥ सर्वस्वहारमर्हन्ति कायतस्तु प्रवासनम् ॥ ४२ ॥

टीका—“ इतरे कृतवन्तस्तु ” इस आगेके श्लोकमें कहा हुआ ‘अकामतः’ यह यहांभी योजना करनी चाहिये तिससे अकामसे किये हुए इन अपराधोंमें गुणवान् ब्राह्मणको मध्यम साहस दण्ड करना चाहिये और पहले कहा हुआ उत्तम साहस निर्गुणीके लिये जानना चाहिये और कामसे इन अपराधोंमें धनधान्य आदि सामग्री समेत ब्राह्मण देशसे निकालने योग्यहै ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणसे अन्य क्षत्रिय आदि इन पापोंको विना इच्छाके करै तो सर्वस्व हरनेको योग्य है और इच्छासे इनके इन अपराधोंमें प्रवास कहिये वधके योग्यहै ॥ ४२ ॥

नौददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् ॥ आददानस्तु तल्लो-  
भान्तेन दोषेण लिप्यते ॥ ४३ ॥ अप्सु प्रवेश्ये तं दण्डं वरुणायो-  
र्षपादयेत् ॥ श्रुतवृत्तोर्षपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् ॥ ४४ ॥

टीका—धार्मिक राजा दण्डरूप इन महापातकियोंके धनको न लेंवै और लोभसे लेता हुआ महापातक दोषका संसर्गी होताहै ॥ ४३ ॥ फिर वह दण्डका धन कहां जाय इस लिये कहते हैं ॥ उस दण्डके धनको नदी आदिके जलमें डालकर वरुणको देवै अथवा शास्त्र तथा उत्तम चरित्रयुक्त ब्राह्मणको देवै ॥ ४४ ॥

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दण्डधरो हि सः ॥

ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥ ४५ ॥

टीका—महा पातकीके दण्डके धनके स्वामी वरुणहैं जिससे दंडधारी होनेके कारण राजाओंकेभी स्वामी हैं तैसेही सब वेदोंका पढनेवाला ब्राह्मण सब जगत्का प्रभुहै इससे प्रभुत्वसे वे दोनो दंडके धनके योग्यहैं ॥ ४५ ॥

यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनो गमम् ॥ तत्र कालेन जायन्ते मा-  
नवा दीर्घजीविनः ॥ ४६ ॥ निष्पद्यन्ते च सूर्यानि यथोक्तानि विशां



( ३४८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

पृथक् ॥ बालांश्च न प्रपीर्यन्ते विकृतं न च जायते ॥ ४७ ॥

टीका-जिस देशमें राजा महापातकीके धनको नहीं लेताहै वहां परिपूर्ण कालसे मनुष्य उत्पन्न होते हैं और दीर्घ आयुके होते हैं और वैश्योंके जैसे धान आदि सस्य बोये जातेहैं वैसेही पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं और अकालमें बालक नहीं मरते हैं और अंगभंग कोई प्राणी नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणान्बाधमानं तु कर्मादवरवर्णजम् ॥  
हंन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः ॥ ४८ ॥

टीका-शरीरकी पीडा और धन लेने आदिसे ब्राह्मणको इच्छासे बाधा देनेवाले शूद्रको हाथ काटने आदि दुःख देनेवाले वधके उपायोंसे राजा मारै ॥ ४८ ॥

यान्वान्वध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे ॥ अर्धमौ नृपतेर्दृष्टो  
धर्मस्तु विनियच्छतः ॥ ४९ ॥ उदितोऽयं विस्तरशो मिथो विवद  
मानयोः ॥ अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः ॥ २५० ॥

टीका-शास्त्रसे अवध्यके मारनेमें जितना अधर्म होताहै उतनाही मारनेयोग्यके छोड़नेमेंभी शास्त्रके अनुसार दंड देते हुए राजाका धर्म होताहै तिससे उसको कैरै ॥ ४९ ॥ ऋणादान आदि अठारह व्यवहारके स्थानोंमें परस्पर विवाद करनेवाले अर्थी प्रत्यर्थीका यह कार्यनिर्णय विस्तारसे कहा ॥ ५० ॥

एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यकुर्वन्महीपतिः ॥ देशानलब्धाल्लिप्से  
तं लब्धांश्च परिपालयेत् ॥ ५१ ॥ सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्ग  
श्च शास्त्रतः ॥ कण्टकोद्धरणे नित्यमंतिष्ठेद्यत्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

टीका-इस कहे हुए प्रकारसे धर्मयुक्त व्यवहारोंका निर्णय करता हुआ राजा प्रजाकी प्रीतिसे नहीं पाये हुए देशोंके लेनेकी इच्छा करै और पाये हुए देशोंकी भली भांतिसे रक्षा करै ॥ ५१ ॥ “जांगलं सस्यसंपन्नं” इस कही हुई रीतिसे जो भली भांति आश्रित देशहै उसमें सातमें अध्यायमें कहे हुए प्रकारसे किला बनाकर चोर साहसिक आदि कंटकोंके दूर करनेमें सदा बड़ा यत्न करै ॥ ५२ ॥

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ॥ नरेन्द्रास्त्रिदिवं या  
न्ति प्रजापालनतत्पराः ॥ ५३ ॥ अशांसस्तस्करान्यस्तु बलिं गृ-



ह्लांति पार्थिवैः ॥ तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते ॥५४॥

टीका-जिस्से साधु आचरणवालोंकी रक्षा करने और चोर आदिकोंको दंड देनेसे प्रजाके पालनमें उद्योग युक्त राजा स्वर्गको जाते है तिस्से कंटकोके उखाडनेमें यत्न करै ॥ ५३ ॥ जैसे फिरि राजा चोर आदिकोंको न दूरि करता हुआ छठा भाग आदि कहे हुए करको लेताहै उसपर देशकी वसनेवाले मनुष्य क्रोधित होतेहैं और दूसरे क्षमोंसे प्राप्त हुईभी उसकी स्वर्गकी गति इस पापसे रुकि जाती है ॥ ५४ ॥

निर्भयं तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलश्रितम् ॥ तस्य तद्दधते नित्यं  
सिच्यमान इव दुमः ॥५५॥ द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्याप  
हारकान् ॥ प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः ॥ ५६ ॥

टीका-जिस राजाके बाहुबलके आश्रयसे देश चोर आदिकोंके भयसे रहित होता है उसका वह देश नित्य ऐसे वृद्धिको प्राप्त होताहै जैसे जलके सीचनेसे वृक्ष ॥ ५५ ॥ चार कहिये दूतही हैं नेत्र जिसके ऐसा राजा दूतोंहीके द्वारा प्रकट तथा गुप्त दो भांतिके पराये धनके लेनेवालोंको जानै ॥ ५६ ॥

प्रकाशवञ्चकास्तेषां नानापण्योपजीविनः ॥

प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः ॥ ५७ ॥

टीका-उन चोर आदिकोंमेंसे जो तराजु वांट आदिके घाटि होनेसे सुवर्ण आदि बेचनेकी वस्तुके बेचने वाले पराये धनको लेते हैं वे खुले ठगनेवाले चोर हैं और संधिके फोडने आदिसे तथा वनके रहनेवाले जे लूटिसे पराये धनको लेते वे गुप्त चोरहैं ॥ ५७ ॥

उत्कोचकांश्चौपधिकां वञ्चकांः कितर्वास्तथा ॥ मङ्गलादेश

वृत्ताश्च भद्रांश्चेक्ष्णिकैः सह ॥ ५८ ॥ असम्यक्कारिणश्चैव

महामात्राश्चिकित्सकाः ॥ शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः प-

ण्ययोषितः ॥ ५९ ॥ एवमादीन्विजानीयत्प्रकाशालोक-

ण्टकान् ॥ निगूढचारिणश्चान्याननार्यानीर्यलिङ्गिनः ॥ ६० ॥

टीका-धूसि लेनेवाले जे कारीं जे मुकद्दमेवाले हैं उनसे धन लेकर अयोग्य कार्य करते हैं और औपधिक जे भय दिखाकै छलते हैं और वंचक जे सुवर्ण



आदि द्रव्यको लेकर घटकी द्रव्य डालकर छलते हैं और कितव जे द्यूत तथा प्राणिद्यूतसे खेलते हैं और जे धन पुत्र लाभ आदि मंगलोंकी ममताको कहकर जीविका करते हैं वे मंगलादेशवृत्तहैं और जे कल्याण करनेवाले आचारोंसे पापोंको छुपाकै धन लेते हैं वे भद्रहैं और जे हाथोंकी रेखा आदिके देखनेसे शुभाशुभ फल कहिकै जीविका करते हैं वे ईक्षणिक हैं और जे हाथीकी शिक्षासे जीवते हैं वे महामात्रहैं और जे चिकित्सासे जीविका करते हैं वे चिकित्सकहैं महामात्र और चिकित्सक ये नो असम्यक्कारी अर्थात् अच्छा काम करनेवाले नहींहैं और शिल्पोपचारयुक्त कहिये जे चित्रके लिखने आदि उपायसे जीवते हैं नियुक्त किये गये ये भी शिल्पका उत्साह दिला करि धनको ले लेते हैं और पराय स्त्री कहि ये वेश्याभी दूसरेके वश करनेमे चतुर होती हैं इत्यादि खुले हुए लोकके छलने वालोंको राजा चारोंके द्वारा जानै तथा और भी गुप्त रूपसे विचरनेवाले शूद्र आदिकोंको जो ब्राह्मण आदिकोंका वेष धारण करते हैं उनको धन हरनेवाले जानै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ २६० ॥

तान्त्रिदित्वा सुचरितैर्गूढस्तत्कर्मकारिभिः ॥ चारैश्चानेकसंस्था  
नैः प्रोत्साद्य वंशमानयेत् ॥ ६१ ॥ तेषां दोषानभिरूप्य स्वस्वै  
कर्मणि तत्त्वतः ॥ कुर्वीत शासनं राजा सम्यक् सारापराधतः ॥ ६२ ॥

टीका—उन कहे हुए वंचकोंको गुप्तरूप सभाके मनुष्योंकि द्वारा तथा उस कामके करनेवाले सम्य मनुष्योंके द्वारा जैसे बनियोंकी चोरीको बनियोंके द्वारा इत्यादिक पुरुषोंकरि तथा इनसे भिन्न सातमें अध्यायमें कहे हुये कापटिक आदि अनेक स्थानोंमें स्थित चारोंके द्वारा जानि उत्सादन करिकै अपने वशमें करै ॥ ६१ ॥ उन प्रकट तथा गुप्त तत्करोंके अपने कर्म चोरी आदिमें सेंधि फोडने आदि पारमार्थिक दोषोंको लोकमें उनसे कहवाय उनके समीपके धन तथा शरीर आदिके सामर्थ्यकी अपेक्षासे तथा अपराधकी अपेक्षासे उनपर राजा दंड करै ॥ ६२ ॥

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः ॥

स्तेनानां पापबुद्धीनां निर्भूतं चरतां क्षितौ ॥ ६३ ॥

टीका—जिस कारणसे चोरोंका और विनीत वेषसे पृथिवीतलमें विचरनेवाले पाप करनेकी बुद्धिवाले मनुष्योंका दंडदेनेके विना पाप क्रियामें नियम नही हो सकताहै इस्से इनको दंड दैवै ॥ ६३ ॥



सभाप्रपापूषशालावेशमद्यान्नविक्रयाः ॥ चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः  
समाजाः प्रेक्षणानि च ॥ ६४ ॥ जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारु  
कावेशनानि च ॥ शून्यानि चाप्यांगाराणि कनान्युपवनानि  
च ॥ ६५ ॥ एवंविधानृपो देशान्गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः ॥ त-  
स्करप्रतिषेधार्थं चौरैश्चाप्यनुचरयेत् ॥ ६६ ॥

टीका—सभा अर्थात् ग्राम नगर आदिमें नियत जनोंके समूहका स्थान तथा  
प्याऊ और पूषोंकी शाला जहां पूआ विकते हैं वेश्याका स्थान, और मद्यके  
तथा अन्नके विकनेका स्थान, चौराहै, तथा प्रसिद्ध वृक्षोंके मूल और जनसमूहके  
स्थान, पुरानी फुलवाडी, वन, कारीगरोंके घर कहिये कारखाने, शून्यघर, आम  
आदिके बाग, और बनाये हुए वन, ऐसे स्थानोंको राजा स्थावर जंगम कहिये  
एक स्थानमें ठहरी हुई और चलती हुई पयादोंकी सेनाको तथा अन्य दूतोंको  
चोरोंके निवारणके लिये भेजे बहुधा ऐसे स्थानोंमें अन्नपान तथा स्त्री संभोग  
आदि के टूटनेके लिये चोर वसते है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ॥ ६६ ॥

तत्सहायैरनुमतैर्नानाकर्मप्रवेदिभिः ॥ विद्यादुत्सादयेच्चैवं निपुणैः  
पूर्वतस्करैः ॥ ६७ ॥ भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्श-  
नैः ॥ शौर्यकर्मपदेशैश्च कुर्युस्तेषां समागमम् ॥ ६८ ॥

टीका—उनकी सहायता करनेवाले और उनके चरित्रोंके समान चरित्र  
और सेधि फोडने आदि कामोंके जाननेवाले चोरों की मायामें निपुण दूतरूप  
पहले चोरोंसे अन्य चोरोंको जानै और उनके दूरि करनेका प्रबंध करै ॥ ६७ ॥  
दूत हुए वे पहले चोर और चोरोंसे ऐसे कहैं कि आइये हमारे घर चलिये वहां लड्डू खीर  
आदि खावै ऐसे भक्ष्य भोज्यके वहानेसे और हमारे देशमें एक ब्राह्मण है वह चाही हुई  
अर्थसिद्धिको जानताहै उसको देखैं ऐसे ब्राह्मणोंके दर्शनोंसे और कोई अकेलाही बहुतों-  
के साथ युद्ध करेगा उसको देखैं इस भांति शौर्य कर्मके वहानेसे उन चोरोंसे राजाके  
दंड धारण करनेवाले पुरुषसे मेल करैं और उनको पकडवा दें ॥ ६८ ॥

ये तत्र नोपसर्पेयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये ॥ तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्स-  
मित्रज्ञातिबान्धवान् ॥ ६९ ॥ न होठेन विना चौरं घातयेद्वा-  
मिको नृपः ॥ सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन् ॥ ७० ॥

टीका—जे चोर वहां भक्ष्य भोज्य आदिमें पकडे जानेकी शंकासे न आवैं



( ३५२ )

मनुस्मृतौ

और जे मूल कहिये राजकरि नियुक्त पुराने चोरोंके समूहमें सावधान हो उनके साथ संगति न करै उनको उन्ही पुराने चोरोंके द्वारा जानि उनमें मिले हुए मित्र पिता आदि और जाति स्वजन समेत बलसे पकड कर मारै ॥ ६९ ॥ धर्मात्मा राजा चुराई हुए द्रव्यके संधि फोडने आदिको उपकरण कुदाली आदिके विना चोरपनका निश्चय विना किये न मारै किंतु चुराई हुई द्रव्यसे और चोरीकी सामग्रीसे चोरपनका निश्चय करि विना विचारके मारै ॥ २७० ॥

ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः ॥ भाण्डार्थकाशदाश्चैवं सर्वास्तानपि चातयेत् ॥ ७१ ॥ राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामन्ताश्चैवं चोदितान् ॥ अभ्याघातेषु मध्यस्थान् शिष्याच्चौरानिव द्रुतम् ७२

टीका—ग्राम आदिकोंमेंभी जे कोई चोरोंका चोरपन जानिकै भोजन देते हैं और चोरीके उपयोगी भांड आदिके रखनेको स्थान देते हैं उनकोभी अपराधी जानि राजा मरवावे ॥ ७१ ॥ जे देशोंमें रक्षाके लिये रक्खे गये हैं और जे सीमाके समीप बसनेवाले क्रूर न होकर चोरीके उपदेश करनेसे मध्यस्थ होंय उनको चोरके समान शीघ्र दंड देवै ॥ ७२ ॥

यश्चापि धर्मसमयात्प्रच्युतो धर्मजीवर्नः ॥ दण्डेतैव तं मर्यादोषेत्स्वकांक्षमौर्द्धि विच्युतम् ॥ ७३ ॥ ग्रामघाते हिताभङ्गे पथि मोषाभिर्दर्शने ॥ शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छेदाः ॥ ७४ ॥

टीका—यजन कराना तथा दान लेने आदिसे दूसरेके यज्ञ आदि धर्मको उत्पन्न करि जो जीवताहै वह धर्मजीवी ब्राह्मण जो धर्मकी मर्यादासे बाहर हो-जाय तौ अपने धर्मसे अष्ट हुए उसकोभी राजा दंडसे पीडा देवै ॥ ७३ ॥ चोर आदि करि ग्रामके छूटने और जलको बांध तोडनेपर और खेतमें उत्पन्न धान्यको नाश करने तथा मार्गमें चोरके देखनेपर उनके समीपके जे अपने शक्तिके अनुसार रक्षा न करै उनको राजा शय्या और गौ आदि पशुओं समेत देशसे निकाल देवै ॥ ७४ ॥

राज्ञः कोपापहतृश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् ॥ घातयेद्विचित्रैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् ॥ ७५ ॥ संधिं छित्त्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥ तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् ७६



टीका—राजाके भंडारसे धनके चुरानेवालोंको तथा राजाकी आज्ञाके न माननेवालोंको और शत्रुओंका राजासे वैर बढ़ावनेवालोंको अपराधके अनुसार हाथ पांव जीभ काटने आदि नाना प्रकारके दंडोंसे मरवावै ॥ ७५ ॥ जे चोर रातिमें सेंधि फोडकर पराये धनको चुराते हैं राजा उनके दोने हाथ काटिकै उनको सूलीपर चढावै ॥ ७६ ॥

अङ्गुलीग्रन्थिभेदस्य छेदेयेत्प्रथमे ग्रहे ॥ ७७ ॥ द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति ॥ ७७ ॥ अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकां-  
शदान् ॥ संनिधातृंश्च मोर्षस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः ॥ ७८ ॥

टीका—वस्त्रके किनारे आदिमें बंधे हुए सुवर्णको जो गांठि खोलकै चुराता है वह ग्रंथिभेदक अर्थात् गांठिकटा होताहै उसके पहले द्रव्य लेनेमें अंगुली कहिये अंगूठा और तर्जनी कटवादे और दूसरी वार लेनेमें हाथ पांव दोनो कटवा दे और तीसरी वार लेनेमें वधके योग्य होते हैं ॥ ७७ ॥ ग्रंथिभेदकों कहिये गांठिकटोंको जानिकै आगि भोजन और शस्त्र रखनेके लिये स्थान देनेवालोंको तथा चोरीका धन रखनेवालोंको राजा चोरके समान दंड देवै ॥ ७८ ॥

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा ॥ यद्वापि प्रतिसंस्कु-  
र्यादाप्यस्तूतमसाहसम् ॥ ७९ ॥ कोष्ठागारायुधागारदेवतागा-  
रभेदकान् ॥ हस्त्यश्वरथहर्तृश्च हन्यादेवाविचारयन् ॥ ८० ॥

टीका—जो स्नान आदिसे मनुष्योंके उपकार करनेवाले तलावको बांध आदिके तोडनेसे बिगाड़ें उनको जलमें डुबवाकै अथवा और प्रकारसे मारै अथवा जो तडागका फिरि संस्कार करै उसको उत्तम साहस रूप हजार पण दंड देवै ॥ ७९ ॥ राजाके कोठार और धन तथा शस्त्रोंके घरके फोडनेवालोंको और बहुत धनके खरचसे बननेयोग्य देवालय आदिके फोडनेवालोंको और हाथी घोडा तथा रथ चुरानेवालोंको शीघ्रही मारै ॥ ८० ॥

यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् ॥ आंगमं वाप्यपां भि-  
द्यात्सं दार्यः पूर्वसाहसम् ॥ ८१ ॥ समुत्सृजेद्राजभार्गे यस्त्वमेध्य-  
मनापदि ॥ स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यं चांशु शोधयेत् ॥ ८२ ॥

टीका—जो फिरि प्रजाके लिये पहले किसीकरि बनाये हुए तलावके जलही



( ३५४ )

मनुस्मृती

ले ले तलावकै सब जलके नाश करनेमें पहले कहा हुआ वध दंड करना योग्य है और जो बांध बांधि करि जलके मार्गका नाश करता है उसपर प्रथम साहस दंड करना चाहिये ॥ ८१ ॥ जो रोगी न होनेपर राजमार्गमें विष्टा करै वह दो कार्षापण दंड देवै और अपवित्रको शीघ्रही दूरि करै ॥ ८२ ॥

आर्षदूतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बालं एवं वा ॥ परिभार्षणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः ॥ ८३ ॥ चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्या-प्रचरतां दमः ॥ अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः ॥ ८४ ॥

टीका—रोगी वृद्ध गर्भिणी और बालक ये दंड देनेयोग्य नहीं हैं किंतु उनसे ऐसे कहना चाहिये कि तुमने यह क्या किया और अपवित्र शुद्ध कराने-योग्य हैं यह शास्त्रकी मर्यादा है ॥ ८३ ॥ सब कायशल्यभिषज अर्थात् चिराफारी करनेवाले वैद्य जो दुष्ट चिकित्सा करें तौ उनको दंड देना चाहिये वहां गौ घोडा आदिकी दुष्ट चिकित्सामें प्रथम साहस दंड है और मनुष्यमें तौ मध्यम साहस दंड योग्य है ॥ ८४ ॥

संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः ॥ प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पञ्च दद्याच्छतानि च ॥ ८५ ॥ अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदेने तर्था ॥ मणीनार्मपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः ॥ २८६ ॥

टीका—संक्रम कहिये जलके ऊपर जानेके लिये काष्ठ अथवा शिलाआदिसे बने हुए छोटे पुलको और ध्वज कहिये चिन्ह राजद्वार आदिमें और यष्टि पुष्करिणी आदिमें और प्रतिमा कहिये छोटी मट्टी आदिकी बनी हुई इन सबोंके नाश करनेवालेपर पांचसौ पण दंड करै और उस बिगाड़े हुएको फिर नया बनावै ॥ ८५ ॥ शुद्ध वस्तुओंमें कम दामकी वस्तु मिलाकर दूषित करनेमें और नहीं तोड़नेयोग्य माणिक्य आदि मणियोंके तोड़नेमें और वेधनेयोग्य मोति आदिकोंके कुठार वेधनेमें प्रथम साहस दंड करना चाहिये और सबोंमें पराई वस्तुके नाश करनेमें दूसरी वस्तु आदिके देनेसे स्वामीका संतोष करना चाहिये ॥ २८६ ॥

समैहि विषमं यस्तु चरेद्दं मूल्यतोऽपि वा ॥ समाप्नुयादमं पूर्वं नरो मध्यममेवं वा ॥ ८७ ॥ बन्धनानि च सर्वाणि राजा मार्गे निर्वेशयेत् ॥ दुःखिता यत्र दृश्येरन्विकृताः पार्षकारिणः ॥ ८८ ॥



प्राकारस्य च भेत्तारं परिखर्णां च पूरकम् ॥  
 द्वाणां चैवं भेत्तारं क्षिप्रमेवं प्रवासयेत् ॥ ८९ ॥

टीका—बराबर मोल देनेवालोंके साथ बढकी तथा घटकी वस्तु देनेसे जो विषमव्यवहार करताहै और बराबर मोलकी वस्तुको दे करि जो किसीकी बहुत मोलकी किसीकी थोड़े मोलकी इस भांति विषम मोलको लेताहै वह अनुबंध विशेषकी अपेक्षासे प्रथम साहस अथवा मध्यम साहस दंडको प्राप्त होय ॥ ८७ ॥ बंधन-गृह ( जेलखाने ) सब मनुष्योंके देखने योग्य राजा मार्गके समीप बनावै जहां बेडी आदि बंधनोसे बंधे हुए भूखप्याससे दुखी और जिनके नख डाढी मूछ आदि बाल बढे हुए दुबले पाप करनेवालोंको और पाप करनेवाले पाप न करनेके लिये देखें और राजा घर तथा शहरके परकोटेके फोडनेवालेको और उन्हीकी खाईके पूरनेवालेको और उनके द्वारोंके तोडनेवालेको शीघ्रही देशसे निकाल देंवै ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्रिशतो दमः ॥  
 मूलकर्मणि चानात्ते कृत्यासु विविधासु च ॥ २९० ॥

टीका—अभिचार होम आदि शास्त्रमें कहे हुए मारनेके उपायोंमें और जड खोदन-ना-पैरोकी धूली लेने आदि लौकिक मारनेके उपायोंके करनेपर जो मरनेका फल न होय तौ दोसो पण दंड करना चाहिये और जो मरजाय तौ मनुष्यके मारनेका दंड करै ऐसे माता पिता स्त्री आदिसे भिन्न झूठी बातोंसे मोहित करि धन लेने आदिके लिये वस करनेमें और कृत्या कहिये नाना प्रकारके उच्चाटन आदिके करनेमें दोसो पण दंड करना चाहिये ॥ २९० ॥

अबीजविक्रयी चैवं बीजोत्कृष्टं तैथैवं च ॥ मर्यादाभेदकश्चैवं  
 विकृतं प्राप्नुयाद्बध्मम् ॥ ९१ ॥ सर्वकण्टकपापिष्ठं हेमकारं तु  
 पार्थिवः ॥ प्रवर्तमानमन्याये छेदयेल्लवर्शः क्षुरैः ॥ ९२ ॥

टीका—अबीजकहिये जलसे नही उगनेयोग्य धान आदिको उगनेके योग्य कहिके जो बेचै अथवा घटकी वस्तुको बहुतसी बढिकी वस्तुमें मिलाकै यह सब बढिकी है ऐसे कहिके जो बेचै और जो ग्राम नगर आदिकी सीमाका नाश करै वह नाक हाथ पांव कान काटिके बधेके योग्यहै ॥ ९१ ॥ सब कंटकोमें बहुतही पापी तौलमें छल करनेवाले और कसमे बदलकर घटकी धातु मिलायकै सोने आदिकी चोरि करनेवाले सुनारकी सव देहको छुरोंसे कटवायकै खंड खंड करायदे ॥ ९२ ॥



सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च ॥ कालमासाद्य कार्यं च  
 राजा दण्डं प्रकल्पयेत् ॥ ९३ ॥ स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशद  
 ण्डौ सहस्रतथा ॥ सप्त प्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥ ९४ ॥

टीका-जोतीजाती हुई भूमीकी हलकुदाली आदिके चुरोनेमें और खड्ग आदि शस्त्रों-  
 के तथा कल्याणघृत आदि औषधके चुरानेपर उपयोगकालसे दूसरे कालकी अ-  
 पेक्षासे और प्रयोजनकी अपेक्षासे राजा दंड करे ॥ ९३ ॥ स्वामी कहिये राजा  
 और अमात्य कहिये मंत्री आदि और पुर कहिये राजाका किया हुआ दुर्ग बस-  
 नेका नगर, और राष्ट्र कहिये देश और कोश कहिये धनका समूह और  
 दंड कहिये हाथी रथ पयादे. और सातमें अध्यायमें कहे हुए तीन प्रकारके मित्र,  
 ये सात प्रकृति कहिये अंगहै इस्से यह राजा सप्तांग कहा जाताहै ॥ ९४ ॥

सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथाक्रमम् ॥ पूर्वं पूर्वं गुरुतरं  
 जानीयाद्व्यसनं महत् ॥ ९५ ॥ सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य  
 त्रिदण्डवत् ॥ अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते ॥ ९६ ॥

टीका-क्रमसे कहे हुए राज्यके इन सात अंगोंमें अगले २ की अपेक्षा पिछ-  
 ले २ को मारि जानै जैसे मित्रके व्यसनसे अपने बल कहिये सेनाका व्यसन  
 भारि है क्यों कि संपन्न सेनाही की मित्रके अनुग्रहमे सामर्थ्य है ऐसेही सेनासे  
 कोश भारिहै क्योंकि कोशके नाशमें सेनाकाभी नाश होताहै और कोशसे राष्ट्र भारिहै  
 क्योंकि राष्ट्रके नाशमें कोशके उत्पात्ति कहांसे होय ओर ऐसे राष्ट्र दुर्गका नाश क्योंकि  
 घास ईधन और रसादि से भरे हुए दुर्गहीसे राज्यकी रक्षा होती है और दुर्गसे मंत्री  
 भारी है क्योंकि प्रधान मंत्रीके नाशमें सब अंग बिगडा जाते है और मंत्रीसेभी आत्मा  
 भारी है क्योंकि सब आत्माहीके लिये है तिस्से अगलेकी अपेक्षासे पिछलेकी यत्नसे रक्षा  
 करै ॥ ९५ ॥ त्रिदंडीके त्रिदंडके समान बंधे हुए इस कहे हुए राज्यके सातो अंगोंमें  
 आपसमें विलक्षण उपकरण होनेके कारण कोईभी अंग अधिक नहीं होताहै यद्यपि  
 पहले श्लोकमें पूर्वपूर्व अंगकी अधिकता कही तिसपरभी इन अंगोंमेंसे अन्य अंगका  
 अपकार अन्य अंग नहीं कर सकताहै तिस्से आगे २ के अंगकी अपेक्षा करनी  
 योग्यहै इस लिये यह अधिकताका निषेधहै यहां प्रसिद्ध यतीका त्रिदंडही दृष्टांतहै  
 जैसे वह चार अंगुलके गौके वालोके लपेटनेसे आपसमें बंधे होते हैं और उनमेंसे  
 त्रिदंड धारण शास्त्रार्थमें कोई दंड अधिक नहीं होता है ॥ ९६ ॥



तेषुतेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गं विशिष्यते॥येन यत्साध्यते कार्यं तं  
तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते॥९७॥चारेणोत्साहयोगेन क्रियैव च कर्म-  
णाम् ॥ स्वशक्तिं परशक्तिं च नित्यं विद्यान्महीपतिः ॥ ९८ ॥

टीका-जिस्से उन २ करने योग्य कार्योंमें वह वह अंग अधिकता युक्त होताहै  
क्योंकि उसका कार्य दूसरा नहीं करसकताहै ऐसे तौ जिस अंगसे जो काम होताहै उ-  
समें वही प्रधान कहा जाताहै तिस्से आपसमें जो गुणोंकी अधिकता आदि कही सो  
इस्से प्रकट की गई ॥ ९७ ॥ सातमें अध्यायमें कहे हुए कापटिक आदिसे सेनाके  
उत्साहके योगसे और हस्तिबंध तथा वणिक्पथ आदिके करनेसे उत्पन्न हुई अपनी  
और शत्रुकी शक्तिको राजा सदा जानै ॥ ९८ ॥

पीडनानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च ॥ औरभेत ततः कार्यं  
संचिन्त्य गुरुलाघवम् ॥९९॥ औरभेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः  
पुनः पुनः ॥ कर्माण्यारम्भाणं हि पुरुषं श्रीं निषेवते ॥ ३०० ॥

टीका-पीडन कहिये मारक आदि अपने तथा पराये चक्रमे उत्पन्न काम  
क्रोधसे उत्पन्न दुःखोको और उनके भारीपन तथा हलकेपनको विचारिके सं-  
धिविग्रह आदि कार्यका आरंभ करै ॥ ९९ ॥ राजा अपने राज्यकी वृद्धि और  
शत्रुकी हानि करनेवाले कर्मोंको जो बड़ी कठिनाईसे भी किये गये होय उन  
किये हुएभी कार्योंका आरंभ करिके आप खेदयुक्त होनेपरभी उनका वारंवार  
फिरभी आरंभ करै कारण यह है कि कर्मोंके आरंभ करनेवाले पुरुषको लक्ष्मी ब-  
हुतही सेवन करती है ॥ ३०० ॥

कृतं त्रेतायुगं चैवं द्वापरं कल्लिरेव च ॥ राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि रा-  
जा हि युगमुच्यते ॥ १ ॥ कल्लिः प्रसृतो भवति स जाग्रद्वापरं  
युगम् ॥ कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेतां विचरंस्तु कृतं युगम् ॥ २ ॥

टीका-सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग ये राजाहीके चेष्टित विशेषहैं उन्ही  
से सत्य आदि विशेषोंकी प्रवृत्ति होती है तिस्से राजाही कृत आदि युग कहा  
जाताहै ॥ १ ॥ कैसा चेष्टित कृतआदि युगहै इसपर कहते हैं अज्ञान और  
आलस्य आदिसे जब राजा उद्योग रहित होताहै तब कलियुग है और जानते  
हुएभी नहीं करताहै तब द्वापर और जब कर्म करनेमें अवस्थित होताहै तब त्रेता



और फिर जब शास्त्रके अनुसार कभीको करता हुआ विचरताहै तब सतयुगहै तिससे राजाको कर्म करनेमें तत्पर होना चाहिये वहां यह तात्पर्य है वास्तविक कृत आदिका भेटना नहीं है ॥ २ ॥

इन्द्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च ॥ चन्द्रस्याग्नेःपृथिव्याश्च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् ॥३॥ वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽभिप्रवर्षति ॥ तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिन्द्रव्रतं चरन् ॥ ४ ॥

टीका-इंद्र सूर्य वायु यम वरुण चंद्र अग्नि और पृथिवीके वीर्यके अनुरूप चरित राजा करै और राजा कंटकोंके उखाड़नेसे प्रताप अनुराग करिकै युक्त होताहै ॥ ३ ॥ कैसे इंद्र आदिका चरित करै इसपर कहते है ॥ ऋतु संवत्सर और पक्षका आश्रय लेकर यह कहा जाताहै ॥ जैसे श्रावण आदि चारि महीने सस्य आदिकी सिद्धिके लिये इंद्र बरसताहै ऐसे इंद्रके चरितको करता हुआ राजा अपने देशमें आये हुए साधुओंको वांछित अर्थोंसे पूर्ण करै ॥ ४ ॥

अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ॥ तथा हरेत्कंठं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत् ॥ ५ ॥ प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरेति मारुतः ॥ तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम् ॥ ६ ॥

टीका-जैसे सूर्य अगहन आदि आठ महीने किरणोंसे थोड़ा २ रस थोड़े तापसे ग्रहण करते है ऐसेही राजा शास्त्रमें कहे हुए करोंको पीडाके विना देशसे ग्रहण करै जिस्से यह सूर्यका व्रतहै ॥ ५ ॥ जैसे प्राणनाम पवन सब जीवोंमें भीतर प्रवेश करिकै विचरता है ऐसेही चारकै द्वारा अपने पराई राज्यमंडलमें चिकीर्षित अर्थ जाननेके लिये भीतर प्रवेश करना चाहिये जिस्से यह पवनका चरितहै ॥ ६ ॥

यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति ॥ तथा राज्ञां नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम् ॥७॥ वरुणेन यथा पाशैर्वद्ध एवाभिदृश्यते ॥ तथा पापान्निगृह्णीयाद्रुतमेतद्धि वारुणम् ॥ ८ ॥

टीका-यद्यपि यमके शत्रु मित्र नहीं है तिसपरभी उसके निंदक और पूजकोका शत्रु मित्र कथनहै ॥ जैसे यम शत्रु मित्रके मरनेके समय तुल्यके समान दंड देताहै ऐसेही राजको भी अपराधके समय रागद्वेषको छोडकर प्रजा शासन करनेयोग्य-



जिस्से यह यमका व्रत है ॥ ७ ॥ जो वरुणकी रस्सियोसे बांधनेको इष्ट है वह जैसे पा-  
शोंसे बंधाही हुआ दीखता है वैसेही पापकरनेवाले जबतक न कुछ करसकै तबतक  
शासन करै जिस्से यह इसका वरुणका व्रत है ॥ ८ ॥

परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः ॥ तथा प्रकृतयो यं-  
स्मिन्सं चान्द्रव्रतिको नृपः ॥ ९ ॥ प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं  
स्यात्पार्ष्णिकर्मसु ॥ दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्रेयं व्रतं स्मृतम् ॥ १० ॥

टीका—जैसे चंद्रमाके देखनेसे मनुष्य हर्षित होते है ऐसेही मंत्रीआदि जिसके  
देखनेसे संतोषको प्राप्त होय वह चंद्राचारि राजा है ॥ ९ ॥ पाप करनेवालोंका  
दंड देनेमें सदा प्रचंड होय और प्रतिकूल मंत्रियोंका मारनेवाला होय यह इसका  
अग्निसंबंधी व्रत कहा गया है ॥ ३१० ॥

यथा सर्वाणि भूतानि धरां धारयते समम् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि  
विभ्रंतः पार्थिवं व्रतम् ॥ ११ ॥ एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमत्  
न्द्रितः ॥ स्तेनान् राजा निर्गुणहीयात्स्वराष्ट्रे परं एव च ॥ १२ ॥

टीका—जैसे पृथिवी सब बड़े छोटे स्थावर जंगम ऊंचे नीचेका समान करिकै  
धारण करती है ऐसेही विद्वान् धनवान् गुणवान् जीवोंको तथा इनसे भिन्न दीन अ-  
नाथ आदि सब जीवोंको रक्षा करने और धन देने आदिसे सामान्यता करि धारण  
करने वाले राजाका पृथिवीसंबंधी व्रत होता है ॥ ११ ॥ इन कहे हुए उपायोंसे  
और अपनी बुद्धिसे उत्पन्न हुए विना कहे हुएओंसे राजा आलस्य रहित हो अपने  
देशमें जो चोर बसते होय और पराये देशके बसनेवाले अपने देशमें आकै चोरि क-  
रते होय उन दोनों प्रकारके चोरोंको पकडै ॥ १२ ॥

परामर्ष्योपदं प्राप्तो ब्राह्मणार्त्रं प्रकोपयेत् ॥ ते ह्येनं कुंपिता ह  
न्युः सद्यः सवलवाहनम् ॥ १३ ॥ यैः कृतैः सर्वभक्ष्योऽग्निरपेयश्च  
महोदधिः ॥ क्षयी चाप्यायितः सोमः को नै नश्येत्प्रकोप्य तान् १४

टीका—कोशके क्षीण होने आदिसे बड़ी आपत्तिको प्राप्तभी राजा ब्राह्मणोंको  
क्रोधित न करै जिस्से क्रोधित हुए वे सेनावाहन समेत इसको शीघ्रही शाप  
तथा अभिचारसे मारेंगे ॥ १३ ॥ जिन ब्राह्मणों करि अभिशापसे अग्नि सर्वभक्षी  
किया गया और समुद्र नही पिनेयोग्य है जल जिसका ऐसा किया गया और चं-



द्रमा क्षीणता युक्त किया गया पीछे पूर्ण किया गया उनको कुपित करिकै कौन ना-  
शको न प्राप्त होय ॥ १४ ॥

लोकानैन्यान्सृजेयुयै लोकपालाश्च कोपिताः ॥ देवान्कुयुरदेवां  
श्च कः क्षिण्वंस्तान्समृन्नुयात् ॥ १५ ॥ यानुपाश्रित्य तिष्ठन्ति लो  
का देवाश्च सर्वदा ॥ ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः

टीका—जे स्वर्ग आदि लोकोंको तथा लोकपालोंको दूसरे उत्पन्न कर सकते  
है औ देवताओंको शापसे मनुष्य आदि करते है उनको पीडा देकर कौन स-  
मृद्धिको प्राप्त होय ॥ १५ ॥ जिन यजन याजन करनेवाले ब्राह्मणोंका आश्रय  
ले करि अग्रिमे छोडी हुई आहुति इस न्यायसे पृथिवी आदि लोक और देवता  
स्थितिको प्राप्त होते है और वेदही जिनके अभ्युदयका साधन होनेसे और याजन  
अध्यापन आदिसे जिनके धनका उपायहै उनको जीवनेकी इच्छा करता हुआ  
कौन मारै ॥ १६ ॥

अविद्वांश्चैवं विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च  
यथाग्निं दैवतं महत् ॥ १७ ॥ श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको  
नैव दुष्यति ॥ हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिर्वर्धते ॥ १८ ॥

टीका—जो ऐसाहै तौ विद्वान् ब्राह्मणका सेवन करे इसपर कहते है ॥ जैसे आहित  
और अनाहित अग्नि बडी देवता है ऐसेही मूर्ख तथा विद्वान् ब्राह्मण उत्कृष्ट देवता  
है ॥ १७ ॥ जैसे बडा तेजस्वी अग्नि श्मशानमें मुर्दोंके जलानेपरभी नही दूषित  
होताहै किंतु फिरिभी यज्ञोंमें होम किया गया बढताहै ॥ १८ ॥

एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु ॥ सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परं  
मं दैवतं हि तत् ॥ १९ ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति  
सर्वशः ॥ ब्रह्मैव संनिर्यन्तु स्यात्क्षत्रं हि ब्रह्मसंभवम् ॥ ३२० ॥

टीका—ऐसे ब्राह्मण यद्यपि संपूर्ण कुत्सित कर्मोंमें प्रवृत्त होताहै तिसपरभी सब  
भांति पूज्यहै कारण यह है कि वे उत्कृष्ट अर्थात् सबसे बडे देवता हैं ॥ १९ ॥  
ब्राह्मणोंको सब भांति पीडा देनेवाले क्षत्रियोंको शाप अभिचार आदिसे ब्राह्मणही  
दंड देनेवाले हैं जिस्से क्षत्रिय ब्राह्मणसे हुआहै क्योंकि ब्रह्मकी बाहेसे उत्पन्नहै ३२०

अथोऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ॥ तेषां सर्वत्रगं तेज



स्वांसु यो<sup>१३</sup> निषु शाम्यति ॥ २१ ॥ नाब्रह्म क्षत्रमृधोति नाक्षत्रं  
ब्रह्म वर्धते ॥ ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह<sup>१३</sup> चा<sup>१४</sup>मुत्र वर्धते ॥ २२ ॥

टीका—जल ब्राह्मण और पाषाणसे अग्नि क्षत्रिय और शस्त्र उत्पन्न हुए उनका तेज सर्वत्र जलाना तिरस्कारकरना और काटनारूप कर्म करताहै अपने कारण जल ब्राह्मण और पाषाणमें दाहना तिरस्कार और छेदनरूप कार्य नहीं करता है ॥ २१ ॥ शांति पुष्टता और व्यवहार देखना आदि धर्म न होनेसे ब्राह्मण रहित क्षत्रिय नहीं बढ़ताहै ऐसेही क्षत्रिय रहित ब्राह्मणभी नहीं बढ़ता है क्योंकि रक्षा विना यज्ञ आदि कर्म नहीं होसकते हैं क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपसमें संबंध रखतेही हैं इस लोक तथा परलोकमें धर्म अर्थ काम तथा मोक्षकी प्राप्तिसे वृद्धिको प्राप्त होताहै दंडके प्रकरणमें तौ यह ब्राह्मणकी स्तुति है अपराधीभी ब्राह्मणोंके लघु दंडके प्रयोगमें नियमके लिये है ॥ २२ ॥

दत्त्वा धनं तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम् ॥ पुत्रे राज्यं समासृज्य  
कुर्वीत प्रायणं रणे ॥ २३ ॥ एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः ॥  
हितेषु चैवं लोकस्य सर्वान् भृत्यान्त्रियोजयेत् ॥ २४ ॥

टीका—जब अनिष्टके देखनेसे अथवा चिकित्साके योग्य नहीं ऐसे रोगसे जब आसन्नमृत्यु होय तब महा पातकीके धनसे भिन्न विनियोग किये हुए सेवाकी सब दंडका धन ब्राह्मणोंको देकर पुत्रको राज्य सौपि निकटमृत्यु पुरुष अधिक फलके पानेके लिये संग्राममें प्राण छोड़े संग्रामका संभव न होय तौ अनशन कहिये न खाने आदिसेभी छोड़ै ॥ २३ ॥ ऐसे तीनि अध्यायोंमें कहे हुए राजधर्मोंसे व्यवहार करता हुआ राजा सदा यत्नसे भृत्योंको प्रजाके हितोंमें लगावै ॥ २४ ॥

एषोऽखिलः कर्मविधिर्लुक्तो राज्ञः सनातनः ॥ इमं कर्मविधिं विद्या  
त्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः ॥ २५ ॥ वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दार  
परिश्रमम् ॥ वार्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैवं रक्षणे ॥ २६ ॥

टीका—परंपरासे चले आनेसे नित्य यह राजाके कर्मकी विधि सब कही अब वैश्य शूद्रोंके क्रमसे जो आगे कहा जायगा ऐसा कर्मका अनुष्ठान जानै ॥ २५ ॥ किया गयाहै यज्ञोपवीत तक संस्कार जिसका ऐसा वैश्य विवाह आदिकों करिकै जो आगे कही जायगी ऐसी जीविकामें खेती आदि कामके लिये पशुओंके पालनेमें सदा लगा रहै ॥ २६ ॥



( ३६२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून् ॥ ब्राह्मणाय च रंज्ञे च  
सर्वाः परिददे प्रजाः ॥ २७ ॥ न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशू  
नि ति ॥ वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन ॥ २८ ॥

टीका—जिस्से ब्रह्माने पशुओंको उत्पन्न करिकै रक्षाके लिये वैश्यको दिये प्रसंगसे यह कहाहै इस्से वैश्य करि पशुरक्षा करनेयोग्यहै यह पहलेका अनुवादहै और संपूर्ण प्रजाको उत्पन्न करिकै ब्राह्मणके लिये और राजाके लिये रक्षाके निमित्त दी यह प्रसंगसे कहा ॥ २७ ॥ पशुओंकी रक्षा न करों यह इच्छा वैश्याको कभी न करनी चाहिये इस्से खेती आदि जीविकाके होनेपरभी वैश्यको पशुओंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये वैश्यको पशुकी रक्षा करने पर दूसरेसे पशुकी रक्षा न करवानी चाहिये ॥ २८ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानां तान्तवस्य च ॥ गन्धानां च रसा  
नां च विद्यादर्वबलाबलम् ॥ २९ ॥ बीजानामुत्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदो  
षगुणस्य च ॥ मानयोगं च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः ॥ ३० ॥

टीका—मणि मोती मूगा लोह वस्त्र और कपूर आदि गंधोका और नोन आदि रसोंका उत्तममध्यमोंका देशकालकी अपेक्षासे मोलका बढ़ना घटना वैश्य जानै २९ सब बीजोंके बोनेकी विधिका जाननेवाला होय अर्थात् यह बीज इस कालमें बोया हुआ ऊगता है इसमें नही इस भांति वैसेही यह ऊपरहै और यह धान्यका देनेवाला है इत्यादि खेतके गुण दोषका जाननेवाला होय और प्रस्थ द्रोण आदि मानके तथा तुलाके सब उपायोंको तत्त्वसे जानै जिसमें दूसरा न ठगै ॥ ३० ॥

सारसारं च भाण्डानां देशानां च गुणांगुणान् ॥ लाभालाभं च  
पर्यानां पशूनां परिवर्धनम् ॥ ३१ ॥ भृत्यानां च भूतिं विद्याद्द्राषा  
श्च विविधा नृणाम् ॥ द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च ॥ ३२ ॥

टीका—यह बढकाहै यह घटकाहै इस भांति एक जातिकेभी द्रव्योंका विशेष जानै ऐसेही पूर्व पश्चिम आदि दिशाओंकाभी अर्थात् कहां क्या थोडा मोलहै क्या बहुत मोल है इत्यादिक देशके गुण दोष जानै और वेचनेकी वस्तुओंकाभी कि इतने कालमें इतना घट होगा अथवा नफा होगा यह जानै तथा इस देशमें ओर इस कालमें तृण जल जब आदिसे पशु बढते हैं और इस्से क्षीण होते हैं इसको भी जानै ॥ ३१ ॥ गौओंके पालनेवालेको यह और भैसोंके पालनेवालेको यह



देना चाहिये इस भांति देशकालके अनुरूप वेतन जानै और गौड दक्षिणी आदि मनुष्योंकी नाना प्रकारकी भाषा बेंचनेके लिये जानै वैसेही यह वस्तु ऐसे रक्खी जाती है इसके साथ बहुत कालतक रहती है इसको जानै तैसेही यह वस्तु इस देशमें और इस कालमें इतनेमें बेची जाती है इसकोभी जानै ॥ ३२ ॥

धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्तमुत्तमम् ॥ दद्याच्चैसर्वभूताना-  
मन्नमेवं प्रयत्नतः ॥ ३३ ॥ विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां य  
शस्विनाम् ॥ शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैःश्रेयसः परः ॥ ३४ ॥

टीका—धर्मसे दोषण सैकरे आदि कहे हुए प्रकारसे धनकी वृद्धिमें बड़ा यत्न करै और सुवर्ण आदि दानकी अपेक्षा प्राणियोंको अन्नही देवै ॥ ३३ ॥ शूद्रका तौ वेदके जाननेवाले और अपने धर्मके करनेसे यशकरि युक्त गृहस्थ ब्राह्मणोंकी जो सेवाहै वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि कल्याणकारक धर्म है ॥ ३४ ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मदुवागनहंकृतैः ॥ ब्राह्मणाद्यौश्रयो नित्यमुत्कृ-  
ष्टां जातिमश्नुते ॥ ३५ ॥ एषोऽनापदि वर्णानामुक्तैः कर्मविधिः  
शुभः ॥ आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तेन्निबोधत ॥ ३६ ॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

टीका—बाहरी और भीतरी शौच करि युक्त और अपनी जातिकी अपेक्षासे ऊंचे द्विजातिकी सेवा करनेवाला मधुर बोलनेवाला अहंकार रहित और मुख्यता करि ब्राह्मणका आश्रय लेनेवाला और ब्राह्मणके न होनेमें क्षत्रिय तथा वैश्यका आश्रय लेनेवाला शूद्रभी अपनी जातिसे उत्कृष्ट जातिको प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ आपत्ति रहित समयमें चारो वर्णोंके कर्मकी शुभविधिरूप यह धर्म कहा और आपत्तिमें जो उनका धर्म है उसको संकीर्ण सुननेके उपरांत क्रमसे सुनिये ॥ ३६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

## अथ दशमोऽध्यायः ।

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजार्तयः ॥ प्रब्रूयाद्ब्राह्मण  
स्त्वेवेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वैत्यु  
पायान्यथाविधि ॥ प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैवं तथो भवेत् ॥ २ ॥



( ३६४ )

मनुस्मृती

टीका-वैश्यशूद्रधर्मके उपरांत “ संकीर्णानांचसंभवम् ” अर्थात् संकीर्णोंकीभी उत्पत्ति कहेंगे यह प्रतिज्ञा कर चुके हैं इससे वह कहनाहै क्योंकि वर्णोंहीसे संकीर्णोंकी उत्पत्तिहै और तीनों वर्णोंका मुख्य धर्म अध्ययनहै और ब्राह्मणका अध्यापन कहिये पढ़ाना सो कहते हैं ॥ ब्राह्मण आदि तीनोंवर्ण अध्ययनसे अनुभव किये हुए अपने कर्मके करनेवाले वेदकी पढ़ें और इनमेंसे ब्राह्मणही अध्यापन करै क्षत्रिय वैश्य नहीं यह निश्चयहै ॥ १ ॥ सब वर्णोंकी जीविकाका उपाय ब्राह्मण शास्त्रके अनुसार जानै और उनको उपदेश करै और आपही कहे हुए नियमको करै ॥ २ ॥

वैशेष्यात्प्रकृतिश्रेष्ठ्यान्नियमस्य च धारणात् ॥ संस्कारस्य वि  
शेषाच्च वर्णानां ब्राह्मणः प्रभुः ॥३॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो व  
र्णा द्विजातयः ॥ चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ॥४॥

टीका-जातिकी अधिकतासे और प्रकृति कहिये कारण अर्थात् उत्पत्तिके स्थान जो हिरण्यगर्भ हैं उनके उत्तम अंगरूप कारणकी अधिकतासे और नियम जो वेदहै उसके पढ़ने पढ़ानेसे और संस्कार जो उपनयननाम तिसकी क्षत्रियकी अपेक्षा मुख्यताके विधानसे विशेषसे और वर्णोंको पढ़ाने तथा जीविकाका उपदेश करनेमें ब्राह्मणही समर्थ प्रभु है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति संज्ञकहैं इन्हीके यज्ञोपवीतका विधान होनेसे और शूद्र फिर चौथा वर्ण एक जाति है क्योंकि उसके यज्ञोपवीत नहीं होताहै फिर और पांचमा वर्ण नहीं है क्योंकि संकीर्ण जातिवालोंका तौ अश्वतर अर्थात् खिच्चरके समान माता पिताकी जातिसे भिन्न दूसरी जाति होती है विस्से उनको वर्णत्व नहीं है यह दूसरी जातिका कहना शास्त्रमें व्यवहारके लिये हैं ॥ ४ ॥

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु ॥ आनुलोम्येन संभूता  
जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५ ॥ स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पा-  
दितान्सुतान् ॥ सदर्शानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ ६ ॥

टीका-ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंमें शास्त्रकी रीतिसे व्याही हुई समान जातिकी अक्षतयोनि स्त्रियोंमें अनुलोमतासे जैसे ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें और क्षत्रियसे क्षत्रियामें इस क्रमसे जे उत्पन्न हुए हैं वे मातापिताकी जाति करि युक्त उसी जातिहीके जानने चाहिये ॥ ५ ॥ आनुलोम्य कहिये क्रमसे व्यवधान रहित वर्णकी स्त्रियोंमें द्विजातियों करि उत्पन्न किये गये पुत्र जैसे ब्राह्मण करी



क्षत्रियामें और क्षत्रिय करि वैश्यामें और वैश्य करि शूद्रामें उन पुत्रोंको आताकी हीन जातिपनके दोषसे निन्दित और पिताके सदृश पिताके सजाती नहीं मनु आदि कहते हैं पिताके सदृश कहनेसे माताकी जातिसे ऊंचे और पिताकीजातिसे नीचे जानने चाहिये इनके नामतौ मूर्द्धावसिक्त माहिष्य करणसंज्ञक याज्ञवल्क्य आदि-कोंने कहे हैं और इनकी वृत्तियां उशनाने कही हैं जैसे हाथी घोडा तथा रथकी शिक्षा और शस्त्र बांधना ये मूर्द्धावसिक्तकी वृत्ती है और नाचन गाना नक्षत्रोंसे जीविका करना और सस्य जे धान्यहै तिनकी रक्षा करना ये माहिष्योंकी वृत्तियां है और द्विजातिकी सेवा धन धान्यका स्वामी होना राजाकी सेवा दुर्गान्तःपुरकी रक्षा करना ये पारशव उग्र और करणकी वृत्तियां हैं ॥ ६ ॥

अनन्तरासु जातानां विधिरेष सनातनः॥ द्व्येकान्तरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमं विधिम् ॥७॥ ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते ॥ निषादः शूद्रकन्यायां र्यः पारशवं उच्यते ॥ ८ ॥

टीका-परंपरासे चली आती हैं इस लिये नित्य यह विधि अनन्तर जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्नोंकी कही एकवर्णसे अथवा दोवर्णोंसे व्यवहित भार्याओंमें उत्पन्नोंकी जैसे ब्राह्मणसे वैश्यामें क्षत्रियसे शूद्रामें और ब्राह्मणसे शूद्रामें इस वक्ष्यमाण विधिको धर्मयुक्त जाने ॥ ७ ॥ ब्राह्मणसे व्याही हुई वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठनाम पुत्र उत्पन्न होताहै और व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें निषाद उत्पन्न होताहै वह दूसरे नामसे पारशवभी कहा जाताहै ॥ ८ ॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान् ॥ क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तु-  
रुग्रोनामं प्रजायते ॥ ९ ॥ विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयो  
र्द्वयोः ॥ वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन्वडेते'ऽपसदाः स्मृताः ॥ १० ॥

टीका-क्षत्रियसे व्याही हुई शूद्रकी कन्यामें क्रूर चेष्टायुक्त क्रूरकर्म करनेवाला क्षत्रिय तथा शूद्रके स्वभावकरि युक्त उग्रनाम पुत्र होताहै ॥ ९ ॥ ब्राह्मणके क्षत्रिया आदि तीनि भार्यायोंमें और क्षत्रियके वैश्या आदि दो स्त्रियोंमें और वैश्यके शूद्रामें तीनोवर्णोंके ये छ पुत्र सवर्ण पुत्रके कार्यकी अपेक्षा अपसद कहिये निकृष्ट कहे गये हैं ॥ १० ॥

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः॥ वैश्यान्मागधवैदे'हो  
राजविप्राङ्गनासुतौ ॥११॥ शूद्रादायोगवः क्षता चाण्डालश्चाध



( ३६६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

मौ नृणाम् ॥ वैश्यराजन्यविप्रांसु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

टीका—ऐसे अनुलोमोको कहिकै प्रतिलोमोको कहते हैं ॥ क्षत्रियसे ब्राह्मणकी कन्यामें जातिसें सूतनाम पुत्र होताहै और वैश्यसे ययाक्रम क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें मागध और वैदेहनाम पुत्र होते हैं इनकी वृत्तियां मनुही करि कही जायगी ॥ ११ ॥ शूद्रसे वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें क्रमसे आयोगव क्षत्ता और मनुष्योंमें अधम चांडाल ये वर्णसंकार होते हैं ॥ १२ ॥

एकांतरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ ॥ क्षत्रवैदेहकौ तद्वत्प्रतिलोम्येऽपि जन्मनि ॥ १३ ॥ पुत्रौ येऽनन्तरस्त्रोजाः क्रमेणोक्तौ द्विजन्मनाम् ॥ ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ १४ ॥

टीका—एकांतरभी वर्णमें ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामें अंबष्ठ और क्षत्रियसे शूद्रकी कन्यामें उग्र ये देनो अनुलोमतासे जैसे स्पर्श आदिके योग्य हैं तैसेही एकांतरमें प्रतिलोम उत्पन्न होनेपरभी शूद्रसे क्षत्रियामें क्षत्ता वैश्यसे ब्राह्मणीमें वैदेह ये दोनोभी स्पर्शके योग्य जानने योग्यहैं एकांतर उत्पन्नोके स्पर्श आदिकी आज्ञासे अनंतर उत्पन्न सूत मागध और आयोगवका स्पर्श आदिका योग्यत्व सिद्ध होता है इससे चांडालही एक प्रतिलोमज स्पर्श आदिमें निषेध किया जाताहै ॥ १३ ॥ जे द्विजातियोंके अनंतर एकांतर और जातिकी स्त्रियोंमें अनुलोमतासे उत्पन्न पहले कहे गये पुत्र उनको हीन जातिकी माताके दोषसे माताकी जातिसे व्यपदेश्य कहिये कहनेयोग्य कहते हैं माता पितासे भिन्न संकीर्ण होनेपरभी माताका व्यपदेश कहना माताकी जातिके संस्कार आदि धर्मकी प्राप्तिके लिये है ॥ १४ ॥

ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतौ नाम जायते ॥ आभीरोऽम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वर्णः ॥ १५ ॥ आयोगवश्च क्षत्ता च चण्डालश्चार्धमो नृणाम् ॥ प्रतिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रियः ॥ १६ ॥

टीका—ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न उग्र कन्या होती है उसमें ब्राह्मणसे आवृतनाम पुत्र होताहै और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न अंबष्ठानामकन्या ब्राह्मणसे आभीरनाम कन्या पुत्र उत्पन्न होताहै शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगवीनाम क्षन्यामें ब्राह्मणसे धिग्वर्णनाम पुत्र होताहै ॥ १५ ॥ आयोगव क्षत्ता और चांडाल ये मनुष्योंमें अधम हैं ये तीनो व्युत्क्रम कहिये ॥ उलटपनमें वैश्याक्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रियोंमें पुत्रके कार्यसे रहित तीनो शूद्रसे उत्पन्न होते हैं ॥ १६ ॥



वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु ॥ प्रतीपमेते जायन्ते पं  
रेय्यपसदास्त्रयः ॥ १७ ॥ जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति  
पुक्कसः ॥ शूद्रांजातो निषाद्यां तु स वै कुक्कुटकः स्मृतः ॥ १८ ॥

टीका—क्षत्रिया और ब्राह्मणीसें मागध और वैदेह और क्षत्रियसे ब्राह्मणीमें सूत  
इस प्रकार प्रतिलोमतासे औरभी तीनि पुत्र कार्यसे रहित उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥  
निषादसे शूद्रमें उत्पन्न जातिसे पुक्कस होताहै और निषादीमें शूद्रसे जो उत्पन्न हुआ  
वह कुक्कुटक नाम कहा गया ॥ १८ ॥

क्षत्रुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते ॥ वैदेहकेन त्वम्बं  
ष्ठ्यामुत्पन्नो वेणो उच्यते ॥ १९ ॥ द्विजातयः सर्वर्णासु जनयन्त्य  
व्रतांस्तु यान् ॥ तांन्सावित्रीपरिभ्रष्टान्ब्रात्यानि ति विनिर्दिशेत् २०

टीका—शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न पुत्र क्षत्ता होताहै और क्षत्रियसे शूद्रमें उत्पन्न पुत्री  
उग्रा होती है उस क्षत्तासे उग्रामें उत्पन्न पुत्र श्वपाक कहा जाताहै और वैदेहकसे  
तौ अंवष्ठीमें और ब्राह्मणसे वैश्यामें उत्पन्न कन्यामें वेण कहा जाताहै ॥ १९ ॥  
द्विजाति सवर्णा स्त्रियोमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न करते हैं वे जो यज्ञोपवीत कर्मसे हीन  
होते हैं तौ उन यज्ञोपवीत न किये हुए ओंको ब्रात्य इस नामसे कहै “अत ऊर्ध्व  
त्रयोप्येते” यहभी कहा हुआ ब्रात्यका लक्षणहै यहभी प्रतिलोमज पुत्रके समान अयोग्य  
पुत्रत्व दिखानेके लिये इस संकीर्ण प्रकरणमें अनुवाद किया गया ॥ २० ॥

ब्रात्यास्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः ॥ आवन्त्यवाटधा  
नौ च पुष्पधः शैख एव च ॥ २१ ॥ झल्लो मल्लश्च राजन्याद्ब्रात्या  
त्रिच्छिविरेव च ॥ नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च ॥ २२ ॥

टीका—ब्रात्य ब्राह्मणसे सवर्णा ब्राह्मणीमें पापस्वभाव भूर्जकंटकनाम उत्पन्न  
होताहै तैसेही आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध, और शैख, उत्पन्न होते हैं एकही के  
ये देशभेदसे प्रसिद्धनामहैं ॥ २१ ॥ ब्रात्य क्षत्रियसे सवर्णामें झल्ल, मल्ल, निच्छि-  
वि, नट, करण, खस, और द्रविड, नाम उत्पन्न होते हैं येभी एकहीके नामहैं ॥ २२ ॥

वैश्यास्तु जायते ब्रात्यात्सुर्धन्वाचार्य एव च ॥ कारुषश्च विजन्मा  
च मैत्रः सात्वित एव च ॥ २३ ॥ व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेद-  
नेन च ॥ स्वकर्मणां च त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ २४ ॥



( ३६८ )

मनुस्मृति

टीका—व्रात्य वैश्यसे सवर्णा स्त्रीमें सुधन्वा, आचार्य, कारुष, विजन्म, मैत्र, सात्वत, नाम होते हैं एभी एकहीके नामहै ॥ २३ ॥ ब्राह्मण आदि वर्णोंमें परस्पर स्त्रीगमन करनेसे और विवाहके योग्य नहीं ऐसी सगोत्र आदिके विवाहसे और उपनयनरूप अपने कर्मके त्यागसे वर्णसंकर नाम होताहै इससे इस प्रकरणमें व्रात्योंका कहना योग्यहै ॥ २४ ॥

संकीर्णयोनयो ये तु प्रतिलोमानुलोमजाः ॥ अन्योन्यव्यतिष-  
क्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ २५ ॥ सूतो वैदेहकश्चैव चण्डा-  
लश्च नराधमः ॥ मागधः क्षत्रजातिश्च तथाऽयोगव एव च ॥ २६ ॥

टीका—जे संकीर्णयोनि हैं और प्रतिलोमोंसे आपसमें संबंध होनेसे उत्पन्न होते हैं उनको विशेष करि कहौंगा ॥ २५ ॥ जिनके लक्षण कहचुके हैं ऐसे सूत, वैदेह और मनुष्योंमें अधम चांडाल, मागध, क्षत्र जातिमें तथा आयोगव ॥ २६ ॥

एते षट् सहस्रान्वर्णाजनयन्ति स्वयोनिषु ॥ मातृजात्यां प्रसूयन्ते  
प्रवरासु च योनिषु ॥ २७ ॥ यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्मास्य  
जायते ॥ आनन्तर्यात्स्वयोन्यां तु तथैवाहोर्वपि क्रमात् ॥ २८ ॥

टीका—ये पहले कहे हुए छः प्रतिलोमज अपनी योनियोंमें पुत्रकी उत्पत्ति करते हैं जैसे शूद्रसे वैश्यामें उत्पन्न आयोगव कहाताहै आयोगवीही माताकी जाति वैश्यामें और प्रवर कहिये श्रेष्ठ क्षत्रिया ब्राह्मणी योनियोंमें और चकारसे अपकृष्ट कहिये हीनभी शूद्रजातिमें सर्वत्र सदृश वर्णोंको उत्पन्न करते हैं पिताकी अपेक्षा सदृशता नहीं है किंतु माताकी जातिसे क्योंकि चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोहीमें पितासे अधिक निंदित पुत्रकी उत्पत्ति आगे कही जायगी ॥ २७ ॥ जैसे क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन तीनी वर्णोंमेंसे क्षत्रिय वैश्य दो वर्णोंके गमनमें ब्राह्मणकी अनुलोमतासे द्विज उत्पन्न होताहै और सजातीयमें तौ द्विज उत्पन्न होताहै ऐसे वा ह्योमेंभी वैश्य और क्षत्रियसे क्षत्रिया और ब्राह्मणीमें उत्पन्न पुत्रोंमें उत्कर्षका अपक्रम होताहै शूद्रसे उत्पन्न प्रतिलोमकी अपेक्षासे द्विज आदिकोंसे उत्पन्न प्रतिलोमकी प्रशस्तताके लिये यह कहाहै ॥ २८ ॥

ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोऽप्यधिकं दूषितान् ॥ परस्परस्य दौ-  
रेषु जनयन्ति विगर्हितान् ॥ २९ ॥ यथैव शूद्रोब्राह्मण्यां बाह्यं  
जन्तुं प्रसूयते ॥ तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते ॥ ३० ॥



टीका-वे तौ आयोगव आदिक छः परस्पर जातिकी स्त्रियोंमें बहुत अनुलो-  
मतामेंभी अधिक दुष्ट और सत्क्रियासे बहिर्भूत पुत्रोंको उत्पन्न करते है सो जैसे  
आयोगव क्षत्रजातमें अपनासे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै वैसेही क्षत्ताभी  
आयोगवीमें आपसे हीनतर पुत्रको उत्पन्न करताहै ऐसेही औरभी प्रतिलोमजोंमें  
देखना चाहिये ॥ २९ ॥ जैसे ब्राह्मणीमें शूद्र अपकृष्ट चांडालनाम प्राणीको उत्पन्न  
करताहै ऐसेही बाह्यचांडाल आदि चारो वर्णोंमें चांडाल आदिकोंसेभी नीच पुत्र  
उत्पन्न करते है ॥ ३० ॥

प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः ॥ हीना हीनान्प्रसू-  
यन्ते वर्णान्पञ्चदशैर्वर्तु ॥ ३१ ॥ प्रसाधनोपचारज्ञमंदासं  
दासंजीवनम्॥सैरिन्ध्रं वागुरावृत्तिं सूते दैत्युरयोगवे ॥ ३२ ॥

टीका-प्रतिकूल वर्तमान प्रतिलोमज होते है और द्विजोंके प्रतिलोमसे उत्पन्नोसे  
निकृष्ट होनेके कारण बाह्य शूद्रसे उत्पन्न आयोगव क्षत्र चांडाल ये तीनि पहले श्लो-  
कसे अनुवृत्ति किये जानेपर चातुर्वर्ण्यमें और स्वजातिमें ये छः 'सदृशान्' यहां सजा  
तिमें उत्पन्नभी पितासे गहिंत होनेका कथन होनेसे अपनी अपनी अपेक्षासे बाह्यान्तरोंको  
प्रत्येक पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते है सो जैसे आयोगव चारो वर्णोंकी स्त्रियोंमें और  
आयोगवीमें आपसे निकृष्ट पांच पुत्रोंको उत्पन्न करताहै ऐसे क्षत्र चांडालभी  
प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न करते है ऐसे बाह्य तीनि पंद्रह पुत्रोंको उत्पन्न करते है  
तैसे अनुलोमजोंसे हीन वैश्य क्षत्रियसे उत्पन्न मागध वैदेह सूत अपनी अपेक्षासे  
हीन पहलेके समान चातुर्वर्ण्यकी स्त्रियोंमें और सजातिमें प्रत्येक पांच पुत्रोंको उत्पन्न  
करते हुए हीनभी तीनि पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते है इस भांति ये तीस होते  
है अथवा बाह्य शब्द और हीन शब्द छः प्रतिलोमजोहीको कहताहै यहा बाह्य चां-  
डाल क्षत्र आयोगव वैदेह मागध सूत छः यथोत्तर कहिये आगे आगे का उत्कर्ष हो  
नेसे प्रतिलोमतासे स्त्रियोंमें वर्तमान बाह्यांतर पंचदशही पुत्रोंको उत्पन्न करते है सो  
जैसे चांडाल क्षत्र आदि पांच स्त्रियोंमें क्षत्ता आयोगवी आदि चारिमें और अयोगव  
वैदेह आदि तीनिमें वैदेह मागधी सूतीमें और मागध सूतीमें सूत तौ प्रतिलोम न  
होनेसे प्रतिलोमतासे उत्पन्न करताही है ऐसे ये प्रतिलोमतासे पंचदशही पुत्रोंको उ-  
त्पन्न करताहै औ पुनःशब्दके कहनेसे हीन सूत आदि चांडालतक छः यथोत्तर क-  
हिये आगे आगे अपकर्ष कहिये कम होनेसे और आनुलोम्यसेभी प्रतिलोमकी कही  
हुई रीतिसे अपनी अपेक्षा हीन पंद्रहही पुत्रोंको उत्पन्न करते है इस भांति ये तीस  
होते है ॥ ३१ ॥ केश चरण आदि प्रसाधन कहिये शोभित करना उसके उपचारके



जाननेवाले और अंदास कहिये उच्छिष्ट खाने आदि दासके कर्मसे रहित और दे-  
हके दाबने आदि दासकर्मसे जीवनेवाले और पाशमें बाधनेसे मृग आदिके वधना न  
दूसरी वृत्तिके जीनेवाले जिसका सैरिंध्रनामहै ऐसेको "मुखबाहूरुपज्जानां" इस श्लोकमें  
जो आगे कहा जायगा ऐसा दस्यु आयोगव स्त्रीकी जातिमें और शूद्रसे वैश्यमें उ-  
त्पन्नास्त्रीमें उत्पन्न करताहै इसका वह मृग आदि मारना देव पितृ और औषधके लि-  
ये जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

मैत्रेयकं तु वैदेहो मांधूकं संप्रसूयते ॥ नृन्प्रशंसत्यजस्रं यो घण्टां  
ताडोऽरुणोदये ॥ ३३ ॥ निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्मजी-  
विनम् ॥ कैवर्त्तमिति यं प्रांदुरार्यावर्त्तनिवासिनः ॥ ३४ ॥

टीका-वैश्यसे ब्राह्मणीमें उत्पन्न वैदेह आयोगवीमें मैत्रेयनाम मीठा बोलनेवाले  
पुत्रको उत्पन्न करताहै जो प्रातःकाल घंटा बजाकर जीविकाके लिये राजा  
आदिकोंकी स्तुति करताहै ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पहले कहा हुआ नि-  
षाद आयोगवीमें जिसका दूसरा नाम दास ऐसे नौकाके व्यवहारसे जीविका  
करने वाले मार्गवनाम पुत्रको उत्पन्न करताहै जिसको आर्यावर्त्त देशके रहनेवाले कै-  
वर्त्तनामसे कहते है ॥ ३४ ॥

मृत्तवस्त्रभृत्सु नारीषु गर्हितान्नाशनासु च ॥ भवंन्त्यायोगवीष्वे  
ते जातिहीनाः पृथक्त्रयः ॥ ३५ ॥ कारावरो निषादात्तु चर्मका-  
रः प्रसूयते ॥ वैदेहीकादन्ध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ ॥ ३६ ॥

टीका-सैरिंध्र, मैत्रेय, मार्गव, हीन जाति ये तीनो मृतकके वस्त्र पहिरनेवाली.  
क्रूर, उच्छिष्ट खानेवाली आयोगवियोंमें पिताके भेदसे भिन्न पुत्र होते है ॥ ३५ ॥  
निषादसे वैदेहीमें उत्पन्न हुआ कारावर चर्मका काटनेवाला उत्पन्न होताहै औश  
नसमें कारावरोंका चर्मका काटनाही जीविका कही है और वैदेहक सैरिंध्र मेद ना-  
मग्रामके बाहर वसनेवाले है ॥ ३६ ॥

चण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वैकसारव्यवहारवान् ॥ अहिण्डिको नि-  
षादेन वैदेह्यामेवं जायते ॥ ३७ ॥ चण्डालेन तु सोपाको मूर्लव्यस  
नवृत्तिमान् ॥ पुंक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः ॥ ३८ ॥

टीका-वैदेहीमें चाण्डालसे पाण्डुसपाक नाम वांसोंके व्यवहारसे जीविका करनेवाला



उत्पन्न होता है और निषादसे वैदेहीमें आहिंडक नाम पुत्र होता है इसकी तौ बंधनके स्थानोंमें बाहरी रक्षा करनेसे आहिंडकोकी वृत्ति औशनसमें कही है माता पिताके समान होनेपर भी कारावर और आहिंडककी जीविकाके भेदसे व्यपदेशका भेद है ॥ ३७ ॥ निषादसे शूद्रामें उत्पन्न पुकसीमें चांडालसे उत्पन्न सोपाक नाम पापात्मा सदा साधुओं करि निंदित मारणके योग्य अपराधका मूल मारनेयोग्यका राजाकी आज्ञासे मारना जिसकी जीविका है ऐसा उत्पन्न होता है ॥ ३८ ॥

निषादस्त्री तु चण्डालात्पुत्रमन्त्यार्वसायिनम् ॥ श्मशानगोचरं सुं-  
ते बाह्यानामपि गार्हितम् ॥ ३९ ॥ संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्र-  
दर्शिताः ॥ प्रच्छन्ना वा प्रकांशा वा वेदितव्याः स्वंकर्मभिः ॥ ४० ॥

टीका-निषादी चांडालसे अंत्यावसायी नाम चांडाल आदिकोंसे भी अत्यंत दुष्ट श्मशानमें वसनेवाले उसीकी जीविका करनेवालों उत्पन्न करती है ॥ ३९ ॥ वर्ण-संकरोंके मध्ये ये जातियां इसकी यह माता और यह पिता और इस जातिका हुआ इस भांति पिता माताके कहिकर दिखाई तैसेही गूढ़ अथवा प्रकट उनकी जातिके कहे हुए कर्मोंके करनेसे जाननेयोग्य हैं ॥ ४० ॥

संजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विर्जधर्मिणः ॥ शूद्राणां तु सधर्मा-  
णः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ ४१ ॥ तपोबीजं प्रभावैस्तु ते गच्छं-  
न्ति युगेयुगे ॥ उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

टीका-द्विजातियोंकी समान जातिकी स्त्रियोंमें उत्पन्न तैसेही अनुलोमसे उत्पन्न जैसे ब्राह्मणसे क्षत्रिया और वैश्यामें और क्षत्रियसे वैश्यामें ऐसे छः पुत्र द्विजधर्मी यज्ञोपवीत करनेयोग्य हैं और द्विजातिसं उत्पन्न भी सूत आदि प्रतिलोमज होते हैं वे शूद्रधर्मी हैं इनका यज्ञोपवीत नहीं होता है ॥ ४१ ॥ सजातिसे उत्पन्न और अनंतर जातिसे उत्पन्न तपके प्रभावसे विश्वामित्रके समान और बीजके प्रभावसे ऋष्यशृंग आदिके समान सतयुग त्रेता आदि युगोंमें मनुष्योंके मध्यमें जातिके उत्कर्ष कहिये उन्नतिको प्राप्त होते हैं और आगे कहे हुए कारणसे अपकर्ष कहिये हीनताको प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥

शनैस्ते तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ॥ वृषलत्वं गता लोके  
ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥ पौण्ड्रकांश्चौद्रविडाः काम्बोजा य-



( ३७२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

वर्णाः शूकाः ॥ पारदापल्हवाश्चीर्णाः किरांताः दूरदा शैशाः ॥ ४४ ॥

टीका-ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय आदि जातैं यज्ञोपवीत आदि क्रियाओंके लोपसे और ब्राह्मण याजन अध्यापन और प्रायश्चित्त आदिके न होनेके कारण हौले हौले लोकमें शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ पौंड्रक, औद्र, द्रविड, कांबोज, जवन, शक, पारद, अपल्हव, चीन, किरात, दूरद, खश, ये सब क्रियाके लोपसे शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

मुखबाहूरुपज्जानां यां लोके जातयो बहिः ॥ म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः  
सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥ ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंस-  
जाः स्मृताः ॥ ते निन्दितैर्वर्तयेयुर्द्विजानामेवं कर्मभिः ॥ ४६ ॥

टीका-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंकी जो जातै है वे क्रियाके लोप आदिसे बाह्य होगई और म्लेच्छभाषाके अथवा आर्यभाषाके बोलनेवाले वे सब दस्यु कहे जाते है ॥ ४५ ॥ जे द्विजोंकी अनुलोमतासे उत्पन्न है ये छः अपसद कहे गये हैं उनकाभी पितासे नीचताके कारण अपसद शब्द करि पहले कहनेसे जानना चाहिये और जे अपध्वंसज प्रतिलोमज हैं वेभी द्विजातिके उपकारकही आगे कहे हुए निन्दित कामोंसे जीवै ॥ ४६ ॥

सूतानामश्वसारथ्यमन्वष्टानां चिकित्सनम् ॥ वैदेहकानां स्त्रीकार्यं  
मागधानां वणिक्पथः ॥ ४७ ॥ मत्स्यघातो निर्षादानां तष्टिस्त्वा-  
योगवस्य च ॥ मेदान्धचुञ्चुमदुनामारण्यपशुर्हिसनम् ॥ ४८ ॥

टीका-सूतोंकी जीविकाके लिये घोड़ोंका सिखाना जोतना आदि सारथीका कर्म है और अन्वष्टोंका रोगशांति आदि चिकित्सा, और वैदेहकोंका अंतःपुरकी रक्षा करना और मागधोंका स्थलमार्गसे वाणिज्य करना कर्म है ॥ ४७ ॥ कहें हुए निर्षादोंका मछली मारना और आयोगवका काष्ठ छीलना और मेद अंघ्र चुं चु, तथा महु ओंका जंगली पशुओंका मारना चुं चु और महु, वैदेहक और बंदीकी स्त्रियोंमें ब्राह्मणसे उत्पन्न बौधायन करि कहे हुए जानने चाहिये क्षत्रियसे शूद्रामें उत्पन्न बंदीकी स्त्री उसी उक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य है ॥ ४८ ॥

क्षत्रुप्रपुक्कसानां तु विलौकवधवन्धनम् ॥ धिर्वणानां चर्मकार्यं  
वेणानां भाण्डवादनम् ॥ ४९ ॥ चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु  
च ॥ वसेयुरेते विज्ञानां वर्तयन्तः स्वकर्मभिः ॥ ५० ॥



टीका-क्षत्र आदिकोंका बिलमें बसनेवाले गोह आदिका मारना और बांधना और धिगवणोंका चर्मका बनाना और वेचना और वेणोंका कांस्य मुरज आदि वाद्य भांडोंका बजाना ॥ ४९ ॥ ग्राम आदिके समीपप्रसिद्ध वृक्ष चैत्यहुमहै उसके नीचे और श्मशान पर्वत तथा वनके समीप ये प्रकाशक अपने कर्मोंसे जीविका करते हुए वास करें ॥ ५० ॥

चण्डालश्चपचानां तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ॥ अपपात्रश्चा कर्तव्या धनमेषां श्वर्गदभम् ॥ ५१ ॥ वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥ कर्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥ ५२ ॥

टीका-चांडाल तथा श्वपचोंका निवास ग्रामके बाहर होय और ये पात्र रहित कर्तव्य हैं और जिस लोह आदिके पात्रमें उन्होंने भोजन किया होय वह पात्र संस्कार करिके भी नहीं ग्रहण करनेयोग्य है और इनका धन कुत्तेगधेहैं बैल आदि नहीं और कपड़े तौ इनके मृतकके वस्त्रहैं और फूटे सरवाआदि मट्टीके पात्रमें भोजन और लोहेके कड़े आदि इनका गहनाहै और सदा भ्रमण करना इनका कामहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् ॥ व्यवहारो मिथ्यस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥ ५३ ॥ अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ॥ रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥

टीका-धर्म करनेके समय चांडाल और श्वपाकोंके साथ दर्शन आदि व्यवहार न करें और उनका तौ ऋण देना धनलेना आदि व्यवहार तथा विवाह समान जातिवालोंके साथ आपसमें होय ॥ ५३ ॥ इनका अन्न पराये आधीन करना चाहिये साक्षात् इनको न देवै किंतु फूटे पात्रमें नौकरोंसे दिवावै और वे तौ रात्रिके समय ग्राम तथा नगरमें न घूमें ॥ ५४ ॥

दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिह्निता राजशासनैः ॥ अवान्धवं चैवं शवं निरहेयुरिति स्थितिः ॥ ५५ ॥ वध्यंश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥ वध्यवासांसि गृहीयुः शय्याश्चाभरणानि च ॥ ५६ ॥

टीका-दिनके समय ग्राम नगर आदिमें खरीदने बेचने आदि कामके लिये राजाकी आज्ञासे चिन्ह करि अंकितहो विचरें और जिसका कोई स्वामी नहीं



( ३७४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

है ऐसे मृतकको ग्रामसे लेजाय यह शास्त्रकी मर्यादाहै ॥ ५५ ॥ मारनेयोग्योंको शास्त्रकी आज्ञासे शूली आदिपर चढाने करि सदा राजाकी आज्ञासे मारे और उनके कपड़े गहने आदि ले लेवें ॥ ५६ ॥

वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् ॥ आर्यरूपमिवाचार्य कर्म-  
भिः स्वैर्विभावयेत् ॥ ५७ ॥ अनार्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रि-  
यात्मता ॥ पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥ ५८ ॥

टीका-वर्णसे रहित संकरसे उत्पन्न मनुष्यको जिसको लोग वैसा नहीं जानते हैं इसीसे आर्यके समान और वास्तवमें आर्य नहीं ऐसेको जातिके अनुरूप निन्दित चेष्टाओंसे जो आगे कही जायगी निश्चय करे ॥ ५७ ॥ निष्ठुर होना कठोर बोलना हिंसा करना और शास्त्रमें कहे हुएका न करना संकर जातिके मनुष्यको लोकमें प्रकट कर देते हैं ॥ ५८ ॥

पितृयं वा भजते शीलं मातुर्वोभयमेव वा ॥ न कथंचन दुयौनिः  
प्रकृतिं स्वां नियच्छति ॥ ५९ ॥ कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्या  
द्योनिःसंकरः ॥ संश्रयत्येवं तच्छीलं नरोऽल्पमपि वा बहु ॥ ६० ॥

टीका-यह संकरसे उत्पन्न दुष्ट योनि पिताके दुष्ट स्वभावको सेवन करता है वा माताके अथवा दोनोंके यह अपने कारणको कभी नहीं छुपी सकताहै ॥ ५९ ॥ बडकुलमें उत्पन्न हुएभी जिस पुरुषका गुप्त योनि संकर होताहै वह मनुष्य थोड़े बहुत पिताके स्वभावका सेवन करताहीहै ॥ ६० ॥

यत्र त्वेते<sup>३</sup> परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः ॥ राष्ट्रिकैः संह तद्राष्ट्रं  
क्षिप्रमेवं विनश्यति ॥ ६१ ॥ ब्राह्मणार्थे गैवार्थे वा देहत्यागोऽ  
नुपस्कृतः ॥ स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् ॥ ६२ ॥

टीका-जिस देशमें वर्णोंके बिगाडनेवाले ये वर्णसंकर होते हैं वह देश वहाँके निवासियों समेत शीघ्र नाशको प्राप्त होताहै तिससे राजाको वर्ण संकर दूर करने-योग्यहै ॥ ६१ ॥ गौ ब्राह्मण स्त्री बालक इनमेंसे किसीकी रक्षाके लिये प्राण जाय तौ प्रतिलोमसे उत्पन्नोंका स्वर्गकी प्राप्तिका कारणहै ॥ ६२ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं सामासिकं धर्मं



चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥६३॥ शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चे-  
त्प्रजायते ॥ अश्रेयान्श्रेयसीं जीति गच्छत्यासत्तमाद्युंगात् ॥६४॥

टीका—हिंसाका त्याग, यथार्थ कहना, अन्यायसे पराये धनका न लेना, मृत्ति-  
का जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना, इस भांति चारोवर्णों करि करने-  
योग्य धर्म मनुने कहाहै प्रकरणकी सामर्थ्यसे संकीर्णोकाभी यही धर्म जानने  
योग्यहै ॥ ६३ ॥ अब तुल्य सवर्णा स्त्रियोंमें यह जो कहा लक्षण है जिसके विनाभी  
ब्राह्मणत्व आदि दिखानेको कहते हैं ॥ ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशवनाम वर्ण  
उत्पन्न होताहै इस सामर्थ्यसे स्त्री रूप होताहै वह स्त्री जो ब्राह्मणको व्याही हुई  
कन्याहीको उत्पन्न करै वह कन्याभी अन्य ब्राह्मण करि व्याही हुई हो बेटीहीको  
जनै वह बेटीभी ओरको व्याही जाय ऐसेही सातमें जन्ममें वह पारशवनाम  
वर्ण बीजकी प्रधानतामें ब्राह्मणत्वको प्राप्त होताहै अर्थात् सातमें जन्ममें ब्राह्मण  
होजाताहै ॥ ६४ ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ॥ क्षत्रियाज्जातमेवं  
तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥६५॥ अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु य-  
दृच्छया ॥ ब्राह्मण्यामप्यनार्याच्च श्रेयस्त्वं केति चेद्भवेत् ॥६६॥

टीका—ऐसे पहले कही हुई रीतिसे शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होताहै और ब्राह्मण  
शूद्रताको प्राप्त होताहै ब्राह्मण यहां ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न पारशव जानना  
चाहिये वह जो पुरुष केवल शूद्रके व्याहसे और पुरुषहीको उत्पन्न करै वह भी  
ऐसे सातमें जन्मको प्राप्त केवल शूद्रताको बीजके निकर्षके कारण क्रमसे प्राप्त होता  
है ऐसे क्षत्रियसे और वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष जानै और क्षत्रियसे  
उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें जानना चाहिये और वैश्यसे उत्पन्नके  
उत्कर्ष अपकर्ष तीसरे जन्ममें जानने योग्यहै इसी न्यायसे ब्राह्मणसे वैश्यामें  
उत्पन्नके उत्कर्ष अपकर्ष पांचमें जन्ममें और क्षत्रियामें उत्पन्नके तीसरेमें और  
क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्नके तीसरेहीमें जानने योग्यहै ॥ ६५ ॥ एक विना  
व्याही हुईभी शूद्रामें ब्राह्मणसे यहच्छा करि उत्पन्न और दूसरा ब्राह्मणीमें शूद्रसे  
उत्पन्न इन दोनोंमें कौनसा उत्पन्न अच्छाहै कभी यह संदेह होय और संशयका  
कारण तौ जैसे बीजकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न साधु शूद्र होताहै ऐसेही  
क्षेत्रकी उत्कर्षतासे ब्राह्मणीमेंभी शूद्रसे उत्पन्न यह क्या बातहै जो साधु  
शूद्र न होय ॥ ६६ ॥



( ३७६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

जातो नार्यामनार्यायामार्यादायौ भवेद्गुणैः ॥ जातोऽप्यनार्यादा  
र्यायामनार्य इति निश्चयः ॥ ६७ ॥ तावुं भावप्यसंस्कार्याविति धर्मो  
व्यवस्थितः ॥ वैगुण्याज्जन्मनः पूर्वं उत्तरः प्रतिलोमतः ॥ ६८ ॥

टीका-वहां निश्चय करते हैं ॥ शूद्रास्त्रीमें ब्राह्मणसे उत्पन्न स्मृतिमें कहे हुए  
किये गये पाक यज्ञ आदि गुणों करिके युक्त श्रेष्ठ होताहै और शूद्रसे ब्राह्मणीमें  
उत्पन्न प्रतिलोमतासे उत्पन्न होनेके कारण शूद्रोंके धर्ममेंभी अधिकारी न होनेसे  
श्रेष्ठ नहीं है यह निश्चयहै ॥ ६७ ॥ पारशव और चांडाल दोनो यज्ञोपवीत करने-  
योग्य नहीं हैं यह शास्त्रकी मर्यादा व्यवस्थितहै पहला पारशव शूद्रासे उत्पन्न  
होनेके कारण जातिकी विगुणतासे उपनयन करनेयोग्य नहीं है प्रतिलोमतासे शूद्र  
करि ब्राह्मणीमें उत्पन्न होनेसे दूसरा हुआ इससे उपनयन योग्य नहीं है ॥ ६८ ॥

सुबीजं चैवं सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा ॥ तथाऽर्याज्जात आ-  
र्यायां सर्वे संस्कारा मर्हति ॥ ६९ ॥ बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये  
मनीषिणः ॥ बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितिः ॥ ७० ॥

टीका-जैसे सुंदर बीज सुंदर खेतमें उत्पन्न भरापूरा होताहै ऐसेही द्विजातिसे  
सवर्णा द्विजातिकी स्त्रीमें अनुलोमतासे क्षत्रिया वैश्यामें उत्पन्न वह वर्णसं-  
स्कार और क्षत्रियवैश्यसंस्कार और सब श्रौतस्मार्त्तसंस्कारके योग्यहै और  
पारशव तथा चांडाल संस्कार योग्य नहीं है यह पहले कहे हुएकी दृढताके  
लिये कहा है ॥ ६९ ॥ कोई पंडित बीजकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि हरिणी आदिमें  
उत्पन्न ऋष्यशृंग आदिका ब्रह्ममुनित्व देखा जाताहै और दूसरे फिरि क्षेत्रकी प्रशंसा  
करते हैं क्योंकि क्षेत्रके स्वामीका पुत्रत्व देखा जाताहै और अन्य फिरि बीज क्षेत्र  
दोनोकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि सुबीजकी सुक्षेत्रमें समृद्धि देखी जाती है इस  
मतभेदमें वक्ष्यमाण यह व्यवस्था जाननी चाहिये ॥ ७० ॥

अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैर्विनिर्णयति ॥ अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं  
स्थण्डिलं भवेत् ॥ ७१ ॥ यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽ  
भवन् ॥ पूजितार्थं प्रशंस्तार्थं तस्माद्बीजं प्रशंस्यते ॥ ७२ ॥

टीका-ऊपरके प्रदेशमें बोया हुआ बीज फलको न देकर बीचहीमें नष्ट  
होजाताहै और सुंदरभी खेत बीज रहित केवल स्थण्डिलही होताहै धान्य नहीं उत्पन्न



होता है तिससे प्रत्येककी निंदासे सुबीजं चैव “सुक्षेत्रे” यह पहले कहा हुआ है तिससे दोनोकी मुख्यता अभिमत है ॥ ७१ ॥ अब बीजकी प्राधान्यताके पक्षमें दृष्टांत कहते हैं जिससे बीजकी प्रधानता करिके तिर्यक् जाति हरिणी आदिमें उत्पन्नभी ऋष्यशृंग आदि मुनित्वको प्राप्त हुए और पूजित हुए और नमस्कारकी योग्यता आदिसे वेदके ज्ञान आदिसे प्रशस्त वाणी करि स्तुति किये गये तिससे बीजकी प्रशंसा करते हैं ऐसे बीजकी प्रधानता हुई बीज और योनिके मध्यमें बीजोत्कृष्टजाति प्रधान होती है यह भली भांति जानना चाहिये ॥ ७२ ॥

अनार्यमार्यकर्माणमार्यं चानार्यकर्मिणम् ॥ संप्रधार्याब्रवीद्धाता  
नं समौ नासंमवि'ति ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वंकर्म  
ण्यवस्थिताः ॥ ते सम्यंगुपैर्जीवेयुः षट् कर्माणि यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥

टीका—द्विजातिके कर्म करनेवाले शूद्रको और शूद्रके कर्म करनेवाले द्विजा-  
तिको ब्रह्माने विचार करिके न सम हैं न असम हैं यह कहा जिससे द्विजातिके कर्म  
करनेवालाभी शूद्र द्विजातिके समान नहीं होता है क्योंकि उस अनधिकारिका  
द्विजातिके कर्मोंके करनेमें उनकी समता नहीं है ऐसेही शूद्रके कर्म करनेवा-  
लाभी द्विजाति शूद्रके समानही होता है क्योंकि निषिद्धके सेवनसे जातिके उत्कर्षका  
नाश नहीं होता है और न असम हैं क्योंकि निषिद्ध आचरणसे दोनोकी  
समता होती है तिससे जिसको जो कर्म गहिंते हैं उसको वह नकरना चाहिये यह  
संकर पर्यंत वर्णोंके धर्मका उपदेश है ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणोंके आपद्धर्मका प्रतिपादन  
करते हुए कहते हैं ॥ जे ब्राह्मण ब्रह्मकी प्राप्तिके कारण ब्रह्मके ध्यानमें निष्ठ हैं और  
अपने कर्मोंके करनेमें लगे हैं वे आगे कहे जायंगे ऐसे अध्यापन आदि षट् कर्मोंको  
क्रमसे भलीभांति करै ॥ ७४ ॥

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ॥ दानं प्रतिग्रहश्चैव षट् क  
र्माण्यग्रजन्मनः ॥ ७५ ॥ षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि  
जीविका ॥ याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ॥ ७६ ॥

टीका—उन कर्मोंको कहते हैं ॥ अंगसहित वेदका पढ़ाना तथा पढ़ना; और य-  
जन, याजन, दान, और प्रतिग्रह ये छः कर्म ब्राह्मणके जानने योग्य हैं ॥ ७५ ॥  
इस ब्राह्मणके इन अध्यापन आदि छ कर्मोंमेंसे याजन अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह  
ये तीन कर्म जीविकाके लिये जानने योग्य हैं ॥ ७६ ॥



( ३७८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

त्रयोधर्मो निर्वर्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति । अध्यापनं याजनं च तृतीयं  
यश्च प्रतिग्रहः ॥ ७७ ॥ वैश्यं प्रति तथैवैते निर्वर्तेरन्निति स्थितिः ।  
न तौ प्रतिहि तान्धर्मान्मनुराहं प्रजापतिः ॥ ७८ ॥

टीका-ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियके अध्यापन, याजन, प्रतिग्रह, नाम जीविकाके  
अर्थ नहीं होते हैं-अध्ययन, याग, दान, तौ उसके भी होते हैं ॥ ७७ ॥ जैसे क्षत्रि-  
यके अध्यापन याजन और प्रतिग्रह निवृत्त होते हैं वैसेही वैश्यके भी यह शास्त्रकी  
व्यवस्था है जिसे मनु और प्रजापति न दोनोने क्षत्रिय वैश्योंप्रति वे जीविका निमित्त  
कर्म कर्तव्यत्वसे कहे ऐसे वैश्यके भी अध्ययन याग और दान होते हैं ॥ ७८ ॥

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वाणिक्पशुकृषिर्विशः । औजीवनार्थं धर्मस्तु  
दानमध्ययनं यजिः ॥ ७९ ॥ वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च  
रक्षणम् । वार्ता कर्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्मसु ॥ ८० ॥

टीका-शस्त्र खड्ग आदि और अस्त्र बाण आदि इनका धारण प्रजाकी रक्षाके  
लिये क्षत्रियका जीविकाके लिये है और वाणिज्य पशुओंकी रक्षा खेती ये कर्म वै-  
श्यके जीविकाके लिये हैं और इन दोनोके धर्मके लिये दान अध्ययन और यज्ञ  
होते हैं ॥ ७९ ॥ ब्राह्मणका वेद पढ़ाना और क्षत्रियका प्रजाकी रक्षा और वैश्यका  
वाणिज्य तथा पशुओंकी रक्षा ये इनकी जीविकाके लिये कर्मोंमें श्रेष्ठ है ॥ ८० ॥

औजीवस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण  
संज्ञस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ८१ ॥ उभाभ्यामप्यौजीवस्तु कथं स्यादिति  
चेद्भवेत् । कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ८२ ॥

टीका-अब आपद्धर्मोंको कहते हैं ॥ ब्राह्मण कहे हुए अध्यापन आदि अपने क-  
र्मसे नित्य कर्मोंका करना और कुंटुबके पालन पूर्वक न जीविका करि सकता हुआ  
ग्राम नगरकी रक्षा आदि क्षत्रियके कर्मसे जीविका करे जिसे क्षत्रियका धर्म इसकी  
निकट वृत्ति है ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण दोनो अपनी और क्षत्रियकी वृत्तिसे न जीविका  
करता हुआ किस प्रकारसे वर्त्ते यह जो संदेह होय तौ खेती और पशु रक्षाका आ-  
श्रय लेकर वैश्य वृत्तिको करे ॥ ८२ ॥

वैश्यवृत्त्यापि औजीवस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा । हिंसाप्रायां पं-  
राधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ८३ ॥ कृषिं साध्विति मन्यन्ते मां



वृत्तिः सद्भिर्गर्हिता । भूमिं भूमिशयांश्चैवं हन्ति कांष्ठमयोर्मुखम् ८४

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय वैश्य वृत्तिसेभी जीविका करता हुआ जिसमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा अधिक होती होय ऐसी बलीवर्द आदिके पराधीन खेतीको यत्नसे त्याग करै इसीसे पशुपालन आदिके न होनेमें खेती करनी चाहिये यह देखना चाहिये क्षत्रियोपि इसके कहनेसे यह जाना गया कि क्षत्रियभी अपनी वृत्तिके न होनेपर वैश्यकी वृत्तिसे निर्वाह करै ॥ ८३ ॥ यह अच्छी जीविकाहै कोई खेतीको ऐसा मानते है परंतु वह जीविका सज्जनों करि निर्दितहै कारण यह है कि हलकुदाल आदि लोहके लगे हुए काष्ठसे भूमिकि और भूमिमें स्थित जीवोंकी हत्या होती है ॥ ८४ ॥

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्मेनैपुणम् । विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्धनम् ॥ ८५ ॥ सर्वान्रसानपोहेत कृतान्नं च तिलैः सह । अश्मनो लवणं चैव पशवो ये च मानुषाः ॥ ८६ ॥

टीका—ब्राह्मण और क्षत्रियको अपनी वृत्तिके न होनेपर धर्ममें कुशलताको छोडि जो वैश्य बेचते है उन वस्तुओंको आगे कही हुई वर्जन करने योग्य वस्तुओंको छोड धन बढ़ानेवाली वस्तु बेचनी चाहिये ॥ ८५ ॥ उन वर्जनीय वस्तुओंको कहते है ॥ सब रसोंको तथा सिद्ध अन्न कहिये पूरी आदि तिल पाषाण नोन पशु मनुष्य इन सबोंको न बेचै ॥ ८६ ॥

सर्वं च तान्तवं रक्तं शीणक्षौमाविकानि च । अपि चैत्स्युररक्तानि फलमूले तथोषधीः ॥ ८७ ॥ अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गर्न्धांश्च सर्वशः । क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् ॥ ८८ ॥

टीका—सब तागोंसे बने वस्त्र कुसुम आदिसे रंगे हुए न बेचै और सन तथा अलसीके तागोंसे बने हुए तथा भेडके रोमोंसे बने हुए चाहै लालभी न होय तिसपरभी न बेचै तैसेही फल मूल जौर गुडूची आदिको न बेचै ॥ ८७ ॥ जस्त, लोह, विष, मांस, सोम, दूध दही, घी तेल, गुड, डाभ, और सुगंध युक्त सब कपूर आदि माक्षिक, ( शहत ) मोम, इन सबोंको न बेचै ॥ ८८ ॥

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणंश्च वयांसि च ॥ मद्यं नीलिं च लोक्षां च सर्वांश्च कर्शपांस्तथा ॥ ८९ ॥ काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वं



यमेवै कृषीवलः। विक्रीणीत तिलान्छूद्रान्धर्मार्थमचिरस्थितान् ९०

टीका—सब जंगली पशु हाथी घोडा आदि और दंष्ट्री कहिये सिंह आदि और पक्षी, मद्य, लाख, और एक खुरवाले घोडा आदिकोंको न वेंचै ॥ ८९ ॥ किसान आप जोतनेसे उत्पन्न करि दूसरी वस्तुके साथ मिले हुए तिलोंको उत्पन्न होतेही लाभके लिये कालांतरको न देखि धर्मके निमित्त इच्छासे वेंचै ॥ ९० ॥

भोजनाभ्यजनादानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥ कृमिभूतः श्वविष्टायां  
पितृभिः सह भुजति ॥ ९१ ॥ सद्यः पतन्ति मांसेन लाक्षया लवणे  
न च ॥ त्र्यहेण शूद्रीभवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥ ९२ ॥

टीका—भोजन उबटने तथा दानके सिवाय जो और निषिद्ध विक्रिय आदि जो तिलोंका करताहै वह उस पापसे पितरों समेत कृमि होकै कुत्तेकी विष्टामें डुबताहै ॥ ९१ ॥ मांस, लाख और नौकके वेचनेसे ब्राह्मणो उसी क्षण पतित होताहै और दूधके वेचनेसे तीनि दिनोमें शूद्र होजाताहै ॥ ९२ ॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः ॥ ब्राह्मणः सर्परात्रेण वैश्य  
भावं निर्यच्छति ॥ ९३ ॥ रसां रसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः ॥  
कृत्स्नं चाकृतान्नेन तिलां धान्येन तत्समाः ॥ ९४ ॥

टीका—ब्राह्मण कहे हुए मांस आदिकोंसे अन्य निषिद्ध वेचनेकी वस्तुओंको इच्छासे प्रमादके विना दुसरी वस्तुके साथ सात रात्रि तक वेचनेसे वैश्य होजाताहै ॥ ९३ ॥ रस कहिये गुड आदि घी आदि रसोंसे बदला करने योग्यहै और नोनका दूसरे रससे बदला न करै और सिद्ध अन्नका कच्चे अन्नसे बदला करै और तिलोंका धान्यसे बदला करै और धान्यका धान्यसे अर्थात् प्रस्थ प्रमाणसे प्रस्थ इस प्रकार उनके समान बदला करै ॥ ९४ ॥

जीवेदेते न राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः ॥ न त्वेव ज्यांयसीं वृत्ति  
मभिर्मन्येत कर्हिचित् ॥ ९५ ॥ यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृ  
ष्टकर्मभिः ॥ तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत् ॥ ९६ ॥

टीका—आपत्तिको प्राप्त क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये निषिद्धभी रस आदिके वेचनेसे वैश्यके समान जीविका करै और फिर ब्राह्मणकी जीविका कभी न करै के



बल क्षत्रियही नहीं वैश्य आदिभी अन्य न करें ॥ ९५ ॥ जो निकृष्ट जाति लोभसे उत्कृष्ट जातिके लिये कहे हुए कर्मोंसे जीविका करे उसका सर्वस्व लेकर राजा उसी समय देशसे निकाल देवै ॥ ९६ ॥

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारैक्यः स्वनुष्ठितः ॥ परधर्मेण जीवन् हि स  
द्यः पतति जातितः ॥ ९७ ॥ वैश्योऽजीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्यापि  
वर्तयेत् ॥ अनाचरन्नकार्याणि निर्वर्तते च शक्तिमान् ॥ ९८ ॥

टीका—विगुण कहिये बिगडा हुआभी अपना कर्म करनेको योग्य है और संपूर्णभी पराया कर्म करना उचित नहीं है जिसे दूसरी जातिके लिये कहे हुए कर्मसे जीविका करता हुआ उसी क्षणसेही अपनी जातिसे पतित होता है ॥ ९७ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविका करनेको असमर्थ वैश्य द्विजातिकी सेवारूप शूद्रकी और वृत्तिसे उच्छिष्ट भोजन आदिको न करता हुआ वरतै और आपत्तिके दूर होनेपर शूद्रकी वृत्तिसे निवृत्त होय ॥ ९८ ॥

अशकुर्वन्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम् ॥ पुत्रदारात्ययं प्राप्तो  
जीवेत्कारुण्यकर्मभिः ॥ ९९ ॥ यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यन्ते  
द्विजातयः ॥ तानि कारुण्यककर्माणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १०० ॥

टीका—द्विजातिकी सेवा करनेको असमर्थ और क्षुधासे नष्ट होगये हैं पुत्र कलत्र जिसके ऐसा शूद्र सूपकार आदिकोंके कर्मोंसे जीवै ॥ ९९ ॥ जिन कर्मोंके करनेसे द्विजातिकी सेवा होय उन काष्ठतक्षणा आदि कर्मोंको और शिल्पों और चित्रवना आदि नाना प्रकारके शिल्पोंके कामोंको करै ॥ १०० ॥

वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वपथि स्थितः ॥ अवृत्तिकर्षितः सी  
दन्निमं धर्मं समाचरेत् ॥ १ ॥ सर्वतः प्रतिगृहीयाद्ब्राह्मणस्वनयं  
गर्तः ॥ पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपद्यते ॥ २ ॥

टीका—जीविका न होनेसे पीडित दुर्बलताको प्राप्त हुआ ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यकी वृत्तिको न करता हुआ बिगडाभी अपना धर्म श्रेष्ठ है यह कहनेके कारण अपनीही वृत्तिमें स्थित इस आगे कही हुई वृत्तिको करै इससे बिगडा प्रतिग्रह आदि अपनी वृत्तिके न होनेपर पराई वृत्तिका आश्रय लेना जानिये ॥ १ ॥ आपत्तिमें प्राप्त हुआ ब्राह्मण सब निन्दित निन्दिततर और निन्दिततम मनु-



प्योसं क्रमसे दान लेवै जिस्से पवित्र गंगा आदि गलीके जल आदिसे दूषित होते हैं यह शास्त्रकी मर्यादासे नहीं हो सकता है ॥ २ ॥

नाध्यापनाद्याजनाद्वा गृहिताद्वा प्रतिग्रहात् ॥ दोषो भवति विप्राणां ज्वलनाम्बुसमा हि<sup>१२</sup>ते ॥ ३ ॥ जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमंति यतस्ततः ॥ आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते ॥ ४ ॥

टीका—ब्राह्मणोंको आपत्ति समयमें निंदित अध्यापन याजन और प्रतिग्रह से अधर्म नहीं होता है कारण यह है कि वे स्वभावसे पवित्र होनेके कारण अग्नि और जलके तुल्य हैं ॥ ३ ॥ प्राणके नाशको प्राप्त जो प्रतिलोमजसे लेकर अन्न खाता है वह कीचसे आकाशके समान पापसे लिप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥

अजीगर्तः सुतं हन्तुमुपासर्पदुभुक्षितः ॥ न चांलिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन् ॥ ५ ॥ श्वमांसमिच्छन्नातोऽनुं धर्माधर्मविचक्षणः ॥ प्राणानां परिरक्षार्थं वामदेवो न लिप्तवान् ॥ ६ ॥

टीका—अजीगर्तनाम ऋषि भूखाहो शुनःशेपनाम पुत्रको आप वेचता भयायज्ञमें सौ गौओंके लाभके लिये यज्ञस्तंभमें बांधिके मारी हुई हो मारनेका और भ किया क्षुधा दूर करनेके लिये न वैसे करता हुआ पापसे लिप्त हुआ यह तो शुनःशेपके आख्यानोमें बहुच ब्राह्मणमें स्पष्ट कहा है ॥ ५ ॥ धर्म अधर्मका जाननेवाला वामदेवनाम ऋषि क्षुधासे पीडित हो प्राणत्राणके लिये कुत्तेके मांसकी खानेकी इच्छा करता हुआ दोषसे लिप्त न हुआ ॥ ६ ॥

भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने॥बंही गौः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपः ॥ ७ ॥ क्षुधार्तश्चातुंभयार्गाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् ॥ चण्डालहस्तादांदाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ८ ॥

टीका—बड़े तपस्वी भरद्वाज मुनिने पुत्रसमेत निर्जन वनमें वसिके क्षुधासे पीडित हो वृधुनाम बड़ईसे बहुतसो गौए दानमें लीं ॥ ७ ॥ धर्म अधर्मके जाननेवाले विश्वामित्र ऋषिने क्षुधासे पीडित हो चाण्डालके हाथसे लेकर कुत्तेकी जांघके मांसकी खानेकी इच्छा की ॥ ८ ॥

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि ॥ प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य



विप्रस्य गौर्हितः ॥ ९ ॥ याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृता-  
त्मनाम् ॥ प्रतिग्रहस्तु क्रियेते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः ॥ ११० ॥

टीका—निन्दितभी अध्यापन याजन प्रतिग्रहोंमेंसे ब्राह्मणको निषिद्ध दान लेना निकृष्ट है और परलोकमें नरकका कारण है तिससे आपत्तिमें पहले निन्दित अध्यापन और याजनमें प्रवृत्त होना चाहिये उनके असंभवमे तौ असत्प्रतिग्रह लेना चाहिये इस लिये यह कहाहै ॥ ९ ॥ इसमें कारण कहते हैं ॥ याजन और अध्यापन आपत्तिमें और अनापत्तिमें उपनयनसे संस्कार किये हुए द्विजातियों-हीको कराये जाते हैं और प्रतिग्रह तौ निकृष्ट जाति शूद्रसेभी किया जाताहै इससे यह उनसे दोनो निन्दितहै ॥ ११० ॥

जपंहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् ॥ प्रतिग्रहानिमित्तं तु त्या-  
गेन तपसैव च ॥ ११ ॥ शिलोच्छर्मप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्त-  
तः ॥ प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युच्छः प्रशंस्यते ॥ १२ ॥

टीका—पापके ग्रहणसे असत्प्रतिग्रह याजन और अध्यापनसे जो उत्पन्न पापहै वह प्रायश्चित्तके प्रकरणमें आगे कहे हुए क्रमसे जप और होमसे नाश होताहै और असत्प्रतिग्रहसे उत्पन्न तौली हुई द्रव्य करिकै महीने भरतक गौओंके स्थानमें दूध पीकर रहै इत्यादिक आगे कहे हुए तपसे दूर होताहै ॥ ११ ॥ अपनी वृत्तिसे जीविकाको न करता हुआ ब्राह्मण जहां तहांसे अर्थात् उपपातकी आदि कौंसेभी शिलोच्छर्मग्रहण करै और उसके संभव होनेपर असत्प्रतिग्रह न करै जिससे असत्प्रतिग्रहसे शिल उत्तम है धान्यकी वालोंके बीननेको शिल कहते हैं उच्छ उससेभी श्रेष्ठ है एक एक धान्यबीनकर इकठे करनेको उच्छ कहते हैं ॥ १२ ॥

सीदद्भिः कुप्यमिच्छ द्धिर्धनं वा पृथिवीपतिः ॥ याच्यः स्यात्स्त्रा-  
त कैर्वि प्रैरदित्संस्त्यागमर्हति ॥ १३ ॥ अकृतं च कृतात्क्षेत्राद्गौरैर्जा-  
विकर्मेव च ॥ हिरण्यं धान्यमन्नं च पूर्वं पूर्वमदोषवत् ॥ १४ ॥

टीका—धन न होनेके कारण धर्मके लिये अथवा कुटुंबके लिये दुःख पाते हुए स्नातक ब्राह्मणों करि सुवर्ण चांदीसे भिन्न धान्य वस्त्र आदि कुप्य धन और यज्ञ आदिके उपयोगी सुवर्ण आदिभी आपत्तिके प्रकरणसे शास्त्रसे बाहर चलने-वाला क्षत्रियभी मागनेयोग्य होताहै और जो देनेकी इच्छा न करै कृपणतासे



निश्चय किया हुआ वह त्यागनेयोग्य है अर्थात् नहीं मागनेयोग्य है और मेधातिथि गोविंदराज दोनों टीकाकार लिखते हैं कि वह त्यागके योग्य है अर्थात् उसके देशमें न वसना चाहिये ॥ १३ ॥ अकृत कहिये विना बोया हुआ खेत कृत कहिये बोये हुएसे प्रतिग्रह कहिये दान लेनेमें दोषरहित है तैसेही गो, बकरा मेढा, सोना, धान, और सिद्धान्न कहिये परिपक्व अन्न, इनमेंसे पहिला पहिला दोष रहित है तिससे तो इनमें पहले पहलेके न होनेमें परपर जानिये ॥ १४ ॥

संत वित्तो गमा धर्म्या दायो लाभः क्रयो जयः ॥ प्रयोगः कर्मयोग-  
श्च संतप्रतिग्रह एव च ॥ १५ ॥ विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं  
विपणिः कृषिः ॥ धृतिर्भैक्ष्यं कुंसीदं च दश जीवने हेतवः ॥ १६ ॥

टीका-दाय जो भाग है तिसको आदि ले करि सात प्रकारके धनके आगम (आमदनी) धनके अधिकारके अनुसार धर्मयुक्त हैं उनमें दाय वंशके क्रमसे आये हुए धनको कहते हैं और लाभ निधिआदिकी प्राप्तिको अथवा मित्रता आदिसे प्राप्त धनको कहते हैं और क्रय प्रसिद्ध है ये तीनि चारो वर्णोंके धर्म-संबंधी हैं और जय धन कहिये विजय करनेसे प्राप्त क्षत्रियका धन धर्मसंबंधी है, और प्रयोग वृद्धि आदिके धनका और कर्मयोग कहिये खेती और वणिज ये प्रयोग वैश्यके धर्मसंबंधी हैं और संतप्रतिग्रह ब्राह्मणका धर्मसंबंधी है ऐसे इन्होंका धर्म्यत्व वचनसे इनके अभावमें आपत्ति रहित समयमें कहे हुए अन्य जीविकाके कामोंमें प्रवृत्त होना चाहिये और उनके अभावमें आपत्तिमें कहे हुए ओमें प्रवृत्त होना चाहिये इस लिये यह यहां कहा है ॥ १५ ॥ आपत्तिके प्रकरणमें 'जीवने हेतवः' अर्थात् जीवनेके कारण इस कहनेसे इनके मध्यमें जिस वृत्तिसे जिसका जीवन आपत्तिरहित समयमें निषिद्ध है उस वृत्तिसे उसको आपत्तिकालमें जीवनेकी आज्ञा दी जाती है जैसे ब्राह्मणको भृति सेवा आदि ऐसेही शिल्प आदिमेंभी जानिये और विद्या कहिये वेद विद्याको छोड़के वैद्य तर्क विषका दूर करना आदि विद्या सर्वोंको आपत्तिकालमें जीवनके लिये दोष नहीं है शिल्प कहिये लिखना आदि करना और भृति कहिये प्रेष्ठ्य भावसे नौकरिका द्रव्य लेना और सेवा कहिये पराई आज्ञाका करना और गौओंकी रक्षा कहिये पशुओंका पालना और विपणि कहिये दुकान करना और खेती अपने हाथसे की हुई और धृति कहिये संतोष उसके होनेपर थोड़ेसेभी जीवन होता है और भैक्ष्य कहिये भिक्षाका समूह और कुंसीद कहिये व्याजके लिये धन देना इन दश जीवनेके उपायोंसे आपत्तिमें जीवना चाहिये ॥ १६ ॥



ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिर्नैव प्रयोजयेत् ॥ कामं तु खलु धर्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पकामम् ॥ १७ ॥ चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि ॥ प्रजारक्षन्परं शक्त्या किं लिङ्घात्प्रतिमुच्यते १८

टीका—ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय व्याज आदिके धनको आपत्तिकालमें भी न लगावे किंतु निकृष्ट कर्म करनेवालेके लिये धर्मके निमित्त थोड़ेसेभी व्याज देवे ॥ १७ ॥ अब राजाओंका आपद्धर्म कहते हैं ॥ राजाका धान्योंमें आठवां भाग होताहै इत्यादि कह चुके हैं वह आपत्तिकालमें धान्य आदिका चौथाभी भाग करके लिये लेता हुआ और परमशक्तिसे प्रजाकी रक्षा करता हुआ अधिक कर लेनेके पापसे युक्त नहीं होताहै ॥ १८ ॥

स्वधर्मो विजयस्तस्य न हवेस्यात्पराङ्मुखः । शस्त्रेण वैश्यान्-  
क्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् ॥ १९ ॥ धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विशं  
कार्षापणावरम् ॥ कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा १२०

टीका—राजाका शत्रुको विजय करना स्व कहिये अपना धर्म है और युद्धका फल विजय है प्रजाकी रक्षामें लगे हुए राजाको जो कहींसे भय होय तौ युद्धसे न हटै ऐसे वैश्योंकी चोर तथा डाकुओंसे रक्षा करके उनसे धर्मयुक्त आसपुरुषोंके द्वारा कर लेवे ॥ १९ ॥ कौनसा करलेवे सो कहते हैं ॥ धान्यमें वृद्धि होनेपर वैश्योंसे आठमा भाग कर लेवे धान्योंका बारहवां भाग कहाहै आपत्ति कालमें यह आठमा कहा जाताहै और बड़ीही आपत्तिमें पहले कहा हुआ चौथा भाग जानना चाहिये तैसेही कार्षापणतक सुवर्णोंका वीसमा भाग कर लेवे वहांभी पंचाशद्भाग आदयो राजा पशुहिरण्ययोः अर्थात् राजा करि पशु और सुवर्णमें पचासमा भाग लेना चाहिये इत्यादिसे पचासमा भाग कहाहै आपत्तिमें यह वीसमा कहा जाताहै तैसेही शूद्र, कारु, सूपकार, आदि शिल्पी बढई आदिये काम हीसे उपकार करते हैं इनसे आपत्तिमेंभी कर न लेना चाहिये ॥ १२० ॥

शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन्क्षत्रमारंधयेद्यदि ॥ धनिनं वाप्युपारंध्य वैश्यं  
शूद्रो जिजीविषेत् ॥ २१ ॥ स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानारंधयेत्तु सः ॥  
जातब्राह्मणशब्दस्य सा ह्यस्य कृतकृत्यता ॥ २२ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवासे जीविकाको न करता हुआ शूद्र जो वृत्तिकी चाहना करे तौ क्षत्रियकी सेवा करिके और उसके न होनेमें धनवान वैश्यकी सेवा करिके जीव



नेकी इच्छा करै द्विजातिकी सेवामें समर्थ न होनेपर तौ पहिले कहे हुए कर्मोंको करै  
॥ २१ ॥ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये अथवा स्वर्गमें अपनी वृत्तिकी प्राप्तिके लिये शूद्र  
ब्राह्मणोंहीकी सेवा करै कारण यह है कि यह ब्राह्मणोंहीका आश्रित उत्पन्न हुआहै  
और यही इसकी कृतार्थताहै ॥ २२ ॥

विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते ॥ यदतोऽन्यं द्विं कुरुते  
तद्रवत्यस्य निष्फलम् ॥ २३ ॥ प्रकल्प्या तस्य ते वृत्तिः स्वकुटु-  
म्बाद्यर्थार्हतः ॥ शक्तिं चावेक्ष्य दाक्ष्यं च भृत्यानां च परिग्रहम् ॥ २४ ॥

टीका—ब्राह्मणकी सेवाही शूद्रको और सब कर्मोंसे शास्त्रमें श्रेष्ठ कर्म कहाहै  
जिसे इसको छोड़कर जिस कर्मको यह करताहै वह इसका निष्फल होताहै  
॥ २३ ॥ इस सेवा करनेवाले शूद्रकी सेवामें सामर्थ्य और कर्ममें उत्साह तथा  
पालनेयोग्य पुत्र स्त्री आदिके परिमाणको देखि उन ब्राह्मणोंको अपने घरसे उसकी  
जीविका कल्पना करनी चाहिये ॥ २४ ॥

उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वर्सनानि च ॥ पुलंकाश्चैव धान्या-  
नां जीर्णाश्चैव परिच्छेदाः ॥ २५ ॥ न शूद्रे पातकं किं शिन्नं च सं-  
स्कारमर्हति ॥ नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मोऽतिप्रतिषेधनम् ॥ २६ ॥

टीका—उस शूद्रके लिये भोजनसे बचा हुआ अन्न ब्राह्मणोंको देना चाहिये और  
जो न शूद्रायमतिदद्यान्नोच्छिष्टं अर्थात् शूद्रको मति न दे और न उच्छिष्ट दे यह  
निषेध, जो शूद्र, आश्रित नहीं है उसके मध्ये जानिये तथा पुराने वस्त्र और  
असार धान्य पुरानी शय्या तथा औरभी सब पुराने इसको देने चाहिये ॥ २५ ॥  
लसुन आदिके खानेमें शूद्रको कुछ पातक नहीं होताहै और ब्रह्म वध आदिमे तौ  
होताहीहै ॥ क्योंकि अहिंसा सत्यमस्तेयं ॥ अर्थात् हिंसा न करना सत्य बोलना चोरी  
न करना यह चारो वर्णोंको साधारणतासे कहाहै और यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके  
योग्य नहीं है और इसका अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें अधिकार नहीं है क्योंकि विहित  
नहीं है और शूद्रको कहे हुए पाकयज्ञ आदि धर्मसे इसका निषेध नहीं है अर्थात्  
पाकयज्ञ आदि करै ॥ २६ ॥

धर्मेऽवस्तु धर्मज्ञाः सत्तां वृत्तमनुष्ठिताः ॥ मन्त्रवर्ज्यं न दुष्यन्ति  
प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ २७ ॥ यथायथा हि सद्धर्मातिष्ठत्यनसूयं-



कः ॥ तर्थातथे मं चामुं चं लोकं प्राप्नोत्यनिन्दितः ॥ २८ ॥

टीका—अपने धर्मके जाननेवाले जे शूद्र धर्म प्राप्तिकी कामनासे जो निषिद्ध नहीं ऐसे तीनो वर्णोंके आचारका आश्रय लेते हैं वे नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञोंको करै और दूसरे मंत्रके विना नमस्कार मंत्रसे पंचयज्ञ आदि धर्मको करते हुए शूद्र दोषयुक्त नहीं होते हैं और लोकमें ख्यातिको प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ पराये गुणोंकी निंदा न करनेवाला शूद्र जैसे जैसे द्विजातिके निषिद्ध नहीं ऐसे आचारोंको करता है वैसा वैसा जनों करि निन्दित न हो इस लोकमें उत्कृष्ट कहा गया है और स्वर्ग आदि लोकोंको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥ शूद्रो हि धनमासाद्य  
ब्राह्मणानेव बाधते ॥ २९ ॥ एते चतुर्णां वर्णानामार्षद्धर्माः प्रकी-  
र्त्तिताः ॥ यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो ब्रजन्ति परमां गतिम् ॥ १३० ॥

टीका—धनके जोड़नेमें समर्थभी शूद्रको कुटुंबके पालने और पंचयज्ञ आदिके योग्य धनसे अधिक बहुतसे धनको संचय न करना चाहिये कारण यह है कि शूद्र धनको पाकै शास्त्र न जाननेके कारण धनके मदसे सेवा न करनेसे ब्राह्मणोंहीको बाधा-देता है ॥ २९ ॥ आपत्तिकालमें करनेयोग्य चारो वर्णोंके धर्म ये कहे उनको भलीभांतिसे करते हुए विहितके करनेसे और निषिद्धके न करनेसे पापरहित होनेके कारण ब्रह्मज्ञानके लाभसे मोक्षरूप परम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १३० ॥

एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्त्तितः ॥

अर्तः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम् ॥ ३१ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

टीका—यह चारो वर्णोंका संपूर्ण आचार कहा इसके उपरांत शुभप्रायश्चित्तका अनुष्ठान कहोंगा ॥ ३१ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयश्रीपण्डितकेशवप्रसादशर्मद्विवेदिकृता-  
यांकुल्लूकभट्टानुयायिन्यां मनूक्तभाषाविवृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



## अथ एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सान्त्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् ॥ गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वां  
ध्यायार्थ्युपतापिनौ ॥ १ ॥ नैवैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्म-  
भिक्षुकान् ॥ निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्याविशेषतः ॥ २ ॥

टीका-विवाहका प्रयोजन संतानहै इस लिये सांत्तानिक कहिये विवाह करनेकी इच्छा वाला १ और आगे कहा हुआ अवश्य करनेयोग्य ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ करनेकी इच्छावाला २ और अध्वग कहिये बटोही ३ औ सर्ववेदसे कहिये जिसने सर्वस्व दक्षिणायुक्त विश्वजितयज्ञ किया है ४ और विद्या गुरुके भोजन वस्त्रके लिये जिसका प्रयोजनहै ५ ऐसेही पिता माताके लियेभी ६।७ और वेद पढ़नेके समय भोजन वस्त्र आदिका चाहनेवाला ब्राह्मचारी ८ और उपतापी कहिये रोगी ९ इन नव ब्राह्मणोंको धर्मभिक्षाशीलस्नातक जानै इन निर्द्धनोको जो गौ सुवर्ण आदि दिया जाय उस दानको विद्या विशेषके अनुरूप देवै ॥ १ ॥ २ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाभ्योदेयमन्नं सदर्क्षिणम् ॥ इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते ॥ ३ ॥ सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हं प्रतिपादयेत् ॥ ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थं चैवं दर्क्षिणाम् ॥ ४ ॥

टीका-इन नवश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वेदीके मध्यमें दक्षिणा समेत अन्न देना चाहिये और इनसे जो भिन्न होय उनको वेदीके बाहर सिद्ध अन्न देना चाहिये यह उपदेश किया जाताहै और धनके देनेमें तौ नियम नहीं है ॥ ३ ॥ राजा मणि मोती आदि सब रत्नोंको और यज्ञके उपयोगी दक्षिणाके लिये धन विद्याके अनुरूप वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंको देवै ॥ ४ ॥

कृतदारोऽपैरान्दारान्भिक्षित्वा योऽधिगच्छति ॥ रतिमात्रं फलं तस्य द्रव्यं दातुस्तु संततिः ॥ ५ ॥ धनानि तु यथाशक्ति विंप्रेषु प्रतिपादयेत् ॥ वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समंश्नुते ॥ ६ ॥

टीका-स्त्रीयुक्त जो संतति आदि कारणके विना औरोंसे मागकर विवाह करताहै उसको रतिमात्रही फल होताहै और उससे उत्पन्न संतान धन देनेवालेके होते है तिससे इस प्रकार धन मागिकै दूसरा विवाह न करना चाहिये और ऐसे के लिये धन न देना चाहिये यह तात्पर्य है ॥ ५ ॥ गौ भूमि हिरण्य आदि ध-



न शक्तिके अनुसार वेदके जाननेवाले पवित्र और पुत्र स्त्री आदि करि युक्तब्राह्मणोंको दान करै उसके वंशसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये ॥ अधिकं वापि विद्येत सं सोमं पातुमर्हति ॥ ७ ॥ अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः ॥ संपीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् ॥ ८ ॥

टीका—जिसके अवश्य पोष्य वर्गके भरणके लिये तीन वर्षके खरचका पूरा अथवा उससे कुछ अधिक भोजन आदि होय वह काम्य सोमयाग करनेके योग्य है ॥ ७ ॥ तीन वर्षके व्यय योग्य धनसे थोड़ा धन होनेपर जो सोमयागको करताहै उसका प्रथम सोमयाग नित्यभी संपन्न नहीं होताहै और द्वितीय काम्य सोमयाग तौ कैसे हू नहीं ॥ ८ ॥

ज्ञातः परंजने दाता स्वर्जने दुःखजीविनि ॥ मध्वार्पातो विषा-  
स्वादः स धर्मप्रतिरूपकः ॥ ९ ॥ भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौ  
र्ध्वदेहिकम् ॥ तद्भवत्युखोदकं जीवतश्च मृतस्य च ॥ १० ॥

टीका—जो बहुत धन होनेके कारण दानमें समर्थ होता हुआ अवश्य भरण करनेयोग्य पिता माता आदि ज्ञातिके जनोंको दुर्गतिसे दुःख युक्त होनेपर यशके लिये औरोंको देताहै वह उसका दान विशेष धर्मका प्रतिरूप कहै धर्म नहीं है पहले यशस्कर होनेसे मधुर तौ उसका आरंभहै और अंतमें नरक फल होनेसे विषका आस्वादहै तिससे यह न करना चाहिये ॥ ९ ॥ अवश्य भरण करने योग्य पुत्र स्त्री आदिको पीड़ा देकर जो परलोककी धर्मबुद्धिसे दान आदि करताहै उस दाताके जीवतेको तथा मरेको वह दान दुःखरूप फलका देनेवाला होताहै ॥ १० ॥

यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः ॥ ब्राह्मणस्य विशेष-  
षेण धार्मिके सति राजनि ॥ ११ ॥ यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्ही-  
नक्रतुरसोमपः ॥ कुटुम्भात्तस्य तद्व्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये ॥ १२ ॥

टीका—क्षत्रिय आदि यजमानका और विशेष करि ब्राह्मणका यज्ञ जो और अंगोंके पूर्ण होनेपर एक अंगसे पूरा न होय तौ जिस वैश्यके बहुत पशु आदि धन होय और वह पाकयज्ञ आदि तथा सोमयजन आदि न करता होय उसके घरसे उस अंगके योग्य द्रव्य बलसे अथवा चोरीसे ले लेवै यह तौ राजाके धर्म



प्रधान होनेपर करना चाहिये वह शास्त्रके अर्थ करनेवालेको दंड नहीं देताहै ११ १२

आहरेत्रीणि वां द्वे वां कामं शूद्रस्य वेष्टमनः॥नहि शूद्रस्य यज्ञे-  
षु कैश्चिदस्ति परिग्रहः ॥ १३ ॥ योऽनाहिताग्निः शतं गुरयज्वा  
चं सहस्रगुः ॥ तयोरपि कुटुम्बाभ्यां माहरेदविचारयन् ॥ १४ ॥

टीका—यज्ञके दो तीन अंगोंके विकल होनेपर उन तीन अंगोंको अथवा दो अंगोंको वैश्यसे न मिलनेपर बेधडक शूद्रके घरसे बल करिकै अथवा चोरीसे लेवै जिसे शूद्रका कोईभी यज्ञसे संबंध नहीं है और न ब्राह्मण यज्ञके लिये धन शूद्रसे मागै यह आगे कहा हुआ निषेध शूद्र आदिकोंसे मागनेका है बलसे लेने आदिका नहीं ॥ १३ ॥ जिस अग्निहोत्र न करनेवालेके सौ गौ प्रमाण धन होय अथवा अग्निहोत्री होय और सोमयाग न करता होय उसके जो हजार गौ प्रमाण धन होय तौ दोनोंके घरोंसे दोनो अथवा तीनों अंगोंके शीघ्र पूरे करनेको ब्राह्मण करि दोनोसे लेना चाहिये और ब्राह्मण क्षत्रियोंसेभी लेवै ॥ १४ ॥

आदानं नित्याच्चादौ तुराहरेदप्रयच्छतः ॥ तथा यशोऽस्य प्र-  
थते धर्मश्चैवं प्रवर्धते ॥ १५ ॥ तथैवं सप्तमे भक्ते भक्तानि

षडनश्रता ॥ अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः ॥ १६ ॥

टीका—आदान नित्य कहिये जिसके प्रतिग्रह आदिसे नित्य धन आवै वह जो इष्टापूर्त तथा दानसे रहित होय उससे यज्ञके दो अथवा तीन अंगोंके लिये याचना करनेपर न दें तौ बलसे अथवा चोरीसे लेवै ऐसा करनेपर लेनेवालेकी ख्याती प्रकाशित होती है और धर्म बढ़ताहै ॥ १५ ॥ सायंकाल और प्रातःकालके भोजनके उपदेशसे तीन दिनका उपवास होनेपर चौथे दिन प्रातःकाल सातमें भोजनकी प्राप्ति होनेपर दान आदि धर्मसे रहित एकदिनका पूर्ण भोजनके योग्य धन चोरीसे लेना चाहिये ॥ १६ ॥

खलात्क्षेत्रादगोराद्रा यतो वाप्युपलभ्यते ॥ आख्यातव्यं तु तत्त

स्मै पृच्छते यदि पृच्छति ॥ १७ ॥ ब्राह्मणस्त्वं न हर्तव्यं क्षत्रि-

येण कदाचन॥दस्युनिष्क्रियोस्तु स्वमजीर्वन्हर्तुं मर्हति ॥ १८ ॥

टीका—खलिहानसे अथवा खेतसे अथवा घरसे अथवा और किसी स्थानसेही न कर्मसंबंधी धान्य मिलै वहांसे लेना चाहिये जो यह धनका स्वामी पूछै कि तुमने किस लिये किया तौ उससे कारण समेत चोरी आदि कहनी चाहिये ॥ १७ ॥



कहे हुए कारणोंके होनेपरभी क्षत्रियको ब्राह्मणका धन उससेही न होनेके कारण न लेना चाहिये समान न्याय होनेके कारण वैश्यों तथा शूद्रोंको ऊंची जातिसे न लेना चाहिये और निषिद्धके करनेवाले और विहितके न करनेवाले ब्राह्मण तथा क्षत्रियसे अत्यंत आपत्तिमें क्षत्रिय लेनेके योग्यहै ॥ १८ ॥

योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति ॥ स कृत्वा पूर्वमात्मानं संतारयति तौबुभौ ॥ १९ ॥ यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्त्वं तद्विदुर्बुधाः ॥ अयज्वनां तु यद्विर्त्तमासुरस्त्वं तदुच्यते ॥ २० ॥

टीका—जो हीन कर्म आदि उत्कृष्टोंसे कहे हुएभी कारणोंमें कहेके अनुरूप यज्ञ आदिकी सिद्धिके लिये धनको लेकर साधुओंको और उत्कृष्ट जो ऋत्विक् आदि है तिनको देताहै वह जिसका धन लेताहै उसके पापका नाश करता है और जिसको देताहै उसको दुर्गतिसें बचाताहै इस भांति आपको नाव बनाकै दोनोंको दुःखसे छुड़ाताहै ॥ १९ ॥ यज्ञ करनेवालोंका जो धनहै उसको यज्ञमें लगनेके कारण विद्वान् देवताओंका धन मानते हैं और यज्ञ आदिसे शून्य पुरुषोंके धनको यज्ञ आदिमें न लगनेके कारण आसुर कहिये असुरोंका कहते है इससे उसकोभी हरण करिकै यज्ञ आदिसे देवस्व करना चाहिये ॥ २० ॥

नैतस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ क्षत्रियस्य हि बालि श्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा ॥ २१ ॥ तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः ॥ श्रुतशीले च विज्ञाय वृत्तिं धर्म्या प्रकल्पयेत् ॥ २२ ॥

टीका—उस कहे कारणमें चोरी तथा बलात्कार करनेवालेको धर्म प्रधान राजा दण्ड न करै कारण यह है कि राजाकी मूढतासे ब्राह्मण क्षुधासे दुखी होता है ॥ २१ ॥ उस ब्राह्मणके अवश्य भरण करनेयोग्य पुत्र आदि वर्गको जानि तथा शास्त्र और आचारको जानि उनके अनुरूप जीविका राजा अपने घरसे नियत करै ॥ २२ ॥

कल्पयित्वाऽस्य वृत्तिं च रक्षेदेनं समन्ततः ॥ राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् ॥ २३ ॥ नयज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रो भिक्षेत कर्हिचित् ॥ यजमानो हि भिक्षित्वा चण्डालः प्रेत्य जायते ॥ २४ ॥

टीका—इस ब्राह्मणकी जीविकाको नियत करि सब शत्रु चौर आदिकोंसे रक्षा करै कारण यह है कि रक्षा किये हुए ब्राह्मणसे उसके धर्मका छठा भाग पाताहै



( ३९२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

॥ २३ ॥ ब्राह्मण यज्ञको सिद्धिके लिये शूद्रसे कभी धन न मागे कारण यह है कि शूद्रसे मागिकै यज्ञको करता हुआ मरिकै चांडाल होताहै इससे मागनेका निषेध करनेसे शूद्रसे विना मागे हुएभी प्राप्त हुआ धन यज्ञके लियेभी विरुद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

यज्ञार्थमर्थं, भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ॥ स याति भिक्षतां विप्रैः कौकतां वा शतं समाः ॥ २५ ॥ देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ॥ स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ २६ ॥

टीका-यज्ञकी सिद्धिके लिये धनको मागिकै जो यज्ञमें सब नहीं लगताहै वह सौवर्षतक भास कहिये नीलकंठ अथवा कौआ होताहै ॥ २५ ॥ देवस्व कहिये प्रतिमा आदि देवताओंके लिये दिये हुए धनको और ब्राह्मणके धनको जो लोभसे ले लेताहै वह पापस्वभाव दूसरे जन्ममें गीधकी जूठनसे जीवताहै ॥ २६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं नित्यं निर्वपेदब्दपर्यये ॥ कृत्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसम्भवे ॥ २७ ॥ आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुतेऽनापदि द्विजः ॥ स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति विचारितम् ॥ २८ ॥

टीका-वर्षके समाप्त होनेपर दूसरे वर्षके आरंभ होनेको अर्थात् चैत्रशुक्ल आदि-वर्षकी प्रवृत्तिको वर्षपर्यंत कहते हैं उस वर्षांतरमें वैश्वानरी इष्टिको कहे हुए पशु सोमयागके न होनेमें उसके न करनेका दोष दूर करनेके लिये सदा शूद्र आदिसे कहे हुए धनके ग्रहणरूप इष्टिको करै ॥ २७ ॥ जो द्विज आपत्तिमें कही हुई विधिसे आपत्तिके विना धर्मको करताहै उसका वह परलोकमें निष्फल होताहै यह मनु आदिकोंने विचार कियाहै ॥ २८ ॥

विश्वैश्च देवैः सांध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः ॥ आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः ॥ २९ ॥ प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते ॥ न सारम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम् ॥ ३० ॥

टीका-विश्वदेवनाम देवोंसे और सांध्योंसे तैसेही मरनेसे डरे हुए महर्षी ब्राह्मणों करि आपत्तिमें मुख्य विधि सोम आदिके वैश्वानरी आदि प्रति प्रतिनिधि किया हुआ वह मुख्यके न होनेमें करना चाहिये मुख्यके संभवमें नहीं ॥ २९ ॥ मुख्यके करनेमें समर्थ जो आपत्तिमें कहे हुए प्रतिनिधिसे अनुष्ठान करताहै



उस दुर्बुद्धिका परलोकसंबंधी अभ्युदयरूप और प्रत्यवायका दूर होनारूप फल नहीं होता है ॥ ३० ॥

न ब्राह्मणोऽवेदयत किञ्चिद्वाजनि धर्मवित् ॥ स्ववीर्येणैव तांश्छि  
ष्यान्मानवानपकारिणः ॥ ३१ ॥ स्ववीर्याद्राजवीर्याच्च स्ववीर्य ब-  
लवत्तरम् ॥ तस्मात्स्वे नैव वीर्येण निर्गुणहीयादरीन्द्रिजः ॥ ३२ ॥

टीका-धर्मका जाननेवाला ब्राह्मण कुछभी अपकार राजासे न कहै अपितु अपनीही शक्तिसे आगे कहे हुए अभिचार आदिसे अपकार करनेवाले मनुष्योंको दंड देवै तिस्से तौ अपने धर्मके विरोध आदि प्रकृष्ट अपराध करनेपर अभि-  
चार आदि दोषके लिये नहीं होते है इस लिये यह कहा है कुछ अभिचारका वि-  
धान नहीं करते है अथवा न राजासे कहनेका निषेध करते है ॥ ३१ ॥ जिस्से अपनी सामर्थ्य और राजाकी सामर्थ्य इन दोनोमेंसे पराधीन राजाकी सामर्थ्यकी अपेक्षा अपने आधीन होनेसे अपनाही सामर्थ्य बलवान् है तिस्से ब्राह्मण अपनेही पराक्रमसे शत्रुओंको दंड देवै ॥ ३२ ॥

श्रुतीरथर्वांगिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥ वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मण-  
स्य तेन हन्यादरीन्द्रिजः ॥ ३३ ॥ क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापा-  
दमात्मनः ॥ धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः ॥ ३४ ॥

टीका-वह कौनसा अपना पराक्रमहै सो कहते है ॥ अथर्ववेदमें देखा गया है अभिचार जिनका ऐसी आंगिरसीश्रुतियोंको विना विचारके करै जिस्से अभि-  
चारमंत्रके उच्चारणरूप ब्राह्मणकी वाणीही शस्त्रका काम करनेसे शस्त्रहै उस्से ब्राह्मण शत्रुओंको मारै शत्रुके दंड देनेके लिये राजासे न कहना चाहिये ॥ ३३ ॥ क्षत्रिय अपने बलसे शत्रुसे तिरस्काररूप अपनी आपत्तिके पार होय और वैश्य तथा शूद्र धनके देनेसे और ब्राह्मण अभिचार कहिये मारणरूप जप हो-  
मोंसे आपत्तिके पार होय ॥ ३४ ॥

विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ तस्मै नाकुशलं ब्रूया  
न्न शुष्कां गिरमीरयेत् ॥ ३५ ॥ नैव कन्या न गुंवतिर्नाल्पविद्यो  
न बालिशः ॥ होता स्यादग्निहोत्रस्य नातो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥

टीका-कहे हुए कर्मोंका करनेवाला और पुत्र शिष्य आदिकोंका सिखानेवाला और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंका कहनेवाला और सबभूतोंकी मित्रतामें प्रधान ब्राह्मण



( ३९४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

कहा जाता है उसके लिये दंड दो ऐसा अनिष्ट वचन न कहै और गाली आदि वाक् दंड तथा धिक्दंडरूप वाणीका उच्चारण उसके लिये न करै ॥ ३५ ॥ कन्या विना व्याही और व्याहीभी तरुणी और थोड़ा पण हुआ मूर्ख रोग आदिसे पीडित और उपनयन कर्म रहित ये सब श्रुतिमें कहै हुए सायंप्रातः होम आदिको न करै ॥ ३६ ॥

नरके हिं पतन्त्येते जुह्वन्तः स च यस्थ तत् ॥ तस्माद्वै तानकुशलो  
होता स्याद्वेदपारंगः ॥ ३७ ॥ प्राजापत्यमर्दत्वाऽश्वमग्न्याधेय-  
स्य दक्षिणाम् ॥ अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति ॥ ३८ ॥

टीका—होमको करते हुए ये कन्याआदि नरकको जाते हैं और जिसकी औरसे ये अग्निहोत्र करते हैं वहभी नरकको जाता है तिससे श्रौतकर्ममें चतुर सब वेदोंका पढ़नेवाला, होता करना चाहिये ॥ ३७ ॥ अग्निके आधानमें ब्राह्मण संपत्तिके होनेपर प्रजापति जिसका देवता है ऐसा अश्व दक्षिणामें दिये विना अग्निका आधान करनेपर आहिताग्नि नहीं होता है और आधानके फलको नहीं पाता है तिससे आधानमें अश्व दक्षिणा देवै ॥ ३८ ॥

पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ॥ न त्वल्पदक्षिणैस्स-  
न्नैर्यजन्ते ह कथंचन ॥ ३९ ॥ इन्द्रियाणि यज्ञः स्वर्गमायुः कीर्तिं  
प्रजाः पशून् ॥ हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नो लपध्नो यजेत् ॥ ४० ॥

टीका—श्रद्धावान् पुरुष इंद्रियोंको वशमें करिके यज्ञसे भिन्न तीर्थयात्रा आदि पुण्य कर्मोंको करै और शास्त्रमें कही हुई दक्षिणासे थोड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे कैसेहू यजन न करै ॥ ३९ ॥ नेत्र आदि इंद्रियोंको और जीवते हुएके ख्यातिरूप यज्ञ कीर्तिको और संततिको तथा पशुओंको थोड़ी दक्षिणाका यज्ञनाश करता है तिससे थोड़ी दक्षिणा देकै यज्ञ न करै ॥ ४० ॥

अग्निहोत्र्यर्पविध्याग्नीन्ब्राह्मणः कामकारतः ॥ चांद्रायणं चरेन्मां  
सं वीरहत्यासमं हि तत् ॥ ४१ ॥ ये शूद्रादधिगम्यार्थमग्निहोत्रमु  
पासते ॥ ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः ॥ ४२ ॥

टीका—अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छासे अग्नियोंमें सायंकाल तथा प्रातःकालके होमोंको न करके एक महीनेभर चांद्रायण व्रत करै जिसे यह वीरपुत्रकी हत्याके समान है



॥ ४१ ॥ जे शूद्रसे धनको पाकै अथवा साधारण मागनेसे धनको लेकर आधानपूर्वक अग्निहोत्र करते है वे शूद्रोंहीके याजकहै उनको उसका फल नहीं होताहै इसीसे वे वेदवादियोंमें निन्दित हैं ॥ ४२ ॥

तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम् ॥ पदौ मस्तकमक्रम्य  
दांता दुर्गाणि संतरेत् ॥ ४३ ॥ अकुर्वन्विहितं कर्म निन्दितं च  
समाचरन् ॥ प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रार्थयश्चितीयते नरः ॥ ४४ ॥

टीका-शूद्रके धनसे आहिताग्नि होनेवाले उन मूर्खोंके मस्तकपर पांव रखिकै देनेवाला शूद्र दानसे सदा परलोकमें दुःखोंसे निस्तर जाताहै यजमानोंका फल नहीं होताहै ॥ ४३ ॥ नित्य कहे हुए संध्योपासन आदिको और नैमित्तिक जैसे मृतकके छूनेमें स्नान आदिको न करता हुआ और निषेध किये हुए हिंसा आदिको करता हुआ नहीं कहे हुए निषिद्ध कर्मोंमें अत्यंत आसक्तिको करता हुआ नर प्रायश्चित्ती होताहै ॥ ४४ ॥

अकामतः कृतं पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ॥ कामकारकृतेऽप्या  
दुरेके श्रुतिनिदर्शनात् ॥ ४५ ॥ अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन  
शुद्ध्यति ॥ कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः ॥ ४६ ॥

टीका-विना जाने किये हुए पापका प्रायश्चित्त होताहै यह पंडित कहते है और कोई आचार्य कहते है कि जानकै किये हुएका प्रायश्चित्त होताहै यह तौ पृथक् करिकै कहना प्रायश्चित्त गौरवके लिये है श्रुतिनिदर्शनात् वेदके दृष्टान्तसे जैसे “इंद्रोयती नृसालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमल्लीलावागित्यवदत्सप्रजापतिमुपाधावत्तस्मात्तमुपहव्यप्रायच्छत्” इति इसका अर्थ यह है कि इंद्रयतियोंको बुद्धिपूर्व कुत्तोंसे खानेको देता हुआ वह प्रायश्चित्तके लिये प्रजापतिके समीप गया उसके लिये प्रजापतिके उपहव्य नाम कर्म प्रायश्चित्त दिया इसीसे जानकै किये हुएमेंभी प्रायश्चित्तहै ॥ ४५ ॥ इच्छाके विना किया हुआ पाप वेदके अभ्याससे शुद्ध होताहै अर्थात् नाशको प्राप्त होताहै और रागद्वेष आदिकी व्यामूढतासे जानकर किया हुआ पाप नाना प्रकारके प्रायश्चित्त अर्थात् विद्या धन तथा तपसे शुद्ध होताहै ॥ ४६ ॥

प्रायश्चित्तीयतां प्राप्य देवात्पूर्वकृतेन वा ॥ न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रा  
यश्चित्तेऽकृते द्विजः ॥ ४७ ॥ इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतै-



( ३९६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

स्तथा ॥ प्राप्तुं वन्ति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् ॥ ४८ ॥

टीका—देवात् कहिये प्रमादसे इस शरीर करि किये हुए अथवा पूर्वजन्ममें संचय किये हुए पापसे क्षयरोग आदि करि सूचितसे प्रायश्चित्ती होकर प्रायश्चित्त के विना किये साधुओंके साथ याजन आदिसे संसर्गको नही प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥ इस जन्ममें निषिद्ध काम करनेसे और कोई पूर्वजन्ममें किये हुए ओंसे दुष्टस्वभाव मनुष्य कुनखी आदि होना रूपके विपर्यय कहिये अन्यथा भावको प्राप्त होते है ॥ ४८ ॥

सुवर्णचौरः कौर्नख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् ॥ ब्रह्महा क्षयरोगि-  
त्वं दौर्धर्म्यं गुरुतल्पगः ॥ ४९ ॥ पिशुनः पौतिनांसिक्यं सूचकः  
पूतिवक्त्रताम् ॥ धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरेक्यं तु मिश्र-  
कः ॥ ५० ॥ अन्नहर्ता मयावित्वं मौर्क्यं वागपहारकः ॥ वस्त्रा-  
पहारकः श्वैर्यं पट्टतामश्वहारकः ॥ ५१ ॥ दीपहर्ता भवेदन्धः  
काणो निर्वापको भवेत् ॥ हिंसया व्याधिभूतस्तु स्फीतोऽन्य-  
स्त्वभिर्मर्शकः ॥ ५२ ॥ एवं कर्मविशेषेण जायन्ते सद्भिर्गर्हिताः ॥  
जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा ॥ ५३ ॥

टीका—सुवर्ण चुरानेवालेके नख कुत्सित होजातेहैं और निषिद्ध मद्य पीने-  
वालेके दांत कालेजाते हैं और ब्रह्महत्यारा क्षयरोगी होताहै गुरुकी भार्यामें गमन  
करनेवालेका लिंग बंद नही होताहै खुला रहता है और पिशुन कहिये विद्यमान दो-  
षोंके कहनेवालेकी नाकमें दुर्गंध आती है और नही विद्यमान दोषोंके कहनेवा-  
लेके मुखमें दुर्गंध आती है और धान्यका चोर अंगहीन होताहै और धान्य आ-  
दिकोंमें कुछ और मिलानेसे अधिक अंग होजाते हैं और अन्न चुरानेवालेकी  
अग्नि मंद होजातीहै और विना आज्ञाके पढनेवाला मूक होताहै और वस्त्रोंका चु-  
रानेवाला श्वेतकुष्टी होताहै और घोड़ेका चुरानेवाला पंगा होताहै दीपको चुरा-  
नेवाला नेत्र इंद्रियसे रहित अर्थात् अंध होताहै और दीपकको बुझावनेवाला काना  
अर्थात् एक आंखीवाला होताहै यज्ञदेवता आदिकोंके उद्देश विना केवल जि-  
ह्वाके स्वादसे जो पशुओंकी हिंसा करताहै उसको रोग बहोत होतेहैं और जो दुस-  
रेके स्त्रीको दूषण करनेवाला अर्थात् संभोग आदिक करनेवाला वातसंबंधि  
रोगों करिके स्थूल देहवान् होताहै ऐसे बुद्धि वाणी नेत्र कानोंसे विकल विकृत रूप



सोधुओं करि निंदित पूर्वजन्ममें संचय किये हुए भोगनेसे शेष रहे हुए पापोंसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यै ॥

निन्द्यैहि लक्षणैर्युक्तां जायन्तेऽनिष्कृतैनसः ॥ ५४ ॥

टीका—अनिष्कृतैनसः कहिये जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये हैं वे परलोकमें भोगे हुए पापके शेषसे कुनखीपन आदि निंद्य लक्षणों करि युक्त उत्पन्न होते हैं तिस्से शुद्धिके लिये अर्थात् पाप दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त सदा करना चाहिये ॥ ५४ ॥

ब्रह्महत्यां सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ॥

महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥ ५५ ॥

टीका—ब्राह्मणके प्राणवियोगरूप जिसका फल है ऐसे व्यापारको ब्रह्महत्या कहते हैं वह तौ साक्षात् अथवा दूसरेको नियुक्त करिके तैसेही गौ भूमि और सुवर्णका लेना आदि जिसका कार्य है उसके लिये ब्राह्मणके मरनेमें ब्रह्महत्या होती है ऐसी ब्रह्महत्या और निषिद्ध सुराका पीना और स्तेय कहिये ब्राह्मणका सुवर्ण ले लेना और गुरुकी स्त्रीमें गमन करना और इनके साथ संसर्ग करना इनको महापातक कहते हैं ॥ ५५ ॥

अनृतं च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् ॥ गुरोश्चालीकनिर्वधः  
सर्मानि ब्रह्महंत्यया ॥ ५६ ॥ ब्रह्मोज्झतां वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं  
सुहृद्बधः ॥ गर्हितानार्थयोर्जग्धिः सुरापानसर्मानि षट् ॥ ५७ ॥

टीका—जातिकी बड़ाईके लिये बढकै बोलना जैसे जो ब्राह्मण नहीं है वह आपको ब्राह्मण कहै और जिसमें उनका मरण होय ऐसा चोर आदिकोंका दोष राजासे कहना और गुरुको झूठा दोष लगाना ये सब ब्रह्महत्याके समान हैं ॥ ५६ ॥ पढे हुए वेदका अभ्यास न करनेसे भूलना और असत् शास्त्रके आश्रयसे वेदकी निंदा करना और साक्ष्य (गवाही) में झूठ बोलना और ब्राह्मणसे अन्यमित्रका वध और निषिद्ध लशुन आदिका खाना और अभक्ष्य विष्टा आदिका भक्षण ये सब सुरापानके समान हैं ॥ ५७ ॥

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च ॥ भूमिवज्रमणीनां च रुक्म-  
स्तेयसमं स्मृतम् ॥ ५८ ॥ रेतः सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वन्त्य



( ३९८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

जासुं च ॥ सरुथुःपुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसंमं विदुः ॥ ५९ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णसे भिन्न धरोहडका ले लेना तैसेही मनुष्य, घोडा, चांदी, भूमि, हीरा, और मणियोंका ले लेना ये सब सुवर्णकी चोरीके तुल्यहैं ॥ ५८ ॥ सगी बहिनि, कुमारी, चांडाली, और मित्र तथा पुत्रकी स्त्रीमें वीर्यका सींचना गुरु-पत्नीमें गमन करनेके समानहैं ॥ ५९ ॥

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः ॥ गुरुमातृपितृत्याग  
स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च ॥ ६० ॥ परिवित्तितानुजेऽनूढे प-  
रिवेदनमेव च ॥ तथोर्दानं च कन्यायास्तथोरेव च यार्जन-  
म् ॥ ६१ ॥ कन्याया दूषणं चैवं बार्धुष्यं व्रतलोपनम् ॥ तडां-  
गारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः ॥ ६२ ॥ व्रात्यता बान्धव-  
त्यागो भृत्याध्यापनमेव च ॥ भृत्यार्चाध्ययनादानमपण्यानां च  
विक्रयः ॥ ६३ ॥ सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥  
हिसौषधीनां स्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च ॥ ६४ ॥ इन्ध-  
नार्थमशुष्काणां दुर्माणामवपातनम् ॥ आत्मार्थं च क्रियारम्भो  
निन्दितान्नादनं तथा ॥ ६५ ॥ अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामन-  
पक्रिया ॥ असंच्छास्त्राधिगमनं कौशील्यस्य च क्रिया ॥ ६६ ॥  
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥ स्त्रीशूद्रविद्वक्षत्रवधो  
नास्तैक्यं चोपपातकम् ॥ ६७ ॥

टीका—अब उपपातकोंको कहते हैं ॥ गौका मारना जाति कर्मसे दुष्टोंको यजन कराना पराई स्त्रीमें गमन करना अपना वचना माता पिता गुरु आदिकी सेवा न करना सदा ब्रह्मयज्ञका त्याग स्मार्त्त अग्निका त्याग और पुत्रका संस्कार भरण आदि न करना पहले छोटेका विवाह करनेसे ज्येष्ठ परिवित्ति होता है और छोटा परिवित्ति होता है उन दोनोंको कन्या देना और उन्हीका विवाह होम आदिमें ऋत्विज होना मैथुनके विना अंगुली आदिके डालनेसे कन्याको दूषित करना वृद्धि कहिये व्याजसे जीविका करना व्रतलोपन कहिये ब्रह्मचारिका मैथुन करना तलाव बाग भार्या और संतानका वचना कालमें, यज्ञोपवीत न होना व्रात्यता है पितृव्य आदि बांधवोंकी



अनुवृत्ति न करना नियत वेतन लेकर पढ़ाना नियत वेतन देकर पढ़ना नहीं वैचने योग्य तिल आदिका बेचना सुवर्ण आदिकी खानिमें राजाकी आज्ञासे अधिकार लेना बड़े जलके प्रवाह रोकनेके कारण पुल आदि प्रवृत्त करना औषधियोंकी हिंसा भार्या आदि स्त्रियोंको वैश्या बनाकै जीविका करना इयेन आदि यज्ञसे अपराध रहितका मारना मंत्र औषध आदिसे वशीकरण करना ईधनके लिये हरित वृक्षका काटना रोगरहितका देवता पितृ आदिके उद्देश विना पाक आदिका करना निन्दित अन्न लशुन आदिका एकवार इच्छाके विना खाना अधिकार होनेपर अग्निहोत्र न करना सुवर्णसे अन्यसार द्रव्यका हरण करना तीनि प्रकारके ऋणोंका न दूर करना श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध शास्त्रका सिखाना नाचने गाने बजानेका सेवन करना धान्यकी तांबे लोहे आदिकी और पशुओंकी चोरी करना द्विजातियोंका मद्य पीनेवाली स्त्रीमें गमन करना स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियका मारना और नास्तिक्य कहिये अदृष्टार्थ कर्ममें अभावकी बुद्धि होना ये प्रत्येक उपपातक है ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

ब्राह्मणस्य रुजःकृत्यां त्रांतिरग्रेयमैद्ययोः ॥ जैर्ह्यं च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६८ ॥ खराश्वोद्वृमृगेभानामजावि क्वधस्तथा ॥ संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च ॥ ६९ ॥

टीका—ब्राह्मणको दंड कहिये दंडा और हाथ आदिसे पीडा देना और अत्यंत दुर्गंध होनेके कारण न सूघनेयोग्य लशुन पुरीष आदिकी तथा मद्यकी गंधका सूघना और कुटिलता और पुरुषकी गुदा आदिमें मैथुन ये एक एक जातिके भ्रंश करनेवाले हैं ॥ ६८ ॥ गधा, घोडा, ऊँठ, मृग, हाथी, बकरा, मेढा, मछली, सांप, भैसा, इनमेंसे प्रत्येकका मारना संकरी करण जानिये ॥ ६९ ॥

निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेर्वनम् ॥ अपात्रीकरणं ज्ञेयं मसत्यस्य च भाषणम् ॥ ७० ॥ कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनम् ॥ फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यं च मलावहम् ॥ ७१ ॥

टीका—नहीं लेनेयोग्योंसे धनका दान लेना, वाणिज्य, शूद्रकी टहल, और झूट बोलना, ये प्रत्येक अपात्र करनेवाले हैं ॥ ७० ॥ कृमि कहिये शूद्र जीव तिनसे कुछ स्थूल कीट तिनका और पक्षियोंका वध और मद्यके साथ एक पिटारीमें धरिक् लाये हुए शाक आदि भोज्य वस्तुका भोजन और फलकाष्ठ तथा फूलोंकी चोरी करना और थोड़ीभी हानिमें बहु व्याकुल होना ये प्रत्येक मलिनकरनेवाले हैं ॥ ७१ ॥



( ४०० )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

एतान्येनांसि सर्वानि यथोक्तानि पृथक्पृथक् ॥ यैर्व्रतैरपोह्यन्ते  
तांनि सम्यग्निबोधत ॥ ७२ ॥ ब्रह्महा द्वादशं समाः कुटीं कृत्वा  
वने वसेत् ॥ भिक्षांश्यात्मविशुद्धयर्थं कृत्वा शर्वशिरोन्वजम् ॥ ७३ ॥

टीका-भेदसे कहे हुए ये सब ब्रह्महत्या आदि पापोंका जिन जिन प्रायश्चित्तरूप  
व्रतोंसे नाश होताहै उनको यथावत् सुनिये ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला वनमें  
कुटी बनायके मारे हुएके शिरके कपालको अथवा उसके न होनेमें और किसीका  
चिन्हकरिके भिक्षा खाता हुआ अपने पापके दूर करनेके लिये बारह वर्ष वनमें बसे  
और व्रत करे ॥ ७३ ॥

लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः ॥ प्रोस्येदात्मनमं  
ग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाकिष्ठराः ॥ ७४ ॥ यजेत वा श्वमेधेनं स्वर्जिता  
गोमेवेन वा ॥ अभिजिद्विश्वजिह्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा ॥ ७५ ॥

टीका-धनुषबाण आदि शस्त्रके धारण करनेवाले युद्ध करनेवालोंका ब्राह्मण वधके  
पापकी क्षीणताके लिये यह प्रायश्चित्तहै कि अपनी इच्छासे विद्वान् शस्त्रधारियोंके  
बाणका लक्ष्य ( निशाना ) होके स्थित होय जबतक मरजाय अथवा मरेके समान  
होजाय तौ शुद्ध होय सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे “संग्रामेवाहतोलक्षीभूतः शुद्धिमवा-  
प्नुयात् । मृतकल्पः प्रहारतो जीवन्नपिविशुद्ध्यति ॥” अर्थात् संग्राममें लक्ष्य होके मारा  
जाय तौ शुद्धिको प्राप्त होय अथवा प्रहारोंसे पीडित हो मरेके समानहोके जीवता  
हुआभी शुद्ध होताहै अथवा जलती हुई अग्निमें नीचेको मुख करिके तीनिवार  
शरीरको डारै तौ शुद्ध होय ॥ ७४ ॥ अश्वमेधसे अथवा स्वर्जिता नाम याग वि-  
शेषसे अथवा गोमेधसे अथवा अभिजित्यज्ञसे अथवा विश्वजितसे त्रिवृतासे अथवा अ-  
ग्निष्टुतसे यजन करै ये अज्ञानसे ब्राह्मणके वधमें प्रायश्चित्त हैं ॥ ७५ ॥

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् ॥ ब्रह्महत्यापनोदाय मि  
तभुङ्गिर्यतेन्द्रियः ॥ ७६ ॥ सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादये  
त् ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥ ७७ ॥

टीका-वेदोंमेंसे एक वेदको जपता हुआ स्वल्प आहार और जितेंद्रिय हो  
ब्रह्महत्याके पापके दूर करनेके लिये सौ योजन अर्थात् चारसौ कोस चला जाय  
यह भी अज्ञानसे किये हुए जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें तीनोवर्णोंका प्रायश्चित्तहै



॥ ७६ ॥ अथवा वेदके जाननेवाले ब्राह्मणको सर्वस्व दान कर देवै जितना धन उसके जीवनके लिये समर्थ होय अथवा गृह और घरकी उपयोगी सब धन-धान्य आदि वस्तुओं समेत इसीसे सर्वस्व अथवा सब सामान समेत घर देवै "जीवनाय अलं" इस वचनसे जीवनेके लिये पूर्ण सर्वस्व अथवा घर देवै उससे थोड़ा न होय यह तौ अज्ञानसे जातिमात्र ब्राह्मणके वधमें ब्राह्मणका प्रायश्चित्त है सोई भविष्य पुराणमें लिखा है जैसे "जातिमात्रं यदा हन्यात् ब्राह्मणं ब्राह्मणो गृह ॥ वेदाभ्यासविहीनो वै धनवानग्निवर्जितः ॥ प्रायश्चित्तं तदा कुर्यादिदं पापविशुद्धये ॥ धनं वा जीवनायालं गृहं वा सपरिच्छदम् ॥" ॥ अर्थ ॥ हे कार्तिकेय जो ब्राह्मण जातिमात्र ब्राह्मणको मारै वेदाभ्याससे हीन होय धनवान होय अग्नि करि वर्जित होय तौ वह शुद्धिके लिये इस प्रायश्चित्तको करै अर्थात् जीवनेके लिये पूर्ण धन अथवा धान्य आदि सामग्री समेत घर देवै ॥ ७७ ॥

हविष्यं भुग्वाऽनुसरत्प्रतिश्रोतः सरस्वतीम् ॥ जपेद्वा नियताहार  
स्त्रिं वै वेदस्य संहिताम् ॥ ७८ ॥ कृतवापनो निर्वसेद्रामान्ते  
गोत्रं जेऽपि वा ॥ आश्रमे वृक्षं मूले वा गोब्राह्मणहिते रतः ॥ ७९ ॥

टीका—नीवार आदि हविष्य अन्नका भोजन करनेवाला विख्यात पुरुषत्ववशसे लगाकै पश्चिम समुद्रके स्रोताके प्रति सरस्वतीको जाय यह तौ प्रायश्चित्त जातिमात्र ब्राह्मणके ज्ञानपूर्वक वधमें ब्राह्मणके लिये कहा है अथवा परिमित कहिये थोड़ासा आहार करिकै तीनिवार वेदकी संहिताको जपे संहिता शब्दसे पदक्रमका व्युदास हुआ ॥ ७८ ॥ अथवा बारह वर्षके समाप्त होनेपर इसकी उपस्थित होनेपर द्वादशवार्षिकका विशेष कहते हैं कटे हैं केश नख ढाड़ी मूच्छ जिसके ऐसा तथा गौ ब्राह्मणके हितमें लगा हुआ अर्थात् गौ ब्राह्मणका हित करता हुआ ग्रामके समीप गौओंके स्थानमें वृक्षके नीचे इनमेंसे कही रहै "वनेकुटीकृत्य" इसका यह विकल्प है ॥ ७९ ॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सर्वः प्राणान्परित्यजेत् ॥ मुच्यते ब्रह्महत्या  
या गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ८० ॥ त्रिवारं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमव  
जित्य वा ॥ विप्रस्य तन्निर्मिते वा प्राणालाभे विमुच्यते ॥ ८१ ॥

टीका—बारह वर्षके आरंभ होनेपर बीचमें अग्नि जल तथा हिंसक आदिकों करि दवाये हुए ब्राह्मणकी अथवा गौकी रक्षाके लिये प्राणोंको छोड़ता हुआ ब्रह्महत्यासे छूटि जाता है गौ अथवा ब्राह्मणको उनसे बचाकै जीवता हुआ भी



( ४०२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

बारह वर्षोंके न समाप्त होनेपर भी ब्रह्महत्यासे छूटि जाता है ॥ ८० ॥ चोर आदिकों करि ब्राह्मणका सर्वस्व हरि लेनेपर उसके लानेके लिये कपटको छोड़िकै यथाशक्ति यज्ञकरै वहां तीनिवार युद्धमें प्रवृत्त हो सर्वस्वके न लानेपर भी ब्रह्महत्याके पापसे छूटि जाता है अथवा पहलीवार हरे हुए ब्राह्मणके सर्वस्वको जीतिकै जो देता है वह ब्रह्महत्यासे छूटि जाता है अथवा धनके हरि जानेके कष्टसे ब्राह्मण आपही युद्धसे मरनेमें प्रवृत्त होय तब यद्यपि हरे हुए धनके बराबर देनेसे उसको जियाता है तब भी उसके निमित्त उसका प्राणालाभ होनेपर ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है ॥ ८१ ॥

एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ समाप्ते द्वादशे वर्षे  
ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ८२ ॥ शिष्टा वा भूमिदेवानां नरदेव-  
समागमे ॥ स्वमेनोऽवभृथस्नातो ह्यमेधे विमुच्यते ॥ ८३ ॥

टीका—ऐसे कहे हुए प्रकारसे सदा नियमयुक्त स्त्रीसंयोग आदिसे रहित मनको रोंके हुए बारह वर्षके समाप्त होनेपर ब्रह्महत्याके पापको नाश करता है ॥ ८२ ॥ अश्वमेध यज्ञमें ऋत्विज ब्राह्मणोंके और यजमान क्षत्रियके समागम होनेपर ब्रह्महत्याके पापको निवेदन करिकै यज्ञांतस्नानमें नहाया हुआ ब्रह्महत्याके पापसे छूटि जाता है ॥ ८३ ॥

धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते ॥ तस्मात्समागमे तेषां  
मेनो विख्याप्य मुच्यते ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणः संभवेनैव देवानामपि  
दैवतम् ॥ प्रमाणं चैवं लोकस्य ब्रह्मत्रिविहं कारणम् ॥ ८५ ॥

टीका—जिस्से ब्राह्मण धर्मका कारण है ब्राह्मण करि धर्मका उपदेश करनेपर धर्मके करनेसे राजा उस धर्मका आगेका भाग मनु आदिकों करि कहा गया है उन दोनो ब्राह्मण क्षत्रियों करि मूलसहित धर्मरूप वृक्षकी सिद्धि होती है तिस्से उनके समागमरूप अश्वमेधमें पापका निवेदन करि अवभृथमें नहाया हुआ शुद्ध होता है ॥ ८४ ॥ ब्राह्मण उत्पत्तिमात्रहीसे देवताओंका भी पूज्य है और श्रुत आदि करि संपन्न होय तौ फिरि क्या कहना है मनुष्योंका और लोकका तौ बहुतही पूज्य है क्योंकि उसके उपदेशकी प्रामाण्यता है जिस्से उसमें वेदही कारण है और उपदेशका मूल वेद है ॥ ८५ ॥

तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोऽप्येनः सुनिष्कृतिम् ॥ सां तेषां पावनाय



स्योत्पवित्रां विदुषां हि वाक्॥८६॥ अतोऽन्यतममास्थाय विधिं  
विप्रैः समाहितः॥ब्रह्महत्याकृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया ॥ ८७ ॥

टीका—उन विद्वान् ब्राह्मणोंमेंसे वेदके जाननेवाले तीनिभी अधिक होय तौ फिरि क्या कहनाहै पाप दूरि करनेके लिये जिस प्रायश्चित्तको कहैं वह पापियों की शुद्धिके लिये होताहै कारण यह है कि विद्वानोकी वाणी पवित्र करने-वाली होती है तिससे प्रकाश प्रायश्चित्तके लिये पंडितोंकीभी सभा अवश्य करनी चाहिये और रहस्य कहिये गुप्त प्रायश्चित्तमें तौ यह नहीं है ॥ ८६ ॥ इस प्रायश्चित्तोंके समूहसे किसी एक प्रायश्चित्तका आश्रय लेकर सावधानमन ब्राह्मण आदि प्रशस्ततासे ब्रह्महत्यासे किये हुए पापको दूरि करताहै ॥ ८७ ॥

हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदे वं व्रतं च रेत॥राजन्यवैश्यौ चेजानौवा  
त्रेयीमेव च स्त्रियम् ॥ ८८ ॥ उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य  
गुरुं तथा ॥ अपहृत्य च निक्षेपं कृत्वा च स्त्रीसुहृद्रथम् ॥ ८९ ॥

टीका—स्त्री पुरुष तथा नपुंसकपनसे न जाने हुए ब्राह्मणके गर्भको मारिकै और यज्ञ करनेमें लगे हुए क्षत्रिय तथा वैश्यको और आत्रेयी कहिये रजस्वला ब्राह्मणी स्त्रीको मारिकै इसी ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८८ ॥ हिरण्य भूमि आदि युक्त साक्षमें झूठ बोलकै और गुरुको मिथ्या दूषण देकै और धरो-हडका ब्राह्मणके सुवर्णको छोडि अन्य रजत आदि द्रव्यका और क्षत्रिय आदिके सुवर्णकाभी अपहरण करिकै और कहे हुए स्त्री वधको करिकै और ब्राह्मण नही ऐसे मित्रको मारिकै ब्रह्महत्याके प्रायश्चित्तको करै ॥ ८९ ॥

इयं विशुद्धिरुदिता प्रमोप्याकामतो द्विर्जम् ॥ कामतो ब्राह्मणवधे  
निष्कृतिर्न विधीयते ॥ ९० ॥ सुरां पीत्वा द्विजो मोहोदग्निवर्णो  
सुरां पिबेत्॥तथा सकाये निर्दग्धे मुच्यते किंलिषात्ततः॥९१॥

टीका—यह प्रायश्चित्त अकामसे ब्राह्मणके वधमें कहाहै और कामसे ब्राह्मणके वधमें यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इससे द्विगुण करनारूपहै यह प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है कुछ प्रायश्चित्तके अभावके लिये नहीं है ॥ ९० ॥ द्विज कहिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अज्ञानसे सुराका पान करिकै अग्निवर्ण सुराका पान करै उस सुरासे शरीरके दग्ध होनेपर द्विज उस पापसे छूटि जाताहै यह प्रायश्चित्त गुरुत्वके कारण कामसे किये हुए सुरापानमें जानना चाहिये सोई बृहस्पतिने



( ४०४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

कहा है जैसे ॥ “सुरापाने कामकृते ज्वलंतीं तां विनिःक्षिपेत् ॥ मुखेतयासनिर्दग्धौ  
मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥” ॥ अर्थ ॥ कामसे सुराका पान करनेपर जलती हुई सुराको  
मुखमें डारै उससे जलकर मरा हुआ वह शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥

गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिबेदुदकमेव वा ॥ पयो घृतं वा मरणाद्गोशं  
कृद्रसमेव वा ॥ ९२ ॥ कर्णान्वा भक्षयेददं पिण्याकं वा सकृन्नि  
शि ॥ सुरापानापनुत्त्यर्थं वालंवासा जटौ ध्वजी ॥ ९३ ॥

टीका—गौका मूत्र जल गौका दूध गौका घृत और गोबरका रस इनमेंसे किसी  
एकको अग्निसम तपाकै जबतक मरै तबतक पीवै ॥ ९२ ॥ अथवा गौके रोम  
आदिसे बने हुए वस्त्र धारण किये हुए और जटाओंको रखाये हुए सुराके  
पात्रका चिन्ह लिये हुए चावलोंके किनकोंको अथवा तिलोंकी खलीको रातिमें  
एकवार एक वर्षतक सुरापानके पापके नाशके लिये भक्षण करै यह अशुद्धिपूर्वक  
अमुख्य सुरापानमें देखना चाहिये ॥ ९३ ॥

सुरा वै मलमन्त्रानां पार्ममा च मलमुच्यते ॥ तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ  
वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ९४ ॥ गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रि  
विधा सुरा ॥ यथैवैकां तथैवा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ ९५ ॥

टीका—चावलोंके पिष्टकी बनती है इस कारण सुरा अन्नका मल है और मल-  
शब्दसे पाप कहा जाता है तिससे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पैष्टी सुराको न पीवै इससे  
निषेध होनेपर इसके अतिक्रमसे “सुरापीत्वा” इस प्रायश्चित्तके विधानसे पैष्टीका  
निषेध तीनो वर्णोंके लिये मनुने स्फुट कहा है ॥ ९४ ॥ जो गुडसे की गई होय  
सो गौडी और जो पिष्टसे की गई होय सो पैष्टी और महुआके वृक्षको  
मधु कहते हैं उसके फूलोंसे की गई होय सो माध्वी ऐसे तीन प्रकारकी सुरा  
जाननी चाहिये जैसे एक पैष्टी मुख्य है तैसेही गौडी माध्वीभी द्विजोत्तमोंको न  
पीनी चाहिये ॥ ९५ ॥

यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासर्वम् ॥ तद्ब्राह्मणेन नात्त-  
व्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ ॥ अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकं  
वाप्युदाहरेत् ॥ अकार्यमन्यत्कुर्याद्ब्राह्मणो मदमोहितः ॥ ९७ ॥

टीका—ग्यारह प्रकारका मद्य मांस और तीन प्रकारकी सुरा तथा आंसव ये मद्य  
चारों यक्ष राक्षस तथा पिशाचोंको अन्न हैं सो ये देवताओंकी हवि खानेवाले ब्राह्म-



णैको न खाने चाहिये यहा कोई कहते है कि “ देवानामश्रताहविः ” यह जो पुंल्लिङ्गका लिखना है तिस्से पुरुषही ब्राह्मणको मद्यपानका निषेध है स्त्रीको नही सो अच्छा नही है क्योंकि याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें लिखा है जैसे “ पतिलोकंनसायाति ब्राह्मणीया-सुरापिबेत् ॥ इहैवसाशुनीगृध्रीशूकरीचोपजायते ” ॥ अर्थ ॥ जो ब्राह्मणी सुराको पीती है वह पतिके लोकको नहीं जाती यही वह कुतिया गीधनी तथा सुअरिया होती है ॥ ९६ ॥ ब्राह्मण मद्यपान करिकै भदसे मूढबुद्धि हो अशुद्ध स्थानमें गिरै अथवा वेदके वाक्योंका उच्चारण करै अथवा नही करनेयोग्य ब्रह्महत्या आदिको करै इस्से उसको मद्यपान न करना चाहिये ॥ ९७ ॥

यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाष्टाव्यते संकृतं ॥ तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं  
शूद्रत्वं च स गच्छति ॥ ९८ ॥ एषा विचित्राभिहिता सुरापानस्य  
निष्कृतिः ॥ अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् ॥ ९९ ॥

टीका—जिस ब्राह्मणके शरीरमें स्थित वेद अर्थात् संस्काररूपसे स्थित एकवारभी मद्यसे डुबाये जाय अर्थात् एकवारभी जो ब्राह्मण मद्यको पीता है उसका ब्राह्मणत्व चला जाता है और वह शूद्रताको प्राप्त होता है तिस्से सर्वथा मद्य न पीना चाहिये ॥ ९८ ॥ यह सुरापानसे उत्पन्न पापका नाना प्रकारका प्रायश्चित्त कहा तिस्से परे अब सुवर्णका चुरानेके पापका प्रायश्चित्त कहौंगा ॥ ९९ ॥

सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु ॥ स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां  
भवाननुशास्तिवति ॥ १०० ॥ गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु  
तं स्वयम् ॥ वधेन शुद्ध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु ॥ १ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण राजाके समीप जाकै ब्राह्मणके सुवर्ण चुरानेरूप अपने कर्मको कहता हुआ मुझे दंड दीजिये ऐसे कहे ॥ १०० ॥ चोर कंधेपर मूसल रखके राजाके समीप जाय तब राजा उसके दिये हुए मूसलसे चोरको एकवार आप मारै वह चोर मूसलकी चोटसे मारा हुआ मरे अथवा न मारै मरेके समान होजीवै तौभी शुद्ध होय अर्थात् उस पापसे छूटि जाय और ब्राह्मण तौ तपहीसे शुद्ध होता है सोई कहा है जैसे ॥ “ न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्व पापेष्ववस्थितम् ” इति ॥ अर्थ सब पापोंमें स्थितभी ब्राह्मणको कभी न मारै ॥ १ ॥

तपसाऽपनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् ॥ चीरवासा द्विजो  
ऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतं ॥ २ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं



( ४०६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

द्विजः ॥ गुरुस्त्रीगमनीयं तु व्रतै रेभिरपानुदेत् ॥ ३ ॥

टीका—उसी तपको कहते हैं ॥ तपसे सुवर्णकी चोरीके पापको दूर किया चाहता द्विज बल्कलवस्त्रोंको धारण करि वनमें वसिकै ब्रह्महत्यारेके लिये कहे हुये व्रतको करै ॥ २ ॥ ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरीसे उत्पन्न पापको इन व्रतोंसे द्विज दूर करै और गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेके पापको तौ इन आगे कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे दूर करै ॥ ३ ॥

गुरुतल्प्यभिभाष्यैर्नस्स्तंते स्वप्यादयोर्मये ॥ सूर्मौ ज्वलन्तीं स्वां  
श्लिष्येन्मृत्युना सं विशुद्ध्यति ॥ ४ ॥ स्वयं वा शिश्रवृषणावुत्कृ  
त्याधाय चाञ्जलौ ॥ नैर्ऋतीं दिशमातिष्ठेदानीपांतादजिह्मगः ॥ ५ ॥

टीका—गुरुतल्प जो गुरुकी भार्या है तिसमें गमन करनेवाला गुरुभार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न पापको विख्यात करिकै लोहेकी तत्ती सेजपर सोवै और लोहकी बनी हुई जलती स्त्रीकी प्रतिमाका आलिंगन करि वह मरनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४ ॥ अथवा आपही अपने लिंग और वृषणो काटिकै अंजलीमें रखि जबतक शरीर न गिरै तब तक सीधा दक्षिण पश्चिम दिशाको चला जाय ये कहे हुए दोनो प्रायश्चित्त भारी होनेके कारण सुवर्ण गुरुकी भार्यामें ज्ञानसे वीर्यके त्यागपर्यंत मैथुनके मध्ये जानने चाहिये ॥ ५ ॥

खट्वाङ्गी चीरेवासा वा श्मश्रुलो विजने वने ॥ प्राजापत्यं चरेत्कृ-  
च्छ्रमन्दमेकं समाहितः ॥ ६ ॥ चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्य-  
स्येन्निर्यतेन्द्रियः ॥ हविष्येण यवाग्वावां गुरुतल्पापनुत्तये ॥ ७ ॥

टीका—खट्वाङ्गको धारण किये हुए कपड़ोंके चीथरोंको पहिरे हुए केश नख लोम और डाढी मूखोंको रखाये हुए सावधान मन निर्जन वनमें एकवर्षतक प्राजापत्य व्रतको करै यह तौ आगे कहे हुए प्रायश्चित्तकी लघुतासे अपनी भार्याके भ्रमसे अज्ञान विषयक जानना चाहिये ॥ ६ ॥ अथवा गुरु भार्यामें गमन करनेसे उत्पन्न पापके दूर करनेके लिये इंद्रियोंको वशमें करि फल मूल आदिसे अथवा हविष्य नीवार आदिसे की हुई यवागूसे तीनि महीने चान्द्रायणोंको करै यह तौ पहले कहे हुएसेभी लघु होनेसे असाध्वी वा असवर्णामें गमन करनेसे जानना चाहिये ॥ ७ ॥

एतैर्व्रतैरपो हेयुर्महापातकिनो मलम् ॥ उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्ना  
नाविधैर्व्रतैः ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मांसं यवान्पिबेत् ॥



कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः ॥ ९ ॥ चतुर्थकालमश्री  
यादक्षारलवणं मितम् ॥ गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रि-  
यः ॥ ११० ॥ दिवानुगच्छेद्गोस्तास्तु तिष्ठन्धूर्ध्वं रजः पिबेत् ॥  
शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत् ॥ ११ ॥ तिष्ठन्ती-  
ष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत् ॥ आसीनासु तथासीनो नियं-  
तो वीतमत्सरः ॥ १२ ॥ आतुरामभिः शस्तां वा चौरव्याघ्रादि  
भिर्भयैः ॥ पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वोपायैर्विमोचयेत् ॥ १३ ॥  
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥ न कुर्वीतात्मन-  
स्त्राणं गोरकुंठ्वा तु शक्तितः ॥ १४ ॥ आत्मनो यदि वान्येषां  
गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥ भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सं  
कम् ॥ १५ ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति ॥  
स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ १६ ॥

. टीका—इन कहे हुए व्रतोंसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले पापको दूर करें और गोवध आदि उपपातकोंके करनेवाले तो आगे कहै हुए प्रकारसे अनेक रूप व्रतों करिके पापको दूर करें ॥ ८ ॥ उपपातकसंयुक्तः यहांसे अनेनविधिनायस्तु यहां तक कुलकहै ॥ उपपातक युक्त गौका मारनेवाला जबकी पतली दलिया पहले महीनेमें पीवै और शिखासमेत मूड मुडवा और डाढी मूछोंको मुडवा उस मारी हुई गौके चर्मसे शरीरको ढके हुये तीनि महीनेतक गोष्ठ कहिये गौओंके रहनेके स्थानमें वसे और गोमूत्रसे स्नान करै जितेंद्रिय होबनाये हुए नोनके विना हविष्य अन्नको एक दिन खायकै दूसरे दिन सायंकाल थोडा दूसरे तीसरे महीनोंमें खाय ऐसे तीनि महीने करै और दिनमें सबेरे उन गौओंके साथ जाय उन गौओंके खुरोंसे उठी हुई धूलिको खड़े होके खाय और खुजाने आदिसे उनकी सेवा करिकै और प्रणाम करिकै रातिमें भीति आदिका सहारा लेकर बैठा रहै तथा शुद्ध और क्रोध रहित हो गौओंके उठनेपर पीछे उठै और वनमें घूमतियोंके पीछे घूमै और गौओंके बैठनेपर बैठे और रागिणीको तथा चोर व्याघ्र आदिके भयके कारणोंसे दवाई हुईको गिरी हुईको अथवा कीचसे लिसी हुईको शक्तिके अनुसार छुड़ावै तथा उदय सूर्यके तपनेपर मेघके वरसनेपर और शीतके उपस्थित होनेपर और पवनके बहुत चलनेपर गौकी यथाशक्ति रक्षा न करिकै अपनी रक्षा न करै तैसेही अपने तथा औरोंके



( ४०८ )

मनुस्मृती

[ अध्यायः

घरमें खेतमें और खलिहानमें अन्न आदि खाती हुई गौकों और दूध पीते हुए वछ-  
डेको न कहै इस कहे हुए विधानसे जो गौका मारनेवाला गौओंकी सेवा करताहै वह  
गौके मारनेसे उत्पन्न पापको तीन महीनोंमें दूर करताहै ॥ ९ ॥ ११० ॥ ११ ॥  
॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

वृषभैकादशा गौंश्च दद्यात्सुचरितव्रतः ॥

अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ १७ ॥

टीका—सम्यक् प्रकारसे व्रत करनेवाला ग्यारहवां है बैल जिनमें ऐसी दश गौओंका  
दान करै जो इतना धन न होय तौ वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्वका  
दान करै ॥ १७ ॥

एतदेव व्रतं कुर्युरुपपातकिनो द्विजाः ॥ अवकीर्णिवज्यं शुद्धचर्यं  
चान्द्रायणमथार्पि वां ॥ १८ ॥ अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन  
चतुष्पथे ॥ पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निर्ऋतिं ॥ १९ ॥

टीका—और तौ उपपातकी आगे जो कहा जायगा ऐसे अवकीर्णीको छोड़कर  
पापके दूर करनेके लिये इसी गोवधके प्रायश्चित्तको अथवा चान्द्रायण व्रतको करै  
चान्द्रायण तौ लघु है इस लिये छोटे उपपातकमें करना चाहिये अथवा जाति शक्ती  
गुण आदिकी अपेक्षासे योजित करने योग्य है ॥ १८ ॥ आगे कहा हुआ अव-  
कीर्णी तौ काने गधेसे रातिमें चौराहेमें पाकयज्ञके मंत्रसे निर्ऋतिनाम देवताका  
यजन करै ॥ १९ ॥

हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्ततश्च समेत्यृचा ॥ वातेन्द्रगुरुवह्नीनां  
जुहुयात्संपिषादुतीः ॥ १२० ॥ कामतो रेतसः सेकं व्रतस्थस्य  
द्विजन्मनः ॥ अतिक्रमं व्रतस्याहुर्धर्मज्ञा ब्रह्मवादिनः ॥ १२१ ॥

टीका—तिसपीछे निर्ऋतिके लिये चौराहेमें गर्दभरूप आदि होमोंको यथावत्  
करिकै उसके अंतमें समासिञ्चन्तुमरुतः इस ऋचासे मरुत, इंद्र, बृहस्पति, तथा  
अग्निके लिये घीसे आहुती होमें ॥ १२० ॥ प्रसिद्ध न होनेके कारण अवकी-  
र्णीका लक्षण कहते हैं ॥ इच्छासे ब्रह्मचारी द्विजस्त्रीमें वीर्यको सींचिकै अवकीर्णी  
होताहै इस वचनसे स्त्रीकी योनिमें शुक्रका त्याग करिकै ब्रह्मचर्यका अतिक्रम अव-  
कीर्ण रूप सर्वज्ञ वेदके वेत्ता कहते हैं ॥ १२१ ॥



मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पार्वक्रमेव च ॥ चतुरो व्रतिनोऽभ्येति  
ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्द  
भाजिनम् ॥ सतागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥ २३ ॥

टीका—ब्रह्मचारीका वेद पढ़नेके नियमके करनेसे उत्पन्न हुआ तेज अवकीर्णी होनेपर मारुत, इंद्र, बृहस्पति, और अग्नि, इन चारोंमें चला जाताहै इससे उनके लिये धीकी आहुतियां होमै ॥ २२ ॥ इस अवकीर्णनाम पापके उत्पन्न होनेपर पहले कहे हुए गर्दभयाग आदिको करिकै गर्दभचर्मको ओढ़े हुए मैं अवकीर्णी हों ऐसे अपने कर्मको कहता हुआ सात घरोंमें भीख मांगै उनसे पाये हुए भीखके अन्नसे एकवार खायकै रहै ॥ २३ ॥

तैभ्यो लब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम् ॥ उपस्पृशं स्त्रिष्वणं  
त्वब्देनं सं विशुद्ध्यति ॥ २४ ॥ जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यत-  
ममिच्छया ॥ चरेत्सान्तपनं कृच्छं प्राजापत्यमनिच्छया ॥ २५ ॥

टीका—उन सात घरोंसे मिले हुए भिक्षाके अन्नसे एककाल आहार करता हुआ संध्या सवेरे और दुपहरमें स्नान करता हुआ वह अवकीर्णी एक वर्षमें शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ “ब्राह्मणस्यरुजःकृत्वा” इत्यादिसे जातिके भ्रंश करनेवाले कर्म कह आये हैं उनमेंसे किसीको इच्छासे करिकै सात दिनतक करनेयोग्य सांतपन व्रतको करै और इच्छाके विना करिकै आगे कहे हुए प्राजापत्य व्रतको करै ॥ २५ ॥

संकरापात्रकृत्यासु मांसं शोर्धनमैन्दवम् ॥ मलिनीकरणीयेषु तप्तः  
स्याद्यावकैस्त्र्यहम् ॥ २६ ॥ तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे  
स्मृतः ॥ वैश्येऽष्टर्मांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः ॥ २७ ॥

टीका—खराश्वोष्ठ इत्यादि करिकै संकरी करण कहे हैं उनमेंसे एकको इच्छासे करिकै शुद्धके लिये एक महीनेतक चांद्रायण करै और कृमिकीटवयोहत्या इत्यादिसे मलिनीकरण कहे हैं उनमेंसे एककोभी इच्छासे करिकै तीन रात्रितक कथिता यवागूको खाय ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्याका चौथा भाग अर्थात् बारह वर्षकी चौथाई तीन वर्षरूप प्रायश्चित्त स्त्री शूद्र वैश्य और क्षत्रियके वधमें कहाहै उपपातकत्व करिकै कहे हुए त्रैमासिककी अपेक्षा गुरुत्व होनेसे वृत्तमें स्थित क्षत्रियके कामसे किये हुए वधमे दे-खना चाहिये और साधु आचारवाले वैश्यके कामसे वधमें आठवां भाग अर्थात् डेढ़



(४१०)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

वर्षका व्रत और व्रतस्थ शूद्रके कामनासे मारनेपर सोलहवां भाग अर्थात् नव महीनेका देखना चाहिये ॥ २७ ॥

अकामतस्तु रोजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः ॥

वृषभैकसहस्रा गां दद्यात्सुचरितव्रतः ॥ २८ ॥

टीका—अबुद्धिपूर्वक कहिये विना जाने हुए क्षत्रियको मारकै एक बैल करि अधिक गौओंको सहस्र अर्थात् एक हजार गौ और एक बैल अपनी शुद्धिके लिये ब्राह्मणोंको दान करै ॥ २८ ॥

त्र्यब्दं चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो व्रतम् ॥ वसन्दूरतरे ग्रामादृक्षमूलनिकेतनः ॥ २९ ॥ एतदेवं चरेद्बन्धं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ॥ प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतं गवाम् ॥ १३० ॥

टीका—अथवा नियमयुक्तहो जटाओंको धारण किये हुए ग्रामसे दूर वृक्षके नीचे निवास करता हुआ ब्रह्महत्यारेके लिये जो व्रत कहाहै “ब्रह्महाद्वादशसमा” इत्यादि वह तीनि वर्ष “तुरीयोब्रह्महत्याया” इस्से पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि “जटीदूरतरे ग्रामादृक्षमूलनिकेतनः” इस वचनमें कहे हुएसे व्यतिरिक्त शवके शिरका ध्वजाको धारण आदि सब धर्मोंकी निवृत्तिके लिये होनेसे और आकारसे यह अकाममें जानना चाहिये ॥ २९ ॥ इसी बारह वर्षके व्रतको विना कामनाके साधु आचारवाले वैश्यको मारिकै एकवर्ष ब्राह्मण आदि करै अथवा एक सौ एक गौओंका दान करै ॥ १३० ॥

एतदेवं व्रतं कृत्स्नं षण्मासाच्छूद्रहा चरेत् ॥ वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गांसिताः ॥ ३१ ॥ मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेवं च ॥ श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—कामनाके विना शूद्रका मारनेवाला इसी व्रतको छ महीने करै और दश सपेद गौएँ और एक बैल ब्राह्मणको दान करै ॥ ३१ ॥ बिलाव नौला चाष मेढक कुत्ता गोह उल्लु कौआ इनमेसे किसीएकको मारिकै शूद्रकी हत्याके व्रतको करै ॥ ३२ ॥

पयः पिबेत्त्रिरात्रं वा योजनं वाऽध्वनो व्रजेत् ॥

उपस्पृशेत्संवन्त्यां वासूक्तं वाब्देवतं जपेत् ॥ ३३ ॥



टीका-विना जाने मार्जार आदिके वधमें तीनि रातितक दूध पीवै जो मंदाग्रि आदिसे समर्थ न होय तौ तीनि रातितक एक योजन अर्थात् चारकोश मार्ग चलै इसमें अशक्त होय तौ तीनि राति नदीमें स्नान करै उसमेंभी अशक्त होय तौ “आपो-हिष्ठा” इत्यादि सूक्तको जपै यथोत्तर लघु होनेसे पूर्व पूर्वके असंभवमें आगे आगेका परिग्रहहै विकल्प नहीं है ॥ ३३ ॥

अभिर्काष्ण्यायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः ॥ पल्लभारकं  
षण्ठे सैसकं चैकमांषकम् ॥ ३४ ॥ घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणं  
तु तित्तिरौ ॥ शुके द्विर्हायनं वर्त्तं क्रौंचं हत्वा त्रिर्हायणम् ॥ ३५ ॥

टीका-सर्पको मारिकै ब्राह्मणके लिये तीक्ष्णहै अग्र जिसका ऐसा लोहका दंड देवै और नपुंसकको मारिकै पयारका भार और एकमासे सीसा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३४ ॥ शूकरके मारनेपर घीका भरा घट ब्राह्मणीको देवै तीतरके मारनेपर चारि आढक प्रमाण तिलोंका दान करै शुकके मारनेमें दोवर्षका बछरा और क्रौंच पक्षीके मारिकै तीनिवर्षका बछरा ब्राह्मणको दान करै ॥ ३५ ॥

हत्वा हंसं बलाकां च बकं बर्हिणमेव च ॥ वानरं श्येनं भासौ च  
स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गौम् ॥ ३६ ॥ वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नी-  
लान्वृषान्गजम् ॥ अजमेषावनंद्वाहं खरं हत्वैकर्हायनम् ॥ ३७ ॥

टीका-हंस, बलाका, बक, मयूर, वानर, श्येन, और, भास, इन पक्षियोंमेंसे किसी को मारै तौ ब्राह्मणको गोदान करै ॥ ३६ ॥ घोड़ेको मारिकै वस्त्रका दान करै हाथीको मारिकै पांच नीले बैल दान करै बकरे तथा मेढे मारै तौ एक बैल दान करै गधेको मारिकै एक वर्षका बछरा दान करै ॥ ३७ ॥

क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुं दद्यात्पर्यस्विनीम् ॥ अक्रव्यादान्वं  
त्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम् ॥ ३८ ॥ जीर्णकार्मुकबस्तावीन्पृथ-  
ग्दद्याद्विशुद्धये ॥ चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वाऽर्नवस्थिताः ॥ ३९ ॥

टीका-कञ्जे मांसके खानेवाले मृगों अर्थात् व्याघ्र आदिको मारिकै बहुत दूधकी गौ देवै और मांसके न खानेवाले हरिण आदिकोको मारिकै जमानबछिया देवै और ऊँटको मारिकै सुवर्णकी रत्तीका दान करै ॥ ३८ ॥ लोभसे उत्कृष्ट अपकृष्ट पुरुषोंमें व्यवचार कहनेवाली ब्राह्मण आदि धर्णोंकी स्त्रियोंको मारिकै ब्राह्मण आदिके क्रमसे जर्मपुट, धनुष्य, छाग, मेढा, इनका शुद्धिकेलिये दान करै ॥ ३९ ॥



( ४१२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

दानेन वधनिर्णैकं सर्पादीनामशङ्कुवन् ॥

एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजैः पापपनुत्तये ॥ १४० ॥

टीका-अग्नि आदिकोंके न होनेसे दान करि संपूर्ण पाप दूरि करनेको अस-  
मर्थ ब्राह्मण आदि प्रत्येकके वधमें कृच्छ्रकी प्रथमतासे द्विज पाप दूरी करनेके  
लिये प्राजापत्यको करै और सर्प आदिक तौ “अग्निकाष्णायसीदद्यात्” इस्से लगाकै  
यहांतक ग्रहण किये जाते है ॥ १४० ॥

अस्थिमतां तु सत्त्वानां संहस्रस्य प्रमापणे ॥ पूर्णै चार्नस्यनस्त्रां  
तु शुद्धहत्याव्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥ किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमतां  
वधे ॥ अर्नस्त्रां चैव हिंसायां प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४२ ॥

टीका-हड्डीवाले कृकलास ( गिर्गट ) आदि हजार जीवोंके वधमें शुद्धके व-  
धका प्रायश्चित्त करै और अस्थि रहित खटमल आदिकोंके छकडे प्रमाण मारने  
में उसी प्रायश्चित्तको करै ॥ ४१ ॥ हड्डीवाले कृकलास आदि शुद्ध जीवोंके प्रत्येकके  
वधमें कुछ थोडासा दे देवै “अस्थिमतांवधेपणोदेयः” अर्थात् हड्डीवालोंके वधमें प-  
णदेना चाहिये इस सुमंतुके वचनसे किञ्चिदेवसे पण जानना चाहिये और विना  
हड्डीके यू खटमल आदिकोंमें प्रत्येकके वधमें प्राणायामसे शुद्ध होताहै और प्रा-  
णायाम तौ व्याहृतियोंसमेत प्रणवसहित सावित्रीका शिरसमेत तीनिवार  
जपहै जैसे “त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामस्त उच्यते” अर्थात् प्राणोंको चढाकै  
तीनिवार पढे उसको प्राणायाम कहते है यह वसिष्ठ करि कहे हुए लक्षणोंका  
जानना चाहिये ॥ १४२ ॥

फलदानां तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृकशतम् ॥ गुल्मवल्लीलतानां  
च पुष्पितानां च वीरुधाम् ॥ ४३ ॥ अन्नाद्यजानां सत्त्वानां रसजानां  
च सर्वशः ॥ फलपुष्पोद्भवानां च घृतप्राशो विशोधनम् ॥ ४४ ॥

टीका-फलोंके देनेवाले आम्र आदि वृक्षोंके और कुब्जक आदि गुल्मोंके और  
वल्लियोंके तथा गुडूची आदि लताओंके और वृक्षोंकी शाखाओंमें लिपटी हुई  
पुष्पित वीरुधोंके कूष्मांड आदिकोंमें प्रत्येकके काटनेमें पाप दूरि करनेके लिये  
सावित्री आदि सो ऋचा जपनी चाहिये “इंधनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनं”  
इत्यादि उपपातकोंके मध्यमें पढे हुएका गुरु प्रायश्चित्तके कहनेसे यह फलवाले  
वृक्षोंके काटनेमें लघुप्रायश्चित्त एकवारके अबुद्धि पूर्वक करनेमें जानना चाहिये



॥ ४३ ॥ अन्न आदिकोंमें उत्पन्न और गुड आदिके रसोंमें उत्पन्न और गूलर आदिके फलोंमें उत्पन्न और महुआदिके फूलोंमें उत्पन्न हुए सब प्राणियोंके वधमें धीका खाना पापका शोधनेवाला है ॥ ४४ ॥

कृष्टजानामोषधीनां जौतानां च स्वयं वने॥ वृथा लम्बेऽनुगच्छेद्वा  
दिनमेकं पयोव्रतः ॥ ४५ ॥ एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसास-  
मुद्भवम् ॥ ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे ॥ ४६ ॥

टीका—जौतनेसे उत्पन्न हुई औषधी साठी आदिके और वनमें आपसे उत्पन्न हुए नीवार आदिके विना प्रयोजन काटनेमें एकदिन दूधकी आहार गौओंका अनुगमन करै ॥ ४५ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे हिंसासे उत्पन्न ज्ञान तथा अज्ञानसे किये हुये पाप दूर करने चाहिये अब अभक्ष्यभक्षणका प्रायश्चित्त जो आगे कहेंगे उसको सुनिये ॥ ४६ ॥

अज्ञानाद्वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति ॥ मतिपूर्वमनिर्देश्यं  
प्राणान्तिकमिति स्थितिः ॥ ४७ ॥ अपः सुराभाजनस्था मद्यभाण्ड  
स्थितास्तथा ॥ पञ्चरात्रं पिबेत्पीत्वा शङ्खपुष्पीश्रितं पयः ॥ ४८ ॥

टीका—अज्ञानसे गौड़ी तथा माध्वीको पीकर गौतमका कहा हुआ तप्तकृच्छ्र सातपन व्रत करके फिर पुनस्संस्कारसेही शुद्ध होता है सोई गौतमने कहा है ॥ जैसे “अमत्यामद्यपाने पयोधृतमुदकं वायुं प्रतित्र्यहं तप्तकृच्छ्रः ततोऽस्य संस्कारः” ॥ अर्थ । विना जाने मद्य पीनेमें दूध धी पानी और पवन प्रतित्र्यहं अर्थात् तीनि दिन बराबर एक एक पीवै फिर तप्तकृच्छ्र करै तिस पीछे इसका संस्कार कराना चाहिये भविष्य पुराणमेंभी ऐसाही व्याख्यान किया है जैसे ॥ “अकामतः कृतेपाने गौडीमाध्व्योनराधिप ॥ तप्तकृच्छ्रविधानं स्याद्गौतमेन यथोदितम्” इति ॥ अर्थ हेनराधिप कामनाके विना गौडीमाध्वीका पान करनेपर तप्तकृच्छ्रका विधान होता है जैसा गौतमने कहा है इति । और बुद्धिपूर्वक तौ पैष्टीसे भिन्न मद्य पीनेमें प्राणांतिक अनिर्देश्य दंड चाहिये यह शास्त्रकी मर्यादा है तैसेही ज्ञानसे गौडी माध्वीके पीनेपर मरणके निषेधसे और अन्यमद्योंकी अपेक्षासे और गुरुत्वसे मनुकाही कही “कणान्वाभक्षयेददं” अर्थात् अथवा वर्षभर कणोंका भक्षण करै यह प्रायश्चित्त कहा है इसीसे गौडी तथा माध्वीके, ज्ञानसे पीनेमें भविष्य पुराणका वचन है अथवा इसी विषयमें मनुसंबंधी करै जैसे “कणान्वाभक्षयेददं पिण्याकं वासकृन्निशि ॥ सुरापानापनुत्यर्थं तालवासाजटी-ध्वजी” इति ॥ अर्थ एकवर्षतक कणोंका भक्षण करै अथवा रातिमें एकवार तिलकी खली



( ४१४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

खाय सुरापानके पाप दूर करनेके लिये तालके वस्त्र पहिरै जटा रखाये रहै और मद्यका ध्वजा लिये रहै इति ॥ ४७ ॥ पैष्टी सुराके पात्रमें अथवा उससे अन्यसुराके पात्रमें रक्खे हुए सुराके रस तथा गंधसे रहित जलको पीकै शंखाहूली नाम औषधिको डाल औटायके पांचरातितक दूध पीवै ॥ ४८ ॥

स्पृष्ट्वा दत्त्वा च मंदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च ॥ शूद्रोच्छिष्टाश्च पी-  
त्वापः कुशवारि पिवेयमहम् ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमा-  
त्राय सोमपः ॥ प्राणानप्सु त्रिरायम्य धृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ५० ॥

टीका—सुराको छूके देकै और स्वस्तिवचन पूर्वक दान लेकै और शूद्रका उच्छिष्ट जल पीके ब्राह्मण दर्भ डालकै औटाए हुए जलको तीन दिन पीवै ॥ ४९ ॥ सोमयाग करनेवाला ब्राह्मण सुरा पीनेवालेके मुखके गंधको सूंघि और जलके मध्य तीन प्राणायाम करि घी खायकै शुद्ध होताहै ॥ ५० ॥

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥ पुनः संस्कारमर्ह-  
न्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ५१ ॥ वपनं मेखलादण्डौ भैक्षचर्या  
व्रतानि च ॥ निर्वर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ५२ ॥

टीका—विना जाने मनुष्यके मूत्र तथा पुरीष खायकै और सुरा करि स्पर्श किये हुए भक्त आदिके रसको खायकै द्विजाति तीनो वर्ण फिरि यज्ञोपवीत करने-योग्य होते हैं ॥ ५१ ॥ शिरका मुडना मेखलाका धारण दंडधारण और भैक्षचर्या-व्रत मधु मांस स्त्रीवर्जनकरि युक्त ये सब प्रायश्चित्तके लिये दूसरीवार यज्ञो-पवीत करनेमें द्विजातियोंके नही होते हैं ॥ ५२ ॥

अभोज्यानां तु भुक्त्वात्र स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च ॥ जग्ध्वा मांसम-  
भक्ष्यं च सप्तैरात्रं यवान्पि बेत् ॥ ५३ ॥ शुक्तानि च कपायांश्च पीत्वा  
मेध्यान्यपि द्विजः ॥ तार्वद्रव्यं प्रयतो यावत्तत्र व्रजत्यधः ॥ ५४ ॥

टीका—“अश्रोत्रियकृतेयज्ञे” इत्यादि करि कहे हुए अभोज्य जिनका अन्नहै ऐसोंका अन्न खायकर जलसे मिले हुए सत्तुओंके रूपसे अथवा गूजोदलिया है तिसके रूपसे यवोंको पीनेयोग्य करिकै सातरात्रि पीवै इसी विषयमें “मत्या भुक्त्वाचरेत्कृच्छ्रं” अर्थात् जानिकै खायके कृच्छ्र करै यह चौथे अध्यायमें कहाहै उसके साथ विकल्पितहै विकल्प तौ कर्त्ताकौ शक्तिकी अपेक्षासे होताहै तैसेही द्विजातिकी स्त्रियोंका उच्छिष्ट अथवा शूद्रका उच्छिष्ट खायकै इसी व्रतको करै तैसेही “क्रव्या-



‘दशूकरोष्ट्राणाम्’ इत्यादिसे जो विशेष प्रायश्चित्त कहा है सौ निषिद्ध मांसको खायकै इसी प्रायश्चित्तको करै ॥ ५३ ॥ जे स्वभावसे मधुर आदि रसहैं और कालके योगसे जलमें वास आदिसे खट्टे होजाते हैं वे शुक्तहैं और कषाय कहिये बहेडा आदिको और नही निषेध किये हुएभी कथितोंको पीकर जबतक न पचि-जाय तबतक पुरुष अशुद्ध होता है ॥ ५४ ॥

विडुराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥ प्राश्य भूत्रपुरीषाणि  
द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ ५५ ॥ शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमा  
नि कवकांनि च ॥ अज्ञातं चैव सूनास्थमेतदेवं व्रतं चरेत् ॥ ५६ ॥

टीका-गांवका सुअर, गधा, ऊंट स्यार, वानर, कौवा, इनके मूत्र अथवा विष्टाको द्विजाति खायकै चांद्रायण व्रत करै ॥ ५५ ॥ पवन आदि करि सुखाये गये मांसोंको खायकै और भूमि आदिमें अथवा वृक्षमें उत्पन्न हुए छत्राकोंको जो खाते हैं उनको ब्रह्मघाती जानै इससे यमने वृक्षमें उत्पन्नकाभी निषेध किया है । हरिणका मांस है अथवा भैंसेका मांस है इस प्रकार भक्ष्य अभक्ष्यके विना जाने हिंसाके स्थानसे लाये हुए मांसको खायकै चांद्रायणही करै ॥ ५६ ॥

क्रव्यादसूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानां च भक्षणे ॥ नरकाकखराणां च त-  
प्तकृच्छ्रं विशोधनम् ॥ ५७ ॥ मांसिकान्नं तु योऽश्रीयादसमाव-  
र्तको द्विजः ॥ स त्रीर्ण्यहान्युपवसेदेकाहं चोदके वसेत् ॥ ५८ ॥

टीका-कच्चे मांसके खानेवालोंका और गांवके शूकर, ऊंट, और गांवके मुरगेका तथा मनुष्य, कौवा, गधा इनमेंसे जानकै किसीका मांस खानेसे आगे कहा हुआ तप्त कृच्छ्र प्रायश्चित्त कहा है और ग्राम्य शूकर तथा कुक्कुटके जानकै खानेमें पांचमें अध्यायमें पतित होना कहा है सौ तो अभ्यासमें व्याख्यान किया गया है वह तौ अभ्यासमें तप्तकृच्छ्र कहा है यह अविरोध हुआ ॥ ५७ ॥ जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण मांसिकश्राद्धके अन्नको खाता है यह तौ सपिंडी करनेसे पहले एकोद्दिष्ट श्राद्धके अन्नका उपलक्षण है वह तीनिराति उपवासकरै तीनिरातिके मध्यमें एकदिन जलमें वसै ॥ ५८ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽश्रीयान्मर्धु मांसं कथंचन ॥ स कृत्वा प्राकृतं कृ-  
च्छ्रं व्रतं शेषं समापयेत् ॥ ५९ ॥ विडालकाकाखूच्छिष्टं जग्ध्वा  
श्वनकुलस्य च ॥ केशकीटावपन्नं च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् ॥ ६० ॥



( ४१६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

टीका—जो ब्रह्मचारी शहत अथवा मांसको अनिच्छासे अथवा आपत्तिमें स्वार्य वह प्राजापत्यको करिकै आरंभ किये हुए ब्रह्मचर्य्य व्रतके शेषको समाप्त करै ॥ ५९ ॥ बिलाव, कौवा, मूसा, कुत्ता, और नौला, इनके उच्छिष्टको अथवा केश कीटरूप संसर्गसे दूषितको एकवार मिट्टी डालनेसे शुद्ध जानि स्नायकै ब्रह्मसुवर्च-लासंज्ञक कथित जलको पीवै ॥ १६० ॥

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता ॥ अज्ञानभुक्तं तू-  
त्तार्यं शोध्यं वाऽप्याशु शोधनैः ॥ ६१ ॥ एषोऽनाद्यादनस्योक्तो व्र-  
तानां विविधो विधिः ॥ स्तेयदोषापहर्तृणां व्रतानां श्रूयतां विधिः ६२

टीका—अपनी शुद्धि चाहनेवाले पुरुषको निषिद्ध अन्न न खाना चाहिये और प्रमादसे खाया हुआ वमन कर देना चाहिये उसके असंभवमें प्रायश्चित्तोंसे शीघ्र शोधन करना चाहिये वमनके पक्षमें तौ लघु प्रायश्चित्त होताही है और ज्ञानसे पहले कहा हुआ प्रायश्चित्त है ॥ ६१ ॥ अभक्ष्यके भक्षणमें जे प्रायश्चित्त है तिनका यह नाना प्रकारका विधान कहा अब चोरीके पापोंके दूर करनेवालोंका विधान सुनिये ॥ ६२ ॥

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्विजोत्तमः ॥ स्वजातीयगृहादेर्ब-  
कृच्छ्रान्देन विशुद्ध्यति ॥ ६३ ॥ मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृ-  
हस्य च ॥ कूपवापीजलानां च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

टीका—ब्राह्मण ब्राह्मणके घरसे धान्य भोजन आदिकी चोरीको इच्छासे करिकै अपनेके भ्रमसे नहीं लेकर एक वर्षतक प्राजापत्य व्रतके करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ६३ ॥ पुरुष स्त्री खेत घर इनमेसे किसीके हरनेमें और कुआके जलके तथा बावडीके सब जलके हरि लेनेमें चांद्रायण व्रत मनु आदिकोंने प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ६४ ॥

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मतः ॥ चरेत्सान्तपनं  
कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्ध्ये ॥ ६५ ॥ भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्या  
सनस्य च ॥ पुष्पमूलफलानां च पञ्चगव्यं विशोधनम् ॥ ६६ ॥

टीका—जिनका मूल्य थोड़ाहै और जिनका प्रयोजनभी कम पड़ताहै और जिनका प्रायश्चित्त विशेषभी नहीं कहाहै ऐसी रांगा सीसा आदि वस्तुओंके पराये घरसे चुराकै वह चुराया हुआ द्रव्य उसके स्वामीको दे करि सांतपन कृच्छ्र जो आगे



कहा जायगा उसको अपनी शुद्धिके लिये करै ॥ ६५ ॥ लड्डू आदि भक्ष्यके और खीर आदि भोज्यके और शकट आदि यानके और शय्या तथा आसनके और पुष्प मूल फल इनमेंसे प्रत्येकके चुरानेमें पंचगव्यका पीना शोधन है ॥ ६६ ॥

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च ॥ चेलचर्मामिषाणां च  
त्रिरात्रं स्यादभोजनम् ॥ ६७ ॥ मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रज  
तस्य च ॥ अर्यः कांस्योपलानां च द्वादंशाहं कर्णाव्रता ॥ ६८ ॥

टीका—तृणकाष्ठं तथा वृक्षोंके और चामल आदि सूखे अन्नके चुरानेमें और भारी वस्त्र चर्म तथा मांस इनमेंसे एककेभी चुरानेमें तीन रात्रि उपवास करै ॥ ६७ ॥ मणि, मोती, मूंगा, तामा, रूपा, लोह, कांसा और उपल इनमेंसे एककेभी चुरानेमें बारह दिन तक चामलोंके कनोंका खाना करै ॥ ६८ ॥

कांपासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च ॥ पक्षिगन्धौषधीनां  
च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः ॥ ६९ ॥ एतैर्व्रतैरपोहेतुं पापं स्तेर्य-  
कृतं द्विजः ॥ अगम्यागमनी यंतु व्रतैरेभिर्पानुदेत् ॥ १७० ॥

टीका—कपास रेशम तथा ऊनके वस्त्रोंके और दो खुरके तथा एक खुरके गौ घोडा आदिके और तोता आदि पक्षियोंके और चंदन आदि गंधोंके और रस्सीके इनमें प्रत्येकके चुरानेमें तीन दिन दूधका आहार करै ॥ ६९ ॥ इन कहे हुए प्रायश्चित्तोंसे द्विजाति चोरीसे उत्पन्न पापको दूर करै और नही गमन करने योग्यमें गमन करनेसे उत्पन्नको तौ इन आगे कहे हुए व्रतोंसे दूर करै ॥ १७० ॥

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद्रितः सिक्त्वा स्वयोनिषु ॥ सख्युः पुत्रस्य च  
स्त्रीषु कुमारिष्वन्त्यजासु च ॥ ७१ ॥ पैतृष्वसेयी भगिनी स्वस्त्रीयां  
मातु रेव च ॥ मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चाद्रायणं चरेत् ॥ ७२ ॥

टीका—सगी बहिनीमें तैसेही मित्रकी भार्याओंमें और गुरुकी पत्नियोंमें कुमारियोंमें और चांडालियोंमें इन सबोंमेंसे प्रत्येकमें वीर्यको सींचिकै गुरुभार्याके गमनका प्रायश्चित्त करै ॥ ७१ ॥ पिताके बहिनिकी तथा माताकी बहिनिकी पुत्रीबहिनिकी और माताके सगे भाईकी पुत्रीमें जिनका गमन सगी बहिनिके समान निषिद्ध है उनमें गमन करिकै चांद्रायण व्रत करै एकवार अज्ञानसे करनेमें यह प्रायश्चित्त है ॥ ७२ ॥



( ४१८ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

एतास्तिस्त्रस्तु भार्यायै नोपर्यच्छेत्तुं बुद्धिमान् ॥ ज्ञातित्वेनानुपे-  
यास्ताः पतति ह्युपर्यन्नर्धः ॥ ७३ ॥ अमानुषीषु पुरुष उदकयाया-  
मयोनिषु ॥ रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥ ७४ ॥

टीका—तीनि ये पिताकी बहिनिकी पुत्री आदिकोंको भार्याके निमित्त पंडित न  
व्याहै ज्ञातिपनसें और बांधवपनसे ये गमन करनेयोग्य नहीं हैं जिसे इनको व्याहि  
गमन करता हुआ नरकको जाताहै ॥ ७३ ॥ अमानुषी कहिये गौको छोड़िकै घोड़ी  
आदिमें गौओंमें अक्कीणीं एकवर्ष प्राजापत्य करै यह शंखलिखित आदिकोंने भारी  
प्रायश्चित्त कहाहै तथा रजस्वलामें और योनिसे अन्यत्र स्त्रीमें और जलमें वीर्यसेचन  
करिकै पुरुष सांतपन कृच्छ्र करै ॥ ७४

मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ॥ गोयानेऽर्धं दिवा चैव  
सर्वासाः स्नानमाचरेत् ॥ ७५ ॥ चण्डालान्त्यस्थियो गत्वा भुक्त्वा च  
प्रतिगृह्य च ॥ पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यं तु गच्छति ॥ ७६ ॥

टीका—जिस किसी स्थानमें पुरुषमें अथवा स्त्रीमें मैथुनका सेवन करि अथवा  
बैलोंकी सवारी छकडे आदिमें जलमें और दिनमें मैथुनका सेवन करि सचैल  
स्नान करै ॥ ७५ ॥ चांडालकी और अंत्यजोंकी और म्लेच्छ शबर आदिकोंकी  
स्त्रियोंमें ब्राह्मण अज्ञानसे गमन करिकै और उनका अन्न खायकै और उनसे  
दान ले करि पतित होताहै वह पतितका प्रायश्चित्त करै यह तौ गुरुत्वसे और  
अभ्याससे भोजन और प्रतिग्रहविषयक है और ज्ञानसे तौ उनकी स्त्रीमें गमन  
करिकै समानताको प्राप्त होताहै यह तौ प्रायश्चित्तके गौरवके लिये है ॥ ७६ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्ता निरुन्ध्यादेर्कवेश्मनि ॥ यत्पुंसः परंदारेषु तै-  
श्चैनां चारयेद्व्रतम् ॥ ७७ ॥ सां चेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपर्य-  
न्त्रिता ॥ कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

टीका—विशेष करि प्रदुष्ट अर्थात् इच्छासे व्यभिचार करनेवाली स्त्रीको भर्ता रोकै  
अर्थात् पत्नीके कामोंसे निवृत्त करिकै बेरियोंमें बंधीके समान एक घरमें रक्खै जो  
तौ पुरुषके सजातीय पराईदाराके गमनमें प्रायश्चित्तहै वही इस्से करावै तिस पीछे  
तौ “स्त्रीणामर्द्धप्रदातव्यं” अर्थात् स्त्रियोंको आधा देना चाहिये यह वसिष्ठ आदिकोंने  
कहाहै सो अनिच्छासे व्यभिचारमें करना चाहिये ॥ ७७ ॥ सजातीयके गमनसे एक



वार दूषित और कियाहै प्रायश्चित्त जिसने ऐसी वह स्त्री जो फिर सजातीय करि प्रार्थित हुई उससे गमन करै तौ इसका प्रायश्चित्त प्राजापत्य और कृच्छ्र चांद्रायण शोधनेवाला मनु आदिकोंने कहाहै ॥ ७८ ॥

यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्विजः ॥ तद्भैक्षभुग्जपन्नित्यं त्रिं  
भिर्वैर्व्यपोहति ॥ ७९ ॥ एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि नि  
ष्कृतिः ॥ पतितैः संप्रयुक्तानामिमांः शृणुत निष्कृतीः ॥ १८० ॥

टीका—चांडालीमें गमनसे ब्राह्मण जिस पापका एक रात्रिमें संचय करताहै उसको भिक्षाका खानेवाला और नित्य सावित्री आदिका जप करता हुआ तीन वर्षमें दूरि करताहै ॥ ७९ ॥ हिंसा अभक्ष्यभक्षण चोरी अगम्यागमन करनेवाले इन चारों पाप करनेवालोंकी यह विशुद्धि कही अब साक्षात्पाप करनेवालोंके साथ संसर्ग करनेवालोंके लिये इन आगे कही हुई शुद्धियोंको सुनिये ॥ १८० ॥

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥ याजनाध्यापनाद्यौना-  
न्नं तु यांनासनाशनात् ॥ ८१ ॥ यो येन पतितेनैषां संसर्गं  
याति मानवः ॥ स तस्यैव व्रतं कुर्यात्तत्संसर्गविशुद्धये ॥ ८२ ॥

टीका—पतितके साथ संसर्ग करता हुआ मनुष्य अर्थात् एक सवारीमें जाना एक आसनपर बैठना और एक पंक्तिमें भोजनरूप संसर्गोंको करता हुआ एक संवत्सरमें पतित होताहै और याजन अध्यापन तथा यौनसंबंधसे संवत्सरमें नहीं पतित होता है किंतु शीघ्रही पतित होताहै अध्यापन यहां उपनयन पूर्वक सावित्री मंत्रका सुना-  
नाहै ॥ ८१ ॥ इन पतितोंमें जो जिस पाप करनेवालेके साथ पहले कहे हुए संस-  
र्गको करताहै वह उस संसर्गकी शुद्धिके लिये उसीके व्रतरूप प्रायश्चित्तको करै मरणां-  
तिक न करै यह कहा गया ॥ ८२ ॥

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्वहिः ॥ निन्दितेऽहंनि साया  
हे ज्ञातृत्वगुरुसन्निधौ ॥ ८३ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्ये-  
त्प्रेतवत्पदा ॥ अहोरात्रमुष्णसीरन्नं शौचं बान्धवैः सह ॥ ८४ ॥

टीका—सपिण्ड और समानोदकोंको जीवतेही महापातकी प्रेतक्रिया आगे कही हुई रीतिसे ग्रामके बाहर जाकै ऋत्विक् और गुरुके निकट रिक्ता नवमीतिथिमें संध्या समय करनी चाहिये ॥ ८३ ॥ सपिण्ड समानोदकों करि प्रेरणाकी हुई दासी जलसे भरे हुए घटको प्रेतवत् ऐसे कहिकै दक्षिणको मुख करि लातसे मारै जैसे वह निरु-



( ४२० )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

दक होजाय अर्थात् तर्पणके योग्य न रहै तिसपीछे वे सपिंड समानोदकों समेत एक रातिदिनका आशौच करें ॥ ८४ ॥

निर्वर्तोरंश्च तस्मात्तु संभाषणसहासने॥दायाद्यस्य प्रदानं च यात्रा  
चैवं हि लौकिकी ॥ ८५ ॥ ज्येष्ठता च निर्वर्तते ज्येष्ठावाप्यं च  
यद्धनम् ॥ ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान्गुणतोऽधिकः ॥ ८६ ॥

टीका—उस पतितसे सपिंड आदिकोंका बोलना एक आसनपर बैठना और उसके लिये हिस्सा देना और सांवत्सरिक आदिमें निमंत्रण आदि लोकव्यवहार ये सब दूर होजाते हैं ॥ ८५ ॥ जेठेका जो प्रत्युत्थान आदि किया जाताहै सो इस पति-तका न करना चाहिये और जेठेके मिलने योग्यहै जो उसका वीस उद्धार आदिका धनहै सोभी उसको न देना चाहिये यद्यपि भाग देनेके निषेधहीसे उद्धारका निषेध सिद्धहै तिसपरभी छोटेको उसके पानेके लिये कहा जाताहै उसी जेठेके धनको उद्धार समेत गुणमें अधिक उसका छोटा भाई पाताहै ॥ ८६ ॥

प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमेषां नवम्॥ ते नैवं सार्धं प्रास्येयुः  
स्नात्वा पुण्ये जलाशये ॥ ८७ ॥ स त्वंस्मृतं तं घटं प्रास्य प्रविश्य  
भवनं स्वकम्॥सर्वाणि ज्ञातिकायाणि यथापूर्वं समाचरेत् ॥ ८८॥

टीका—पतितके प्रायश्चित्त करनेपर सपिंड और समानोदक उसी प्रायश्चित्त किये हुएके साथ पवित्र जलाशयमें स्नान करिकै जलसे भरे हुए नवीन घटको डाल देवें ॥ ८७ ॥ जिसने प्रायश्चित्त कियाहै वह उस पहले कहे हुए घटको जलमें डालकै तिसपीछे अपने घरमें आकै पहलेके समान सब ज्ञातिके कर्मोंको करै ॥ ८८ ॥

एतदेवं विधिं कुर्याद्योषित्सु पतितास्वपि ॥ वस्त्रान्नपानं देयं तु  
वसेयुश्च गृहान्तिके ॥ ८९ ॥ एनस्विभिरनिर्णिक्तैर्नार्थ किञ्चित्स-  
हा चरेत् ॥ कृतनिर्णेजनांश्चैवं न जुगुप्सेत कर्हिचित् ॥ ९० ॥

टीका—पतितस्त्रियोंमेंभी ऐसेही “पतितस्योदककार्यं” इत्यादि विधिको भर्ता आदि सपिंड और समानोदक समूह करै और इनको भोजन वस्त्र देने चाहिये और घरके समीप इनको रहनेके लिये कुटी देनी चाहिये ॥ ८९ ॥ जिन्होंने प्रायश्चित्त नहीं किये है ऐसे पाप करनेवालोंके साथ दान प्रतिग्रह आदि अर्थ कुछभी न करै और जिन्होंने प्रायश्चित्त कियाहै उनकी पहले किये हुए पापसे कभी निंदा न करै पहलेके समान व्यवहार करै ॥ ९० ॥



बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्मतः ॥ शरणागतहंतृंश्च स्त्री  
हन्तृंश्च न संवसेत् ॥ ९१ ॥ येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथा  
विधि ॥ तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान्यथाविध्युपनीययेत् ॥ ९२ ॥

टीका—जिसने बालकको मारा और जिसने किये हुए उपकारको अपकार करनेसे  
नाश किया और प्राणोंकी रक्षाके लिये आये हुएको और स्त्रीको जिसने  
मारा होय इनको यथायोग्य प्रायश्चित्त करनेपरभी संसर्गों करिके समीप न बसावै  
॥ ९१ ॥ जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंका गौणकालमेंभी शास्त्रके अनु-  
सार यज्ञोपवीत न किया गया उनको तीनि प्राजापत्य करवाकै शास्त्रके अनु-  
सार यज्ञोपवीत करै ॥ ९२ ॥

प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः ॥ ब्रह्मणा च प-  
रित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् ॥ ९३ ॥ यद्गृहितेनार्जयन्ति कर्मणा  
ब्राह्मणा धनम् ॥ तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति जप्येन तपसै व च ॥ ९४ ॥

टीका—जे निषिद्ध शूद्रकी सेवा करनेवाले द्विजहै वे यज्ञोपवीत होनेपरभी वेदको  
न पढ़े हुए जो प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा करै तौ उनकोभी यह तीनि प्राजापत्य  
करनेका उपदेश करै ॥ ९३ ॥ निंदित कर्मसे अर्थात् निषिद्ध बुरे प्रतिग्रह आदिसे  
ब्राह्मण जिस धनको जोड़ते है उस धनके त्यागसे और आगे कहे हुए जप और त-  
पसे शुद्ध होतेहै क्योंकि धनकात्यागही प्रायश्चित्तका विधानहै ॥ ९४ ॥

जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ॥ मांसं गोष्ठे पर्यः  
पीत्वा मुच्यतेऽसंप्रतिग्रहात् ॥ ९५ ॥ उपवासकृशं तं तु गोव्रजा  
त्पुनरार्गतम् ॥ प्रणतं प्रतिपृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् ॥ ९६ ॥

टीका—सावित्रीका तीनि हजार जप करिकै गौओंके स्थानमें वास करि दु-  
ग्धका आहार करनेवाला बुरे दानके लेनेसे उत्पन्न पापसे छुटि जाताहै शूद्रके प्र-  
तिग्रह आदिमेंभी यही प्रायश्चित्तहै ॥ ९५ ॥ केवल दूधके आहारसे और अन्य  
भोजन न करनेसे दुर्बल जिसका देह गौओंके स्थानसे लौटे हुए नमस्कार करते  
नम्र उस मनुष्यसे पूछै कि हमारे साथ बराबरी चाहता है फिर बुरा दान लेगा ऐसे  
धर्मको ब्राह्मण पूछै ॥ ९६ ॥

सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसं गवाम् ॥ गोभिः प्रवर्तिते ती



(४२२)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

ये कुर्युस्तैस्य परिग्रहम् ॥९७॥ ब्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषाम्  
नैय कर्म च ॥ अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥९८॥

टीका—यह सत्यहै फिरि बुरे दानको न लेउगा ऐसे ब्राह्मणोंमें कहिकै गौओंको घास डारै उस घास खा हुए पवित्रीभूतस्थानमें ब्राह्मण उसको व्यवहारमें अंगीकार करै ॥ ९७ ॥ ब्रात्यस्तोम आदि याजन कराकै और पिता गुरु आदिसे भिन्नोका निषिद्ध और्ध्वदेहिक दाह श्राद्ध आदि करिकै और अभिचार तथा अहीनयागविशेष करिकै तीन कृच्छ्रोंसे शुद्ध होताहै ॥ ९८ ॥

शरणागतं परित्यज्य वेदं विष्ठाव्य च द्विजः ॥ संवत्सरं यवाहा  
रस्तत्पापमपसेधति ॥ ९९ ॥ श्वसृगालखरैर्दध्मो ग्राम्यैः क्रव्या-  
द्भिरेव च ॥ नराश्वोष्ट्वराहैश्च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २०० ॥

टीका—रक्षाके लिये शरणमें आये हुएको जो समर्थ होनेपर त्याग करताहै और द्विजाति नही पढानेयोग्यको वेद पढाकै उससे उत्पन्न हुए पापको एक वर्ष तक जवका आहार दूरि करताहै ॥ ९९ ॥ कुत्ता, स्यार, गधा, नर, अश्व, वाराह आदि ग्रामके और कच्चे मांसके खानेवाले बिलाव आदि करि काटा हुआ पुरुष प्राणा यामसे शुद्ध होताहै ॥ २०० ॥

षष्ठान्नकालता मांसं संहिताजप एव वा ॥ होमांश्च सर्कला नित्यम  
पाङ्क्त्यानां विशोधनम् ॥ १ ॥ उष्ट्रयानं समांरुह्य खरयानं तु काम  
तः ॥ स्नात्वा तु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २ ॥

टीका—विशेष करि जिनका प्रायश्चित्त नही कहाहै ऐसे पंक्तिसे बारह जो स्तेन, पतित, क्लीब आदिकोंका १ मासतक दो दिन न खाकै तीसरे दिन सार्यकालके समय भोजन करना और वेदकी संहिताका जप और “देवकृतस्यै-  
नसोऽवयजनमसि” इत्यादिक आठ मंत्रोंसे आठ होम प्रत्येक करै यह समुदित पापका शोधनहै ॥ १ ॥ ऊंट जिसमें जुते हैं ऐसा छकडा आदि यान (सवारी) में और गधेके यानमें इच्छासे चढिकै और ऊंट तथा गधेपर चढिकै चलनेमें बहुतसे प्राणायामोंके करने और नंगे होकै स्नान करि प्राणायामसे शुद्ध होताहै ॥ २ ॥

विनाद्भिर्प्सु वाप्यातैः शरीरं सन्निवेश्य च ॥ सचैलो बहिराप्सु-  
त्य गौमालभ्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥ वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां



संमतिक्रमे ॥ स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ ४ ॥

टीका—जलके समीप न होनेपर अथवा जलमें वेगसे पीडित हो मूत्र अथवा पुरीषको करकै गांवके बाहर नदी आदिमें सचैल स्नान करि गौको छूकै शुद्ध होताहै ॥ ३ ॥ वेदमें कहे हुए और जिनके न करनेका प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहाहै ऐसे अग्निहोत्र आदि नित्य कर्मोंके लोप होनेपर और चौथे अध्यायमें कहे हुए स्नातक व्रतोंके अतिक्रम होनेपर एक रातिदिनका उपवास प्रायश्चित्त कहाहै ॥ ४ ॥

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्तत्वा त्वङ्कारं च गरीयसः॥स्नात्वाऽनंश्रन्नंहःशो-  
षमभिर्वाद्य प्रसादयेत् ॥ ५ ॥ ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे वाबध्य  
वाससा ॥ विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ६ ॥

टीका—हूं चुप बैठिये ऐसे ब्राह्मणका आक्षेप करिकै और विद्या आदिमें अधि-  
कको तु ऐसे कहिकै उस कहनेके समयसे लगाकै जितना दिन बाकी होय उसमें  
भोजन न करै और पावोंमें पडके उसको कोपरहित करै ॥ ५ ॥ ब्राह्मणको तिन-  
केसे मारिकै अथवा गलेमें कपडेसे बांधिकै अथवा बातोंके कलहमें जीतिकै प्रणाम  
करिकै प्रसन्न करै ॥ ६ ॥

अवगूर्य त्वन्दशतं सहस्रमभिहत्य च ॥ जिघांसया ब्राह्मणस्य  
नरकं प्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ शोणितं यावतः पांसून्संगृह्णाति मही-  
तले ॥ तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् ॥ ८ ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे डंडेको उठाकै सौ वर्षतक नरकमें रहताहै  
और दंड आदिसे ताडन करिकै हजार वर्षतक नरकमें रहताहै ॥ ७ ॥ प्रहार  
किये हुए ब्राह्मणका रुधिर जितने धूलिके कणोंको भूमिमें भिगोयकै पिंड करता है  
उतनीही वर्षोंतक वह रुधिर निकालनेवाला नरकमें वसताहै ॥ ८ ॥

अवगूर्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निर्पातने॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत  
विप्रस्योर्त्पाद्य शोणितम् ॥ ९ ॥ अनुक्तनिष्कृतीनां तु पापानामप्य-  
नुत्तये ॥ शक्तिं चावेक्ष्य पापं च प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ २१० ॥

टीका—ब्राह्मणके मारनेकी इच्छासे दंड आदिके उठानेमें कृच्छ्र करै और दंड  
आदिके मार देनेमें आगे कहे हुए अतिकृच्छ्रको करै और रुधिरको उत्पन्न करिकै  
कृच्छ्र अतिकृच्छ्र करै ॥ ९ ॥ जिनका प्रायश्चित्त नहीं कहाहै ऐसे प्रतिलोमज



( ४२४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

आदिके वधसे किये हुए पापोंके दूर करनेके लिये करनेवाले शरीर और धन आदिकी सामर्थ्यको देखिके और पापको ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे अथवा एकवारका किया हुआ जानकर प्रायश्चित्तकी कल्पना करे ॥ २१० ॥

यैरेभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ॥ तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्या-  
मि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ११ ॥ त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्याद-  
याचितम् ॥ त्र्यहं परं च नौश्रीयोत्प्राजापत्यं चरन्द्भिजः ॥ १२ ॥

टीका—जिन कारणोंसे मनुष्य पापको दूर करता है उन पापके नाश करने-  
वाले और देवता ऋषि तथा पितरों करि किये हुये कारणोंको तुमसे कहोंगा  
॥ ११ ॥ प्राजापत्य व्रतको करता हुआ द्विजाति पहले तीन दिन प्रातःकाल  
भोजन करे प्रातःशब्द यहां भोजनोंकी उचिततासे प्राप्त दिनके कालका सूचकहै  
इसीसे वसिष्ठने कहाहै ॥ जैसे “ त्र्यहं दिवाभुंक्ते नक्तमस्ति च त्र्यहं त्र्यहं अयाचितव्रतं  
त्र्यहं न भुंक्ते इति कृच्छ्रः ॥ अर्थ ॥ तीन दिन दिनमें खाताहै और तीन दिन  
रातिमें और तीन दिन अयाचित खाताहै और तीन दिन नहीं खाताहै यह कृच्छ्रहै  
आपस्तम्बनेभी कहाहै ॥ “ त्र्यहं नक्ताशी दिवाशीच ततस्त्र्यहं त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं  
नाश्नाति किञ्चन इति ” ॥ अर्थ ॥ तीन दिन रातिमें न खाय और तीन दिनमें  
न खाय और तीन दिन अयाचित खाय और तीन दिन कुछ न खाय इस भांति  
कृच्छ्रकी बारह रात्रिकी विधि है “अपरंच दिनत्रयसायंसंध्यामतीतायां भुंजीत अन्य-  
दिनत्रयमयाचितं तावदन्नं भुंजीत शेषं च दिनत्रयं न किंचिदश्रीयत्” इसका वही अभिप्रायहै  
यहां ग्रासकी संख्या और परिमाणकी अपेक्षामें पराशरने कहाहै जैसे ॥ “ सायं द्वात्रिं-  
शतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिस्तथा ॥ अयाचिते चतुर्विंशं परंचानशनं स्मृतम् ॥ कुक्कुटांड-  
प्रमाणं च यावांश्च प्रविशेन्मुखं ॥ एतंग्रासं विजानीयात् शुद्धचर्यकायशोधनम् ॥ हविष्यं-  
चान्नमश्रीयद्यथारात्रौ तथा दिवा ॥ त्रींस्त्रीण्यहानि शास्त्रीयान् ग्रासान्संख्याकृतान्यथा ॥  
अयाचितं तथैवाद्यादुपवासस्त्र्यहं भवेत् ॥ अर्थ ॥ संध्याको बत्तीस ग्रास और सुबेरे  
छब्बीस और अयाचितमें चौबीस तिसके पीछे न खाना कहाहै कुक्कुटके अंडके  
बरानरि और जितना मुखमें समाय शुद्धिके लिये शरीरका शोधनेवाला यह ग्रास  
जानिये । हविष्य अन्न खाय जैसे रात्रिमें वैसेही दिनमें तीन तीन दिन शास्त्रमें  
कहे हुए ग्रासोंको संख्याके समान खावै तैसेही तीन दिन अयाचित खावै और  
तीन दिन उपवास करे ॥ १२ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुंशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्च



कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥ १३ ॥ एकैकं ग्रासमश्रीयायहाणि  
त्रीणि पूर्ववत् ॥ त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्भिजः ॥ १४ ॥

टीका—गोमूत्र गोवर गौका दूध तथा दही घी और कुशोंका जल इन सबोंको मिलाकै एक दिन भक्षण करै और कुछ न खाय और दूसरे दिन उपवास यह सांतपन कृच्छ्रहै जब तौ गोमूत्र आदि छः प्रत्येक छः दिन खायकै सातमें दिन तौ उपवास करै तौ महासांतपन होताहै सोई याज्ञवल्क्यने कहाहै जैसे । “कुशोदकं-चगोक्षीरं दधिमूत्रं शकृद्घृतम् । जग्ध्वापरे ह्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन् ॥ पृथक्सान्तपन-द्रव्यैः षडहस्सोपवासिकः ॥ सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनं स्मृतम् ॥” इति ॥ अर्थ ॥ कुशोंका जल गौका दूध तथा दही मूत्र गोवर और घी इनको खायकै कृच्छ्र सांतपनको करता हुआ पुरुष दूसरेदिन उपवास करै और जुदी जुदी सांतपनकी वस्तुओंको छ दिन खायकै सातमें दिन उपवास करै तौ सातदिनमें यह कृच्छ्र महासांतपन होताहै इति ॥ १३ ॥ अतिकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति प्रातःकाल सायंकाल अयाचित आदिके रूपसे एक एक ग्रास ऐसे तीन, तीन दिन पहलेके समान खाय और पीछले तीन दिन कुछ न खाय ॥ १४ ॥

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् ॥ प्रतित्र्यहं पिं वेदुष्णा  
न्सकृत्स्नायी समाहितः ॥ १५ ॥ यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहम  
भोजनम् ॥ पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापपनोदनः ॥ १६ ॥

टीका—तप्तकृच्छ्रको करता हुआ द्विजाति तीन दिन उष्णजल और तीन दिन गौका उष्ण दूध और तीन दिन उष्ण घी और तीन दिन उष्ण पवन और एकवार स्नान करिकै नियमवान् होकै पीवै यहां पराशरका कहा हुआ विशेष है ॥ जैसे ॥ “षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥ पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥” इति ॥ अर्थ ॥ जल तौ छ पल पीवै और दूध तीनपल पीवै और घी एक पल पीवै यह तप्त कृच्छ्रका विधानहै ॥ १५ ॥ स्वस्थचित्त और संयतेंद्रिय पुरुषका बारह दिनोंतक न भोजन करनाही पराकनाम कृच्छ्रहै एकवार अथवा आवृत्ति करनेसे भारी तथा हलके पापका दूरि करनेवालाहै ॥ १६ ॥

एकैकं द्वांसयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले चैव वर्धयेत् ॥ उपस्पृशंस्त्रिषव-  
णमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ १७ ॥ एतमेव विधिं कृत्स्नमाचरे  
द्यवमध्यमे ॥ शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणं वर्तम् ॥ १८ ॥



( ४२६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

टीका—सायंकाल प्रातःकाल और मध्याह्नमें स्नान करता हुआ पूर्णमासीके दिन पंद्रह ग्रासोंको खायकै तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके क्रमसे एक एक ग्रास घटावै ऐसे चतुर्दशीको एकग्रास खाय तिस पीछे अमावास्याको व्रत करिकै शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लगाकै एक एक ग्रास बढ़ाता जाय ऐसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं यह पिपीलिकामध्यनाम चांद्रायण कहा गयाहै ॥ १७ ॥ इसीकी पिंडके घटाने और बढ़ाने तथा तीनिवार स्नानरूप विधानको यवमध्यनाम चांद्रायणमें शुक्लपक्षकी आदिसे करिकै जितेंद्रिय चांद्रायणको करता हुआ आचरण करै तिस पीछे तौ शुक्ल प्रतिपदाका आरंभ करिकै एक एक पिंडको बढ़ावै जैसे पूर्णमासीको पंद्रह ग्रास होते हैं तिस पीछे कृष्णपक्षकी प्रतिपदाका आरंभ करिकै एक एक पिंड घटावै जैसे अमावास्याको उपवास होय ॥ १८ ॥

अष्टावष्टौ समंश्रीयात्पिण्डान्मध्यंदिने स्थिते ॥ नियंतात्मा हवि  
ष्याशी यतिचान्द्रायणं चरन् ॥१९॥ चतुरः प्रातरश्रीयात्पिण्डा  
न्विप्रः समाहितः॥चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुंचान्द्रायणं स्मृतं २०

टीका—यतिचांद्रायणको करता हुआ शुक्लपक्षसे अथवा कृष्णपक्षसे लगाकै एक महीनेतक जितेंद्रिय हो मध्याह्नके समय प्रतिदिन आठ ग्रास खाय मध्य-दिनका कहना गृहस्थ और ब्रह्मचारीको सायंकालमें भोजनकी निवृत्तिके लिये है ॥ १९ ॥ प्रातःकाल चारिग्रास खाय और सूर्यके अस्त होनेपर चारि ग्रासोंका भोजन करै यह शिशुचांद्रायण मुनियोंने कहाहै ॥ २२० ॥

यथाकथञ्चित्पिण्डानां तिस्रोऽशीतीः समाहितः ॥ मासेर्नाश्रन्ह  
विष्यस्य चन्द्रस्यैति संलोकताम् ॥२१॥ एतद्गुद्रास्तथादित्या व  
सर्वश्चाचरन्व्रतम् ॥ सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः ॥२२॥

टीका—नीवार आदि हविष्यके ग्रासोंको दोसोचालीस कभी दश कभी पांच और कभी सोलह और कभी उपवास इत्यादि नियमसे जैसे कैसेहू पिंडोंको एक महीनेमें जितेंद्रियहो खाता हुआ चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै ऐसेही पापके क्षयके लिये और अभ्युदयके लिये यह कहाहै इसीसे याज्ञवल्क्यने कहाहै । जैसे ॥ “धर्मार्थ यश्च-रेदेतच्चन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ कृच्छ्रकृतशर्मकामस्तुमहतींश्रियमाप्नुयात्” ॥ अर्थ ॥ जो इस व्रतको धर्मके लिये करताहै वह चंद्रकी सलोकताको प्राप्त होताहै और जो कृच्छ्रका करनेवाला सुख चाहताहै वह बड़ी लक्ष्मीको प्राप्त होताहै इति ॥ इससे प्राजापत्य आदि कृच्छ्रभी अभ्युदयरूप फलका देनेवाला है यह याज्ञवल्क्यने कहाहै



॥ २१ ॥ इस चांद्रायणनाम व्रतको ऋषियोंसमेत रुद्र आदित्य वसु और मरुतोंने सब पापोंके नाशके लिये शुरु लघु पापोंकी अपेक्षासे एकवार आवृत्तिके प्रकारसे किया ॥ २२ ॥

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् ॥ अहिंसा सत्यमक्रोध  
धर्माज्वं च समाचरेत् ॥ २३ ॥ त्रिरहस्त्रिनिशायां च सर्वासा जलमा  
विशेत् ॥ स्त्रीशूद्रपतिताश्चैवं नाभिर्भाषेत कर्हिचित् ॥ २४ ॥

टीका—'भूर्भुवःस्व' इन महाव्याहृतियोंसे आज्य जो घी है तिस्से प्रतिदिन होमकरै और अहिंसा सत्य अक्रोध और कुटिलता न करना इन सबोंको करै यद्यपि ये पुरुषार्थतासे विहितहैं तिसपरभी व्रतके अंगपनसे कहे गये हैं ॥ २३ ॥ दिनमें अथवा रातिमें आदि मध्य तथा अंतमें स्नानके लिये वस्त्रोंसमेत नदी आदिके जलमें प्रवेश करै यह तौ पिपीलिकामध्य और यवमध्य चांद्रायणसे अन्य चांद्रायणके मध्ये है क्योंकि उनमें आचमन और तीनिवार स्नान कहाहै और स्त्री शूद्र तथा पतिताओं साथ जबतक व्रत करै तबतक संभाषण न करै ॥ २४ ॥

स्थानासनाभ्यां विहरेदशक्तोऽर्धः शयीत वा ॥ ब्रह्मचारी व्रतां च  
सूर्यादुरुदेवंद्विजार्चकः ॥ २५ ॥ सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि  
च शक्तितः ॥ सर्वेष्वेवं व्रतेष्वेवं प्रायश्चित्तार्थमाहृतः ॥ २६ ॥

टीका—दिनमें और रातिमें उठा हुआ तथा बैठा हुआ रहै सोवै नही असमर्थ होनेपर तौ भूमिमें सोवै खट्वा आदिमें न सोवै ब्रह्मचारी स्त्रीके संयोगसे रहित व्रती मौंजी दंड आदि करि युक्त गुरुदेवता और ब्राह्मणोंका पूजक होय ॥ २५ ॥ सावित्रीको सदा जपै और पवित्र अघमर्षण आदिकोंको शक्तिके अनुसार जपै यह तौ जैसे चांद्रायण आदिमें है वैसेही प्राजापत्य आदि कृच्छ्रोंमेंभी यत्नवाला प्रायश्चित्तके लिये करै ॥ २६ ॥

एतैर्द्विजातयः शोध्या व्रतैराविष्कृतैः नसः ॥ अनाविष्कृतपापांस्तु  
मन्त्रैर्होमैश्च शोधयेत् ॥ २७ ॥ सूर्यापनेनानुतापेन तपसाऽध्य-  
यनेन च ॥ पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि ॥ २८ ॥

टीका—लोकमें विदित पापोंसे द्विजाति इन कहे हुए प्रायश्चित्तों करि आगे कही हुई परिषद् कहिये सभाकरि शोधनेयोग्यहैं और अप्रकाशित पापोंको तौ मंत्रोत्तम होमोंसे सभाही शोधन करै यद्यपि परिषदमें निवेदन करनेसे रहस्यपनका नाश



होताहै तिसपरभी लोकमें नहीं विदित ऐसे इस पापके किसीके करनेपर क्या प्रायश्चित्त होताहै इस भांति सामान्यतासे पूछनेमें कुछ विरोध नहीं है ॥ २७ ॥ पाप करनेवाला मनुष्य लोकमें अपना पाप कहनेसे और मुझ पाप करनेवालेको धिक्कारहै इस भांति पश्चात्ताप करनेसे शुद्ध होताहै और उग्ररूप तपसे तथा सावित्रीके जप आदि करि पापसे शुद्ध होताहै और तपमें असमर्थ होय तौ आपत्तिमें दान करनेसेभी पापसे मुक्त होताहै ॥ २८ ॥

यथा यथा नरोऽधर्मे स्वयं कृत्वानुभाषते ॥ तथातथा त्वंचेर्वा हि स्तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ २९ ॥ यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गृह्णति ॥ तथा तथा शरीरं तं तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ३० ॥

टीका—मनुष्य पापको करिकै जैसे जैसे पापको लोकमें कहताहै वैसे वैसे उस पापसे जीर्ण त्वचा करि सापके समान मुक्त होताहै ॥ २९ ॥ उस पाप करनेवालेका मन जैसे जैसे बुरे कर्मकी निंदा करताहै वैसे वैसे उसका शरीर जीवात्मा उस अधर्मेसे मुक्त होताहै ॥ ३० ॥

कृत्वा पापं हि संतप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ नैवं कुर्यात्पुनरिति निवृत्त्या पूयते तु सं ॥ ३१ ॥ एवं संचिन्त्य मनसा प्रेत्य कर्मफलदयम् ॥ मनोवाङ्मूर्तिभिर्नित्यं शुभं कर्म समाचरेत् ॥ ३२ ॥

टीका—पापको करिकै पीछे संतापयुक्त होनेसे उस पापसे छूटि जाताहै जब पश्चात्ताप युक्तहो ऐसे कहताहै कि मैं फिर कभी ऐसा न करौंगा तब तौ बहुतही उस पापसे पवित्र होताहै ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शुभ अशुभ कर्मोंका परलोकमें इष्ट अनिष्ट फलको मनसे विचारिकै मन वाणी और शरीरसे सब शुभही करै क्योंकि उसका फल दृष्टहै और नरक आदि दुःखका कारण होनेसे अशुभ कर्म न करै ॥ ३२ ॥

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्कृत्वा कर्म विगर्हितम् ॥ तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन्दितीयं न समाचरेत् ॥ ३३ ॥ यस्मिन्कर्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलार्थवम् ॥ तस्मिन्स्तावत्तपः कुर्याद्यावत्तुष्टिकरं भवेत् ॥ ३४ ॥

टीका—भूलसे अथवा इच्छासे निषिद्ध कर्म करिकै उस पापसे मुक्तिको चाहता हुआ फिरि उसको न करै यह तौ फिरि करनेमें प्रायश्चित्तकी गुरुताके लिये है ॥ ३३ ॥ जिस प्रायश्चित्त नाम कर्मके करनेपर इस पाप करनेवालेको संतोष



न होय तौ उसमें उसी प्रायश्चित्तको तबतक लौटावै जबतक मनका संतोष और प्रसन्नता होय ॥ ३४ ॥

तपोमूलमिदं सर्वं देवं मानुषकं सुखम् ॥ तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोऽन्तं वेददर्शिभिः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणस्य तपो ज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम् ॥ वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम् ॥ ३६ ॥

टीका—इस सब देवताओं और मनुष्योंके सुखका कारण तपही है और तप हीसे उसकी स्थिति है और तपही मध्यहै यह पंडितोंने कहाहै और तपही अंत-है यह वेदका अर्थ जाननेवाले कहते हैं ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणका ब्रह्मचर्यरूप जो वेदांतका ज्ञानहै वही तपहै और क्षत्रियका रक्षा करना तपहै और वैश्यका खेती बाणिज्य और पशुओं पालना आदि तपहै और शूद्रका ब्राह्मणकी सेवा तपहै यह वर्णविशेषसे उत्कर्ष सूचनके लिये है ॥ ३६ ॥

ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ॥ तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३७ ॥ औषधान्यगदो विद्यां देवी च विविधा स्थितिः ॥ तपसैव प्रसिद्ध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम् ॥ ३८ ॥

टीका—वाणी मन और कायके नियमों करि युक्त फल मूल तथा वायुके खानेवाले ऋषि तपहीसे जंगम स्थावर सहित पृथिवी आकाश स्वर्गरूप तीनों लोकोंको एकस्थानमें बैठे हुए पापरहित अंतःकरणसे प्रकर्ष करि देखते हैं ॥ ३७ ॥ रोगकी शांतिके कारणरूप औषध और नीरोग होना तथा ब्रह्मकर्मरूप वेदके अर्थका जानना और वेदसंबन्धिनी विद्या और नाना रूप स्वर्ग आदिमें स्थिति ये सब तपहीसे प्राप्त होते हैं जिसे तपही इनकी प्राप्ति का कारणहै ॥ ३८ ॥

यदुस्तरं यदुरापं यदुर्गं यच्च दुष्करम् ॥ सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३९ ॥ महापातकिनश्चैवं शेषाश्चाकार्यकारिणः ॥ तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः ॥ २४० ॥

टीका—जो दुःखसे पार होनेयोग्यहै जैसे ग्रहोंके दोषसे सूचित आपत्ति आदि, और जो दुःखसे क्षत्रिय आदिको करि प्राप्त होनेयोग्यहै जैसे विश्वामित्रका उसी शरीरसे ब्राह्मणत्वका पाना और जो दुःखसे जानने योग्यहै जैसे सुमेरुका शिखर और जो दुःखसे करनेयोग्यहै जैसे गौओंका बहुतसा दान आदि सो सब तपसे सा-



धन करि सकते है जिस्से अतिकठिन कार्यके करनेमें तपकी शक्तिका कोई उल्लंघन नही करि सकताहै ॥ ३९ ॥ ब्रह्महत्या आदि पातकोंके करनेवाले तथा उपपातक आदि नही करनेयोग्यके करनेवाले उत्तरूपहीके करनेसे उस पापसे छूटि जातेहै कहे हुएका फिरि कहना प्रायश्चित्तकी प्रशंसाके लियेहै ॥ २४० ॥

कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वैयांसि च ॥ स्थावराणि च भूतानि  
दिवं यान्ति तपोर्बलात् ॥ ४१ ॥ यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोर्वा  
ङ्मूर्तिभिर्जनाः ॥ तत्सर्वं निर्देहन्त्याशु तपसैव तपोधनाः ॥ ४२ ॥

टीका-कीड़े, साँप, पतंगे, पशु, पक्षी, और वृक्ष, गुल्म, आदि स्थावर आदि सब भूत तपके माहात्म्यसे स्वर्गको जाते है इतिहास आदिकोंमें कपोतोंके उपाख्यान आदिमें पक्षी अग्निमें प्रवेश आदि तपको करिकै और कीटोंका उनकी जातिका स्वाभाविक दुःखका सहना तपहै उससे क्षीणपापहो विकार रहित जन्मांतरमें किये हुए सुकृतसे स्वर्गको जाते है ॥ ४१ ॥ मनुष्य मन वाणी और देहसे जो कुछ पाप करते है उस सब पापको तपोधन तपहीसे जलादेते है ॥ ४२ ॥

तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः ॥ इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति  
कामान्संवर्धयन्ति च ॥ ४३ ॥ प्रजापतिरिदं शास्त्रं तप  
सैवासृजत्प्रभुः ॥ तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे ॥ ४४ ॥

टीका-प्रायश्चित्तरूप तपसे क्षीणपाप ब्राह्मणके यज्ञमें देवता हविको ग्रहण करते है और वाञ्छित अर्थको देते है ॥ ४३ ॥ संपूर्ण लोककी उत्पत्तिस्थिति और प्रलयमें समर्थ हिरण्यगर्भ पहले तपको करिकै ही इस ग्रंथको बनाते भये तैसे वसिष्ठ आदि ऋषि तपहीसे मंत्र ब्राह्मणरूप वेदोंको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥

इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यं प्रचक्षते ॥ सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्त  
पसः पुण्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्यता महार्यज्ञ-  
क्रिया क्षमा ॥ नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि ॥ ४६ ॥

टीका-इस सब संसारके जीवोंका जो दुर्लभ जन्महै सो तपहीसे होताहै इसको देखते हुए देवता 'तपोमूलमिदं सर्वं' इत्यादि तपके माहात्म्यको कहते है ॥ ४५ ॥ शक्तिके अनुसार प्रतिदिन वेदका पठना और पंचयज्ञोंका करना और अपराधका सहनशील होना ये महापातकसे उत्पन्न पापोंको शीघ्रही नाश कर देते है और पापोंकी तौ क्या चलाई है ॥ ४६ ॥



यथैधस्तेर्जसा वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात् ॥ तथा ज्ञानाग्निना  
पापं सर्वं दहति वेदविदं ॥ ४७ ॥ इत्येतदेनसामुक्तं प्रायश्चित्तं  
यथाविधि ॥ अत ऊर्ध्वं रहस्यानां प्रायश्चित्तं निबोधत ॥ ४८ ॥

टीका—जैसे अग्निसमीपके काष्ठोंको तेजसे निःशेष करि देती है तैसेही वेदके अर्थ  
का जाननेवाला ब्राह्मण ज्ञानरूपी अग्निसे सब पापोंको नाश करि देताहै ॥ ४७ ॥  
यंह ब्रह्महत्या आदि प्रकाश पापोंका प्रायश्चित्त विधिपूर्वक कहा इसके उपरांत अग्र-  
काश कहिये गुप्त पापोंका प्रायश्चित्त सुनिये ॥ ४८ ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भूणहणं मां  
सात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥ ४९ ॥ कौत्सं जैस्वाप इत्येतद्वासिष्ठं च  
प्रतीत्यृचम् ॥ माहित्रं शुद्धैवत्यश्च सुरापोऽपि विशुद्ध्यति ॥ ५० ॥

टीका—व्याहृतियों तथा प्रणव करि युक्त और सावित्रीशिर करि युक्त पूरक कुंभक  
रेचक आदिकी विधिसे प्रतिदिन किये हुए सोलह प्राणायाम एक महीनेमें भ्रुणहत्या-  
रेकोभी पापरहित करदेते है ॥ ४९ ॥ कौत्सऋषि करि देखे हुए “अपनःशोशुचदधं”  
इस सूक्तको और वसिष्ठऋषिकरि देखे हुए “प्रतिस्तोमेभिरुषसंवसिष्ठा” इस ऋचाको  
और माहित्र कहिये “महित्रीणामवोस्तु” इस सूक्तको और शुद्धवत्य “एतोन्विन्द्रंस्तवाम”  
इन तीनि ऋचाओंको एक महीनेभर प्रतिदिन सोलह बारभी जपिकै सुराका पीनेवा-  
लाभी शुद्ध होताहै ॥ ५० ॥

सकृज्जैस्वास्यवामीयं शिवसंकल्पमेव च ॥ अपहृत्य सुवर्णं तु क्षं  
णाद्भवति निर्मलः ॥ ५१ ॥ हविष्पान्तीयमभ्यस्य नतमंह इती  
ति च ॥ जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः ॥ ५२ ॥

टीका—ब्राह्मणके सुवर्णको चुराकै ‘अस्यवामीयं’ “अस्यवामस्यपलितस्य” इस सूक्त-  
को एक महीने प्रतिदिन एकवारभी जपिकै और ‘शिवसंकल्पं’ “यज्जाग्रतोदूरं” इसको  
जो वाजसनेयकमें पढाहै जपिकै सुवर्णको चुरायकै शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ ५१ ॥  
“हविष्पान्तमजरंस्वविदि” इन उन्नीस ऋचाओंको और “नतमंहोनदुरितं” इन आठको  
अथवा हविष्पान्त इसको और “इति वा इति मेमनः” इस सूक्तको और “सहस्र-  
शीर्षा पुरुष” इस षोडश ऋचा सूक्तको एकमहीने प्रतिदिन सोलहवारके अभ्याससे  
जपिकै गुरुकी स्त्रीमें गमन करनेवाला उस पापसे छूटि जाताहै ॥ ५२ ॥



(४३२)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

एनंसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् ॥ अवेत्यृचं जपेदब्दं  
यत्किञ्चेदमितीति वां ॥ ५३ ॥ प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नं  
विगृहीतम् ॥ जपंस्तरत्समन्दीयं पूयते मानवस्यैहात् ॥ ५४ ॥

टीका—स्थूलपाप जे महापातकहैं उनके और सूक्ष्म जे उपपातकहैं तिसके दूर क-  
रनेकी इच्छा करता हुआ “अवतेहेळोवरुणनमोभिः” इस ऋचाकों और “यत्किञ्चेदंवरुण  
दैव्यजने” इस ऋचाको और “इतिवाइतिमेमनः” इस सूक्तको एकवर्ष प्रतिदिन जपे  
॥ ५३ ॥ स्वरूपसे महापातकिके धन आदिके कारण नहीं लेनेयोग्य प्रतिग्रहको ले  
करि और स्वभाव काल तथा प्रतिग्रहके संसर्गसे दुष्ट अन्नको खायकै “तरत्समन्दीधावति”  
इनचारि ऋचाओंको तीनिदिन जपिकै मनुष्य उस पापसे पवित्र होताहै ॥ ५४ ॥

सोमरौद्रं तु बह्वेनां मासंमभ्यस्य शुद्धयति ॥ सर्वन्त्यामां चरन्त्यां  
नमर्यम्णामिति च तृचम् ॥ ५५ ॥ अन्वार्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी स  
प्तकं जपेत् ॥ अप्रशस्तं तु कृत्वाप्सु मांसमांसीत भैक्षभुक् ॥ ५६ ॥

टीका—“सोमारुद्राधारयेथामसूर्यम्” इन चारि ऋचाओंको और “अर्यमणंवरुणमि  
त्रं च” इन तीनि ऋचाओंको नदीमें स्नान करि एक महीने प्रत्येकका अभ्यास क-  
रिकै बहुतपापवाला शुद्ध होताहै ॥ ५५ ॥ एनस्वीकहिये पाप करनेवाला मनुष्य  
सब पापोंमें “इन्द्रमित्रंवरुणमग्निमूतये” इन सातऋचाओंका छः महीने जप करै और  
अप्रशस्त मूत्रपुरीष आदिका त्याग जलमें करिकै एक महीनेभर भिक्षाका भोजन  
करनेवाला होय ॥ ५६ ॥

मन्त्रैः शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजैः ॥ सुगुर्वप्यपहन्त्येनो  
जत्वा वा नम इत्यृचम् ॥ ५७ ॥ महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्ग्रास  
माहितः ॥ अभ्यस्याब्दं पावमानी भैक्षाहारो विशुद्धयति ॥ ५८ ॥

टीका—“देवकृतस्य” इत्यादि शाकल होममंत्रोंसे एकवर्ष घीका होम करिकै  
“नमइन्द्रश्च” इस ऋचाका एक वर्ष जप करिकै महापातकसे उत्पन्नभी पापको  
द्विजाति नाश करताहै ॥ ५७ ॥ ब्रह्महत्या आदि महा पातकोंसे युक्त पाई हुई  
भिक्षासे आहार करता हुआ एक वर्ष जितेंद्रिय हो गौओंका अनुगमन करता  
हुआ पावमानी ऋचाओंका प्रतिदिन जप करता हुआ उस पापसे शुद्ध होताहै ॥ ५८ ॥

अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् ॥ मुच्यते पातकैः सर्वैः



पराकैः शोधितस्त्रिभिः ॥५९॥ त्र्यहं तूँपर्वसेद्युक्तस्त्रिरहोऽभ्युपय  
चृपः ॥ मुँच्यते पातकैः सँ वैस्त्रिर्जपित्वाऽर्घमर्षणम् ॥ २६० ॥

टीका—तीनि पराकों करि शुद्ध मंत्रब्राह्मणरूप वेदकी संहिताका वनमें तीनिवार अभ्यास करि प्रयत्न कहिये बाहरी भीतरी शौच करि युक्त सब महापातकोंसे छूटि जाताहै ॥ ५९ ॥ तीनि रात्रि उपवास करता हुआ जितेंद्रिय प्रतिदिन प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकाल स्नान कर्ता हुआ तीनिवार स्नानके समय-हीमें जलमें गोता लगाकै 'ऋतंचसत्यंच' इस सूक्तसे अघमर्षण तीनि आवृत्तिसे जपिकै सब पापोंसे छूटि जाताहै ॥ २६० ॥

यथाश्वमेधः ऋतुराद् सर्वपापापनोदनम् ॥ तथाऽर्घमर्षसूक्तंच सर्व  
पापापनोदनम् ॥ ६१ ॥ हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्त  
तः ॥ ऋग्वेदं धारयन्विप्रो नै नैः प्राप्नोति किञ्चन ॥ ६२ ॥

टीका—जैसे अश्वमेधयज्ञ सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ है और सब पापोंके क्षयका कारणहै तैसेही अघमर्षण सूक्तभी सब पापोंके क्षयका कारणहै ॥ ६१ ॥ भू आदि तीनो लोकोभी मारिकै और महापातकी आदिकोंकाभी अन्न खाता हुआ ऋग्वेदको धारण किये हुए विप्र आदि किंचित्भी पापको नहीं प्राप्त होताहै ऋग्वेदका धारण तौ रहस्य प्रायश्चित्तके लिये कहाहै तिससे रहस्य पापके करनेपर मंत्रब्राह्मणरूप ऋक्संहिताका अभ्यास करै ॥ ६२ ॥

ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः ॥ साम्नां वा सरहस्या  
नां सर्वपापैः प्रमुँच्यते ॥ ६३ ॥ यथा महोद्वदं प्राप्य क्षिप्तं लोष्टं  
विनश्यति ॥ तथा दुश्चरितं सर्व वेदे त्रिवृति मज्जति ॥ ६४ ॥

टीका—मंत्रब्राह्मणरूप ऋग्वेदकी संहिताका केवल मंत्रात्मिकाहीका नहीं अथवा यजुर्वेदकी मंत्रब्राह्मणरूप संहिताका अथवा सामवेदकी मंत्रब्राह्मण उप-निषदरूप संहिताका तीनिवार अभ्यास करिकै सबपापोंसे छूटि जाताहै ॥ ६३ ॥ ऋक आदि रूपसे जो तीनिवार लौटै उसको त्रिवृत् कहते हैं ॥ जैसे बड़े कुंडमें प्राप्त होकै मट्टीका डेल विखर जाताहै तैसे सब पाप त्रिवृत्वेदमें नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥

ऋचो यजुषि चान्यानि सामानि विविधानि च ॥ एष ज्ञेयस्त्रिवृद्धे दो  
यो वेदेन स वेदवित् ॥ ६५ ॥ आद्यं यद्व्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मि-



( ४३४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

नप्रतिष्ठिताः॥सं गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्धे<sup>१</sup> दो यस्तं वेदं स वेदवित् ॥२६६॥  
इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः॥११॥

टीका-त्रिवृत्पनको कहते हैं ॥ ऋग्वेदके मंत्र और यजुके मंत्र और बृहद्रथ-  
तर आदि नाना प्रकारके साम और परस्पर तीनोंके पृथक् पृथक् मंत्र ब्राह्मण  
यह त्रिवृद्धेद जानना चाहिये जो इसको जानताहै वह वेदका वेत्ता होताहै  
॥ ६५ ॥ सब वेदोंका आद्य कहिये प्राथमिक और सब वेदोंका सार अकार  
उकार मकार रूपसे तीनि अक्षरका जो ब्रह्म है उसमें तीनों वेद स्थितहैं सो  
दूसरा त्रिवृद्धेद प्रणवनाम गुह्य वेदके मंत्रोंमें श्रेष्ठ होनेसे छुपाने योग्यहै परमा-  
र्थका कहनेवालाहै ॥ इससे और परमार्थक होनेसे धारण तथा जपसे मोक्षका कारण  
है जो उसको स्वरूपसे जानताहै वह वेदका जाननेवालाहै ॥ २६६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां-  
कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यामनूक्तभाषाविवृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

## द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोऽयमुक्तो धर्मस्त्वयानव ॥ कर्मणां फलं नि-  
वृत्तिं शंसं नस्तत्त्वतः पराम् ॥ १ ॥ स तांनुवाच धर्मात्मा महर्षी  
न्मानवो भृगुः ॥ अस्य सर्वस्य शृणुत कर्मयोगस्य निर्णयम् ॥२॥

टीका-हे पापरहित, ब्राह्मण आदि चारोंवर्णोंका और अन्तरप्रभवोंका यह  
धर्म तुमने कहा अब कर्मोंकी शुभ अशुभ फलकी प्राप्तिको और परां कहिये जन्मां-  
तरमें हुई परमार्थरूपको हमसे कहौ महर्षियोंने यह भृगुसे कहा ॥ १ ॥ वह  
धर्मप्रधान मनुका पुत्र भृगु इस सबकर्म संबंधके फलके निश्चयको सुनिये यह उन  
महर्षियोंसे बोला ॥ २ ॥

शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसंभवम् ॥ कर्मजां गतयो नृणां-  
मुत्तमाधर्ममध्यमाः ॥ ३ ॥ तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठान-  
स्य देहिनः ॥ दशलक्षणयुक्तस्य मनो विद्यात्प्रवर्तकम् ॥ ४ ॥

टीका-मन वाणी देह जिसका कारण ऐसा सुखदुःखरूप फलका देनेवाला  
विहित निषिद्धरूप कर्म और उसीसे उत्पन्न मनुष्य तिर्यक् आदिके भावसे उत्कृष्ट



मध्यम और अधमकी अपेक्षा मनुष्योंकी गति अर्थात् जन्मांतरोंकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ उस देहकी कर्मकी उत्कृष्ट मध्यम अधमतासे तीन प्रकारके मन वाणी तथा कायके आश्रित और आगे कहे हुए दश लक्षणोंकरि युक्त कर्मका मनही प्रवर्तक जानना चाहिये मन करि संकल्प किया हुआ कहा जाता है और किया जाता है सोई तैत्तिरीय उपनिषदमें कहा है जैसे “तस्मात् यत्पुरुषो मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति” इति ॥ अर्थ तिससे पुरुष जिसको मनसे जानता है उसको वाणीसे कहता है और कर्मसे करता है ॥ ४ ॥

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसैः सानिष्टचिन्तनम् ॥ वितर्थाभिनिवेश  
ज्ञश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ ५ ॥ पारुष्यमर्तुतं चैव पैशुन्यं  
चापि सर्वज्ञः ॥ असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ ६ ॥

टीका—उन दशलक्षणोंके कर्म दिखानेको कहते हैं ॥ कैसे कि पराये धनको अन्यायसे ले लें इस भांति सोचना और मनसे ब्रह्मवधआदिकी निषिद्ध इच्छा और परलोक नहीं है देहही आत्मा है इस भांति तीन प्रकारका अशुभ फल मानस कर्म ये तीनो और विपरीतबुद्धि तीन प्रकारका शुभफल मानस कर्म है ॥ ५ ॥ अप्रियका कहना झूठ बोलना पीठि पीछे पराये दूषणोंका कहना और सत्यभी राजा देश और पुरवासियोंकी वार्त्ता आदिका विना प्रयोजन वर्णन करना इस भांति चारि प्रकारका अशुभ फल वाचिक कर्म होता है इससे विपरीत प्रिय सत्य और परगुणोंका कहना और श्रुति पुराण आदिमें राजा आदिकोंके चरित्रका कहना शुभफल है ॥ ६ ॥

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवा च शारी  
रं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ७ ॥ मानसं मनसैर्वायमुपभुङ्क्ते शुभाशु-  
भम् ॥ वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम् ॥ ८ ॥

टीका—अन्यायकरिके पराये द्रव्यका हरणकरना, वेदादिक शास्त्रोंसे निषिद्ध हिंसाका करना, और पराये स्त्रीके साथ संभोग करना, इन तीन प्रकारका अशुभफल देने वाला शारीरिक कर्म होता है और इनसे विपरीत अर्थात् न्यायसे द्रव्यका संग्रहकरना वेदादिकशास्त्रोंसे यज्ञादिकोंमें विहित पशुओंकी हिंसा करना, और अपने स्त्रीके साथ ऋतुकालमें संभोग करना ए तीन प्रकारका शुभफल देनेवाला शारीरिक कर्म होता है ॥ ७ ॥ मन करिके जो सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म किया उसका फल सुखदुःखरूप इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें मनसेही यह भोगता है ऐसे वाणी करि किया हुआ



( ४३६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

शुभ अशुभ वाणीके द्वारा मधुर, गद्गद, बोलने आदिसे और शरीर संबंधी शुभ अ-  
शुभ शरीरके द्वारा स्रक् चंदन आदि प्रियाके उपभोगसे व्याधित आदि होनेसे भोग-  
ताहै तिस्से यत्न करिकै शरीर मानस, और वाचिक धर्मरहित, और धर्मजनक क-  
र्मोंको छोड़ै तथा करै ॥ ८ ॥

शरीरजैः कर्मदोषैर्यातिं स्थावररतां नरैः ॥ वार्चिकैः पक्षिमृगतां  
मानसैरन्त्यजांतिताम् ॥ ९ ॥ वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डः  
स्तथैव च ॥ यस्यैते निहिता बुद्धौ त्रिदण्डोऽस्ति स उच्यते ॥ १० ॥

टीका—यद्यपि पापिष्ठोंके शरीर, वाचिक, और मानसिकही तीन पाप होते  
है तिसपरभी वह जो बहुधा अधर्मही करै धर्म थोड़ा करै तो बाहुल्यके अभि-  
प्रायसे यह व्याख्यान कियाहै जैसे अधिकतासे शरीरके कर्मोंसे उत्पन्न पापोंकरि  
युक्त मनुष्य स्थावरत्वको प्राप्त होताहै और बाहुल्यसे वाणी करि किये हुए  
ओंसे पक्षीभाव और मृगभावको अथवा बाहुल्यसे मनकरि किये हुएओंसे  
चांडालआदिके भावको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ वाणीका दण्ड, मनका दण्ड, तैसेही  
कायदण्ड ये तीनो दण्ड जिसकी बुद्धिमें स्थितहै वह त्रिदंडी कहा जाताहै और तीन  
दण्डोंके धारणमात्रसे त्रिदंडी नहीं होताहै ॥ १० ॥

त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवैः ॥ कामक्रोधौ तु संयम्य तं  
तः सिद्धिं नियच्छति ॥ ११ ॥ योऽस्यात्मनः कारयित्वा तं क्षेत्रज्ञं  
प्रचक्षते ॥ यः करोति स कर्माणि भूतात्मेत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

टीका—इस निषिद्ध वाणी आदिकोंका सब भूतोंकी गोचरतासे दमन करिकै और  
इन्हीके दमनके लिये काम तथा क्रोधको रोकिकै तिसपीछे मनुष्य मोक्षप्राप्तिरूप सिं-  
द्धिको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ कौन सिद्धिको प्राप्त होताहै सो कहत है ॥ जो इस लोक  
सिद्धशरीरनाम आत्माको कर्मोंमें प्रवृत्त करानेवालाहै उसको पंडित क्षेत्रज्ञ कहते है  
और जो यह व्यापारोंको करताहै वह शरीरनामहै वह पृथिवी आदि भूतोंसे बननेके  
कारण पंडितों करि भूतात्मा कहा जाताहै ॥ १२ ॥

जीवसंज्ञोऽन्तरात्माऽन्यः सहजः सर्वदेहिनाम् ॥ येन वेदयते सर्वं  
सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ १३ ॥ तावुभौ भूतसंपृक्तौ महान्क्षेत्रज्ञ एव  
च ॥ उर्चावचेषु भूतेषु स्थितं तं व्याप्य तिष्ठतः ॥ १४ ॥

टीका—शरीर तथा क्षेत्रज्ञसे भिन्न शरीरके भीतर आत्मा नाम होनेसे आत्मा



जीवनामसे क्षेत्रज्ञोंको सहज आत्मानामकी प्राप्ति है क्योंकि उनसे उसका विनियोगहै अहंकार और इंद्रियोंके रूपसे परिणामको प्राप्त कारण भूत जिस जीवात्माकरि क्षेत्रज्ञ प्रतिजन्ममें सुख और दुःखका अनुभव करताहै ॥ १३ ॥ वे दोनों महत् और क्षेत्रज्ञ पृथिवी आदि पांच भूतोंसे मिले हुए आगे जो कहा जायगा और सब लोकमें तथा वेद स्मृति और पुराण आदिमें प्रसिद्ध होनेसे जो तंशब्दसे निर्देश किया गया और उत्कृष्ट अपकृष्टजीवोंमें स्थित ऐसे परमात्माको आश्रय लेकर दोनों स्थित रहतेहैं ॥ १४ ॥

असंख्यां मूर्तयस्तस्य निर्षपतन्ति शरीरतः॥ उच्चावचानि भूतानि  
संततं चेष्टयन्ति याः ॥ १५ ॥ पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृ-  
तिनां नृणाम् ॥ शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम् ॥ १६ ॥

टीका—इस परमात्माके शरीरसे असंख्यहै मूर्तियां जिनकी ऐसे जो क्षेत्रज्ञ शब्दसे पीछे कही हुई लिंगशरीरमें स्थित और वेदांतके कहे हुए प्रकारसे आगिकी चिनगारियोंके समान जे मूर्तियां निकली वे देहरूपसे परिणामको प्राप्त उत्कृष्ट अपकृष्ट जीवोंको सदा कर्मोंमें प्रेरणा करती है ॥ १५ ॥ पृथिवी आदि पांचही भूतोंके भागोंसे दुष्कृत करनेवाले मनुष्योंको पीडाका अनुभव करानेवाले जरायुज आदि देहोंसे भिन्न दुःख सहनेवाला शरीर परलोकमें उत्पन्न होताहै ॥ १६ ॥

तेनानुभूय तां यामीः शरीरेणेहं यातनाः ॥ तास्वेवं भूतमात्रां सु-  
प्रलीयन्ते विभागशः ॥ १७ ॥ सोऽनुभूयासुखोदकान्दोषान्विषय  
संगजान् ॥ व्यपेतकल्मषोऽभ्येति तावेवोभौ महौजंसौ ॥ १८ ॥

टीका—उस निकले हुए शरीरसे पापी जीव उन यमकीकी हुई यातनाओंको भोगिके स्थूल शरीरके नाश होनेपर उन्ही आरंभ करनेवाले भूतोंके भागोंमें जो जिस भागहै वह उसमें इस क्रमसे लीन होजाताहै अर्थात् उन भूतोंके संयोगी होकरि स्थित रहताहै ॥ १७ ॥ वह शरीरी भूत सूक्ष्म आदि लिंगशरीरमें स्थित हो निषिद्ध शब्द-स्पर्शरूपरसगंधनाम विषयोंके भोगसे उत्पन्न यमलोकके दुख आदिको भोगिके तिस-पीछे अनंतर भोगसे नाश हुएहैं पाप जिसके ऐसा हो उन्ही बड़े पराक्रमी दोनों महत् और परमात्माका आश्रय लेताहै ॥ १८ ॥

तौ धर्मं पश्यतस्तस्य पापं चातन्द्रितौ सह ॥ याभ्यां प्राप्नोति सं-  
पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम् ॥ १९ ॥ यद्याचरति धर्मं स प्रायशोऽ-



धर्ममल्पशः॥ तैरेवं चावृत्तो भूतैः स्वर्गे सुखमुपांश्रुते ॥ २० ॥

टीका—वे दोनों महत् और परमात्मा आलस्य रहित हो उस जीवके धर्मको और भोगनेसे बाकी रहे पापका साथ विचार करते हैं जिन धर्म अधर्मों करि युक्त जीव परलोक और इसलोकमें सुख तथा दुःखको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ वह जीव जो मनुष्यकी दशमें अधिकतासे धर्मको करताहै और थोड़ा अधर्म तब स्थूल शरीरके रूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं पृथिवी आदि भूतों करियुक्त स्वर्गके सुखको भोगताहै ॥ २० ॥

यादि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः ॥ तैर्भूतैः संपरित्यक्तो  
यामीः प्राप्नोति यातनाः॥२१॥यामीस्तां यातनाः प्राप्य स जीवो  
वीतकल्मषः ॥ तान्येवं पञ्च भूतानि पुनरप्येति भागशः ॥ २२ ॥

टीका—जो वह जीव मनुष्यकी दशमें अधिकतासे पाप करताहै और पुण्य थोड़ा तब मनुष्यके देहरूपसे परिणामको प्राप्त उन्हीं भूतोंकरि त्याग किया हुआ मरिक्के पीछे पाचोंहीं मात्राओंसे उक्तरीति करि यातना भोगनेके योग्य हुआहै कठिन देह जिसका ऐसाहो यमकी पीडाओंको भोगताहै ॥ २१ ॥ वह जीव यमकी उन यातनाओंको उस कठिन देहसे भोगिकै उसके भोगसे पापरहित हो उन जरायुज आदि शरीरोंके आरंभकरनेवाले पृथिवी आदि भूतोंके भागमें अधिष्ठितहो मनुष्य आदिके शरीरको ग्रहण करताहै ॥ २२ ॥

एतां दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेत्तसा॥ धर्मतोऽधर्मतश्चैवं धी  
र्मे दध्यात्सदा मनैः॥२३॥सत्त्वं रजस्तमश्चै व त्रीन्विद्यादात्मनो  
गुणान् ॥ यैर्व्याप्येमान् स्थितो भावांन्महान्सर्वानशेषतः ॥ २४ ॥

टीका—धर्म अधर्म है कारण जिनका ऐसी इस देहकी स्वर्ग नरक आदिके भोगनेके उचित प्रिय अप्रिय देहकी प्राप्तियोंको अंतःकरणमें जानिकै धर्ममें मनको सदा लगावै ॥ २३ ॥ जिनके लक्षण आगे कहे जायंगे ऐसे सत्त्व रजः तम आदि तीन गुणोंको आत्माके उपकारक होनेसे आत्मा जो महत् है उसके गुणोंको जानै जिन करिकै व्याप्त महान् इन स्थावर जंगमरूप सब पदार्थोंमें व्याप्त होकै स्थितहै ॥ २४ ॥

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते॥सं तदा तद्गुणप्रायं तं



करोति<sup>३</sup> शरिरंणम् ॥ २५ ॥ सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषो रजः  
स्मृतम् ॥ एतद्व्याप्तिमंदेतेषां सर्व भूतांश्रितं वपुः ॥ २६ ॥

टीका—यद्यपि यह सब त्रिगुणमय है तिसपर भी जिस देहमें इन गुणोंमेंसे जो गुण सकलरूपसे अधिक होता है तब उस गुणके बहुत हैं लक्षण जिसमें ऐसे उस-देहीको करता है ॥ २५ ॥ अब सत्त्व आदिकोंके लक्षण कहते हैं ॥ यथार्थका जो अवभास ज्ञान है वह सत्त्वका लक्षण है इस्से विपरीत जो अज्ञान है वह तमका लक्षण है विषयोंका अभिलाषरूप जो मनका कार्य है वह रजोगुणका लक्षण है और सत्त्व रज तमका स्वरूप तौ प्रीति अप्रीति और विषादरूप है सोई पढते हैं जैसे “प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशवृत्तिनियमार्थाः अन्योन्याभिभवजननमिथुनवृत्तयश्च-गुणाः” ॥ इति ॥ अर्थ ॥ प्रीति अप्रीति और विषादरूप तथा प्रकाश वृत्तिका नियम है अर्थ जिनका और आपसमें अभिभवका करना और मैथुन वृत्तिगुण है इति ॥ यह तौ इनका स्वरूप आगेके तीनि श्लोकोंसे कहेंगे इन सत्त्व आदि गुणोंका यह सब ज्ञान आदि सब प्राणियोंमें व्याप्त लक्षण है ॥ २६ ॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ॥ प्रशान्तमिव शुद्धा  
भं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ २७ ॥ यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमा  
त्मनः ॥ तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ २८ ॥

टीका—उस आत्मामें जो कुछ संवदेन प्रीतियुक्त लक्षित होय क्लेशनामको न होय शान्त तथा शुद्धरूप होय उसको सत्त्व जानिये ॥ २७ ॥ जो तौ दुःख करि युक्त और आत्माकी प्रीतिका नही उत्पन्न करनेवाला और सदा विषयोंमें शरीरियोंकी इच्छाके उत्पन्न करानेवाले उसके दुर्निवार होनेसे सतोगुणके प्रति-पक्षको रज जानो ॥ २८ ॥

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ॥ अप्रतर्क्यमविज्ञेयं  
तमस्तदुपधारयेत् ॥ २९ ॥ त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलो  
द्वयः ॥ अर्धो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३० ॥

टीका—जो सत्त्व असत्त्वके विचारसे शून्य और नही प्रकट है विषयोंके आकारका स्वभाव जिसमें और नहीं तर्क करने योग्य है स्वरूप जिसका और अंतःकरण वही करणोंसे जो नही जाननेयोग्य उसको तम जानिये इन गुणोंके स्वरूपका कहना इसलिये है कि मनुष्यको सत्त्ववृत्तिमें स्थित होनेको यत्नकरना चाहिये ॥ २९ ॥ इन



सत्त्व आदि तीनों गुणोंका उत्तम मध्यम अधमरूप जो फलका उत्पन्न करनेवाला है उसको विशेष करिकै कहोंगा ॥ ३० ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥धर्मक्रियात्मचिन्ताचं  
सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ३१ ॥ आरम्भरुचिता धैर्यमसत्का-  
र्यपरिग्रहः॥विषयोपसेवा चोर्जसं राजसं गुणलक्षणम् ॥ ३२ ॥

टीका—वेदमें अभ्यास और प्राजापत्य आदिका करना और शास्त्रके अर्थ-  
का ज्ञान और मिट्टी जल आदिसे शुद्धि और इंद्रियोंका रोकना और दान आ-  
दि धर्मोंका करना और आत्माके ध्यानमें तत्पर होना ये सत्त्वनाम गुणके कार्य  
है ॥ ३१ ॥ फलके लिये कर्मोंका करना और थोड़ेभी अर्थमें व्याकुल होना और  
निषिद्ध कर्मोंका करना और सदा शब्द आदि विषयोंका भोगना यह रजनाम  
गुणका कार्य है ॥ ३२ ॥

लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ॥ याचिष्णुता  
प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ३३ ॥ त्रयाणामपि च तेषां गुणौ  
नां त्रिषु तिष्ठताम्॥ईदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम्॥३४॥

टीका—अधिक अधिक धनकी इच्छा, अधिक सोना, कातरपन, क्रूरता, और  
नास्तिक्य कहिये परलोकके न होनेकी बुद्धि, और आचारका लोप, और या-  
चनका स्वभाव होना, और प्रमाद कहिये संभव होनेपरभी धर्म आदिकोंमें मनका  
न लगाना, ये तामसनाम गुणके लक्षण है ॥ ३३ ॥ इन सत्त्व आदि तीनोंही गु-  
णोंका भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनोंकालोंमें विद्यमानोंका यह आगे जो  
कहा जायगा वह संक्षेपके क्रमसे लक्षण जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

यत्कर्म कृत्वा कुर्वश्च करिष्यश्चै व लज्जति॥तज्ज्ञेयं विदुषा सं  
र्व तामसं गुणलक्षणम् ॥३५॥ येनास्मिन्कर्मणां लोके ख्यातिमि  
च्छति पुष्कलाम्॥न च शौचत्यसंपत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ३६

टीका—जिस कर्मको करिकै करता हुआ और आगे करनेकी इच्छा करता  
हुआ लज्जित होय तौ वह सब तमका कार्य होनेसे तम है नाम जिसका ऐसे गुणका  
लक्षण शास्त्रके जाननेवालेकी जानना चाहिये ॥ ३५ ॥ इस लोकमें बड़ी-  
ख्यातिको प्राप्त होइ इस लियेही जो जिस कर्मको करता है परलोकके लिये नहीं



और उस कर्मके फलके न होनेपर दुखी होता है वह रजका कार्य होनेसे रजो गुणका लक्षण जानिये ॥ ३६ ॥

यत्सर्वेणैच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ॥ येन तुष्यन्ति चात्मा  
स्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ ३७ ॥ तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वं  
र्थ उच्यते ॥ सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रेष्ठं च मेघां यथोत्तरम् ॥ ३८ ॥

टीका—जो कर्म सब प्रकारसे वेदके अर्थकी जाननेकी इच्छा करता है और जिस कर्मको करता हुआ तीनो कालमें भी लज्जित नहीं होता है और जिस जिस कर्मसे इसके आत्माको संतोष होय वह सत्त्वनाम गुणका लक्षण जाननी चाहिये ॥ ३७ ॥ कामकी प्रधानता होना यह तमका लक्षण है और धनमें निष्ठ होना रजका लक्षण है धर्मकी प्रधानता होना यह सत्त्वगुणका लक्षण है इन काम आदिकोमें आगे आगे वालेकी श्रेष्ठता है कामसे अर्थ श्रेष्ठ है क्योंकि कामका अर्थ मूल है और उन दोनोंसे धर्म श्रेष्ठ है क्योंकि उन दोनोंका वही मूल है ॥ ३८ ॥

येन यस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते ॥ तान्समासेन वक्ष्यामि स  
र्वस्यास्य यथाक्रमम् ॥ ३९ ॥ देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वं च  
राजसाः ॥ तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषां त्रिविधा गतिः ॥ ४० ॥

टीका—इन सत्त्व आदि गुणोंमेंसे जिसके गुणसे जीव जिन गतियोंको प्राप्त होता है इस जगतकी उन सब गतियोंको संक्षेपसे क्रम करि कहौंगा ॥ ३९ ॥ जे सतोगुणकी वृत्तिमें स्थित है वे देवत्वको प्राप्त होते हैं और जे तौ रजोवृत्तिमें स्थित हैं वे मनुष्यत्वको और जे तमोवृत्तिमें स्थित हैं वे तिर्यक् योनिको प्राप्त होते हैं यह तीन प्रकारकी जन्मकी प्राप्ति है ॥ ४० ॥

त्रिविधा त्रिविधेषां तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ॥ अधमा मध्यमा  
त्र्या च कर्मविधा विशेषतः ॥ ४१ ॥ स्थावराः कृमिकीटाश्च मर्त्याः  
सर्पाः सर्कच्छपाः ॥ पशवश्च मृगाश्चैवं जघन्या तामसी गतिः ॥ ४२ ॥

टीका—सत्त्व आदि तीन गुण है कारण जिसके ऐसी तीन प्रकारकी जन्मांतरोंकी प्राप्ति कही वह देशकाल आदिके भेदसे और संसारके कारण भूत कर्मोंके भेदसे और ज्ञानके भेदसे अधम मध्यम उत्तम इन भेदोंसे तीन प्रकारकी जाननी चाहिये ॥ ४१ ॥ स्थावर वृक्ष आदि कृमि सूक्ष्म प्राणी उनसे कुछ मोटे



( ४४२ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

कीट तथा मछली! सांप, कछुआ, और मृगों तक यह सब तमोगुणहै कारण जिसका  
ऐसी जघन्य कहिये अधम गति है ॥ ४२ ॥

हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः॥ सिंहा व्याघ्रा वरा-  
हाश्च मध्यमां तामसी गतिः ॥ ४३ ॥ चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषा-  
श्चैव दाम्भिकाः॥ रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूतमा गतिः॥ ४४ ॥

टीका—हाथी, घोडा, शूद्र और गर्हित, म्लेच्छ, सिंह; बाघ, सुअर, यह तमोगुणहै  
कारण जिसका ऐसी यह मध्यम गति है ॥ ४३ ॥ चारण, नट, आदि और सुवर्ण-  
पक्षी और कपटसे धर्म करनेवाले पुरुष और राक्षस तथा पिशाच यह तामसी गति-  
योंमें उत्तम गति है ॥ ४४ ॥

झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः॥ द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघ-  
न्यां राजसी गतिः ॥ ४५ ॥ राजानःक्षत्रियाश्चैव राज्ञश्चैव पुरो-  
हिताः ॥ वांदयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ४६ ॥

टीका—ब्राह्म्य क्षत्रियसे सवर्णा स्त्रीमें उत्पन्न दशम अध्यायमें कहे हुए झल्ल  
मल्ल उनमें लाठी धारण करनेवाले ( छडीवरदार ) और मल्ल बांहोंसे युद्ध कर-  
नेवाले, और रंगभूमिमें उतरनेवाले नट, और शस्त्रोंसे जीविका करनेवाले और  
जुवामें तथा मद्यके पीनेमें लगे हुए पुरुष यह अधम राजसी गति जाननी चाहिये  
॥ ४५ ॥ राजा कहिये अभिषेक किये हुए देशके स्वामी, तैसेही क्षत्रिय,  
और राजाके पुरोहित, और जिनको शास्त्रार्थ तथा कलह प्यारा है, यह राजसी  
गति मध्यम जानिये ॥ ४६ ॥

गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा  
राजसीषूतमा गतिः ॥ ४७ ॥ तापसा यतयो विप्रा ये च वैमा-  
निका गणाः॥ नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः॥ ४८ ॥

टीका—गंधर्व, गुह्यक, यक्ष, देवता, और उनके अनुचर विद्याधर आदि और अ-  
प्सर, सब ये राजसीमें उत्तम गति है ॥ ४७ ॥ वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, और  
जे विमानमें चलनेवाले अप्सराओंसे भिन्न, पुष्पक आदि विमानमें चलनेवाले, और  
नक्षत्र, तथा दैत्य, यह सत्त्व निमित्त अधम गति जाननी चाहिये ॥ ४८ ॥

यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतीषि वत्सराः ॥ पितरश्चैव साध्या-



द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा विश्वसृजो धर्मो महान्  
व्यक्तमेव च ॥ उत्तमा सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ ५० ॥

टीका—यज्ञ करनेवाले तथा ऋषि और देवता, और वेदके अभिमानी, देवता, और ध्रुव आदि ज्योति कहिये तारागण, और वत्सर कहिये इतिहासमें देखे हुए विग्रहवाले, और पितर कहिये सोमपा आदि, और देवयोनि विशेष साध्य, यह सत्व निमित्त मध्यम गति जानिये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा कहिये चतुर्मुख, और विश्वसृज कहिये मरीचि आदि, और देह धारण किये हुए धर्म और महान् तथा अव्यक्त सांख्यमें प्रसिद्ध दो तत्व उनके अधिष्ठाता दोनो देवता, इस चतुर्मुख आदिरूप सृष्टिको सात्त्विक निमित्त उत्कृष्ट गति पंडित कहते हैं ॥ ५० ॥

एष सर्वः संमुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्मणः ॥ त्रिविधस्त्रिविधः कृ  
त्स्नः संसारः सार्वभौतिकः ॥ ५१ ॥ इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्या-  
सेवनेन च ॥ पापान्संयंति संसारानविद्भांसो नराधमाः ॥ ५२ ॥

टीका—यह मन, वाणी, और कायरूप, तीन साधनोंके भेदसे तीन प्रकारके कर्म सत्व रज तमके भेदसे फिर तीन प्रकारका फिर प्रथम मध्यम उत्तमके भेदसे तीन प्रकारका सब प्राणियोंमें स्थित गति विशेष संपूर्णतासे कहा और सार्वभौ-  
तिक इस कहनेसे नहीं कहीहुई भी गतियां देखनी चाहिये और उक्त गतियां तौ दिखानेके लिये हैं ॥ ५१ ॥ इंद्रियोंके विषयोंमें लगनेसे और निषिद्ध आचर  
णसे और प्रायश्चित्त आदि धर्मोंके न करनेसे मूढ मनुष्योंमें नीच कुत्सित गति-  
योंको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यां यां योनिं तु जीवोऽयं येन येनेह कर्मणा ॥ क्रमंशो यांति लो  
केऽस्मिंस्तत्तत्सर्वं निबोधत ॥ ५३ ॥ बहून्वर्षगणान्वोरात्ररका  
न्प्राप्य तत्क्षयात् ॥ संसारान्प्रतिपद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् ॥ ५४ ॥

टीका—यह जीव जिस जिस किये हुए पाप कर्मसे इस लोकमें जिस जिस जन्म  
को प्राप्त होताहै इस सबके क्रमसे सुनिये ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके  
करनेवाले बहुतसे वर्षोंके समूहोंतक भयंकर नरकोंमें प्राप्त हो उनके भोगके पूरे होने  
पर पापके शेषसे आगे कहे हुए जन्म विशेषोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥

श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोजां विमृगपक्षिणाम् ॥ चण्डालपुच्छसानां च  
ब्रह्महर्षा यो नि मृच्छति ॥ ५५ ॥ कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजां चैव प



( ४४४ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

क्षिणाम् ॥ हिंसाणां चैवं सत्त्वानां सुराणो ब्राह्मणो ब्रजेत् ॥ ५६ ॥  
 टीका—कुत्ता, सुअर, गधा, ऊँट, गौ, बकरा, मेढा, मृग, पक्षी, चांडाल,  
 और जो निषादसे शूद्रमें उत्पन्न व पुकस इनकी योनिमें ब्रह्महत्यारा जन्म लेता  
 है यहां शेष पापकी गुरुता और लघुताकी अपेक्षासे क्रमसे सब योनियोंकी  
 प्राप्ति जाननी चाहिये ऐसेही आगेभी जानिये ॥ ५५ ॥ कृमि, कीट, पतंग और  
 विष्टा खानेवाले पक्षी, और हिंसा करनेवाले व्याघ्र आदि इनकी जातिमें सुरा पीने  
 वाला ब्राह्मण उत्पन्न होताहै ॥ ५६ ॥

लूताहिसरठानां च तिरश्चां चाम्बुचारिणाम् ॥ हिंसाणां च पिशा  
 चानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः ॥ ५७ ॥ तृणगुल्मलतानां च क्रव्यादां  
 दंष्ट्रिणामपि ॥ क्रूरकर्मकृतां चैवं शतशो गुरुतल्पगः ॥ ५८ ॥

टीका—मकड़ी, सांफ, गिरगट, और जलमें विचरनेवाले पक्षी, और हिंसा  
 करनेवाले पिशाच आदि, इनकी योनिमें सुवर्णका चुरानेवाला ब्राह्मण हजारों-  
 वार प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ दूब, तृणोंकी, और गुल्मोंकी, और गुडूची आदि लता  
 ओंकी, और कच्चा मांस खानेवाले गीध आदिकी, और सिंह आदि दंष्ट्रियोंकी  
 और क्रूरकर्म करनेवाले वधशील व्याध आदिकोंकी जातिमें, सौवार गुरुकी स्त्रीमें ग-  
 मन करनेवाला प्राप्त होताहै ॥ ५८ ॥

हिंसा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः ॥ परस्पररादिनः स्ते  
 नाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः ॥ ५९ ॥ संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च  
 योषितम् ॥ अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ ६० ॥

टीका—जे प्राणियोंके वध करनेवाले हैं वे कच्चे मांसके खानेवाले विलाव  
 आदिकी योनिमें उत्पन्न होतेहैं और जे अभक्ष्यभक्षी हैं वे कृमि होतेहैं और जे  
 महापातकियोंसे भिन्न चोरहैं वे आपसमें मांस खानेवाले होते हैं और जे चांडाल  
 आदिकी स्त्रीमें गमन करनेवाले हैं वे प्रेत नाम प्राणीविशेष होतेहैं ॥ ५९ ॥ जितने  
 कालमें पतितके संयोगसे पतित होताहै उतने कालतक ब्रह्मघाती आदि चारिके  
 साथ संसर्गको करिकै और औरोंकी स्त्रीमें गमन करिकै और ब्राह्मणके सुवर्णसे  
 भिन्न अन्यवस्तुको चुराकै एकएक पाप करनेसे ब्रह्मराक्षस प्राणीविशेष होताहै ॥ ६० ॥

मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः ॥ विविधानि च रत्नानि  
 जार्यते हेमकर्तृषु ॥ ६१ ॥ धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कौस्यं हंसो



जलं पुर्वः॥मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो धृतम् ॥ ६२ ॥

टीका—माणिक्य आदि मणियोंको, मोती मूगोंको और नाना प्रकारके वैदूर्य हीरा आदि रत्नोंको, अपनेके भ्रमविना लोभसे चुराकै सुवर्णकारकी योनिमें उत्पन्न होताहै कोईतौ हेमकार पक्षीको कहतेहैं ॥ ६१ ॥ धान्यको चुरायकै मूसा होताहै और कांसेको चुरायकै हंस होताहै और जलको चुरायकै प्लवनाम पक्षी होताहै और शहत चुरायकै डांस और दूध चुरायकै कौआ और विशेष करि कहे हुए गुड नोन आदिसे भिन्न ईख आदिके रसको चुरायकै कुत्ता होताहै और घी चुरायके न्योला होताहै ॥ ६२ ॥

मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः॥चीरिवाकस्तु लवणं व  
लीका शकुनिर्दधि ॥ ६३ ॥ कोशेयं तित्तिरिहत्वा क्षौमं हत्वा तु  
दुर्दुरः॥कर्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोर्ध्रा गां वाग्गुदो गुडम् ॥ ६४ ॥

टीका—मांस चुरायकै गीध होताहै और वसा (चरबी) को चुरायकै मद्गुनाम जलचर पक्षी होताहै और तेल चुरायकै तैलपाथिकनाम पक्षी और नोन चुरायकै चीरीवाक नाम ऊंचे स्वरवाला कीट और दही चुरायकै बलाकानाम पक्षी होताहै ॥ ६३ ॥ रेशमी वस्त्र चुरायकै तीतरनाम पक्षी होताहै और क्षौमसे बने हुए वस्त्रको चुरायकै मेढक और कपासके बने हुये वस्त्रको चुरायकै क्रौंचनाम प्राणी और गौको चुरायकै गोह और गुडको चुरायकै वाग्गुदनाम पक्षी होताहै ॥ ६४ ॥

लुच्छुन्दरिः शुभान्गन्धान्पत्रशाकं तु बर्हिणः॥ श्वावित्कृतान्नं वि  
विधमकृतान्नं तु शल्यकः॥ ६५ ॥ बको भवति हत्वाग्निं गृहकारी.  
ह्युपस्करम्॥ रक्तानि हत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६ ॥

टीका—कस्तूरी आदि सुगंध द्रव्योंको चुरायकै लुच्छुन्दरि होताहै वथुआदि पत्र शाकोंको चुरायकै मोर और लड्डू सक्कू आदि नाना प्रकारके सिद्ध अन्न चुरायकै श्वाविधनाम प्राणी और विनाकिये हुए अन्न धान जव आदि चुरायकै शल्यकनाम होताहैं ॥ ६५ ॥ अग्निको चुरायकै बकनाम पक्षी होताहै और घरके उपयोगी सूप मूसल आदि चुरायकै भीति आदि मिट्टीका घर बनानेवाला परो कारि युक्त कीट अर्थात् कुत्तरकीडा होताहै कसुंभ आदिसे रंगे वस्त्रोंको चुरायकै चकोरनाम पक्षीहोताहै ॥ ६६ ॥

वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलं तु मर्कटः ॥ स्त्रीमृक्षः स्तोकेको



( ४४६ )

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

वांरि यानान्युष्ट्रः पशून्जैः ॥६७॥ यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बै  
लान्नरैः ॥ अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैर्वाहुतं हविः ॥६८॥

टीका-मृग अथवा हाथीको चुरायकै भेडियानाम हिंसक पशु होताहै और  
घोडा चुरायकै व्याघ्र होताहै और फल मूल चुरायकै बंदर होताहै और स्त्रीको  
चुरायकै रीछ होताहै और पीनेके लिये जल चुरायकै चातकनाम पक्षी होताहै  
और शकट आदि यानोंको चुरायकै ऊंट होताहै और कहे हुए पशुओंसे अन्य  
पशुओंको चुरायकै बकरा होताहै ॥ ६७ ॥ यत्किंचित् असारभी पराई वस्तुको  
इच्छासे चुरायकै और विना होमे हुए पुरोडास आदिको खायकै मनुष्य निश्चय  
तिर्यक् योनिमें प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥

स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः ॥ एतेषामेवं जंतूनां  
भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ ६९ ॥ स्वेभ्यः स्वेभ्यस्तु कर्मभ्यश्चर्यु  
ता वर्णा ह्यनापदि ॥ पापान्संसृत्य संसारान्प्रेष्यतां यान्ति शत्रुषु ॥

टीका-स्त्रियांभी इसी प्रकारसे इच्छा करिकै पराई वस्तुको चुरायकै पापको  
प्राप्त होतीहै और उस पापसे कहे हुए जीवोंकी स्त्री होतीहै ॥ ६९ ॥ इस  
भांति निषिद्ध काम करनेके फलोंको कहिकै अब कहे हुएके न करनेके फलका परिपाक  
कहते हैं ब्राह्मण आदि चारोवर्ण आपत्तिके विना पंचकर्मोंके त्याग करनेसे आगे  
कही हुई कुत्सित योनियोंको प्राप्त हो तिस पीछे दूसरे जन्ममें शत्रुके दास भावको  
प्राप्त होतेहैं ॥ ७० ॥

वान्ताश्चुल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्मात्स्वकाच्युतः ॥ अंभेध्याकुण  
पाशी च क्षत्रियः कटपूतनः ॥ ७१ ॥ मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो  
भवति पूर्यभुक् ॥ चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्मात्स्वकाच्युतः ॥ ७२ ॥

टीका-अपने कर्मसे अष्ट और वातका खानेवाला ब्राह्मण, ज्वालामुख, नाम  
एक भांतिका प्रेत होताहै और अपने कर्मसे नष्ट क्षत्रिय विष्ठा खानेवाला  
कटपूतन, नाम एक भांतिका प्रेत होताहै ॥ ७१ ॥ अपने कर्मसे अष्ट वैश्य, मैत्राक्ष  
ज्योतिक, नाम पीवका खानेवाला प्रेत दूसरे जन्ममें होताहै और अपने कर्मसे अष्ट  
शूद्र चैलाशक, नाम प्रेत होताहै ॥ ७२ ॥

यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः ॥ तथा तथा कुशलता



तेषां तेषूपजायते ॥७३॥ तेऽभ्यासात्कर्मणां तेषां पापां नामल्पबु  
द्धयः ॥ संप्राप्नुवन्ति दुःखानि तार्सुतास्विह योनिषु ॥ ७४ ॥

टीका-विषयोमें लोभी जैसे शब्द आदि विषयोंको सदा सेवन करतेहैं  
तैसे तैसे उनकी विषयोंमें प्रवीणता होतीहै ॥ ७३ ॥ वे अल्पबुद्धिवाले उन निषिद्ध  
विषयोंके उपभोगके अभ्याससे उन उन निंदिततर और निंदिततम तिर्यक् आदि  
योनियोंमें दुःखको भोगते हैं ॥ ७४ ॥

तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्तनम् ॥ असिपत्रवनादीनि ब  
न्धनच्छेदनानि च ॥७५॥ विविधांश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भ  
क्षणम् ॥ करम्भवालुकातार्पान्कुम्भीपाकांश्च दारुणान् ॥ ७६ ॥

टीका-तामिस्र आदि चौथे अध्यायमें कहे हुए घोर नरकोमें दुःखके अनुभवको  
प्राप्त होतेहैं तैसेही असिपत्रवन आदि बंधन च्छेदनरूप नरकोंको प्राप्त होते है  
॥ ७५ ॥ नाना प्रकारकी पीडाओंको और कौआ उलूक आदिसे खाया जाना  
और तप्त वालुका आदि तथा कुंभीपाक आदि दारुण नरकोमें प्राप्त होते है ॥ ७६ ॥

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायांसु नित्यंशः ॥ शीतातपाभिघातां  
श्च विविधानि भयानि च ॥७७॥ असंकृद्गर्भवासेषु वासं जन्म च द्वा  
रुणम् ॥ बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च ॥ ७८ ॥

टीका-जिनमें दुःख बहुतहै ऐसी तिर्यक् आदि योनियोंमें उत्पन्न होना उन  
शीत घाम आदिकी पीडा आदिसे नाना प्रकारके दुःखों और भयोंको प्राप्त होते है  
॥ ७७ ॥ वारंवार गर्भस्थानोंमें बसनेको और योनि यंत्र आदिकोंसे दुःख देनेवाली  
उत्पत्तिको और संकल आदिसे बंधनेकी पीडाको प्राप्त होते है ॥ ७८ ॥

बन्धुप्रियवियोगांश्च संवासं चैव दुर्जनैः ॥ द्रव्यार्जनं च नांशं च  
मित्रामित्रस्य चार्जनम् ॥७९॥ जरां चैव वाप्रतीकारां व्याधिं भिक्षो  
पपीडनम् ॥ कुंशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्जयम् ॥८०॥

टीका-बांधवों और मित्रोंसे वियोगोंको और दुष्टोंके साथ एक स्थानमें रहनेको  
और धन जोड़नेके श्रमको और धनके नाशको और कष्टसे मित्रके अर्जनको और  
शत्रुके प्रकट होनेको प्राप्त होते हैं ॥ ७९ ॥ जिसकी चिकित्सा नही ऐसी वृद्धअव



(४४८)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

स्थाको और रोमोंसे तथा भूख प्यास आदिसे पीडित होनेको और नाना प्रकारके क्लेशोंको और जो रुकि नही सकती ऐसी मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥

यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते ॥ तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलं लभुपांश्नुते ॥ ८१ ॥ एष सर्वः समुदिष्टः कर्मणां वै फलोदयः ॥ नै श्रेयसैकरं कर्म विप्रस्ये<sup>१</sup>दं निबोधत ॥ ८२ ॥

टीका—जिस प्रकारके सात्विक राजस अथवा तामस चित्तसे ज्ञान दान योग आदि जिस कर्मको करताहै वैसेही सत्वअधिक रजअधिक अथवा तमअधिक शरीरसे उस उस ज्ञान आदिके फलको भोगताहै ॥ ८१ ॥ यह तुमसे विहित और प्रतिषिद्ध कर्मोंके फलके उदयको संपूर्ण कहा अब ब्राह्मणके कल्याणके लिये तथा मोक्षके लिये हितकारी कर्मोंको करना जो आगे कहा जायगा उसको सुनिये ॥ ८२ ॥

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥ अहिंसां गुरुसेवां च निःश्रेयसैकरं परम् ॥ ८३ ॥ सर्वेषामपि च तेषां शुभानामिह कर्मणाम् ॥ किञ्चिच्छ्रेयस्करतरं कर्मोक्तं पुरुषं प्रति ॥ ८४ ॥

टीका—उपनिषद् आदि वेदका ग्रंथसे और अर्थसे आवृत्ति करना और कुछ आदि तप और ब्रह्मविषयक ज्ञान और इन्द्रियोंका वश करना और नही कही हुई हिंसाका न करना और गुरुकी सेवा ये उत्कृष्ट मोक्षके साधनहैं ॥ ८३ ॥ इन सब वेदाभ्यास आदिक शुभकर्मोंमें कुछ कर्म अतिशय करिके मोक्षका साधन होय यह वितर्क होनेपर ऋषियोंकी जिज्ञासा विशेषसे आगेके श्लोकसे निर्णय कहते हैं ॥ ८४ ॥

सर्वेषामपि च तेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ॥ तद्व्यग्रं सर्वविद्यां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८५ ॥ षण्णामेषां तु सर्वेषां कर्मणां प्रेत्य चेहं च ॥ श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम् ॥ ८६ ॥

टीका—इन वेदाभ्यास आदि सबोंमेंसे उपनिषद् करि कहा हुआ परमात्माका ज्ञान उत्कृष्ट कहाहै जिस्से सब विद्याओंका प्रधानहै इसीमें हेतु कहते हैं कि जिस्से उसके द्वारा मोक्ष मिलताहै ॥ ८५ ॥ पहले कहे हुए इन वेदाभ्यास आदि छ कर्मोंमें परमात्म



ज्ञानरूप वैदिक कर्म इस लोक तथा परलोकमें अत्यंत कल्याण करनेवाला जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

वैदिके कर्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः ॥ अन्तर्भवन्ति क्रमंशस्त  
स्मिस्तस्मिन्क्रियाविधौ ॥ ८७ ॥ सुखाभ्युदयिकं चैवं नैःश्रेयसि  
कमेवं च ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ ८८ ॥

टीका-अब आत्मज्ञानका इस लोक तथा परलोकमें श्रेयका साधन होना स्पष्ट करते हैं ॥ परमात्माकी उपासनारूप वैदिक कर्मयोगमें ये सब पहले श्लोकमें कहे हुए इस लोक तथा परलोकके श्रेय उस उस उपासना विधिमें क्रमसे संभवित होते हैं ॥ ८७ ॥ वैदिक कर्म यहां ज्योतिष्टोम आदि और प्रतीकोपासना आदि ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि स्वर्ग आदिके सुखका देनेवाला संसारकी प्रवृत्तिका कारण है इससे वैदिक कर्मका प्रवृत्तनाम है तैसेही निःश्रेयस मोक्षको कहते हैं उसके लिये जो कर्म है उसको नैःश्रेयसिक कहते हैं क्योंकि वह संसारकी निवृत्तिका कारण है इससे प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकारका वैदिक कर्म जानना चाहिये ॥ ८८ ॥

इह चांमुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते ॥ निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु  
निवृत्तमुपदिश्यते ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तं कर्म संसेव्य देवानामेति सम्य-  
ताम् ॥ निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै ॥ ९० ॥

टीका-इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इस लोकमें कामनाका साधन करनेवाला यज्ञ आदि और परस्वर्ग आदिका साधन ज्योतिष्टोम आदि जो कामनासे किया जाता है वह संसारकी प्रवृत्तिका कारण होनेसे प्रवृत्त कहा जाता है और दृष्ट अदृष्ट फलकी कामना रहित ब्रह्मज्ञानके अभ्यासपूर्वक किया जाता है वह संसारकी निवृत्तिका कारण होनेसे निवृत्त कहा जाता है ॥ ८९ ॥ प्रवृत्त कर्मके अभ्याससे देवताओंके समान गतिस्वको अर्थात् उसके फलको कर्मसे प्राप्त होता है यह तौ प्रदर्शनके लिये है अन्यफलके देनेवाले कर्मके प्रवृत्त होनेसे दूसरा फलभी प्राप्त होता है और निवृत्त कर्मके अभ्याससे शरीरके आरंभ करनेवाले पंचभूतोंको अतिक्रमण करजाता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ९० ॥

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ॥ समं पश्यन्नात्मयांजी  
स्वाराज्यमधिगच्छति ॥ ९१ ॥ यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्वि-  
जोत्तमः ॥ आत्मज्ञाने शमे च स्याद्विदाभ्यासे च यत्नवान् ॥ ९२ ॥

टीका-स्थावरजंगमरूप सब जीवोंमें मैंही आत्मारूप सहों और परमात्माके परि-



(४५०)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

णामसे सिद्ध सब जीव मुझ परमात्मामें हैं सामान्यतासे यह जानता हुआ आत्माका यजन करनेवाला ब्रह्ममें अर्पण करनेके न्यायसे ज्योतिष्टोमादिकोंको करता हुआ स्व जो ब्रह्म है तिससे प्रकाशित होता है स्वराट् ब्रह्मको कहते हैं तिसके भावको स्वाराज्य अर्थात् ब्रह्मत्वको प्राप्त होता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥९१॥ वेद करि प्रेरणा किये गयेभी अग्निहोत्र आदि कर्मोंको त्याग करिके ब्रह्मके ध्यानमें इंद्रियोंते उत्पन्न प्रणव और उपनिषद आदि वेदके अभ्यासमें ब्राह्मण यत्न करे ॥९२॥

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥ प्राप्येत्तत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा ॥ ९३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः स नातनम् ॥ अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ ९४ ॥

टीका—यह आत्मज्ञान और वेदका अभ्यास आदि द्विजातिके जन्मकी सफलताका करनेवाला है जिसे द्विजाति इसको प्राप्त होके कृतार्थ होता है और भांति नहीं ॥९३॥ अब वेदहीसे ब्रह्म जाननेयोग्य है यह दिखानेके लिये वेदकी प्रशंसा उसका पितृ देवता और मनुष्योंका हव्यकव्यके दानोंमें वेदही चक्षुके समान अविनाशी चक्षु है और वेदशास्त्र करनेको अशक्य है इसे वेदकी अपौरुषेयता कही गई और अप्रमेय कहिये मीमांसा तथा न्यायशास्त्रके विना इसका अप्रमेय नहीं जाना जा सकता है यह व्यवस्था है तिससे मीमांसा करिके और व्याकरण आदि अंगोंसे कर्म तथा ब्रह्मरूप वेदके अर्थको जानै यह कहा गया ॥ ९४ ॥

यां वेदबाह्याः स्मृतयो यांश्च कांश्च कुदृष्टयः ॥ सर्वास्तां निष्फलाः प्रेत्यं तमोनिष्ठां हि तां स्मृतां ॥ ९५ ॥ उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित् ॥ तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ९६ ॥

टीका—जो स्मृतियां वेदसे बाह्य हैं अर्थात् वेद नहीं हैं जैसे चैत्यकी वंदना करनेसे स्वर्ग मिलता है इत्यादि दृष्टार्थ वाक्य हैं और जे देवताओंका अपूर्व निराकरणरूप असत्तर्कमूल हैं और जे वेदविरुद्ध चार्वाकोंके शास्त्र हैं वे सब परलोकमें निष्फल हैं वे सब मनु आदिकों करि नरकरूप फलके देनेवाले कहे गये हैं ॥ ९५ ॥ इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इसे वेदसे अन्य जिनका मूल है ऐसे जे कोई शास्त्र हैं वे पौरुषेय कहिये पुरुषोंके बनाये हुए होनेसे उत्पन्न होते हैं और शीघ्रही नष्ट होजाते हैं वे आधुनिक होनेसे निष्फल और असत्यरूप हैं और स्मृति आदिकोंका तो वेदमूल होनेसे प्रामाण्य है ॥ ९६ ॥

चार्तुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ ९७ ॥ शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो



मंधश्च पञ्चमः ॥ वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मतः ॥ ९८ ॥

टीका—“ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्” इत्यादि वेदहीसे चारो वर्ण सिद्ध होतेहैं तैसेही स्वर्ग आदि तीनो लोकभी वेदहीसे प्रसिद्धहैं ऐसे ब्रह्मचर्य आदि चारो आश्रमभी वेदमूलक होनेहीसे प्रसिद्धहैं बहुत कहनेसे क्याहै जो कुछ भूत वर्तमान और भविष्यहै वह सब ‘अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक्’ इत्यादि न्यायसे वेदहीसे प्रसिद्ध होताहै ॥ ९७ ॥ जो इस लोकमें और परलोकमें शब्द आदि विषय उपयोगी होते हैं वे प्रसूतिगुण संत्व रज तमोरूप वेदहीसे प्रसिद्ध होतेहैं ॥ ९८ ॥

विभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्मादेतत्परं मन्ये यं  
जन्तोरस्य साधनम् ॥ ९९ ॥ सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव  
च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रं विदहति ॥ १०० ॥

टीका—शास्त्र नित्य सब भूतोंको धारण करताहै सोई कहतेहैं कि हवि अग्निमें जो कर्म होताहै उसको अग्नि सूर्यके लिये पहुंचातीहै उसको सूर्य किरणोंसे बरसते हैं उससे अन्न होता है “अथेह भूतानामुत्पत्तिस्थितिश्चेति हविर्जायते” यह ब्राह्मणमें लिखाहै अर्थ इस पीछे यहां भूतोंकी उत्पत्ति और स्थिति हवि होतीहै इति ॥ तिस्से वेदशास्त्र इस जंतुके वैदिक कर्ममें अधिकारी पुरुषके प्रकृष्ट पुरुषार्थको साधन जानतेहैं ॥ ९९ ॥ सेनाका पति होना राजदंडका करना और सब भूमिका स्वामी होना यह सब जिसका प्रयोजन कहचुकेहैं वेदरूप शास्त्रके जाननेवालेही योग्यहै ॥ १०० ॥

यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान् ॥ तथा दहति वेदज्ञः  
कर्मजं दोषमात्मनः ॥ १ ॥ वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वस  
न् ॥ ईहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २ ॥

टीका—जैसे बड़ी हुई अग्नि गीलेभी वृक्षोंको जलादेतीहै ऐसेही ग्रंथसे तथा अर्थसे वेदका जाननेवाला निषेध किये हुए कर्मोंके करनेसे उत्पन्न पापोंका आप नाश करताहै ऐसे तौ वेदके बल स्वर्ग अपवर्ग आदिहीका हेतु नहीं है किंतु अहितका नाश करनेवालाभीहै ॥ १ ॥ जिस्से जो कर्म और ब्रह्मात्मक वेदकी और उसके अर्थको तत्त्वसे जानताहै वह नित्यनैमित्तिक कर्मों करि अनुगृहीत ब्रह्मज्ञानसे ब्रह्मचारी आदिके आश्रममें स्थित इसी लोकमें रहता हुआ ब्रह्मत्वके लिये समर्थ स्वार्थ ॥ २ ॥

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ॥ धारिभ्यो ज्ञानि  
नः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥ ३ ॥ तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेय



(४५२)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः

संकरं परम् ॥ तपसां किल्बिषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ४ ॥

टीका—जे थोडा पढे हैं वे अज्ञ हैं उनसे संपूर्ण वेदके पढनेवाले श्रेष्ठ हैं उनसे पढे हुए ग्रंथके धारणमें समर्थ श्रेष्ठ हैं और धारणकरनेवालोंसे पढे हुए ग्रंथके अर्थ जाननेवाले श्रेष्ठ हैं और उनसे करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ तप कहिये आश्रमके लिये विहित कर्म औ विद्या कहिये आत्मज्ञान ये दोनो ब्राह्मणको पर कहिये उत्कृष्ट निःश्रेयसकर अर्थात् मोक्षका साधन हैं उनमेंसे तपसे पापको नाश करता है और ब्रह्मज्ञानसे मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधांगमम् ॥ त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥ ५ ॥ आर्षे धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना ॥ यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेदने तरः ॥ ६ ॥

टीका—धर्मके तत्त्वको जानना चाहता पुरुष प्रत्यक्ष और अनुमान और स्मृति आदि नाना प्रकारके वेदमूलक शास्त्र धर्मका मूल जाननेके लिये सुविदित कहिये भलीभांतिसे ज्ञान करना चाहिये येही तीनो प्रमाण मनुको अभिमत हैं उपमान और अर्थापत्ति आदिकोंका अनुमानमें अंतर्भाव है ॥ ५ ॥ ऋषियों करि सेवित होनेसे आर्ष जो वेद है तिसको और धर्मके उपदेशको और धर्ममूलक स्मृति आदिको जो धर्मसे विरुद्ध नहीं ऐसे मीमांसा आदि न्यायसे जो विचार करता है वह धर्मको जानता है और मीमांसाका न जाननेवाला नहीं जानता है ॥ ६ ॥

नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः ॥ मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यसुप दिश्यते ॥ ७ ॥ अनाम्रातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्देवैर् ॥ यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशङ्कितः ॥ ८ ॥

टीका—यह कल्याणका साधन कर्म संपूर्णतासे यथावत् कहा इसके उपरांत इस मानव शास्त्रके छपानेयोग्य इस वक्ष्यमाण रहस्यको सुनिये ॥ ७ ॥ इस शास्त्रका सब धर्मोंके न कहनेकी शंका करिके इस सामान्य उक्तिसे समग्र धर्मका उपदेश करना सूचित करते हैं ॥ सामान्य विधिसे प्राप्त और विशेष करि नहीं कहे गये धर्मोंमें कैसे करना चाहिये यह जो संदेह होय तौ जिस धर्मको जिनके लक्षण आगे कहे जायंगे ऐसे शिष्टब्राह्मण कहें वह वहां निश्चित धर्म होय ॥ ८ ॥

धर्मणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिवृंहणः ॥ तं शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ ९ ॥ दशवरा वा परिवर्धं धर्मं परिकल्पयेत् ॥ त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ १० ॥



टीका—ब्रह्मचर्य आदि कहे हुए धर्मसे जिन्होंने अंग मीमांसा धर्मशास्त्र, और पुराण आदि करि उपबृंहित वेद पढाहै वे ब्राह्मण श्रुतिके प्रत्यक्ष करनेमें कारणहै और जे श्रुतिको पढिकै उसके अर्थका उपदेश करतहैं वे शिष्ट जानने चाहिये ॥ ९ ॥ जो बहुतसे इकट्ठे न होय तौ कमसे कम दश अथवा कमसे कम तीन जिनके लक्षण आगे कहे जायंगे ऐसे जिसमें सदाचार होय वह परिषत् कहिये सभा जिस धर्मका निश्चय करै अर्थात् धर्मत्वसे स्वीकार करै उसमें विवाद न करै ॥ ११० ॥

त्रैविध्यो हेतुकस्तर्कानैरुक्तो धर्मपाठकः ॥ त्रयश्चाश्रमिणः  
पूर्वे परिषत्स्योद्देशावरा ॥ ११ ॥ ऋग्वेदविद्यजुर्विचं सामवे-  
दविदेव च ॥ त्रयवरा परिषज्ज्ञेयां धर्मसंशयनिर्णये ॥ १२ ॥

टीका—तीनो वेदोंकी तीन शाखाओंका पढनेवाला, और श्रुति स्मृतिसे विरुद्ध नहीं ऐसे न्यायशास्त्रके जाननेवाले और मीमांसात्मक तर्कोंके जाननेवाले और निरुक्तके ज्ञाता, और मानव आदि धर्मशास्त्रोंके वेत्ता, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, तथा वानप्रस्थ, यह कमसे कम दशकी सभा होय ॥ ११ ॥ ऋक् यजु और सामवेदकी शाखाओंके पढनेवाले और उनके अर्थके जाननेवाले तीन ब्राह्मण जिसमें होय वह धर्म संदेह दूर करनेके लिये त्रयवरा परिषत् जाननी चाहिये ॥ १२ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥ सविज्ञेयः परो धर्मो  
नान्ज्ञानमुदि तोऽयुतैः ॥ १३ ॥ अत्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोप  
जीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १४ ॥

टीका—एकभी वेदके अर्थ और धर्मका जाननेवाला जिस धर्मका निश्चय करै वह एक कृष्ट धर्म जानना चाहिये और वेदके न जाननेवालोंके दशसहस्रोंसेभी युक्त परिषत् नहीं होती है यह वेदवित् शब्द वेदका अर्थ और धर्मज्ञको कहताहै यह तौ उपलक्षणहै स्मृति पुराण मीमांसा तथा न्यायशास्त्रका ज्ञाताभी गुरुपरंपरासे उपदेशका वेत्ताभी जानना चाहिये तथा “केवलंशास्त्रमाश्रित्य नकर्तव्योविनिर्णयः ॥ युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते” इति ॥ अर्थ ॥ केवल शास्त्रका आश्रय लेकर निर्णय न करना चाहिये युक्तिसे हीन विचारमें तौ धर्मकी हानि होतीहै इति ॥ तिस्से बहुतसी स्मृतियोंका जाननेवालाभी जो भलीभांतिसे प्रायश्चित्त आदि धर्मको जानता होय तौ उस एक करिकैभी कहा हुंया धर्म उत्कृष्ट धर्म जानना चाहिये इसीसे यमने कहाहै । जैसे ॥ एकोद्वौवात्रयोवापि यद्ब्रूयुर्धर्मपाठकाः ॥ सधर्मइतिविज्ञेयोनेतरे षांसहस्रशः । इति ॥ अर्थ ॥ एक दो अथवा तीन धर्मपाठक जो जो कहैं वह धर्म जानना चाहिये औरोंके हजारों नहीं ॥ १३ ॥ सावित्री आदि ब्रह्मचारीके व्रतों करि रहितों



(४५४)

मनुस्मृतौ

[ अध्यायः ]

और मंत्रवेदाध्ययन रहितोंके तथा ब्राह्मण जातिमात्रके धारण करनेवाले हजारोंके मिलनेका परिषद्भाव नहीं होताहै धर्मके निर्णयकी अभाव होनेसे ॥ १४ ॥

यं वर्द्धन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ॥ तत्पापं शर्तधा भूत्वा  
तद्वृत्तननुगच्छति ॥ १५ ॥ एतद्वोऽभिहितं सर्वं निःश्रेयसकरं परं  
म् ॥ अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १६ ॥

टीका—तमोगुणहै बहुत जिनमें ऐसे मूर्ख धर्मका प्रमाण और वेदका अर्थ न जाननेवाले होते हैं इसीसे प्रश्न विषयधर्मके न जाननेवाले जिस प्रायश्चित्त आदि धर्मका उपदेश करते हैं उसका पाप सौगुना होकर बहुतसे कहनेवालोंमें जाताहै ॥ १५ ॥ यह कल्याणका साधन उत्कृष्ट धर्म आदि सब तुमसे कहा इसको करता हुआ ब्राह्मण आदि स्वर्ग अपवर्गरूप परमगतिको प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥

एवं स भगवान् देवो लोकांना हितं काम्यया ॥ धर्मस्य परमं गुह्यं  
मेमेदं सर्वमुक्तवान् ॥ १७ ॥ सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चोसच्च सर्वा  
हितः ॥ सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ॥ १८ ॥

टीका—वह भगवान् ऐश्वर्यआदि करि युक्त देवमनुने नही सुननेकी इच्छावाले शिष्योंसे छुपानेयोग्य यह सब धर्मका परमार्थ लोकके हितकी इच्छासे मेरे लिये कहा भृगु महर्षियोंसे कहते हैं ॥ १७ ॥ ऐसे उपसंहार करिके महर्षियोंके हितके लिये कहे हुएभी आत्माके ज्ञानको प्रकृष्ट मोक्षका उपकारक होनेसे जुदा करिके कहते हैं ॥ सद्भाव और असद्भाव इस सब ब्रह्मको जानता हुआ अपनेमें उपस्थित ब्रह्मके स्वरूपको तद्रूप एकाग्र मनहो ध्यानके प्रकर्षसे साक्षात् करै जिस्से सबको आत्मत्वसे देखता हुआ रागद्वेषके न होनेसे अधर्ममें मनको नहीं करताहै ॥ १८ ॥

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥

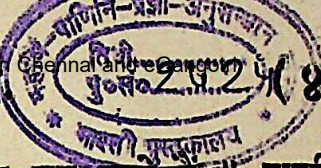
आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ १९ ॥

टीका—इसीको स्पष्ट करते हैं ॥ इंद्र आदि सब देवता परमात्माही हैं परमात्मा के सर्वात्मा होनेसे सब जगत् आत्माहीमें अवस्थित है क्योंकि परमात्माका परिणामहै जिस्से परमात्माही इन क्षेत्रज्ञ आदिकोंके कर्मसंबंधको उत्पन्न करताहै ॥ १९ ॥

खं संनिवेशयेत्स्वेषु चेष्वनस्पर्शनेऽनिलम् ॥ पक्तिदृष्ट्योः परं ते  
जः स्नेहेऽपो गां च मूर्तिषु ॥ ५२० ॥ मनसिन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रीते  
विष्णुं बले हरम् ॥ वाच्यं मित्रमुत्सर्गं प्रजने च प्रजापतिम् ॥ २१ ॥

टीका—वक्ष्यमाण ब्रह्मके ध्यानविशेषका उपयोगी होनेके कारण देहमें स्थित





आकाश आदिकोंमें बाहरी आकाश आदिकोंका लय कहते हैं ॥ बाहरी आकाशको पेट आदिमें स्थित देहके आकाशमें लीन करै अर्थात् एकतासे धारण करै तैसेही चेष्टा और स्पर्श कारणभूत वायुमें बाहरी वायुको और उदरके तथा नेत्रोंके तेजमें बाहरी अग्नि तथा सूर्यके उत्कृष्ट तेजको और देहके जलमें बाहरी जलको और शरीरसंबंधी पृथिवीके भागोंमें बाहरी पृथिवीको और मनमें चंद्रमाको और कानमें दिशाओंको और पाद इंद्रियमें विष्णुको और बलनें हरको और वाक् इंद्रियमें अग्निको और पायुइंद्रियमें मित्रको और उपस्थ इंद्रियमें प्रजापतिको लीन कहिये एकतासे भावना करै ऐसेही आत्मामें स्थित भूतादिकोंमें बाहरी भूतादिकोंको लीन करि अर्थात् एकतासे भावना करि जो यह अग्नि आदिकोंका दैहिक आदि नियमहै और जो कर्मोंका प्रतिनियत फलहै उस सबको आत्माके आधीन करै ॥ १२० ॥ २१ ॥

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ॥

रूपमाभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं धुरुरुषं परम् ॥ २२ ॥

टीका-ब्रह्माको आदिले स्तंब पर्यंत सब चेतन अचेतन अर्थात् जडचैतन्य प्लानिका प्रशासिता कहिये नियंता और अणोरणीयांसं अर्थात् छोटेसेभी बहुत छोटाहै सोई श्रुति कहतीहै जैसे ॥ वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच ॥ भागो जीवेतिविज्ञेयः सचानंत्यायकल्पते इति ॥ अर्थः ॥ बालकी नोकका जो सौभाग्यहै उसके सौभाग्य कल्पना करनेसे जो भाग होय वह जीव जानना चाहिये वही अनंत होजाताहै इति और रूपमाभं यद्यपि शब्दरहित स्पर्शरहित अविनाशी इन विशेषणोंसे उपनिषदने परमात्माके रूपका निषेध कियाहै तिसपरभी पासना विशेषमें शुद्ध सुवर्णके समान कांतिहै इसीसे "यएषोन्तरादित्येहिरण्मयः" अर्थात् जो यह सूर्यके भीतर सुवर्णमयहै इत्यादि छांदोग्य उपनिषदमें लिखाहै और स्वप्नधीगम्यं यह दृष्टान्तहै स्वप्नकी बुद्धिके समान ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्यहै जैसे स्वप्नकी बुद्धि चक्षु आदि बाहिर इंद्रियोंके उपराममें मनमात्रसे उत्पन्न होताहै ऐसे आत्मबुद्धिभी जानिये इसीसे व्यासने कहाहै जैसे ॥ नैवासौचक्षुषा ग्राह्यो नच शिष्टैरपीन्द्रियैः ॥ मनसातुप्रसन्नेन गृह्यतेसूक्ष्मदर्शिनः ॥ अर्थ ॥ यह नेत्रोंसे ग्रहण करनेयोग्य नहीं है और शेष इंद्रियों करिकेभी नहीं ग्रहण किया जाताहै सूक्ष्म दृष्टिवाले मनुष्यों करि प्रसन्न मनसे ग्रहण किया जाताहै ॥ इस प्रकारके परमात्माका चिंतन करै ॥ २२ ॥

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ॥ इन्द्रमेके परे प्राणम-

परे ब्रह्मं शीश्वतम् ॥ ३३ ॥ एषं सर्वाणि भूतानि पञ्चभिर्व्याप्य



( ४५६ )

मनुस्मृतौ

मूर्तिभिः ॥ जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत् ॥ २४ ॥

टीका—कोई याज्ञिक इस परमात्माकी अग्रिभावसे उपासना करतेहैं और फिर मनुनाम प्रजापतिके रूपसे उपासना करतेहैं और कोई फिर ऐश्वर्यके योग आदिसे इंद्ररूपसे उपासना करते हैं अपर फिर प्राणभावसे उपासना करतेहैं अपर फिर अपगत प्रपंचात्मक सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माकी उपासना करतेहैं मूर्ति और अमूर्तिमान् स्वरूप ब्रह्ममें श्रुतिप्रसिद्ध सबही उपासना होती हैं ॥ २३ ॥ यह आत्मा सब प्राणियोंको शरीरके आरंभ करनेवाले पृथिवी आदि पांच महाभूतोंसे ग्रहण करिके पूर्वजन्मके अर्जित कर्मोंकी अपेक्षासे उत्पत्ति स्थिति विनाशोंसे रथ आदिके चक्रके समान वारंवार फिरनेसे मोक्षतक संसारी करताहै ॥ २४ ॥

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥ स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ॥ २५ ॥ इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन्दिजः ॥ भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्वृत्तिम् ॥ १२६ ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

टीका—अब मोक्षके कारण भावसे कहे हुए सब धर्मोंकी श्रेष्ठतासे सर्वत्र परमात्माके दर्शनकी अनुष्ठेयतासे उपसंहार करते हैं ॥ इस भांति सब जीवोंमें आत्माको इत्यादि कहे हुए प्रकारसे जो सब भूतोंमें स्थित आत्माको आत्माकरि देखताहै वह ब्रह्मके सक्षात्कारसे परश्रेष्ठस्थान जो ब्रह्महै तिसको प्राप्त होताहै उसमें अत्यंत लीन होजाताहै अर्थात् मुक्त होजाताहै ॥ २५ ॥ इति शब्द समाप्तिके लियेहै यह स्मृतिशास्त्र भृगुने प्रकर्षकरि कहा द्विजाति इसको पढता हुआ विहितके करने और निषेध किये हुएके त्यागनेरूप आचारवान् होताहै जैसे चाही हुई स्वर्ग अपवर्गरूप गतिको प्राप्त होय ॥ १२६ ॥

इति श्रीमत्पण्डितवर्यश्रीपण्डितपरमसुखतनयपण्डितकेशवप्रसादशर्माद्विवेदिकृतायां कुल्लूकभट्टाऽनुयायिन्यां मनुक्तभाषाविवृतौद्वादशोऽध्यायस्समाप्तः ।

॥ १२ ॥ तर्काऽन्वयङ्कनिशाकराङ्कगणितेवर्षेशुभैवैक्रमेमाधेमास्थसितेदले गुहतिथौनीतासमाप्तिमया ॥ श्रीमन्मानवधर्मशास्त्रविवृतिनृणांगिरा स्वच्छयाश्रीमत्केशवशर्मणाऽग्निलपुरेश्रीभानुजाभूषिते ॥ १ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास “श्रीवेंकटेश्वर” छापाखाना—बम्बई.







भृगुने  
नये हुएके  
(११६)







